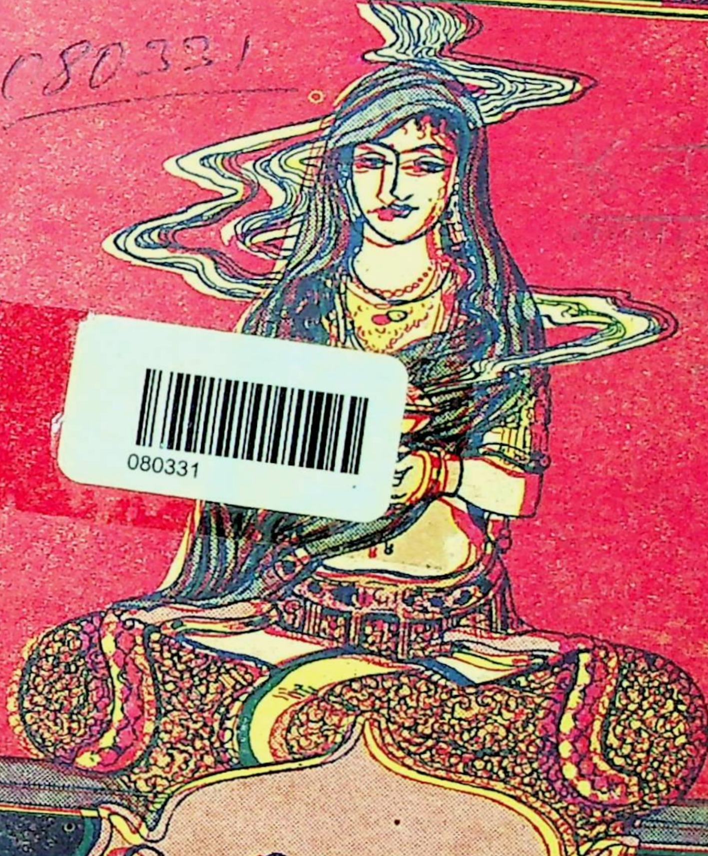
VISHVA MITRA
1945
G.K.L.



वार्षिक मूल्य ६)

विश्वामित्र

एक प्रति का ॥)





विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता





सम्पादक—

देवदत्त मिश्र

दिसम्बर १९४५ वर्ष—१३, संख्या—१२ मार्ग शीर्ष २००२

भारती भूति

हो रुचिर भावोंसे भरपूर ।
लाभ कर भव हितकर अनुभूति ।
भरे भारतमें वांछित भूति ।
भारती बने भारती भूति । १ ।

बनाती है अमधुरको मधुर ।
अकांतोंको करती है कान्त ।
भारती दिव्यानन अवलोक ।
ध्वंस होता है भवका ध्वान्त । २ ।

भारती भक्ति जनित वर वृत्ति ।
कल्पलतिका - सी बन कमनीय ।
कल्पनाको कर कान्त नितान्त ।
उसे करती है अनुभवनीय । ३ ।

लुभाता नहीं सुधाका स्वाद ।
न रहता है सुर-पुरका चाव ।
भारतीकी जिससे हो भक्ति ।
भरे भावुक उरमें वह भाव । ४ ।

दूर हो जाता है पा दीप्ति ।
अज्ञता तिमिर प्रसूत विकार ।
उरोंमें जग जाती है ज्योति ।
भारतीकी आरती उतार । ५ ।

—हरिऔध

क्लाइवसे केनींज तक

श्री जे० सी० कुमारप्पा

[श्री कुमारप्पाने इस लेखमें यह बताया है कि अङ्गरेजोंने भारतका शोषण किया। अधिकांश व्यक्ति इससे परिचित होनेपर भी इसे जानते न होंगे। अन्तमें उन्होंने अङ्गरेजोंसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय बताया है—अङ्गरेजी मालकी खपतका बहिष्कार]।

आज जबकि कई प्रकारकी आर्थिक योजनायें निर्मित की जा रही हैं और सभी तरफसे आर्थिक समस्यायें उठ रही हैं, उस समय यह देखना आवश्यक होगा कि २०० वर्षोंके ब्रिटिश शासनमें आज भारतकी आर्थिक दशा क्या। यह स्पष्ट कर देगा कि महान ब्रिटेनकी महानताकी जड़ें भारतकी निर्धनतासे अपना पोषक तत्व प्राप्त करती है।

जैसा कि मैकालेने कहा है कि "पलासीके दिनोंसे कम्पनी और उसके नौकरोंपर धनकी वर्षा होने लगी।" और यह आज तक हो रहा है, केवल बाहरी आवरणमें अंतर है। उसे छिपाये शासककी प्रतिभा है। हमें यहां इस आवरणको उठा कर भीतरी वास्तविक तथ्यके दर्शन करना होगा। इस शोषण कार्यके लिये भिन्न-भिन्न तरीके कार्यमें लाये गये—उनका विभागीकरण इस प्रकार होगा—

समेट रखनेकी विधि—

(Holdup method)—मैकाले क्लाइवके बारेमें कहता है कि आठ सौ हजार पाउण्ड स्टर्लिङ्गका धन चांदीके सिक्कोंमें मुर्शिदाबादसे फोर्ट विलियम रवाना किया गया था। फिरसे व्यापार-धन-चिह्न अङ्गरेजोंके घरमें दिखायी पड़ने लगे। क्लाइवके लिये तो सिवा उसीकी इच्छाके कोई सीमा न थी। इस प्रकारसे धोखेसे और सस्ती पायी गयी सम्पत्तिको ब्रिटेनमें उपयोग व्यापारिक क्रांति (Industrial Revolution) में किया गया जिसकी वजह से ब्रिटेन व्यापारमें इतना शक्तिशाली बन सका।

ब्रुक अपनी पुस्तक ला आव सिविलिजेशन ऐण्ड डिके (Law of Civilization and Decay) में कहता है कि 'शायद संसारके किसी भी व्यापारीको साहससे इतना फायदा न हुआ होगा जितना भारतकी लूटी हुई सम्पत्तिसे ब्रिटेनको हुआ। ५० वर्षों तक ब्रिटेनका कोई प्रतियोगी न था। इस प्रकार बंगालकी चांदीने केवल ग्रेट-ब्रिटेनकी सम्पत्ति ही नहीं बढ़ाई वरंच इसके आन्दोलनमें जीवन डाल दिया। फौरन १७५९ में इङ्गलैंड बैंकने १० और १५ के नोट जारी किये और देशकी प्राइवेट फर्मोंने कागजकी बाढ़ कर दी। बर्क (Burke) कहता है कि१७५० में १२ बैंकें भी न थीं किंतु १७९० में हरएक नगरके बाजारमें बैंक थी। विलियम डिग्बीके मतानुसार पलासी और वाटरलूके बीचमें करीब १०००० लाख पाउण्ड स्टर्लिंग भारतीय खजानेसे ब्रिटिश बैंकको भेज दिया गया। उस समय 'अकालकी अवस्था' यह थी कि १ रुपयेसे हम ४० नाप गेहूं खरीद सकते थे किन्तु आज एक रुपयेमें सिर्फ २ नाप। अर्थात् रुपयेकी खरीदनेकी शक्ति आजकी अपेक्षा २० गुना अधिक थी।

(२) धोखेबाजीकी विधि—साम्राज्यवादियोंकी उछल-कूदके बाद दूसरा युग आता है। "यह आदरणीय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी धोखेबाजीका काल है। कम्पनी अपनी इज्जतके कारण खुलेरूपसे पैसा नहीं दे सकती थी अतः उसने दूसरी विधि सोची। उसने भारतीय मालको बाहर यूरोपमें बिक्रीके लिये भेजा। यह कर देनेवालेके कररूपमें था। कर देनेवालेको इस व्यापारसे कुछ भी नहीं मिलता था क्योंकि समस्त आय लाभके रूपमें ले ली जाती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हिसाब-किताबके अनुसार सन् १७९३ से १८१२ के बीचमें करीब २६०० लाख पाउण्ड स्टर्लिंग इस धोखेबाजी के फलस्वरूप प्राप्त किये गये।

३ हिसाब-किताबमें गड़बड़ी—१९ वीं शताब्दीके मध्यमें ब्रिटिश अर्थशास्त्री क्लाइवकी लूट और ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी बेईमानीकी विधिसे काम न चला सके। वह कुछ नयी विधिसे अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहते थे। उनके मस्तिष्ककी गति आश्चर्यजनक थी। तथ्योंको खोला ही क्यों जाय? उनको ऐसी उलझनमें डाल दिया जाय कि कोई उनका पता न लगा सके। ब्रिटेन अपने साम्राज्यके

विभिन्न अंगोंके निर्माणमें लगा था। इसके लिये पैसेकी आवश्यकता थी। क्यों न यह सब भारतीय खर्चेपर डाला जाय। उस समय अफगान, बर्मा, चीन, फारस, अबीसीनिया और मिस्र देशके युद्ध हुए और करीब ७०० करोड़से कुछ अधिक रकम भारतीय करसे वसूल किये गये। रामजे मेक डाल्डने "भारत सरकार" में लिखा है—"निस्सन्देह इस मामलेमें भारतके साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। इसे उन कार्यों का भी खर्चा सहना पड़ा जो कि मुख्यतया साम्राज्यशाही थे।" व्रलबे कमीशन रिपोर्टमें भी इस प्रकारके कार्य दिखाये गये हैं। स्थानाभावसे हम उन्हें यहां नहीं गिनाते।

(४) क्रिश्चियन विधि —बीसवीं शताब्दीकी रोशनी ने इस बातको असम्भव बना दिया कि कोई भी कार्य जनताकी आंखोंसे छिपाया जा सके। प्रथम महायुद्धमें ग्रेट-ब्रिटेनने भारतसे बहुत बड़ा खर्चा लिया जोकि साधारणतः चुकाया जानेवाला था। किन्तु ग्रेट-ब्रिटेन एक 'पुरोहित' की तरह सिर्फ लेना जानता है देना नहीं। क्या हमें 'भूलो और माफ करो' का पाठ नहीं पढ़ाया गया? इसका आर्थिक मतलब यह हुआ कि ग्रेट-ब्रिटेनको अपने आभारोंको भूल जानेका हक हैं और दूसरा अपने ऋणको माफ करनेको मजबूर है। क्या लार्डने नहीं कहा, "यदि तुम्हारा दाहिना हाथ तकलीफ देता है तो उसे काट डालो।' इसी प्रकार यदि तुम्हारा ऋण तुम्हें परेशान करता है तो क्यों न इसको भूल ही जाओ। उनका दिल्लीमें एक विभाग है जिसके अनुसार भारत सरकार प्रत्येक बढ़े हुए खर्चेको 'दान' (Gift) कह कर हड़प करनेका बहाना करती है। इसके अनुसार कोई भी अछविधाकर व्यय 'दान' बनाया जा सकता है। बाइबिलमें है—यदि पुत्र पिताका ऋणी है तो यदि वह इसे दान कह दे तो उससे उसका छुटकारा हो जायगा। इस प्रकारसे ब्रिटेनने १८९ करोड़का गड़बड़ कर दिया। कांग्रेसने इस दानका विरोध दो सिद्धान्तोंपर किया—

(१) गवर्नमेंट, जिस विधानके अन्दर बनी है उसकी मौजूदा हालतमें उस प्रकार दान देनेका हक उसे नहीं। अतः वह सम्पत्ति लौटायी जाय।

(२) यह धन भारतकी शक्तिके बाहरकी चीज थी और क्या इन सब आर्थिक दानोंके सिवा भारतने दूसरे उपनिवेशोंको अधिक जन सहायता तथा दूसरी सहायतायें नहीं दीं?

किन्तु कोई भी कानून या शक्ति ब्रिटेनको जैसा वह चाहे करनेसे किस प्रकार रोक सकती है। क्या वह इस समय अत्यन्त शक्तिशाली राष्ट्र नहीं? और क्या वह 'अणु-बम' के सर्वाधिकारी अमेरिकाका मित्र नहीं? इसलिये वह समस्त कानूनोंकी परिधिसे परे है।

(५) गिरवी रखनेकी विधि—पिछली चार पद्धतियोंने हमें वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान की है जिससे हम तत्कालीन आर्थिक व्यवस्थाका अध्ययन कर सकें। द्वितीय महायुद्धके समय पिछले अनुभवोंसे अर्थशास्त्रका विकास हो चुका था अतएव नये तरीके कार्यमें लाये गये। जब कोई जरूरत-मन्द व्यक्ति रुपया चाहता है तो वह चीज गिरवी रखता है—जो पैसा लेता है उसकी सुरक्षाके लिये। इस युद्धमें ब्रिटेनकी आर्थिक स्थिति बड़ी डांवांडोल थी। उसे अपने लाखोंका व्यापार खतम कर देना पड़ा और बाहरके बाजारमें कर्जदार हो गया था। इसलिये स्वभावतः उसने अपनी नजर भारतवर्षकी ओर दौड़ायी जहां कि राजनीतिक पाशविकताके बलपर वे उसे निचोड़ सकते थे।

रिजर्व बैंक आफ इण्डियाके निर्माता बुलियन और स्टर्लिंग बैलेंसको ४० प्रतिशत करेंसी नोटोंसे (Backing) रखते थे शर्त यह थी कि बुलियन बैलेंस कभी ४० करोड़से कम न जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारमें बुलियनकी एक निश्चित आन्तरिक कीमत होती है किन्तु स्टर्लिंग बैलेंसकी कोई ऐसी कीमत नहीं। सिद्धान्ततःइन दोनोंको एक आधारपर रखना महान गलती है और आर्थिक धोखेबाजी है। गिरवी रखनेमें कोई कीमती वस्तु रखनेके बजायकागजके नोट दिये गये और इस प्रकार अधिकसे अधिक सम्पत्ति कागजके द्वाराखिंचगयी इस प्रकार १९३९ से अबतक १०३४ करोड़ चले गये हैं। और ऋण देनेवाला साहूकार भारत, आज ब्रिटिशकी कृपापर निर्भर है।

(६) गलत हिसाबकी विधि - भारतके पास एक निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय खरीद करनेकी शक्ति थी। उनका डालरमें परिवर्तन करके हिसाबमें गड़बड़ी कर दी गयी और आज तक इस तथ्यसे हम अनभिज्ञ हैं कि कितना धन इस प्रकार लिया गया। यह एक रहस्य है। यदि यह युद्ध ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिकन फासिज्मका इटली जर्मनीके फासिज्म से था और ग्रेट ब्रिटेन अपने फायदेके लिये भारतीय सिपाहियोंका उपयोग कर रहा था, जैसे इण्डोनेशियाके उदाहरण का भारतीय सेनाका खर्च उसे चुकाना चाहिए। केवल इसलिये कि ये सैनिक भारतीय हैं अतः इनका खर्च भारत

उठाये यह उसी प्रकार तर्क हीन है कि यदि बम्बईका पुलिस कमिश्नर अंग्रेज है तो उसका वेतन ब्रिटेन दे। १९३९ के पश्चात् इस प्रकारके खर्चे कुल मिलाकर २००० करोड़ आते हैं जो भारतके सिर पड़े हैं। इसके सिवा ९०० करोड़ स्टर्लिंग ऋण चुकानेपर खर्च किये गये हैं जिसका विरोध कांग्रेसने किया है। ये तीनों भारतीय हिसाबमें गलती के उदाहरण हैं। यदि ब्रिटेनमें आर्थिक नैतिक बल है तो उसे यह सम्पत्तिलौटा देनी चाहिये।

(७) एहसान फरामोशीकी विधि—ग्रेट ब्रिटेन अपने को भारतका ट्रस्टी कहता है। तब फिर इसे अपने लाभके लिये भारतकी सम्पत्तिका उपयोग करनेका अधिकार नहीं। हमने यह देखा है कि २ लाख भारतीय सिपाही ब्रिटेनको नाजियोंके कदमों द्वारा रौंदनेसे बचानेके लिये भरती किये गये। इन भारतीय सिपाहियोंने ब्रिटेनका नाश होनेसे बचाया है अतः ये अवश्य ब्रिटेनके शुभचिन्तक हैं।

तथाकथित (युद्धोपरान्त) सरकारी योजनामें यह कहा गया है कि इन मनुष्योंको नौकरी छोड़नेके बाद गांवोंमें बसाया जायगा। यह एकसे लूट कर दूसरेको खिलानेके सदृश्य है। ये सैनिक ब्रिटेनमें बसाये जाने चाहिये जिसे कि इन्होंने बचाया है। यदि ऐसा न हो सके तो क्या कनाडा और आस्ट्रियामें ऐसे प्रदेश नहीं जहां इन्हें बसाया जा सके। उनके जीवन और प्राण शायद इस योग्य हैं कि उन्हें खतरेमें डाला जा सके किन्तु उन्हें इन प्रदेशोंमें बसानेके लिये उनके चमड़े काले हैं बताया जायगा। ग्रेट ब्रिटेन उदार और दानी कहलानेका दावा करता है किन्तु दूसरेके बलपर ही।

परिणाम—हमने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सर्वोच्च सत्ता 'क्लाइव'से लगाकर आजकी आर्थिक व्यवस्थाकी सर्वोच्च सत्ता 'केनीज' तकको देख लिया, जोकि दोनों एक ही प्रकारकी हैं हमने उनकी नीतियोंमें कोई नवीन परिवर्तनका आभास नहीं पाया। हमने विभिन्न विचारोंके द्वारा यह देख लिया है कि उनकी नीति अत्यन्त घृणास्पद और क्रूरता से भारतीय सम्पत्ति हड़प लेनेकी रही है। लार्ड क्लाइव एक बहुत बड़ा दुस्साहसिक शोषक था हालांकि वह मौजूदा लार्ड केनीजकी तरह कुशल और चालाक न था। क्या हमने बड़ी-बड़ी बातोंवाले सिद्धान्तों—ब्रिटेन-वड और डम्बरटन ओकसे कुछ पाया है। उनकी नीति अब तक सतत शोषणकी रही है तथा दूसरोंके खूनसे पराक्रमी बनकर रहने की। इस साम्राज्यका उद्भव लालच से, विकास लूटसे, और आचरण असत्यता और धोखेबाजीमें रहा है। मनुष्य आते रहेंगे और जाते रहेंगे किन्तु ब्रिटेनकी भारतके प्रति आर्थिक नीति सदैव वही रहेगी।

इसके सिवा भारतकी महान उत्पादक शक्तिका विनाश किया जा रहा है, भारतको विदेशोंका अकार्यशील बाजार बनाकर।

प्रत्येक तरीकेसे भारतको सिर्फ एक खरीददार बनाये रखनेका प्रयत्न किया गया है। इस अवस्थामें आश्चर्य यह नहीं है कि हम निर्धन हैं,आश्चर्य तो यह है कि हम जी कैसे रहे हैं। यदि हमें अधिक दिनोंतक जीवित रहना है तो यह आवश्यक है कि हम उस केंकड़ेको जो कि हमारे सब ओर अपने कांटे गड़ाकर हमारा रक्त चूस रहा है, दूर करें।

शिक्षा—किन्तु यह होगा किस प्रकार। हम सिर्फ भारत छोड़ो नारेसे ही उनको बोरिया-बंधना बांधकर रवाना नहीं करा सकते। एक हिंसात्मक संगठनमें मनुष्योंको सैनिक शक्तिकी शिक्षा दी जाती है। संघ अनुशासन होता है किन्तु अहिंसात्मक संगठनमें प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने अनुशासनके प्रति उत्तरदायी होता है। विदेशी हमारे देशमें ही अपना बाजार बनाना चाहते हैं। यदि हम उनको दूर भगाना चाहते हैं तो हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है कि हम उनके मालको खरीदकर उन्हें और आकर्षित न करें। हमें यदि आवश्यक हो तो हम उन्हीं वस्तुओंको खरीदें जो जीवनके लिये आवश्यक हैं। यही आत्मनिर्भरता और रचनात्मक कार्यक्रमका सन्देश है। हमारी प्रत्येक आवश्यकता केवल स्थानिक वस्तुओंकी ही होनी चाहिये। किन्तु उसके लिये आत्मानुशासनकी आवश्यकता है। विदेशी माल तथा मिलोंका माल सस्ता बिकता है इससे स्वभावतः हम उनकी ओर आकर्षित होते हैं। इस विष के पीछे जो खतरा है हमें उसे पूर्णरूपसे जानना तथा समझना होगा। बड़े-बड़े केन्द्रीभूत उत्पादनोंके द्वारा,बेकारीको और अधिक बढ़ाकर हमारी निर्धनता दूर न हो सकेगी। इसकी चिकित्सा होगी विकेन्द्रीकरण और अपने चरित्रकी उच्चतासे। यह एक लम्बा और अशांतकर रास्ता शायद मालूम पड़े किन्तु हमारे देशको स्वतन्त्रता, उन्नति और शान्तिकी ओर ले जाने वाला यही एक निश्चित मार्ग है।

जेल व्यवस्था और सुधार

श्री लालबहादुर सिंह शास्त्री, मंत्री-युक्त-प्रां० कांग्रेस कमेटी

वर्तमान जेल व्यवस्था बहुत ही कठोर एवं दुःखदायी है। इस व्यवस्थाका मुख्य उद्देश्य बन्दियोंको कष्ट और भांति-भांतिकी यातनाएं देना है। बन्दियोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारका जहांतक सम्बन्ध है, जेलकी व्यवस्था बहुत ही पिछड़ी हुई है एवं पुराने तरीकोंपर आश्रित हैं। जेलोंमें बन्दियोंके प्रति अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। वर्तमान व्यवस्थामें किसी तरहके सुधार भी सम्भव नहीं है। प्रातःकालसे सायंकालतक बन्दियोंको जेलर, वार्डर, शिक्षक, ओवरसीयरोंकी कड़ी देख-रेखमें रहना पड़ता है। कहनेका मतलब यह है कि जेलोंमें बन्दियोंके ऊपर इतने दबाव रहते हैं कि उन्हें क्षणभरका भी अवसर प्राप्त नहीं होता है। जेलके नियमोंके पालनमें तनिक हिचकिचाहट गैरकानूनी समझी जाती है और इसके लिये बन्दियोंको कठोर दण्ड दिया जाता है। बन्दियोंको बेरहमीके साथ पीटा जाता है। पीटा जाना जेल कानूनके विरुद्ध है लेकिन इन कानूनोंकी कौन परवाह करता है!

सूर्य अस्त होनेके पहले बन्दियोंको आवश्यकतासे अधिक भरे 'बैरिकों'में ठूंस दिया जाता है। बैरिकोंके भीतर बन्दियोंको अपने बिछौनेपर चुपचाप सोना पड़ता है क्योंकि तनिक भी जोर-जोरसे बातें करना दण्डका आह्वान करना माना जाता है। बन्दियोंको रातमें भी चैनसे नहीं सोने दियाजाता है। बीच-बीचमें चिल्लाकर गिनना उनकी नींद हराम कर देता है।

असहनीय नियम

बन्दीको प्रत्येक कदमपर किसी न किसी नियमका पालन करना पड़ता है। उसे एक विशेष ढङ्गसे खड़ा होना एवं बैठना पड़ता है। सुपरिण्टेण्डेण्टके आनेपर उसे पंजोंके बल चलना एवं कुत्तेकी भांतिका व्यवहार दिखाना पड़ता है। यद्यपि बन्दीको चोरी करनेके लिये उकसाया जाता है लेकिन तो भी उसे यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वह चोर नहीं है और न उसके पास कोई गैरकानूनी वस्तु ही है। बन्दीके समस्त मानवीय भावोंको दबाया एवं बुरी तरह से कुचला जाता है। उसकी समस्त जिन्दगी सम्मान, सहानुभूति और सहायताहीन हो जाती है। उसकी जिन्दगी नीरस एवं स्वभाव विकृत हो जाता है।

राजबन्दियोंका साहसपूर्ण युद्ध

पहले-पहल राजनीतिक बन्दियोंने जेलके इस अमानुषिक व्यवहारके विरुद्ध सन् १९२०में युद्ध आरम्भ किया। प्रायः समस्त जेलोंमें फैले हुए वातावरणके विरुद्ध उन्होंने जेल अधिकारियोंसे लोहा लिया। यह किसी भी कांग्रेसी के लिये सम्भव नहीं था कि वह जेलके अमानुषिक व्यवहारोंके सामने अपने घुटने टेक देता। जेल अधिकारियोंको अपना रुख तो बदलना पड़ा लेकिन वास्तवमें जेलके नियमों में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी 'सी' श्रेणीके बन्दियोंको अनेक प्रकारके कष्ट झेलने पड़ते हैं। बन्दियोंके शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक प्रतिवादोंके उत्तरमें आज भी—वार्डरों द्वारा बन्दियोंको दण्ड दिलवाना, कोड़े लगवाना, लाठी चलवाना और पुलिस द्वारा गोली चलवानेके कार्य किये जाते हैं।

मुठभेड़का कारण

साधारणतः यह बहाना किया जाता है कि सी० श्रेणी वाले बन्दियोंके लिये भिन्न नियम नहीं है और अधिकारी केवल उन्हींके लिये कुछ करनेमें असमर्थ हैं। लेकिन प्रत्येक राजनीतिक बन्दी जानता है कि परिवर्तन अल्प समयमें ही किया जा सकता है। इसलिये वह नियम और कानूनके नामपर जेलमें किये जाने वाले व्यवहारोंके प्रति अपना रोष प्रकट करता है और इसी कारण कभी कभी राजबन्दियों और अधिकारियोंके बीच मुठभेड़ हो जाती है। अधिकारी राजबन्दीको कठिनसे कठिन यातनाएं देते हैं लेकिन वह सब यातनाओंको मुस्कराहटके साथ झेलता है। सन् १९२० से अबतक जेलके कानून प्रायः एक ही तरहके चले आ रहे हैं। उनमें कोई फर्क नहीं हुआ है सरकार भी जेलोंमें कोई सुधार नहीं चाहती है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके बनाये हुए नियमों एवं कानूनोंको रद्द कर सरकारने फिर अमानुषिक नियमोंको उपयोगमें लाना आरम्भ कर दिया है। युक्तप्रांतमें 'सी' श्रेणीके राज बन्दियोंके साथ किये गये व्यवहारको लिखनेकी आवश्यकता नहीं। प्रश्न तो यह है कि ऐसा व्यवहार कब तक जारी रहेगा। अभी भी सरकारके पास समय है कि वह अपनी जेल व्यवस्थामें परिवर्तन करे। समस्त व्यवस्थाको बदलनेमें काफी समय लगेगा।

लेकिन जहां तक लम्बी अवधिवाले बन्दियोंका प्रश्न है, इस समस्याके समाधानकी अधिक आवश्यकता महसूस होती है। इस समस्याको जेल अधिकारियों और राजनीतिक बन्दियोंमें होने वाले संघर्षोंपर छोड़ देना मूर्खता है। उच्च अधिकारियोंको यह महसूस करना चाहिये कि वे राजनीतिक बन्दियोंको साधारण बन्दियोंकी श्रेणीमें नहीं रख सकते हैं।

परेड

परेडके प्रश्नको लेकर 'सी' श्रेणीके राजनीतिक बन्दियों और जेल अधिकारियोंमें अक्सर खटपट हो जाया करती है। वर्तमान परेड प्रणाली वास्तवमें असहनीय है। इस प्रथामें शीघ्र परिवर्तन होना आवश्यक है। अपने अपने 'बैरिकों' में बन्दियोंको सफाई रखनेकी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। बन्दी स्वयं अपनी वस्तुओंकी व्यवस्था करें और जब सुपरिण्टेण्डेण्ट आये वे अपनी सीटके पास खड़े हो जायं। प्रत्येक बन्दीकी सीटके पास फाइल टंगी रहे यदि परिदर्शन करनेवाला अफसर उस बन्दीकी फाइलको देखना चाहे वहतो उसे दे दी जाय। ऐसा करनेसे आजकी स्थितिमें एक तरहका सुधार होगा। जेल अधिकारी और बन्दी दोनोंके लिये यह ढंग सन्तोषप्रद साबित होगा।

गिनना

गिनना, बैठना, पंजोंके बल चलानेवाली प्रथाको तुरन्त बन्द करा देना चाहिये क्योंकि यह प्रथा अनावश्यक एवं बन्दियोंके लिये कष्टदायक है।

मुलाकात

बन्दीको मित्रों एवं सगे सम्बन्धियोंके साथ मुलाकात करनेका अवसर महीनेमें कमसे कम एक बार अवश्य देना चाहिये। मुलाकातियों एवं बन्दियोंके बीचमें पर्दा डाल कर मिलने देने एवं उन्हें दूर बैठानेकी प्रथा असहनीय है। मुलाकातियों और बन्दीके बीच कम्बल टांगनेके बजाय जमीनपर बिछा देना चाहिये ताकि वे उसपर बैठ कर स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत कर सकें। मुलाकात करनेका समय कमसे कम एक घण्टा अवश्य होना चाहिये।

पत्र-व्यवहार

बन्दियोंको महीनेमें दो पत्र लिखने एवं चार पत्र प्राप्त करनेकी सुविधा दी जानी चाहिये। पत्रोंके बदलेमें बन्दियोंको अधिक मुलाकात करनेका अवसर दिया जाना चाहिये।

बर्तन

जेलोंमें बन्दियोंको जो बर्तन दिये जाते हैं वे इतने कम होते हैं कि उनसे आसानीसे कार्य चलाना बहुत मुश्किल होता है। तसला और कटोरीके अतिरिक्त बन्दियोंको थाली, लोटा और गिलास भी देना चाहिये।

व्यायाम

बन्दियोंके लिये तरह-तरहके खेलोंका प्रबन्ध होना चाहिये और बन्दियोंको शारीरिक व्यायाम एवं कुश्ती लड़नेकी सुविधाएं मिलनी चाहिये।

तलाशी

तलाशीके कड़े कानूनको कुछ ढीला करना चाहिये। बैरिकोंमें तलाशी नहीं ली जानी चाहिये। बन्दियोंके बिछौने एवं अन्य वस्तुओंकी तलाशी उसके जेलमें घुसते एवं बाहर निकलते समय ली जा सकती है। व्यक्तिगत तलाशी बिलकुल बन्द हो जानी चाहिये।

दण्ड

राजबन्दियोंको एकान्त कोठरीमें बन्द करनेके सिवा और किसी तरहका दण्ड नहीं देना चाहिये कोठरीकी अवधि भी एक बारमें पन्द्रह दिनोंसे अधिक नहीं होनी चाहिये।

पुस्तकालय

बन्दियोंके लिये जेलमें एक अच्छा पुस्तकालय होना चाहिये। उसमें साधारण किताबोंके अतिरिक्त तीसरी श्रेणी से दसवीं श्रेणीतक की समस्त किताबें होनी चाहिये। बन्दियोंके मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंको किताबें जमा करनेकी सुविधा दी जानी चाहिये। यह बड़े दुःखकी बात है कि आजकल बन्दियोंको पढ़ने-लिखनेकी सुविधाएं प्रदान नहीं की जाती हैं। बन्दियोंको 'बैरिकों'में तीन या चार घण्टेका समय व्यर्थ ही अपने बिछौनेपर पड़े हुए बिताना पड़ता है। वे वहां आसानीसे घूम-फिर भी नहीं सकते हैं क्योंकि 'बैरिकों'में बहुत घना अन्धकार रहता है। 'बैरिकों' में रोशनी करनेके लिये यदि दो लालटेनोंको छोड़ और भी लालटेनोंका प्रबन्ध किया जाय तो रातके समयका अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

काम करनेका समय

वर्तमान जेलोंमें बन्दियोंको बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है। कार्य करनेमें ही उनका समस्त दिन गुजर जाता है। इस कठिन शारीरिक परिश्रमके बाद उनमें दिमागी-कार्य करनेकी शक्ति नहीं रह जाती। कार्य बांटनेमें जेल-अधिकारियोंको बुद्धिका उपयोग करना चाहिये। यदि काम करनेका समय उचित रूपसे कम कर दिया जाय तो बन्दी निवाड़ बुनना, बगीचा लगाना, कपड़े बुनना आदिका

काम अधिक पसन्द करेंगे। ऐसे कार्योंसे राजबन्दियोंको अपनी जेल यात्रा पूरी करनेमें काफी सहूलियत होगी।

चिकित्सा

असाध्य एवं अस्वस्थ बन्दियोंकी विशेष खबरदारी की जानी चाहिये। जेल-अस्पतालमें दाखिला और दूध एवं फलोंका दिया जाना कोई विशेष रियायत नहीं बल्कि एक अधिकार समझना चाहिये। राजनीतिक बन्दियोंके लिये अस्पतालमें एक अलग विभाग रहना चाहिये और जेल-की चिकित्साके अलावे उनके मित्रों और सगे सम्बन्धियोंको भी देख-रेख का मौका दिया जाना चाहिये। आंख, दांत, कान एवं अन्य विशेषज्ञोंको कमसे कम तीन महीनेमें एक बार तो बाहरसे अवश्य बुलाया जाना चाहिये इसके सिवा यदि बीचमें इन विशेषज्ञोंकी आवश्यकता पड़े तो उसे फौरन अधिकारियोंको बुलाना चाहिये। विशेषज्ञको बुलाने एवं दवा आदिका खर्च जेलको वहन करना चाहिये। तम्बाकू खाने और पीनेमें किसी प्रकारकी रुकावट न होनी चाहिये। जेलमें इन चीजोंकी मांग अधिक रहती है। इनको रोकनेका परिणाम अच्छा नहीं होता है। जब रुकावट डाली जाती है तो बन्दी उन्हें अन्य रास्तोंसे प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं। जेल अधिकारी आजतक उन गलत रास्तों से आनेवाली चीजोंको नहीं रोक पाये हैं। क्या यह अधिकारियोंकी प्रशंसाका कार्य नहीं होगा कि वे बन्दियोंको धूम्रपानकी आज्ञा दे दें। हां, उसकी मात्रा वे चाहें तो उचित रूपसे घटा बढ़ा सकते हैं।

भोजन।

'सी' श्रेणीके बन्दियोंको दिया जानेवाला भोजन बहुत ही थोड़ा और खराब होता है। उनको दूध, घी और चीनी नहीं मिलती है। फल तो उनके लिये सपनेकी चीज बन जाते हैं। यहां तक कि सस्तेसे सस्ते फल अमरूद, आम भी उन्हें नहीं दिये जाते। सालमें नौ महीने तक उन्हें 'गरम-साग' और 'कठिया' जिसका नाम जेलके बाहर शायद ही सुना जाता हो, उन्हें दिये जाते हैं। जलपानमें उन्हें घने आधिके आटेकी रोटी, एक छटांक छौंके हुए चनोंके साथ मिलती है। इस खानेमें शीघ्र परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। बन्दियोंको स्वास्थ्यप्रद और भरपेट भोजन देना चाहिये। देशके डाक्टरोंकी राय इस सम्बन्धमें लेनी चाहिये। जेलोंके वर्तमान अधिकारी या विशेषज्ञ इस कार्य के लिये उपयुक्त नहीं हैं।

कपड़ा

जेलोंमें गर्मी और जाड़ोंके लिये दिये जानेवाले कपड़े बहुत ही कम होते हैं। गर्मीमें कमसे कम चार कमीजें, दो धोतियां या दो पायजामें, दो गंजी और दो अंगोछे दिये जाने चाहिये। जाड़ोंमें चार कम्बल, दो पूरी बाहोंकी कमीजें एक गरम कोट और दो चद्दर कमसे कम मिलनी चाहिये। इसके सिवा उन्हें व्यक्तिगत कपड़ोंको व्यवहारमें लानेकी सुविधा भी हो।

नहानेका सामान

नहानेके लिये बन्दियोंको साबुन एवं तेल नहीं दिया जाता है और न कपड़े धोनेका साबुन ही मिलता है। राजनीतिक बन्दियोंको ये तमाम चीजें जेलसे मिलनी चाहिये। तथाशीशे और कंघीका व्यवहार उन्हें अपने खर्च पर करनेकी सुविधा हो। प्रत्येक 'बैरिक' में ऊपरी काम करनेके लिये दो साधारण बन्दियोंकी नियुक्ति होनी चाहिये।

बाहर सोनेकी सुविधा

गर्मीके दिनोंमें राजबन्दियोंको तालेमें बन्द न किया जाना चाहिये। क्योंकि उनके भागनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है, अतः गर्मीके दिनोंमें 'बैरिकों' में बन्द करना उनको कष्ट देना है। इस मामलेमें 'बी' श्रेणी और 'सी' श्रेणीके राजनीतिक बन्दियोंमें भेदभाव रखना अच्छा नहीं। वस्तुतः यदि देखा जाय तो राजनीतिक बन्दियोंके लिये किसी प्रकारका बन्धन रखना ही ठीक नहीं। यदि अधिकारी उपर्युक्त उपायोंसे काम लेना शुरू कर दें तो राजनीतिक बन्दियोंकी बहुत सी मुसीबतोंका समाधान हो सकता है और इससे अधिकारी और बन्दियोंकी तनातनी भी कम हो जायगी।

भद्र व्यवहार

मैंने यहां जेलके इतिहासका पूरा विवरण नहीं पेश किया है। मैंने सिर्फ आवश्यक बातोंका ही उल्लेख किया है। जेल अधिकारियोंको राजनीतिक बन्दियोंकी दिनचर्या में जहां तक हो सके कम हस्तक्षेप करना चाहिये क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक बन्दी यह महसूस करता है कि वह एक बन्दी है। यदि उसके साथ भद्रताका व्यवहार किया जाय तो वह भी भद्र बनकर भद्रताका व्यवहार करेगा।

प्रेय अपना आप हूं मैं !

कौन है जग में कि जो
मुझसे मुझीको अधिक चाहे !
कौन जो मुझ से प्रलय तक
प्रणय का बन्धन निबाहे ?

कौन मेरे प्राण में जो
प्राण ही अपने समा ले,
मरण का आघात पाकर
भी न जो पल भर कराहे !

आप अपना वर बना जो,
वह अमिट अभिशाप हूं मैं !

गेय था मैं ही अकल्पित
कोटि कल्पों की कथा का
ध्येय था मैं ही अलक्षित
जन्म जन्मों की व्यथा का

प्राण थे जिस ओर उन्मुख
मैं स्वयं था लक्ष्य उसका
श्रेय निकला मैं स्वयं ही
साधना की इस प्रथा का !

मिलन में जो मिल गया घुल
वह अनन्त विलाप हूं मैं—

मुग्ध था जिस पर कि मैं
वह था स्वयं प्रतिरूप अपना,
कर रहा था अर्चना प्रतिपल
उठा कर स्तूप अपना,

लुब्ध था जिसमें निरन्तर
वह स्वयं था पाश मेरा,
प्रेम अभिनय यह सभी—
निकला अचानक एक सपना,

पुण्य जो पल में बना वह
जन्म भर का पाप हूं मैं !
प्रेय अपना आप हूं मैं !

———

—सुधीन्द्र

76352

प्राचीन भारतमें दास-प्रथा

श्री कृष्णाचार्य एम० ए०

पुरानी सभ्य दुनियामें दास प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। महाशय पी० वी० काणेने लिखा है कि बेबीलान, मिस्र, यूनान, रोम आदि देशोंमें भी इसका बोलबाला था। लेकिन जिस भयङ्कर और अमानुषीय रूपमें इस प्रथाको अमेरिका और इङ्गलैंडने प्रचलित रखा उसे सुन कर रोमांच हो आता है। अफ्रीकामें अंग्रेज व्यापारी दासोंको ढूंढ़ कर एकत्रित करते थे और जहाजोंमें इतना निर्मम होकर उन्हें भरते थे कि आधे मनुष्य रास्तेमें ही मर जाते थे। एक अंग्रेज विद्वानने लिखा है कि "ब्रिटिश उपनिवेशोंमें दासोंके साथ इतनी अधिक कठोरताका व्यवहार किया जाता था कि उसकी तुलना संसारके किसी भी देशकी इस प्रथाके साथ नहीं किया जा सकता। यह अत्याचार शासकों द्वारा ही नहीं, साथ ही पादरियों द्वारा भी स्वीकृत था। कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दोनों ही समान रूपसे निर्दयताका परिचय देते थे।"

भारतकी सबसे प्राचीन पोथी ऋग्वेदमें दास नामका उल्लेख हुआ है। यह दास शब्द अधिकतर आर्येत्तर जातिकी ओर संकेत करता है। जो आर्य नहीं थे, उन्हें दास कहा जाता था। हां, आर्य जिन जातियोंको हरा लेते थे उन्हें दास बनाते रहे होंगे। अनेक मंत्रोंसे ज्ञात होता है कि धनकी तरह, गायोंकी तरह दासोंका भी आदान-प्रदान होता था। दासियोंका उल्लेख भी यत्र-तत्र मिलता है। 'उदकुम्भानधिनिधाय दास्यो मार्जालीयं परिनृत्यन्ति पदो निघ्नतीरिदं मधु गायन्त्यो मधु वै देवानां परममन्नाद्यम्।' तै० सं० ७।५।१०।१

सिरपर जल घट रख कर पैरोंसे ठुमका देती हुई मार्जालीयके चारों ओर नाचती हुई वैदिक दासी देख पड़ती है। ये नाचने गानेवाली दासियां शिक्षिता होती थीं, अन्यथा संगीतमें निपुण होना कठिन था। छांदोग्य उपनिषद्में गायों, घोड़ों, स्वर्ग, स्त्री और दासोंको गृह और खेतोंकी कोटिमें रखकर सबको महिमाका केन्द्र माना जाता था।

सूत्र और स्मृति ग्रन्थोंके अध्ययनसे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतमें भी दास प्रथा प्रबल रूपसे प्रचलित थी। यद्यपि मेगस्थनीजने ईसासे चौथी शताब्दी पूर्व लिखा था कि भारत में दास प्रथा नहीं है, फिर भी अर्थशास्त्र और अशोकके शिलालेखोंसे इस प्रथाके अस्तित्वमें सन्देहको स्थान नहीं रहा है। कौटिल्यने तो दासोंके कई भेदोंका उल्लेख किया है, वे ये हैं:—

१—ध्वजाहृत (युद्धके बन्दी)।
२—आत्म विक्रयी (अपने आपको बेचनेवाला)।
३—उदर या गर्भ दास (दास-दासीसे उत्पन्न)।
४—आहितिक (बंधकके रूपमें लिया हुआ)।
५—दण्ड प्रणीत

इसी प्रकार मनुने भी दासोंके सात भेद बतलाये हैं; ये भेद कौटल्यसे कम महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन कात्यायन और नारदने अपनी स्मृतियोंमें दास प्रथापर सबसे अधिक विचार किया है। नारदने शुश्रूषकोंके जो पांच सुन्दर भेद बतलाये हैं वे अवलोकनीय हैः—

१. वैदिक विद्यार्थी
२. अन्तेवासी
३. अधिकर्मकृत
४. भृतक
५. दास

(प्रथम चारोंको कर्मकर संज्ञा दी है।)

नारदने दासोंके पन्द्रह भेद दिये हैं।

इन भेदोंसे अनुमान किया जा सकता है कि भारतमें किसी समय दासोंकी भरमार थी। लेकिन दुनियाके मानचित्रपर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतकी दास प्रथा कई अर्थोंमें अत्यन्त उदार थी। अशोकने अपने शासन लेखोंमें दासोंके साथ मनुष्योचित व्यवहार करनेका आदेश दिया है। कोई भी यह कह सकता है कि अशोकसे पहले दासोंके साथ दुर्व्यहार होता था इसीलिये उनके साथ दयालुताका भाव दिखानेकी आज्ञा थी। लेकिन यह तर्क यहां समीचीन नहीं जान पड़ता। अशोकने यह भी लिखा है कि माता, पिता, गुरुकी आज्ञा मानो। तो क्या इसका अर्थ यह समझा जाय कि उस समयकी सन्तान अवज्ञाकारी होती थी! निश्चय ही इस प्रकारका निष्कर्ष हास्यास्पद समझा जायगा। दूसरे, उस समय दासोंकी प्रथा अमानवीयता तक पहुंच जाती तो मेगस्थिनीज यह न

लिखता कि 'भारतमें दास नहीं होते।' दास तो होते थे, लेकिन यूरोप जैसा अत्याचार भारतके दासोंके साथ नहीं होता था।

दासोंके प्रति भारतीय कानून

कौटल्य लिखता है कि किसी भी आर्यको दास नहीं बनाया जा सकता (नत्वेवार्यस्य दास भावः। ३।१३) इसके अतिरिक्त उसने बतलाया है कि किस-किस अवस्थामें दासत्वसे मुक्त हो सकता है। क्रीतदास धन चुकानेपर दास नहीं रहता। अपराध करनेपर धनदंड न चुकानेके कारण दास हुए मनुष्य नौकरी करके मुक्त हो सकते थे। कौटल्यने लिखा है कि जो स्वामी दाससे अपना मल उठवाता है, नंगा रखता है या मारता है उसका धन चुकाये बिना ही दास मुक्त हो जाता है।

मनु, नारद आदिके नियमोंसे स्पष्ट भासित होता है कि यूरोपकी तरह दासोंका न तो थोक व्यापार ही होता था और न दासोंकी संख्या बढ़ानेकी ओर ही प्रवृत्ति थी। मनुके अनुसार जो सन्तान स्वामी और दासीसे उत्पन्न होती थी वह दास श्रेणीसे मुक्त हो जाती थी। भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः। मनुके इस श्लोकको लेकर विचारकोंने बार-बार यह कहा है कि मनुने नारी वर्गका बड़ा अपमान किया है। लेकिन दास वर्गपर इस श्लोकार्धसे बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। नारी और पुत्रकी कोटिमें रहनेसे दास भी परिवारका एक महत्वपूर्ण अंग बन गया।

नारद स्मृतिमें दासोंके प्रति उदारता

नारद लिखता है कि स्वामीकी प्राण रक्षा करनेवाला दास मुक्त हो जाता है—चाहे वह किसी भी प्रकारका दास क्यों न हो। याज्ञवल्क्यने भी ऐसी ही व्यवस्था दी है। यहां तक कि स्वामीके मरनेपर पुत्रोंके साथ उसे भी सम्पत्तिका भाग मिलना चाहिये। जिस मनुष्यकी प्राण-रक्षा, अकालमें की जाती थी, वह भी नारदके अनुसार दास था, लेकिन एक जोड़ी गाय देनेपर वह भी मुक्त माना जाता था। नारदका मत है कि बलपूर्वक बनाये हुए दासको राजा मुक्त कर दे।

कौटल्यने दासके धनको स्वामीका धन नहीं माना है। कौटल्यका यह मत भारतीय संस्कृतिके गौरवके अनुकूल माना जायगा। धन पहले दासके नातेदारोंका, उनके अभाव में स्वामीका होता था। स्मृतिकारोंने साक्षीके लिये दासका निषेध किया है। लेकिन मनु लिखते हैं कि अन्य साक्षीके अभावमें भृत्य और दासोंकी साक्षी भी प्रामाणिक माननी चाहिये।

भारतीय समाजमें अछूतोंका होना वास्तवमें कलंक है। अस्पृश्यताका इतना भयंकर रोग संसारके किसी भी कोनेमें नहीं मिलेगा। लेकिन दास प्रथामें इतनी उदारता भी अन्यत्र दुर्लभ है। अमेरिकाकी भांति भारतमें इस प्रथाके विरुद्ध अब्राहमलिंकन जैसे सुधारककी आवश्यकता ही न पड़ी। भारतीय समाज शास्त्रियोंने दासोंको लेकर कुछ ऐसे नियमोंका निर्माण किया कि कालान्तरमें इसकी बुनियाद ही नष्ट हो गयी। यूरोपके कई भागोंमें दास प्रथा उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक रही। भारतमें आजसे कमसे कम एक हजार वर्ष पहले इस जातिका नाम ही उठ गया।

यूनानी दूत मैगस्थनीजके समयसे लेकर अमेरिकाकी लेखिका मिस मेयो तक किसी भी विदेशी यात्रीको दासोंके अत्याचारका संकेत करनेका अवसर भी न मिला। पिरेमिडोंकी भांति भारतमें आज तो क्या किसी प्राचीन इतिहासमें भी ऐसे राज प्रासादों आदिका वर्णन ढूंढ़ें नहीं मिलता जिनपर दासोंकी पीठपर पड़े कोड़ोंको या उलटा वृक्षोंमें बांध कर उन्हें कामके लिये विवश करनेकी कहानी पढ़नेको मिले।

सहस्रों वर्षों पूर्व ब्राह्मण राजनीतिज्ञ चाणक्यने लिखा था कि 'आर्य दास नहीं हो सकता।' इस सूत्रका अर्थ यह समझा जाता था कि अनार्य दास बनाया जा सकता है। लेकिन आज ऐसा अर्थ करनेको जी चाहता है कि 'आर्योंके देशमें दास भावका भी अभाव होना चाहिये।' न जाने कैसी परिस्थितियां थीं—उस स्थितिमें दास थे। दासोंके साथ ऐसी नीति व्यवहारमें लायी गयी कि भारतसे दासोंका सदैवके लिये अभाव हो गया। कितनी व्यथापूर्ण स्थिति है कि आजसे सहस्रों वर्षों पूर्व दास प्रथाका विलोपन करनेवाले चालीस करोड़ आर्य स्वयं दास हो गये हैं।



शून्यवाद

प्रो०—अर्जुन चौबे "काश्यप"

पात्र-परिचय—

कृपाशंकर—एक फरार।

चन्द्रप्रकाश—कृपाशंकरका साथी।

कल्लू—राजकुमार नामक फरार, कृपाशंकरका नौकर।

अल्लाबख्श—शून्यवादी, सब्जीवाला।

कुछ राजनीतिक तथा पुलिस।

———

[नगर कलकत्तेकी एक संकीर्ण गलीके महाकुरूप मकानका आंगन, जिसके इधर-उधर तमाच्छादित कोठरियां। एक टेबुल, ६ कुर्सियां। कृपाशंकर गम्भीर मुद्रा में बैठे हैं। गन्दे और फटे-चिथड़ोंमें कल्लू नौकर बाहरके दरवाजेसे आता है। आंगनमें प्रवेशकर दरवाजेपर सिकड़ी चढ़ा देता है।]

कल्लू—(धीरेसे) अभी तक कोई समाचार नहीं—

कृपाशंकर—(जागकर) क्या? अभी कोई नहीं आया?

कल्लू—सब्जीवाला अभी बाजारसे नहीं आया। मैं बहुत देर तक इधर-उधर घूमता रहा। उसकी दूकानपर कितने लोग आये और गये।

कृपाशंकर—तुमने किसीको पहचाना नहीं? शायद, उनमेंसे कोई—

कल्लू—ऊंहुंक्, किन्तु उन लोगोंकी मुद्रा विशेष बातोंसे गम्भीर थी...मैंने तो समझा जैसे वे लोग वे ही हों...

कृपाशंकर—(उठकर, पीठपर हाथ किये टहलते हुए) कल्लू, सुनो...एक बात हो सकती है। ज्ञात होता है, अल्लाबख्श कुछ होशियार हो गये हैं। बहुत सम्भव हो उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें साम्प्रदायिकताकी गन्ध मिल गयी हो...

कल्लू—तो क्या हम लोग उनसे सतर्क हो जायं?

कृपाशंकर—हां, भय तो है; किन्तु उन्हें छोड़ना बड़ा घातक है। यदि वे बिगड़े तो हमारी हार है...यही क्यों, हम सब गये। वे सभी कुछ तो जानते हैं...

कल्लू—तो, क्या वे रास्तेसे हट नहीं सकते? हटानेकी दवा तो पासमें ही है (जेबसे पिस्तौल निकालकर दिखाता है।)

कृपाशंकर—सुनो, तुम बहुत जल्दबाजी करते हो... (हंसकर) आखिर तुम नौकर ही तो ठहरे...तुम्हारी बुद्धि कहां तक जायगी।

कल्लू—(मुस्कराकर) हां, हुजूर...(झुककर) नौकरी बजा लानेमें मैं सदैव चौकन्ना रहता हूं...यही देखिये, मुझसे आपको अल्लाबख्शकी सारी खबरें ज्ञात होती रहती हैं, किन्तु अल्लाबख्शको यह भी नहीं ज्ञात है कि मैं आपका नौकर हूं अथवा उनका साथी...

कृपाशंकर—(घूमकर) चुप, अधिक बढ़कर बातें अच्छी नहीं, नौकर हो, नौकरकी भांति बात करो, (मुस्कराकर) ...अच्छा तो हां, राजकुमार, यह तो बताओ, अल्लाबख्शके यहां अधिकतर हिन्दू आते हैं या मुसलमान!

कल्लू—सब हिन्दू...

कृपाशंकर—देखो, कल्लू, मैंने तुमसे बतलाया नहीं...वे सभी मुसलमान हैं, हिन्दू वेशमें। वे सभी मेरे साथी हैं। मैं उनसे छः महीनेसे नहीं मिल सका हूं। वे सभी मेरी फिराक में आते हैं और साथ ही साथ अल्लाबख्शकी परीक्षा भी करते रहते हैं...

कल्लू...क्यों? अल्लाबख्शकी परीक्षासे आपका क्या मतलब?

कृपाशंकर—बात यह है कि ये सभी मुसलमान साथी पक्के 'शून्यवादी' हैं। अपने शून्यवादकी कसौटीपर अल्लाबख्शको कस रहे हैं। चन्द्रप्रकाशसे तो उन लोगोंकी भेंट होती ही है। चन्द्रप्रकाश रोज यहां आता है, किन्तु उन लोगोंको मेरा यह स्थान—'अण्डर ग्राउण्ड' बिल्कुल नहीं मालूम... चन्द्रप्रकाश उन लोगोंसे मिला करता है।

कल्लू—अल्लाबख्शकी परीक्षासे इन सब बातोंसे क्या मतलब?

कृपाशंकर—अच्छा, हां, बात यह है कि अल्लाबख्श जैसा कि तुमने सुना है फारसके रहने वाले हैं। आजसे १९ वर्ष पूर्व वे भारतमें आये थे। उन्होंने इन वर्षोंमें अपनेको यहांकी सारी बातोंसे भिज्ञ बनानेका उद्योग किया। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक—सभी संगठनोंको पढ़ चुके हैं...और उनका दावा है कि वे शीघ्र ही अपनेको खोल देंगे। वे विश्वके उन्नायक होना चाहते हैं। उनका

विचार है कि वे विश्वको दिखा दें कि धर्म कुछ नहीं है, जाति कुछ नहीं है, राजनीति कुछ नहीं है···यदि इस संसार में किसी वस्तुकी स्थिति है तो वह मनुष्य है···मनुष्य सर्व-रूपेण स्वतन्त्र है···

कल्लू—तो ?

कृपाशंकर—तो, यही कि कुछ मुसलमान उनकी विचित्र बातोंसे परेशान हैं···मेरे कुछ साथी भी आशंकित हो उठे हैं···वे यह देखना चाहते हैं कि अल्लाबख्शमें कुछ तथ्य है कि नहीं।

कल्लू—आपका क्या ख्याल है ?

कृपाशंकर—मेरा ? वे तो मेरे गुरु हैं।

कल्लू—तो यह आपकी सोशलिस्ट पार्टी क्या है जिसके फेरमें पड़कर हम लोगोंने इतना कष्ट उठाया है और हमारी यह दशा है ? ···अरे बाबा, मैं तो कुछ भी नहीं समझता, सन् '४२ के पूर्व आप लोग कांग्रेसके नियमोंके अनुसार चलते थे —आन्दोलनके बाद फरार बने, कम्यूनिस्टोंकी दगा-बाजीके शिकंजोंमें फंसे···और अब यह क्या करने जा रहे हैं, अब मैं क्या करूं ?

कृपाशंकर—दुत् पगले. फिर मैंने कहा तुम अंतमें नौकर, ही तो ठहरे इस नौकरशाही दुनियामें। भले ही तुमने पंजाब युनिवर्सिटीसे बी० ए० किया, किन्तु रह गये कल्लू मियांके कल्लू मियां। नौकरका काम करते करते तुम्हारा दिमाग भी नौकर हो गया···(हंसने लगते हैं)

कल्लू—हटिये आप भी···मैं तो केवल गुत्थियां सुल-झानेके लिये यह प्रश्न कर रहा हूं··· (रुककर) नहीं, सच-मुच, कृपा बाबू मैं कभी-कभी दूसरी बात सोच उठता हूं।

कृपाशंकर—क्या ? धोखाबाजीकी बात ?

कल्लू— (जोरका ठहाका मारकर) खूब-खूब···हां, यार, मोहन और मनोज तो बड़े डरपोक निकले—बच्चू-लोगोंने भण्डाफोड़ तो करना चाहा, किन्तु स्वयं जेलोंमें सड़ रहे हैं।

कृपाशंकर—(गम्भीर होकर) जैसा कि मैंने पहले कहा है, अल्लाबख्श 'शून्यवादी' हैं—वे अपने 'वाद' में स्वयं शून्य हो गये हैं। सभी समाजों और संगठनोंमें वे भाग लेते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपको कोई जानता नहीं।

कल्लू—मुझसे भी उनका परिचय करा दीजिये।

कृपाशंकर—अभी तुम बहुत कच्चे हो, परिचयकी कोई आवश्यकता नहीं। अल्लाबख्श किसीके व्यक्तित्व, शख्सि-यत पर विश्वास नहीं करते; न वे महात्मा गांधीको मानते हैं और न वे लेनिनको अथवा ट्राट्स्कीको। वे स्वयं अपनेको भी नहीं मानते, हां, वे इतना जानते हैं कि यह विश्व शून्य है। उनके शब्दोंमें इस विश्वको किसी वस्तुसे भरनेका उद्योग करना मूर्खता है। मनुष्यको वे स्वतन्त्र मानते हैं—

कल्लू—रूसोने भी यही कहा था !

कृपाशंकर—रूसो और अल्लाबख्शमें बहुत अन्तर है। अल्लाबख्श मनुष्यके लिये किसी विधानकी आवश्यकता समझते ही नहीं।

कल्लू—तो वे अनेक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन क्यों करते हैं ?

कृपाशंकर—नहीं तो, वे कभी ऐसा नहीं करते। उनमें तो यही बात है। वे अपने मौनसे—शून्यवादसे—संसारको उलट देना चाहते हैं। उनमें और कितने ही प्रचलित वादोंके माननेवालोंमें यही तो अंतर है। वे आजके बहुतेरे नवयुवकोंके समान नहीं हैं जो बिना समझे-बूझे साम्यवादी, समाजवादी निहिलिस्टवादी, ट्राट्स्कीवादी बन जाते हैं और भावावेश-में आकर गान्धीवादकी खिल्ली उड़ाते हैं। तुम्हीं जानते हो, अल्लाबख्श कांग्रेसी हैं और मैं सोशलिस्ट हूं—वे बाहर हैं और मैं फरार हूं। वे जेल जानेमें विश्वास नहीं करते, किन्तु काम करते जाते हैं। उनके अपने सिद्धान्त हैं···और कुछ नहीं···(रुककर) अच्छा; हां, अब तुम खाने-पीनेका प्रबन्ध करो—चन्द्रप्रकाश आता होगा। आज चार-पांच पुरुषोंके लिये भोजन बनेगा।

कल्लू—हां, हुजूर, मै तो नौकर हूं ही। (हंसकर चल देता है)

[कृपाशंकर धीरेसे कुर्सीपर आकर बैठ जाते हैं। विचार-मग्न टेबुलपर उंगली बजाते हैं। इसी बीचमें दरवाजेपर कुण्डी खटकती है। कृपाशंकर एक कोठरीमें घुस जाते हैं। कल्लू दौड़कर दरवाजा खोलता है। चन्द्र-प्रकाशका प्रवेश। पण्डितका वेश। बड़ी-सी शिखा, माथेपर लम्बे चन्दनकी छाप, मिर्जई पहने और सफेद साफा बांधे। कल्लू पुनः दरवाजा बन्द कर चला जाता है]

चन्द्रप्रकाश—शंकू, शंकू ! सुनो, कहां हो ?

कृपाशङ्कर—(प्रवेश कर) आओ, बैठो पण्डित महा-राज, कहिये कुशल तो है ?

चन्द्रप्रकाश—(मुस्कराता हुआ) क्या कहूं यजमान, सब

ठीक है, आज सीधा-पानीका कहीं जुगाड़ नहीं लगा—कहा, चलूं शंकू यजमानके यहां—

(दोनों ठहाका मार कर हंसते हैं ।)

कृपाशङ्कर—अच्छा, हां, तो बोलो, क्या समाचार है ?

चन्द्रप्रकाश—समाचार बहुत अच्छे और बहुत बुरे हैं ?

कृपाशङ्कर—अरे ?

चन्द्रप्रकाश - (अपना साफा उतारते हुए) हांजी, हां, मैं जो कहता हूं, सुन लो । अच्छी खबर यह है कि हम लोगोंके साथी जो अल्लाबख्शकी परीक्षामें लगे थे सफल हो गये और अल्लाबख्श पास कर दिये गये ।

कृपाशङ्कर—और बुरी खबर ?

चन्द्रप्रकाश—बुरी खबर यह है कि अल्लाबख्शने हमारी संस्था छोड़ दी और अब वे आत्म-हत्या करेंगे ।

कृपाशङ्कर—आत्म-हत्या ? तुम यह क्या कह रहे हो ?

चन्द्रप्रकाश—हां, सच कह रहा हूं ! वे पूरे वेदान्ती हैं वेदान्ती । सूफीवाद और वेदान्तवादको वे शून्यवाद कहते हैं । अपने लम्बे चाकूसे कोहड़ा काटते हुए कहते हैं, 'यह लो, यह "बादीवाद" है जो सभीको शून्यमें मिलाने वाला है ।" और ऊपरसे थोड़ा बीज भी तराजू पर चढ़ा देते हैं । कहते हैं, "इस बीजको बिना कूचे निगल जाना ।"

कृपाशङ्कर—अब वे पागल हो जायेंगे।

चन्द्रप्रकाश—हां, हां, तुम्हारे गुरु जो हैं । किन्तु हैं वे बड़े जीवटके आदमी । इतने पढ़े-लिखे, प्रकाण्ड पण्डित, दुनियाकी दस भाषाएं जाननेवाले, राजनीतिके पण्डित, दार्शनिक, वे हाटसे सिरपर रखकर तरकारियां लाते हैं और ऊंची आवाज लगाकर बेचते हैं । भई, वाह, वे सचमुच महात्मा हैं ।

कृपाशङ्कर—देखो, ऐसी बात उनके सामने न करना, नहीं तो वे अपने लम्बे चाकूसे तुम्हारा सिर तराश लेंगे…। खैर, अब कामकी बात बोलो, कहो, अपना 'साहित्य' छप रहा है न ? शीघ्र ही ये पर्चे जनतामें बंट जाने चाहिये ।

चन्द्रप्रकाश—भई, सुनो, वह सब तो हो रहा है । मैं तो कहता हूं अल्लाबख्शका ही रास्ता क्यों न पकड़ें ।

कृपाशङ्कर—देखो, प्रकाश, लड़कपन न करो । राजनीतिमें सिद्धान्तोंके साथ प्रयोग नहीं चलता । काम करो—

चन्द्र प्रकाश—तो क्या अल्लाबख्श गलत है ।

कृपाशङ्कर—तो क्या वे कांग्रेसका काम नहीं कर रहे हैं ? जानते हो, वे मुसलमान हैं; जबसे भारतमें आये हैं तबसे उन्होंने इसके अतिरिक्त कि भारतमें 'हिन्दू-मुस्लिम' तनाव देखा है या और भी कुछ देखा है ? नहीं । अभी कल शिमला कांफ्रेंस असफल हुई—मुस्लिम लीगपर कितनी फब्तियां कसी गयीं, किन्तु क्या तुमने कभी अल्लाबख्शमें साम्प्रदायिकताकी बू पायी ? वे सदैव खरे उतरते आये हैं । हां यह बात दूसरी है कि वे व्यक्तिगत रूपसे और हैं—शून्यवादी हैं… किन्तु…अरे, हां, क्या सचमुच वे हत्या करने जा रहे हैं ?

चन्द्रप्रकाश—हां, मुझसे तो उन्होंने ऐसा ही कहा ।

कृपाशंकर—मैं उनसे मिलना चाहता हूं ।

चन्द्रप्रकाश—अच्छा, तो वे आते ही होंगे ।

कृपाशंकर—क्यों ? क्या तुमने उन्हें यहां बुला भेजा ?

चन्द्रप्रकाश—आज सभी यहां आ रहे हैं।

कृपाशंकर—क्यों ? तुमने ऐसा क्यों किया ? यह तो धोखेबाजी……

चन्द्रप्रकाश—बिगड़ो नहीं । इस अन्धकूपमें बैठे-बैठे चोरोंके समान तुम्हारी बुद्धि चोर हो गयी है । झटसे दूसरों पर अन्धविश्वास कर बैठते हो । वे मान नहीं सकते, तुमसे मिलेंगे अवश्य, बिना लीडरसे मिले काम कैसे चलेगा ?

कृपाशंकर—किन्तु कब ?

चन्द्रप्रकाश—आते होंगे खाना बनवा रहे हो न !

कृपाशंकर—हां, तो, किन्तु तुमने इन लोगोंके आनेका जिक्र तो नहीं किया था, हां, इतना कहा था कि चार-पांच आदमियोंके लिये खाना और बनेगा । खैर, [गम्भीर मुद्रामें पड़ जाते हैं]

[चन्द्रप्रकाश बगलबन्दी आदि उतारता है । कल्लू आता है।]

कल्लू—चावल तैयार है, बस तरकारीकी देर है, भुर्ता बना डाला है और तरकारी लाने जा रहा हूं ।

चन्द्रप्रकाश—रुको, राजकुमार, तरकारी स्वयं यहां आ रही है ।

कल्लू—तरकारी स्वयं यहां आ रही है ? माने ?

चन्द्रप्रकाश—आज स्वयं अल्लाबख्श तरकारी लेकर आ रहे हैं ।

कल्लू—क्यों भाई, कृपाशङ्कर, यह क्या ?

कृपाशंकर—कुछ नहीं, चुप रहो, बैठ जाओ ।

[सब लोग शान्त हैं । दरवाजेपर स्वर सब्जी, बाबू , सब्जी चाहिये ?"]

कृपाशङ्कर—[मुस्करा उठते हैं] नहीं कह दो सन्ध्या को आयेंगे ।

चन्द्रप्रकाश —नहीं, शायद कोई ताजी तरकारी हो ! कल्लू, खोल दो दरवाजा ।

कल्लू—अच्छा, सरकार ! [दरवाजा खोलता है, मियां अल्लाबख्श तहमद बांधे सिरपर तरकारीकी खंचिया लिये प्रवेश करते है । उनकी दाढ़ी लम्बी खिचड़ी बालोंसे भरी है । मूंछ साफ है नाक लम्बी ।]

अल्लाबख्श—उफ, थक गया । यह भी क्या रोजगार है । [टोकरी रख देते हैं]

[कल्लू दरवाजा बन्द कर देता है । कृपाशङ्कर और चन्द्रप्रकाश उठकर उनसे गले लगते हैं ।]

कृपाशङ्कर—आइये, बैठिये ।

अल्लाबख्श—[चारों ओर देखते हुए] कहो, मेरे चूहे, क्या हाल है ? आज तुम मेरी सारी सब्जियोंका मूल्य दो । मैं जा रहा हूं ।

कृपाशङ्कर—[मुस्कराकर अचम्भित] कहां ?

अल्लाबख्श—शून्यमें—

चन्द्रप्रकाश—मैं भी आपके साथ हूं । अब मैं इस विश्व से ऊब गया ।

अल्लाबख्श—इस विश्वसे ऊब गये ? मैं तो नहीं ऊबा, क्योंकि मैं तो इस विश्वको कुछ मानता ही नहीं । तुम्हीं देखो, झूठ-मूठकी धींगा-धींगी—चढ़ाव-उतार,-राजनैतिक विप्लव । कहां रहे मुसोलिनी, कहां रहे हिटलर—कहां रहे जर्मनी तथा जापानके साम्राज्य ? मैं तो कहता हूं, रूजवेल्ट तथा चर्चिलको ही क्या मिला ? इस शून्य जगतके शून्य पृष्ठोंपर शून्य नाम ! छिः

[फिर दरवाजा खटकता है] हां, ये कौन हैं ?

चन्द्रप्रकाश—कोई नहीं, चिन्ता छोड़िये—

अल्लाबख्श—चिन्ता ? हुंक, मुझे किसकी चिन्ता है । विवाह किया ही नहीं—विश्वको मानता ही नहीं—

[कल्लू दरवाजा खोलता है । पांच नवयुवकोंका प्रवेश । अल्लाबख्श कुर्सीपर बैठ जाते हैं । कृपाशङ्कर और चन्द्रप्रकाश आवभगतमें उठते हैं ।]

कृपाशङ्कर—आओ-आओ प्यारों, मैं आज कितना भाग्यशाली हूं । यही हूं, कभी मिल न सका ।

[सब लोग यथास्थान बैठ जाते हैं]

पांचो—सलाम अलैकुम बड़े मियां ।

अल्लाबख्श—हुंक्, यह क्या ? कहो, "शून्यवाद, शून्य-साहब" ।

[सब हंस पड़ते हैं]

कृपाशङ्कर—कल्लू, भोजनका प्रबन्ध करो, तरकारी रहने दो, भुर्ता बना है, वही काफी है ।

अल्लाबख्श—सुनो, साथियो, क्या खाने-पीनेमें लगे हो—हटाओ यह सब । दुनिया कुछ नहीं है । सुनो कृपा और चन्द्र और तुम सब लोग, तुम लोगोंने मुझे पढ़ा अवश्य किन्तु समझा नहीं, होशियार हो जाओ, देखो, यह पुलिस आ रही है—ये मनुष्य हैं—[दरवाजा टूटकर गिर जाता है ।]

सब साथ ही—हैं, यह क्या ?

अल्लाबख्श—हां, डरकर, कांपकर क्या करोगे ? आश्चर्य क्यों करते हो ? इस विश्वमें केवल एक आश्चर्यकी वस्तु है; वह है 'शून्य' की 'स्थिति' मानना और यही कारण है यही कारण है कि सब लोग एक-दूसरेसे भय खा रहे हैं । मत डरो, ये लोग तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते—

[पांच पुलिसमैनोंका प्रवेश । सबके पास बन्दूकें हैं, साथमें दारोगा भी है ।]

दारोगा साहब—[अल्लाबख्शकी ओर देखकर] अरे बाबा साहब, आप यहां ! [कवायदके साथ झटसे जूतेके स्वरका सलामी दागते हैं ।]

अल्लाबख्श—बस पकड़ लो, इन सब लोगोंको ।

[सब लोग हतबुद्ध हैं ।]

कृपाशङ्कर—यह क्या उस्ताद जी ?

अल्लाबख्श—कुछ नहीं, दारोगा साहब, मत पकड़िये किसीको । ये लोग अपने ही आदमी हैं । कृपाशङ्कर सुनो डरते क्यों हो ? देखो मेरे बलको । तुम लोगोंका बाल भी बांका नहीं हो सकता । [पुलिससे] अच्छा तो, तुम लोग अब जाओ—फिर कभी यहां न आना नहीं तो देखो यह मेरा चाकू । मैं अभी आत्महत्या कर लूंगा—समझे ?

दारोगा साहब—अरे नहीं, बाबाजी, मैं चला ।

[पुलिस चली जाती है]

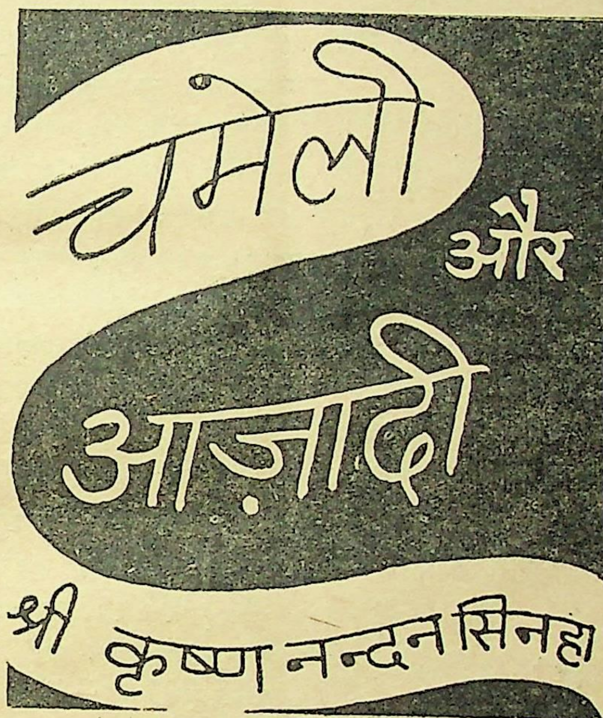
कृपाशङ्कर—मैं तो कुछ भी नहीं समझ सका—

अल्लाबख्श—तुम मूर्ख हो, फरार न हो इसीसे । थे तो एम० ए० पास प्रोफेसर, किन्तु...... । तुम्हारे मनमें भय का भूत समा गया है । जो काम तुम करते हो वही काम मैं करता हूं किन्तु देखो, मैं निर्भीक हूं और तुम पदे-पदे भयका चिन्ह देख रहे हो । महात्मा गांधीको भय नहीं है । वे आज महात्मा क्यों हैं ? जानते हो ? उनमें आत्म-शक्ति कैसे आयी है ! आज दुनिया उनके चरणोंमें क्यों है ?

चन्द्रप्रकाश—यही तो मैं कह रहा था—

कल्लू—चलिये, भोजन करने

(शेष १८वें पृष्ठपर)



मिलके स्तम्भ, मंजिलके यादगार, निष्प्रभ धूपमें कैसे लगते हैं—रामदेवकी थकी आंखें यह भी देखना नहीं चाहती थी। पत्थरके साधारण टुकड़ोंपर सभ्यताने—सो उसकी नजरोंमें अङ्गरेजी सरकार थी—कैसे काले अङ्क लिखे हैं। इन पत्थरोंको देख कर और उन्हें गिनकर उसे ज्ञान हुआ कि चार मीलकी दूरी वह दुपहर तक चला है। लड़कपनके अर्से में वह घण्टे बीस मीलके हिसाबसे दौड़ता था। अब तो रेल-गाड़ियां जगह-जगह फैल गयी हैं, चलती हैं जैसे सांप। आदमीके बच्चेकी अक्ल तेज है, नये-नये ईजाद करता है। खेतोंके धन्धांसे जी ऊबता है। पिछले साल कलकत्ते खूब आरामसे दिन बीते थे। मिल थे, कारखाने थे और सूर्यकी तरह जगमग शहर! दुलारी और उसका मर्द वहां अच्छी फसल कर लेता है। पांच-पांच रुपये लेकर वह अपना तन बेचती हैं। पाप-बाप कुछ नहीं, धर्म-कर्मकी फिक्र नहीं। रामधन मोटर चलाना सीखता है। पेशाके पीछे पेशा है।

पहाड़ियोंकी सिराएं उसने देखी। ये काली लगती हैं। तराईकी मिट्टी गीली नहीं होगी। बाजरेके बीज वहां नहीं उगेंगे, घास-पातसे जगह खाली नहीं है। पत्थर बेकार है। मालगाड़ी पर सरकारी मजदूर आकर पत्थर ले जाते हैं। औरतें भी रहती हैं उनमें। छनते हैं लाइनें बनती हैं। उसने कल्पना की अगर वह चोरी करके सजा पाता तो पत्थर तोड़नेवाली सजा शौकसे भोगता। काम करते रहना चाहिये ··अरे अब तो देह गिर गयी है· पहली बार रुककर उसे सोचना पड़ा कि शहर वह जा रहा है और गांवमें उसकी प्यारी घरवाली अकेली है। अच्छा शहरकी नौकरी जरूर मिलेगी। दो एक सस्ते कमरे लेकर वह बस जायेगा।

गांवका नदी-किनारा आजकल गुलजार रहता है। लोग बहुत मरते हैं। जन्म कम लेते हैं। उसके खुद तीन बेटे खत्म हो गये। पेटमें भी आनेकी उम्मीद नहीं। राधाका बच्चा पेटमें ही मर गया था। भूखी मा को लगातार तीन दिन उपवास करना पड़ गया था। हार मान कर राधा सड़क बनानेके काममें ईंट और पत्थर ढो रही है। कोई रहेगा नहीं, बीमारियां बहुत हैं। उसे जो सही सलामत रखना है वह ईमान है।

वह जरा व्याकुल होने लगा। मुर्दोंके जलनेकी गन्ध उसे आने लगी। वैसी ही धुआंकी रेख। तब उसने सोचा कि वह बिल्कुल नहीं कुछ याद करेगा? बीती बातें तकलीफ देती हैं। उन शक्लों पर दुःखका सामञ्जस्य है, इसीलिये जल्दी हताश-भाव नहीं आता है। उसी समाजके समझदार आदमीकी तरह उसने सब स्वीकार किया है। आदमी पर आदमीका अच्छा शासन वह बर्दाश्त कर सकता है। वह सिर्फ ईश्वर कहे जाने वाले राक्षससे भयभीत या पराजित होता है जो जानें ले लेता हैं, अकाल और रोग बना कर आदमीको सताया करता है।

शाम होते-होते वह बहुत सी बातें सोच गया। थकान बहुत थी। पैर भी तेज करने पड़े। शहरके हाईकोर्ट या गिरजाघर, या और जो भी हो, उसका मीनार दिखा। उस समय उसे लगा कि वह अनिश्चित है, और साथ ही हार गया है। अब तक काममें जी लग रहा था—चलना भी उसके लिये काम था। फिर एक बार साहस भाग रहा है। अभी हाल सुबह तक, या सारी रात वह चमेलीके साथ था। उसे समझा आया था कि जल्दी ही उसे नयी दुनिया में ले जायगा। आदि······। पहली वर्षामें वह खूब पानीमें भींगा था। चमेली बहुत शुष्क और उदास थी। आनेके दिन कहा था,—"बुलाना जल्दी! मेरा जी मिचलाता है। खैर-सलाह लिखना, भींगी हुई कमजोर देहमें कहीं ज्वर न आ जाये।" ये बातें याद आती रहीं एक एक कर। पल्लेमें थोड़ा बूंट बांधकर वह बोली थी, रास्तेमें खाकर पानी पी

लेना···नहीं सीत लग जायेगी।" आनेके वक्त चमेलीसे सटकर बांहोंमें कसकर रोया था···।

भूख लगी है बहुत तेज। दिन भरके परिश्रमके बाद रुखा-सूखा खाना भी अच्छा लगता है। अभी शहर एक मील दूर है। अन्धेरा रुकेगा नहीं। उसे पहले ही से तेज चलना चाहिये था। रात कहां बीतेगी ? उसके आगे बस यही एक सवाल था। बिना खाये रहा जा सकता है सोनेके लिये ऐसी जगहकी जरूरत है जहां जानका खतरा कम-से-कम हो। शीतमें सोनेसे वह डरता कम है। बहुत होगी, खांसी हो जायेगी। दो एक दिन ज्वर रहेगा। देह कागज नहीं है कि गल जायगा। लेकिन अभी सहने और झेलनेके लिये अनेक बातें हैं।

कहीं बैलगाड़ियां चली जा रही थीं—आमसे भरी। जीभ मचल गयी। गांवोंके गरीबोंको नसीब नहीं होते। तब उसने कहा,—चुप रह, तेरे भाग्य नहीं है।" और सोचा शायद कभी हो। गाड़ीवाला कुछ ऊंचे स्वरसे कह रहा था, जिसे गाना कहा जाता है। बातचीतकी लयमें केवल यही फर्क है कि इसमें लगातार एक क्रम और तेजी है। उस समय राजदेवको लगा कि वह शहर देख आया है, कलकत्ताकी तरह, सिनेमा और थियेटरोंके नाच देखा है। लुभावनी शक्लें देखी हैं और साधारण तरह अच्छे अच्छे स्वर निकाल सकता है।

गाड़ीवालेने उसे देखकर कहा,—"भाई, कहां जा रहे हो ? आओ, गाड़ीपर बैठ जाओ···।"

(१६वें पृष्ठका शेष)

पांचो साथी—सचमुच, अल्लाबख्श साहब, आप दूसरे पैगम्बर हैं ?

अल्लाबख्श—खाक ? पैगम्बर सैगम्बर कुछ नहीं। मैं आदमी हूं। इस शून्य विश्वमें एक शून्यबिन्दु और कुछ नहीं—

कृपाशङ्कर—तो चलिये भोजन करने, आज यहांसे अब हम मुक्त वातावरणमें होंगे। अच्छा, बाबाजी, थोड़ा और रुकिये आपकी लायी हुई तरकारी बन जाय !

कल्लू—आओ, चन्द, तुम तरकारी बनाओ जरा मैं बाबाके पैर दाब दूं—थक गये हैं ये।

[सब एक दूसरेकी ओर देखते हैं]

परदा गिरता है

"ओह,तुम बड़े भले आदमी हो—लेकिन माफ करना।" इन्कार उसने गाड़ीवालेके भद्दे गानोंके लिहाजसे किया था। साधारणतः ऊपर वह बनता था। गाड़ीवाला कह रहा था, सेठकी पेटमें जख्म हो गया है। और आम लजीज चीज होती है······" बैलोंको समझाता हुआ वह गाड़ीवान आगे बढ़ता गया। धीरे-धीरे गाड़ी छोटी-से-छोटी होती गयी। सड़क अच्छी थी। दाग उभरते गये। बगलके अनेक पेड़ोंकी शाखें टूटी पड़ी थी। पासके खेतोंमें सूखी हरियाली थी। कहीं मटमैले पानीका तालाब भी था।

नदीके पुलके पास रामदेव रुक गया। वहां दो तीन फटे कपड़ोंमें शरीर ढके, दो एक आदमी दिखे। दो एक बच्चे भी थे, फूलसे मुलायम नहीं, पत्थरसे कठिन।

"शहर कितनी दूर है···कह सकते हो ?"

"यही शहर है। यहीं हम सांस लेते हैं। हरेक सांस है और जहर है।" एकने कहा।

"ठीक। लेकिन बाजार कहां है, खानेकी चीजें ?"

वह पास आकर बैठ गया थकावटके कारण बैठनेका लालच लगा। उसी आदमीने सवाल किया—"कहांसे आते हैं—कहां जाना है ? उसने जवाब नहीं दिया—सोचा इसे मतलब ?"

फिर उन्हें देख कर कहा—"तुम लोगोंके बदन पर फटे-फटे आधे कपड़े क्यों है ? बहुत गरीब हो क्या ?" उस समय अपनी गरीबी वह भूल गया था।

वह आदमी दयनीय हो गया। उसे दुःख लगा।

"दुख मत करो। सबकी यही हालत है। नंगे रहेंगे तो अच्छे दीखेंगे ? औरतें हमारी क्या करेंगी ? दुनियामें खूब पाप बढ़ेगा।" वह हंसा।

वे दोनों आदमी कुछ लकड़ियां जलानेके उपाय कर रहे थे। लड़के ताली बजा कर हंस पड़े। वह जमाना ऐसा ही था जब दो एक औरतें लाजका ख्याल करके सदाके लिये चली गयी थीं। वह नहीं जानता था। सिर्फ चमेलीके नङ्गी होनेकी कल्पना उसे खुश करती थी।

उसने तय किया,रात यहीं बिता लेगा। इन सीधे आदमियोंसे बातें करेगा। उसके साथ खाना खा लेगा पैसे दे देगा बदले में। अपना विचार उनके सामने रखते ही उसने देखा वे उदास होनेको आये। क्यों ? तब उन्होंने बताया वे भिखमंगे हैं। पैसा उनका हराम का है। अब किसीको खिला कर पापके भागी नहीं होंगे। उन्हें जगह

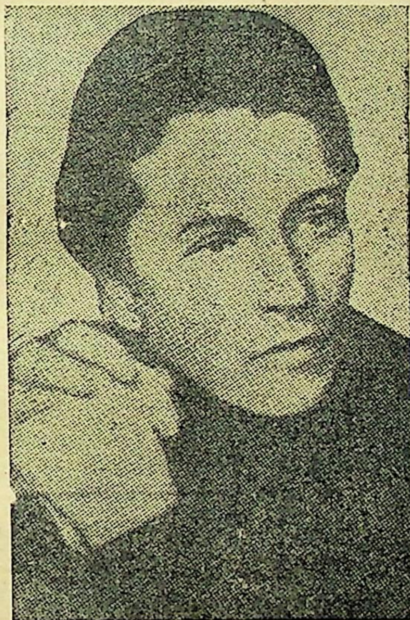
(शेष ७६ वें पृष्ठपर)

अमेरिका किधर ?

श्री शङ्कर भारद्वाज, एम० ए०, एल० एल० एम०,

हालहीमें मिस पर्लबकने अमेरिकाके विभिन्न शहरोंमें भाषण किये थे जिनमें उन्होंने अमेरिकनोंको चेतावनी दी थी कि यदि अमेरिका अपना राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण ठीक नहीं करता, तो रूस उसे बाजी मार ले जायेगा। प्रस्तुत लेख पर्लबकके उन भाषणों का सारांश है।

अब विश्व-व्यापी युद्ध समाप्त हो गया है, और हमें चाहिये कि हम अपने भविष्यका मार्ग निर्धारित करें। इस रक्त-रंजित संग्रामके बाद आज हम कहां पहुंच गये हैं, और अब हमारा कौन-सा मार्ग हो? ऐसा अवसर राष्ट्रोंके आगे आता रहता है, परन्तु राष्ट्र गफलतके कारण इस सुअवसरसे प्रायः लाभ नहीं उठाते हैं।



मिस पर्लबक

इस प्रकार गम्भीर विचारका सुअवसर हमें भी १९४२ में प्राप्त हुआ था। १९४२ के १० दिसम्बरके दिन :एल्फ्रेड नोबेलकी यादगारमें बुलायी गयी सभामें भाषण देते हुए मैंने कहा था:—"आजसे युद्धका रुख बदल गया है। अब यह कहना मिथ्या है कि यह युद्ध जन-साधारणके स्वातंत्र्य अथवा लोकतन्त्रकी रक्षाके लिये लड़ा जा रहा है। अन्य युद्धोंके समान ही यह युद्ध भी सत्ता और शासनकी वृद्धि और विस्तारके लिये लड़ा जा रहा है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर बाजी लेनेके फिक्रमें है।

लीजिये, तो आज विजय हमारी हो गयी है। संसारको बनाने तथा बिगाड़नेकी शक्ति अब हमारे हाथमें आ गयी है। प्रश्न है, इस अपूर्व सुअवसरका हम सदुपयोग करेंगे या दुरुपयोग? यदि हम चाहें तो एक स्वतन्त्र संसारका निर्माण कर सकते हैं।

स्वतन्त्र संसारसे मेरा तात्पर्य उस अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थासे है जिसमें विभिन्न जातियों और राष्ट्रोंको आत्म-विकासके लिये पूर्ण साधन एवं पूरी आजादी हो। प्रत्येक राष्ट्रको अधिकार हो कि वह अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रसे अपना मार्ग स्वयं बना सके और राष्ट्र-मण्डलीमें उसे समानता प्राप्त हो। कोई भी राष्ट्र अथवा राष्ट्र-समूह उसे डराने अथवा दबानेकी कुचेष्टा न कर सके।

कई साहब कहेंगे कि सैनफ्रैंसिस्को कानफरेन्स ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनके लिये ही तो बुलायी गयी थी। मेरा उनसे नम्रनिवेदन है कि वे वास्तविकताको समझनेका यत्न करें। मुझे तो सैनफ्रैंसिस्को सम्मेलन दो विभिन्न सिद्धान्तों और प्रणालियोंमें हो रहा संघर्ष ही प्रतीत हुआ। वहांपर दो दलोंकी करारी मुठभेड़ हुई। एक वह दल था जिसकी संसार की विभिन्न जातियों और राष्ट्रोंको मुक्त करनेकी वास्तवमें इच्छा प्रतीत होती थी। दूसरा उन विजेता राष्ट्रोंका गुट्ट था जो ध्वस्त संसारपर पुनः अपना आधिपत्य जमानेकी फिक्रमें थे। अभी हम यह निश्चित रूपसे बतानेमें असमर्थ हैं कि आगे जीत किसकी होगी। फ्रिस्को योजनाके कार्यान्वित होनेपर ही यह बात प्रकट होगी कि क्या लोकतन्त्र सफल हुआ अथवा वह धूर्तमंडली जिसका काम सदासे जन-साधारणका शोषण और उन्हें अपने स्वार्थ साधनमें हथियार बनाना ही रहा है।

मैं तो वर्तमान युद्ध और आजसे हजारों साल पहले



स्टालिन

लड़े गये युद्धमें कोई भेद नहीं पाती। मैं अब भी सच्ची विजय—जनसाधारणकी शोषक-मण्डलीके ऊपर विजयकी खोजमें हूं। रण-भूमिमें प्राप्तकी गयी विजय मेरे निकट विशेष महत्त्व नहीं रखती। मैं तो उस विजयकी प्रतीक्षामें हूं जो सदाके लिये मनुष्य समाजसे युद्धको ही मिटा दे। आज हमें केवल सैनिक विजय ही प्राप्त हुई है। मुझे दुःख है लाखों जवानोंकी बली व्यर्थ ही गयी। सच्ची जीत अभी हमें प्राप्त करनी है।

भविष्यकी कुञ्जी एशियाके पास है

मेरी यह धारणा है कि मनुष्य जातिका भविष्य एशियाके स्थलपर निश्चित होगा। बहुत कुछ इस बातपर भी निर्भर होगा कि एशियापर प्राप्त सैनिक विजयका हम कैसा उपयोग करेंगे। यदि जापान अधिकृत देशोंको अपनी स्वार्थ साधनाके लिये फिरसे गुलाम बनानेकी दलील है, तो भगवान हमारी रक्षा करें। हम इससे भी अधिक प्रलयकारी युद्धका बीज वपन कर रहे हैं।

परित्राणकर्त्ता रूस

मैं यह भी बता देना चाहती हूं कि अब एशियाको गुलाम रखना सम्भव नहीं है। अब संसारमें एक नयी परित्राण कर्तृशक्ति सोवियट रूसके रूपमें प्रकट हो गयी है। एशियाकी गुलाम जातियोंमें रूसका नाम ही नया जीवन फूंक देता है। एशियावाले रूसकी ओर टकटकी लगाये निहार रहे हैं। अब उन्हें इङ्गलिश साम्राज्यवाद अथवा अमेरिकन बनियाशाहीसे कहीं अच्छा प्रतिपालक रूस प्रतीत हो रहा है। बीसवीं सदीके आरम्भमें एशियावासी बड़े हताश हो गये थे। वे इस प्रतीक्षामें थे कि कोई शक्ति उन्हें पाश्चात्य राष्ट्रोंकी लूट-खसोटसे बचाये। एशियावाले बड़े प्रसन्न हुए जब उन्होंने युरोपियन जातियोंको गत युद्धमें ४ वर्षके लिये उलझे देखा। परन्तु उस युद्धके बाद उनकी बेड़ियां जैसीकी तैसी कसी रहीं। विजेता राष्ट्रोंने अपना शासन वैसा ही कायम रखा।

जागरुक एशिया

आज अवस्था बदल गयी है। एशियावासी अब जाग-उठे हैं। उनकी निराशा आशामें परिणत हो गयी है। सोवियट रूस उनकी आकांक्षाओंका प्रतीक है। एशियाकी सर्वसाधारण जनता आज कह रही है:—"जो मार्ग रूसने निर्दिष्ट किया है, उसीपर चलनेमें हम सबका कल्याण है।" शायद ही एशियाका कोई राष्ट्र होगा, जिसे रूसके सोवियट शासनमें श्रद्धा न हो। यह सच है कि एशियाके भोले-भाले लोग साम्यवादकी पेचीदगियोंको समझनेमें असमर्थ हैं। उनके लिये तो इतना ही जानना काफी है कि २९ वर्षोंके अन्दर ही उन जैसी पिछड़ी, दलित रूसी जाति आज संसारके आगे सर्वश्रेष्ठ और महान् राष्ट्रके रूपमें उपस्थित है। इस चमत्कारका श्रेय उस साम्यवाद प्रणाली और उसे व्यवहारिक रूप देनेवाले महात्मा लेनिन और



मि० ट्रूमैन



मि० स्टेटिनस

कर्मयोगी स्टालिनको है। इन्हीं महापुरुषोंने जारशाहीसे त्रस्त रूसी किसान और मजदूरोंको नवजीवनका सन्देश देकर जाग्रत राष्ट्रकी नींव धरी। एशियाकी अधिकतम जनता कृषिकरों की है। यह अनपढ़ किसान अब एक दूसरेसे कहते हैं "देखो भई, यदि रूसके किसान इतने अच्छे शिल्पी हो सकते हैं, यदि वे मशीनें बना सकते हैं, तो हम भी यह काम कर सकेंगे। यदि अपने राष्ट्रपर शासन ये स्वयं कर सकते हैं, तो हम क्यों न अपना शासनसूत्र अपने हाथोंमें ले लें? हम क्यों शोषक वर्गकी गुलामी सहें?"

सोवियट रूसका चमत्कार

मैं साम्यवादी नहीं हूं, परन्तु मैं स्वयं हैरान हूं कि रूसने २९ वर्षोंके अन्दर इतनी विस्तृत उन्नति कैसे कर ली। रूसमें कलके अनाड़ी, पद-दलित किसान आज चतुर-शिल्पी, तत्वदर्शी-वैज्ञानिक और सामरिक-महारथी कैसे बन गये? वास्तवमें यह अचम्भा है, जिसने एशिया और युरोप दोनोंको चकित कर दिया है। स्मरण रहे कि इस करिश्मेमें रूसी जनताका बहुत हाथ रहा है। यह कहना भ्रम है कि रूसी किसान और मजदूर बैलोंकी तरह हांके जाते हैं। स्टालिन डिक्टेटर है, रूसमें केवल एक पार्टीका ही बोलबाला है, ऐसी थोथी बातोंसे आप रूसकी असलियत नहीं छिपा सकते। तथ्यदर्शी, व्यावहारिक रूसी प्रत्युत्तरमें कहता है—"यदि हमारा काम स्टालिन ठीक कर रहा है, तो हम दूसरा नेता क्यों बदलें? अगर एक पार्टीसे ही काम चल जाय तो अनेक पार्टियोंका बवंडर क्यों खड़ा किया जाय?"

एशियाके किसान क्या चाहते हैं?

यह किसानकी ठोस अक्लका नमूना है। आपके लोकतन्त्र शासनकी पेचीदगियां समझनेमें वह असमर्थ हैं। धारासभाओंमें एक विरोधी दल खड़ा करके वादविवादमें शक्ति और समयका ह्रास करना उसे हास्यास्पद लगता है। उसे इसमें विरोधाभासकी प्रतीति होती है। हमें इस बहसमें नहीं पड़ना चाहिये कि किसानकी धारणा गलत है अथवा सही। मेरा जोर तो इस बातपर है कि एशियामें ऐसी ही सीधी समझ वाले करोड़ों किसान मौजूद हैं, जिन्हें अमेरिकन अथवा इङ्गलिश लोकतन्त्र प्रणाली बड़ी जटिल प्रतीत होती है। उन्हें तो सरल लोकतन्त्र प्रणाली चाहिये। वे कानूनकी पेचीदगियों और दफ्तरोंकी लम्बी-चौड़ी कारवाइयोंसे घबराते हैं। अमेरिकामें एक प्रसिद्ध चीनी व्यापारीने मुझे एक बार अभिमानसे कहा कि भावी चीनका निर्माता कोई किसान बालक ही होगा। यह भी संभव है कि वह पाश्चात्य सभ्यतामें तनिक भी न रंगा हो। यह व्यापारी स्वयं एक मामूली खेतिहरकी संतान था।

मैं इस व्यापारीके उक्त कथनसे पूर्णतया सहमत हूं। एशियाके भावी नेता कोई आक्सफोर्ड अथवा हारवर्डके ग्रेजुएट न होंगे। क्या चीन, क्या भारत, इनके भविष्यके अधिनायक अपनी सभ्यता एवं संस्कृतिके उदीयमान प्रतीक होंगे।

किसानका व्यक्तिवाद

हां, तो मैंने आपको बताया कि एशियाके करोड़ों किसान अमेरिकन अथवा इंग्लिश प्रजातंत्रकी अपेक्षा रूसी लोकतन्त्रको शीघ्र ही अपनायेंगे। शायद, वे रूसी साम्यवादको भी तिलांजली दे दें। साम्यवादका बौद्धिक पहलू वे समझनेमें असमर्थ हैं। रूस भी तो विशुद्ध साम्यवादसे दूर हट रहा है। यूरोपमें आज भी ऐसे बौद्धिकवर्ग हैं जो पाश्चात्य जगतमें साम्यवादको पुनः प्रचारित करनेका उद्भट प्रयत्न करेंगे। परन्तु किसानकी मनोवृत्तिमें व्यक्तिवादकी गहरी छाप है। वह सहयोग और सहकारिता तो अवश्य समझता है, परन्तु शुद्ध साम्यवाद उसकी समझसे बाहर है। आज रूसको ही देखिये। ज्यों-ज्यों वहां ट्राट्स्की

सदृश बौद्धिक नेताओंको पछाड़कर किसान नेताओंने अपना प्रभुत्व कायम किया, त्यों त्यों खालिस साम्यवादमें व्यक्तिवादका पुट भी गहरा होता गया। मेरा अनुभव है कि रूसी नागरिक अमेरिकन नागरिकसे भी अधिक जागरूक है। यदि उसे निर्भय कर दिया जाय, तो वह हमारे सामने सच्चे रूपमें प्रकट होता है। वह वास्तवमें कट्टर व्यक्तिवादी है।

मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि एशियावासी एक किसानकी मनोवृत्ति रखते हैं। ये सीधे सादे लोग सरल शासन प्रणाली चाहते हैं, और सरकारी पेचीदगियों और पचड़ोंसे इन्हें नफरत है। इन्हें तो वह सरकार चाहिये जो इनके कष्टोंका निवारण कर सके। अतएव रूसी प्रणाली इनके लिये अधिक उपयोगी होगी। इसीलिये ये भी रूसी आदर्शकी ओर अधिक आकृष्ट होंगे।

एशियाका औद्योगीकरण

हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि एशियावासी भी अब अपने देशोंका औद्योगीकरण करनेको उत्सुक हैं। परन्तु ये खूब जानते हैं कि औद्योगीकरणके भी दो मार्ग हैं। एक तो साम्राज्यवादियोंका मार्ग, जिसमें अमेरिकन प्रणाली शामिल है। दूसरे रूसका रास्ता। वे दोनों प्रणालियोंके भेदको अब समझने लगे हैं। जब किसी दूसरे देशका औद्योगीकरण कोई अन्य साम्राज्यवादी अथवा पूंजीपति देश करता है, तो मुनाफेकी मलाई तो कारखानों और पूंजीके विदेशी मालिक हड़प कर जाते हैं, और छाछ उस देशके निवासियोंके हिस्से में आती है। इस व्यवसाय प्रणालीका मुख्य उद्देश्य मजदूरका शोषण करके पूंजीपति अथवा अधिकारी-वर्गको मोटा करना है? एशियावालोंको इसका कटु अनुभव उन रबड़, चाय, चीनी, रेशमके कारखानोंसे अच्छी तरह हो चुका है जो युरोपियन जातियोंने एशियामें चला रखे हैं। एशियाके गरीब किसान, मजदूरोंकी गाढ़ी कमाईसे सात समुद्र पार विदेशी व्यापारी गुलछर्रे उड़ाते हैं। आजसे २५ वर्ष पहिले यह संभव था कि एशियाके भोले-भाले लोग उक्त प्रणालीका ही आश्रय लेते, क्योंकि उन्हें कोई और मार्गका पता ही न था। परन्तु आज बात बदल गयी है। आज उनके आगे रूसका उदाहरण प्रत्यक्ष है। वह रूस, जहां २५ वर्षोंके अन्दर ही किसान मजदूरोंने आश्चर्यजनक सामाजिक एवं आर्थिक चमत्कार करके संसारको दिखा दिया कि औद्योगीकरणका दूसरा और अच्छा तरीका भी है। आज रूसका औद्योगीकरण, रूसी श्रम और पूंजी द्वारा हुआ है, जिनपर सर्वसाधारणका सामान्य अधिकार है। मुनाफेपर भी सबका सम्मिलित हक है। तो फिर वे क्यों विदेशी उद्योगपतियोंके गुलाम बनें?

आज वास्तविक स्थिति यह हैं जो मैंने आपके आगे रखी है। मुझे तनिक भी भय अथवा शर्म नहीं यदि कोई अज्ञानी मुझे साम्यवादी समझ ले।

मैं फिर कहती हूं कि आज मनुष्य जातिके आगे प्रश्न साम्यवाद या गैर-साम्यवादका नहीं है। प्रश्न है सचाईकी ओर अग्रसर होनेका, वस्तु स्थितिको समझनेका। क्या कोई इससे इन्कार कर सकता है कि आज संसारमें एक ऐसा देश भी वर्तमान है जिसने एक पीढ़ीके अन्दरही वहांके पददलित किसान और मजदूरोंको स्वराष्ट्रमें प्रभुत्व प्रदान कर दिया है? यह कैसे हुआ? यह किस प्रणालीकी बरकत हुई? मेरा इशारा सोवियत रूससे है।

इस प्रसंगमें मुझे बाइबिलकी एक कथा स्मरण हो आयी है। एक बार एक अन्धेको किसी महात्माकी कृपासे नेत्र ज्योति पुनः प्राप्त हो गयी। इस चमत्कारसे उसके पड़ोसियोंमें ईर्ष्या जाग्रत हो उठी। वे आकर उसपर फब्तियां कसने लगे। कोई उसे कहता—तुम कैसे कह सकते हो कि तुम्हें दुबारा दिखायी दे रहा है? अन्धेको क्या तमीज? तुम भ्रममें हो। यदि मान भी लें कि तुम अब देख भी सकते हो, तो यह हम कैसे मानें कि तुम्हें हमारे जैसा ही दिखायी देता है? इत्यादि व्यर्थकी बातोंसे वे उस भूतपूर्व अन्धेको बहकाने लगे। परन्तु वह भी दृढ़ रहा। उसने उन सबको कहा—"मित्रो! पहिले मैं अन्धा था, अब नहीं हूं। इसका सबूत मेरा अनुभव है। ठीक यही दशा रूस और उसके कटु आलोचकों की है। आज रूसका किसान और मजदूर पुकार कर कह रहा है—"दुनियाके लोगों! अब मैंने स्व-राज्य प्राप्त कर लिया है।" और एशियाके प्रत्येक कोनेमें उसकी यह आवाज सुनायी दे रही है।

चीनकी समस्या

कुछ समय हुआ—मैंने वर्तमान चीनी सरकारके एक प्रमुख व्यक्तिसे बातचीतके दौरानमें कहा—"आप कैसे राष्ट्रवादी हैं, जो अपने देशके साम्यवादियोंसे लड़ रहे हैं? क्या आप उन्हें संतुष्ट नहीं कर सकते? आप जैसे शिक्षित राजनीतिज्ञोंको समझौतेकी कोई सूरत निकालनी चाहिये।"

उसने उत्तर दिया—"आप ठीक कहती हैं। चीनी

साम्यवादियोंने वस्तु-स्थितिको खूब समझा और उससे लाभ उठाया। हम प्रजातंत्र और राष्ट्रवादके कोरे कागजी किले ही बनाते रहे। जब हम निष्क्रिय थे, साम्यवादी जनसाधारणके निकट गये, उनके मसलोंको समझा और उनके दुख निवारणमें तत्परतासे जुट पड़े।"

कितने सारगर्भित शब्द हैं ये! मुझे डर है हमारे साथ भी ऐसा ही न हो। हम एशियावासियोंके कल्याणकी स्कीमें ही बनाते रह जायें और दूसरे आकर उनका दुख भी निवारण कर जायें।

मैं यह फिर जता देना चाहती हूं कि एशियामें जीत उन्हींकी होगी जिन्होंने किसानकी अहमियतको समझ कर उसकी सहानुभूति प्राप्त कर ली है। एशिया खेतिहरोंका गढ़ है।

एशियाको पूंजीपति अथवा साम्राज्यवादी नहीं चाहिये

यदि हम अब शासक अथवा पूंजीपतिकी हैसियतसे जाकर एशियाकी सहायता करना चाहेंगे, तो यह भयंकर भूल होगी, और हमारे विनाशका कारण होगी। तब हमें अपना आर्थिक अथवा राजनीतिक प्रभुत्व कायम रखनेके लिये सदा उन जातियोंसे लड़नेके लिये तैयार रहना पड़ेगा, जो निश्चय ही हमारे विरुद्ध विद्रोह करेंगी। और अन्तमें हार हमारी ही होगी। क्योंकि अब एशियाको दूसरा मार्ग दिखायी दे गया है। वह है रूस द्वारा प्रदर्शित मार्ग।

रूसकी संसारको सर्वश्रेष्ठ देन उसकी शासन प्रणाली है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद अथवा अमेरिकन आर्थिक साम्राज्यवादसे कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

१९४२ में भारतमें की गयी भूलके कारण आज न केवल भारतीय ही, वरन् अन्य एशियावासी भी हमें साम्राज्यवादियोंका चचेरा भाई समझने लग गये हैं। इसमें दोष किसका है? क्या यह सच नहीं कि व्यापार वृद्धिकी लिप्सा ही साम्राज्यवादकी जननी है?

मैं मानती हूं कि एशियावालोंकी हमारे सम्बन्धमें की गयी धारणा पूर्णतया ठीक नहीं है। अभी हम अमेरिकनोंने इस बातका पक्का फैसला नहीं कर लिया है कि हमारा मार्ग साम्राज्यका होगा अथवा बंधुत्व का। अभी हमें यह फैसला करना है। यह इस बातपर निर्भर है कि हमारी जनता कितनी शीघ्र अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिको ठीक तरह समझती है। याद रखें साम्राज्य जनसाधारण नहीं कायम करते।

जनसाधारण साम्राज्यवादी नहीं है

आजतक संसारमें साम्राज्यकी स्थापना उन थोड़े व्यक्तियों द्वारा हुई है जिनकी दूसरे देशों और जातियोंपर राज्य करनेकी कुइच्छाकी कोई सीमा ही नहीं थी। इन अर्थलोलुपो, पाशविक बलके उपासकोंने ही संसारमें साम्राज्योंकी नींव धरी। इङ्गलैंडका ही उदाहरण लीजिये। क्या आपके विचारोंमें ब्रिटिश साम्राज्य जनसाधारणकी इच्छा अथवा अनुमति द्वारा कायम किया गया है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव भी चन्द राज्यार्थियों, महत्वाकांक्षा रखनेवाले क्लाइव सरीखे व्यक्तियोंने रखी है। ऐसे ही व्यक्तियोंने पीढ़ी दर पीढ़ी ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थितिको पुष्ट किया है।

अब दशा यह है कि एक अति प्रभावशाली अंग्रेज भी ब्रिटिश साम्राज्यके दुर्गको ढानेमें अपने आपको असमर्थ पाता है। मैं ये बात माननेको तैयार नहीं कि इङ्गलैंडके जनसाधारण ब्रिटिश साम्राज्यके पक्ष में हैं।

अमेरिकन साम्राज्यका श्रीगणेश

आज उद्योग और व्यवसाय द्वारा अमेरिकन साम्राज्यकी भी नींव रखी जा रही है। ऐसा मैं मानती हूं। हमें यह न भूलना चाहिये कि साम्राज्यका आरम्भ व्यापारसे होता है। इतिहास इस बातका साक्षी है। मेरे विचारमें इङ्गलैंड और अमेरिकामें मुख्य भेद यह है कि एक देशके साम्राज्यका अन्त होने जा रहा है और दूसरे देशके साम्राज्यका विस्तार आरम्भ होनेवाला है। मैं जानती हूं कि अमेरिकन व्यापारी सज्जन मेरी बातको बुरा मानेंगे। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे तनिक निष्पक्ष होकर गौरसे देखें कि अमेरिकन व्यापारका दूसरे देशोंके जनसाधारणपर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

अमेरिका सावधान!

अमेरिकनोंको इस बातका भी स्मरण रखना चाहिये कि आज हमें वह अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छन्दता प्राप्त नहीं है, जो अङ्गरेजोंको १५० साल पहिले प्राप्त थी, जब ब्रिटिश साम्राज्यका निर्माण हुआ था। यदि इस युद्धके बाद हम अपने साम्राज्यका निर्माण करना चाहेंगे तो हमें एशियामें घोर संग्रामके लिये तैयार रहना चाहिये। सोवियत रूसके करोड़ों किसान और मजदूर जिन्होंने अपने पराक्रमसे अपने देशका औद्योगीकरण कर लिया है, हमारी तानाशाहीका मुकाबला रणभूमिमें करेंगे। वे क्यों गवारा करेंगे कि

एशियाकी पिछड़ी जातियां गुलाम बनायी जायें ? और फिर, एशियामें भी तो जाग्रति हो रही है। मुझे निश्चय है कि ये जातियां भी हमारा भीषण विरोध करेंगी।

आप कहेंगे, कि अमेरिका साम्राज्यवादी कदापि न होगा। मैं पूछती हूं, हमारे व्यापारिक गुट्ट और हमारे संरक्षणमें आये हुए प्रशान्त समुद्रके द्वीप समूह—क्या ये उगते हुए साम्राज्यके चिन्ह नहीं हैं ? याद रखिये इन्हींमेंसे नये साम्राजवादियोंका जन्म होगा।

अमेरिका नैतिक विजय प्राप्त करे

हम अभी भी राजनैतिक विजय प्राप्त कर सकते हैं। हमें केवल वस्तु-स्थितिको समझकर उसका डटकर मुकाबला करना चाहिये। हमें एशियावासियोंकी मनोवृत्तिसे सहानुभूति होनी चाहिये। सारांश, हमें संसारका अगुआ बननेकी कोशिश करनी चाहिये। क्या ही अच्छा होता यदि सैनफ्रैंसिस्को-सम्मेलनमें अमेरिकाने उपनिवेशोंकी स्वतन्त्रताकी मांग की होती। परन्तु हम अङ्गरेजोंके अनुयायी बने रहे और रूसने सब पददलित जातियोंकी आजादीकी मांग सम्मेलनमें रख दी। यह सच है कि अमेरिका, इङ्गलैंड और फ्रांस उपनिवेशोंकी स्वतन्त्रताके विरोधी नहीं हैं, परन्तु न जाने क्यों ये देश इस बातकी घोषणा करनेसे डरते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि रूस फिर हमसे बाजी मार ले गया। रूसकी इस ओजमयी घोषणासे करोड़ों एशियावासियोंके हृदय जोशमें आ गये। उनकी हिम्मत बंध गयी, और वे सहसा पुकार उठे—"दीन-दुखियोंका परित्रायक, पददलित जातियोंका मित्र प्यारा रूस !"

रूस फिर बाजी मार ले गया

इधर अमेरिकनोंने अंग्रेजोंकी साजिशसे एशियाई देशोंकी आजादीके प्रश्नपर चुप्पी साध ली ! क्या यह राजनीतिक शराफत थी ?

"ऐ अमेरिका वासियो ! क्या तुम जानते हो इसकी प्रतिक्रिया एशियामें क्या हुई ? आज एशियाकी प्रबुद्ध जनता खुल्लमखुल्ला कह रही है कि अमेरिकाकी ऐलानी चार आजादियां ढोंग हैं। अमेरिकनोंकी लोकतन्त्र प्रणालीका प्रेम भी थोथा है। आखिर, दोनों चचा जात भाई एकसे ही हैं। एशियाके प्रश्नपर दोनों कैसे साजिश कर लेते हैं ! कोई बात नहीं हम भी अब समझ गये हैं। हम जान गये हैं कि किस राष्ट्रके मेलसे हमारा उद्धार होगा। समय आनेपर हम बता देंगे। अभी हम चुप हैं।

सच जानिये, इनकी चुप्पीके पीछे विकराल क्रोध छिपा है। मेरा कर्तव्य है कि मैं स्वदेशवासियोंको ठीक जता दूं कि आज एशियाके लोग हमें किस घृणासे देख रहे हैं। मुझे कई प्रमुख चीनियों और भारतीयोंने प्राइवेटमें कहा है कि अब उनकी श्रद्धा अमेरिका परसे उठ गयी है। वे अब अमेरिकाकी असलियतको खूब समझ गये है। अब उन्हें केवल रूससे ही आशा है।

अमेरिकाको यदि अभी भी एशियामें अपनी साख कायम रखनी है तो उन्हें एशियापर अपना आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुत्वका दुःस्वप्न छोड़कर एशियाके पीड़ित, सन्तप्त हृदयको सांत्वना पहुंचानेकी फिक्र करनी चाहिये। यह न भूलिये, एशियाके द्वीपोंको अपने संरक्षणमें रखनेकी इच्छा—चाहे किसी गर्जसे ही क्यों न हो—एशियावासियोंसे शत्रुता मोल लेना है।"

जापानी "टाइम-बम"

हमारी फौजोंसे खदेड़ा हुआ जापान अपने अधिकृत देशवासियोंमें एलान करता गया—"ऐ लोगो ! खबरदार ! गोरी कौमें फिर तुमपर राज्य करने आ रही हैं !" जापान यह ऐसा "टाइम-बम" छोड़ गया है, जो एक दिन हमारी सन्तानके ऊपर अवश्य फटेगा। इसका सीधा प्रतिकार है कि गोरी जातियां साफ बता दें कि उनकी मंशा रंगीन जातियोंको गुलाम बनाने की नहीं है। यही समय है जब हमें अपना निर्णय करना होगा।

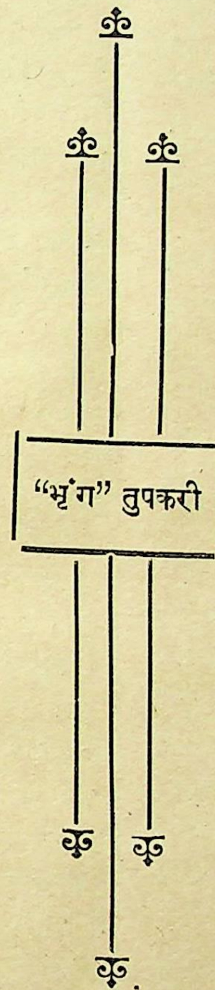
एशियावाले यह जाननेको उत्सुक हैं कि जीत किसकी होगी। साम्राज्यवादकी अथवा लोकतन्त्र की ?



काल से

अनिल अनल के दो पंखों पर, रख कर विश्व विशाल । चला आज अज्ञात दिशा में, कहां ? बता रे काल ।।

गहन है पंथ अंध है निशा,
बंद है सभी सुखों के द्वार,
मंद है दीप - शिखा का सार,
और है कन्धों पर जग-भार,
और तू थका हुआ लाचार,
घने घन नभ में तमसाकार,
घिरे हैं, अपना ले विस्तार,
जहां बरसाने को अङ्गार,
किनारा जहां बना मंझधार,
उसी पथ पर बढ़ता बेकार !
अरे ओ, जगती के आधार !
अरे ओ, परिवर्तन के ज्वार !
चलेगा कब तक जगका प्यार ?
चलेगा कब तक यह व्यापार ?
चलेगा कब तक यह संहार ?
खतम कर अब तो अत्याचार !
शून्य है आज अवनि-शृङ्गार,
गूंजता घर घर हाहाकार,
लुटी मानवता रही पुकार,—
"आज है लाशोंकी भरमार,
बना है मरघट-सा संसार !"
चीखता विकल अस्थि-अंबार, —
"हाय, कब होगा पुनरुद्धार ?"
और तू लिये विजय में हार,
अरे, कब पहुंचेगा उस पार ?
जहां नित करनेको अभिसार
थिरकती शांति वीण-झंकार,
सुखोंके बंधते बन्दनवार,
खिलाती उजड़े बाग बहार,
डुलाती परियां पंख पसार,
सुलातीं पलकों में भर प्यार !



सुखद वह लोक, दिव्य वह दिशा,
निशाका हो धूमिल अवसान,
दिशाको मिले किरण-वरदान,
ज्योति का हो जगमें आह्वान;
रसीली कलियों पर मुस्कान
खिले 'औ' खिलें मनुजमें प्राण
मनुजता का लख कर उत्थान
पतन जगसे कर जाय पयाण;
कहीं पर भ्रमरों की मृदु-तान
चलाती हो रस-डूबे बाण,
जगाती हो पिछली पहिचान,
सुना कर पुनः मिलन के गान
प्राणमें भरती हो फिर प्राण;
पहिन कर विरह मिलन-परिधान
हृदय को देता हो सुख-दान ;
कहीं पर, उड़ता हंस विहान
संदेशा' दमयंती' का जान
'किसीसे' कहता हो 'नल' मान—
"सुनो यह 'रानी' का अरमान;
तुम्हारा प्राणों से कर ध्यान
कहा है,—मिलियो प्रातः आन ।"
और फिर प्रेमी 'नल' प्रस्थान
करे, मन में कर प्रियका ध्यान,
उदय हो कोमल भाव महान,
(यही बन जावे भाग्य विधान ।)
न धनका कहीं दिखे अभिमान,
न भूखों मरें दरिद्र, किसान,
सभीको मिले उचित सम्मान,
सभी मिल करें विश्व-कल्याण,
दासता का हो नष्ट निशान,
तने सिरपर स्वातंत्र्य वितान,

जहां सितारों के मोती नित, चुगता प्रात-मराल,
सजता आशा के कुसमों से, दिव्य दिशाका थाल,
बिछता नभ की नवल-ज्योतिका जगपर हलका माल !

लघु तिनका तक जला, न पाये कुटिल द्वेष का ज्वाले,
शांति की सुखद गोदमें बढ़ें, मनुज के भोले लाल,
घर - घर स्वर .हो एक, एक ही होवे लय औ' ताल !
अरे ओ काल ! अरे ओ काल !!

कविता

श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा'

'कविता' सृष्टिका सौंदर्य है। कविता ही सृष्टिका सुख और कविता ही सृष्टिका जीवन-प्राण है। ईश्वरी सौंदर्यको भाषाकी छटा द्वारा संसारके सामने दरसाना ही 'कवि'का कर्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस सौंदर्य-सागरमें डूबता है उतना ही अधिक वह अपने कर्तव्योंमें सफल होता है। संसारके पदार्थों और घटनाओं-को सभी देखते हैं, परंतु जिन आंखोंसे उन्हें 'कवि' देखता है वे निराली ही होती हैं।

लोकोत्तर वर्णनमें निपुण कविका कर्म काव्य है। कविता समझते ही जो आनन्द तत्काल प्राप्त होता: है, वही कविता सम्बन्धी सब प्रयोजनोंमें सर्वश्रेष्ठ है। जिस आनन्दकी मूर्ति नहीं बनी है, उसका अवश्य ही निराकरण होना चाहिये। गायकके आनन्दका दर्शन हमें गीत-रूपमें होता है और 'कवि'के आनन्दका 'कविता'रूपमें। 'कवि'की वाणी जिस सृष्टिका सृजन करती है उसमें भाग्यके नियमोंका बन्धन नहीं होता। भारती-का सम्पूर्ण सार-भूत पदार्थ एक मात्र आनन्द है। यह पर-तन्त्र नहीं है, नवरसमयी होनेके कारण परम 'रुचिरा' है।

'कविता' एक ऐसी वस्तु है जो मुर्देमें जान डाल देती है। नीरसको सरस बनाकर लोकोत्तर चमत्कारसे बरबस हृदयको हर लेती है, इसीसे इसके आस्वादनके आनन्दको ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। ऐसी कविता करनेवाले कवि थोड़े ही होते हैं, पर जो होते हैं, वे अपने .देशके लिये गौरवकी चीज समझे जाते हैं।

'कविता' एक कला है जो उतनी ही पुरानी है जितनी मनुष्य-जाति। असभ्य और अशिक्षित कही जानेवाली जातियोंमें भी यह कला किसी न किसी रूपमें मौजूद है। यह वह 'मेजिक लैन्टर्न' है, जो घने अन्धकार हीमें अधिक साफ और कामकी होती है। जैसे-जैसे ज्ञानका उजाला बढ़ता जाता है वैसे-वैसे कविताकी कला मन्द पड़ती जाती है क्योंकि समाज स्वयं कवित्वमय .होता जाता है। कविताका कोई विषय उसके लिये नया नहीं रह जाता। यही कारण है कि समाजकी उन्नत दशामें जब मनुष्यका मस्तिष्क घटनाओंके ज्ञानसे खाली होता है, तब वह प्रकृतिकी अद्भुत लीलाओंको देखकर चकित और आन-न्दित होता है और यही आनन्द जब वाणीके द्वारा फूट निकलता है तब वही 'कविता' कहलाता है।

'कविता' द्वारा प्रकृति समाजके मनोविकारोंको जाग्रत करती है और संसारको चलाती है। यह कला मनुष्य निर्मित नहीं बल्कि प्रकृतिका दान है। यह प्रकृतिकी कही हुई वह कहानी है जिसे मनुष्य जातिने बाल्यावस्थामें सुनकर अपनी जवानीका स्वप्न तैयार किया था। यह कला प्रकृतिकी वह उंगली है, जो मस्तिष्ककी गांठें खोलती और प्रकृतिके कमरोंके परदे उठाती है। मनुष्यको इस कलाके लिये गर्व न करना चाहिये क्योंकि यह उसके वशकी चीज नहीं जिसे प्रकृति देती है। वही इसे पाता है। प्रत्येक समाजको प्रकृति कुछ ही ऐसे व्यक्ति देती है जिनके हाथमें 'कविता'का दीपक होता है और जो समाजको राह दिखलाते हैं।

किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका कहना है कि 'कविता' हृद-तन्त्रीका नाद है शब्दाडम्बर नहीं। जिसके हृदयमें नाद जितना ही अधिक गूंजेगा, वह उतना ही सुन्दर, सरस एवं मधुर कविता करनेमें समर्थ होगा। इसके लिये अनु-भव भी एक आवश्यक वस्तु हैं, वह अनुभव चाहे सांसारिक हो चाहे आत्मानुभूत। अनुभवहीन व्यक्ति कवि-हृदय रखते हुए भी कविता नहीं कर सकता। क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो बालक भी बड़ी सुन्दर कविता कर लेते। कारण उनकी हृद्तन्त्रीमें नाद बड़ा सुन्दर और गुञ्जार करनेवाला उठता है। जाननेकी बात है कि 'कविता' मस्तिष्क और हृदय दोनोंके उद्गारोंकी समष्टि है। हृदयसे जो भाव उठता है वह मस्तिष्कके उद्गारोंसे परिष्कृत होकर हृदयंगम करने तथा समझने योग्य हो जाता है। केवल भावुक-हृदय रखनेसे ही कोई कवि या कविताका अच्छा जानकार नहीं हो सकता। बिना मस्तिष्कके हृदयके भाव निर्गन्ध-सुमन हैं, नीरस-फल हैं, मुरझाये हुए पत्र हैं, ठूंठे वृक्ष हैं। मस्तिष्कका परिष्कार ही उनका जान है, जैसे अच्छे रत्न भी जबतक खरादे नहीं जाते, रगड़कर सुडौल नहीं किये जाते तबतक उनकी अमूल्यता भी मूल्य हीन-सी रहती है ठीक उसी प्रकार मस्तिष्कपर खरादे जानेसे हृदयके

भावरूपी रत्न दम-दम दमकने लगते हैं। हृदयके भावोंके साथ मस्तिष्क का सामञ्जस्य भी कवि और कविताके लिये आवश्यक है। दोनोंमेंसे एकके अभावमें भी 'कविता' अच्छी नहीं हो सकती। किसी-किसीका मत है कि 'कविता' कविके जीवनकी सहचरी है। उसके जीवनका रूप कवितामें ही व्याप्त रहता है। कवितामें क्रन्दन है, तो समझिये कि कविकी आत्मा क्रन्दन कर रही है, उसमें उल्लास है तो समझिये कविका अन्तरतर खिल उठा है। क्रन्दन, हास-निद्रा, प्रारम्भ, अन्त, आवेग, शैथिल्य, विकास, ह्रास आदि जीवनके जो रूप हैं, वे ही कवितामें सन्निहित हैं। जीवनमें कल्पना है तो कवितामें भी कल्पना है, जीवनमें लालसा है तो कवितामेंभी लालसा-जन्य प्रवृत्तियोंके विविध रूप हैं। जीवनमें जितना सत्य है, कवितामें उतना ही सत्यका रूपान्तर है। इससे यह ज्ञात होता है कि कविकी 'कविता' ही उसका सर्वस्व है। वेबस्टर साहब लिखते हैं कि "उपयुक्त भाषामें सुन्दर और उच्च विचारोंका समावेश भी रहना चाहिये, यह भी आवश्यक है कि भाषा पद्यात्मक हो और उसकी यह विशेषता होनी चाहिये कि उसके पढ़नेसे पाठकोंके हृदयमें उसीके अनुकूल भावोंकी उत्पत्ति हो।"

चेम्बर्स साहब कहते हैं कि "मधुर शब्दोंमें कल्पना और भाव-प्रसूत विचारोंको प्रगट करनेकी कला ही कविता कहाती है।"

प्रसिद्ध समालोचक 'मैथ्यूआर्नाल्ड' कहते हैं कि "कविता पदार्थमें मानव जीवनका सूक्ष्म विश्लेषण है। कविकी महत्ता इसीमें है कि वह विचारोंको बड़ी कुशलतासे जीवनके उपयुक्त कर दे। जब मनुष्य सत्यको सबसे श्रेष्ठ भाषामें प्रकट करता है, तब वही भाषा 'कविता' हो जाती है"। 'आलफ्रेड लायल' कहते हैं कि "किसी युगके प्रधान भावों और उच्च आदर्शोंको प्रभावोत्पादक रीतिसे प्रकट कर देना ही 'कविता' है।"

हिन्दीके एक कवि कहते हैं—

छन्द जाके चरन-बरन स्वच्छ देखियत,
पानिप अरथ चमकत व्यंग धीर है॥
उक्ति-जुक्ति बसन नवीन बहु रंगनके,
राजत गिरा-सी खरी निपट गंभीर है॥
गुनन वलित शुभ लच्छनी सरस भाव,
भूषण जटित जाको सकल शरीर है॥
कवि चित्रकारनको बढ़त अनन्द लखे,
'कविता' कवोनकी खयाली तसवीर है॥

———

तपस्या का मोल

आंसुओं का मोल मैंने कब किया संसार बोलो॥

सिन्धु रेगिस्तान बन में जब जहां तुमने पुकारा।
दौड़ता आया वहीं मैं निज सुखों से कर किनारा॥
कष्ट वारण के लिये मैंने किया जो कुछ सका बन।
आंख से आंसू बहाये या हृदय से रक्त धारा॥

पर दिया तुमने तपस्या का कभी उपहार बोलो।
आंसुओंका मोल मैंने कब किया संसार बोलो॥
आह सुन कर कांप जाता है हृदय कमजोर कविका।
दाह दुखपर चल नहीं सकता कभी पर जोर कविका॥

आग तेरे घर लगी जब लोग टुक टुक देखते थे।
तब सुनाई दे रहा था एक व्याकुल शोर कविका॥
हृदय स्वरको छोड़ मुझको और क्या अधिकार बोलो
आंसुओं का मोल मैंने कब किया संसार बोलो॥

मानता हूं यह किसी दिन मृत्यु में मैं लीन हूंगा।
छोड़ मिट्टी देहकी नभ में कहीं उड्डीन हूंगा॥
किन्तु जब तक प्राण हैं बाकी न छोड़ूंगा कभी व्रत।
तड़पते संसार के दुख पर न करुणा-हीन हूंगा॥

मैं बचूं क्यों विश्वका जब हो रहा संहार बोलो।
आंसुओंका मोल मैंने कब किया संसार बोलो॥

—श्री कपिलदेवनारायण सिंह "सुहृद"

———

साहित्यका माप-दण्ड समालोचना

प्रो० जनार्दन मिश्र, 'पंकज'

समालोचना साहित्यका माप-दण्ड है। यह साहित्यका संतुलित रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है। गद्य कवियोंकी कसौटी है, निबन्ध गद्यकारोंकी और आलोचना सर्वाङ्गीन साहित्यकी एकमात्र कसौटी है। किसी साहित्य-रचनाके विषयमें अपने विचारोंको निष्पक्ष रूपसे अभिव्यक्त करना ही आलोचना है। वस्तुतः समालोचना स्वाध्यायपूर्ण अनुभूतियोंका निष्पक्ष विचाराभिव्यक्तीकरण है। समालोचना किसी भी साहित्यकी श्रीवृद्धिका एकमात्र उपाय है। वह साहित्यको परिष्कृत, सुसंस्कृत एवं तर्कनाशक्ति और विवेक बुद्धिको प्रबुद्ध तथा बोधवृत्तिको विकसित करती है। यह साहित्यिक विचार विनिमय है, उचित मूल्यांकन है। इसे हम साहित्य-मन्दिरका प्रदीप भी कह सकते हैं। सुसज्जित मन्दिरमें सभी तरहके सुखप्रद और मूल्यवान सामानके मौजूद रहनेपर भी जिस प्रकार एक प्रदीपके बिना उन वस्तुओंकी सत्ताका बोध नहीं होता, उनका सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं हो पाता, ठीक उसी प्रकार साहित्यिक सौन्दर्यकी कल्पना, भाव, रस और अलङ्कारादि भी समीक्षा-प्रदीपके बिना अन्धकारमें पड़े रहते हैं और होते हुए भी वन-पाटलकी भांति अदृश्यमें खिल कर झड़ जाते हैं। अतएव समालोचना ही एक ऐसी वस्तु है जिसकी कमी हमारी सबसे बड़ी कमी है, क्योंकि वही हमारी साहित्य-हीनताका ज्वलन्त उदाहरण है। समालोचना विहीन साहित्य उस अन्धे भिखारीसे भी कहीं गया-गुजरा है, जिसके हाथकी लकड़ी भी खो गयी हो। अथच यह निर्विवाद सिद्ध है कि समाचोलना या समीक्षा साहित्यके प्रचार प्रसारमें एकान्त सहायक है—पुष्टपोषक एवं समर्थक हैं।

समालोचना संस्कृतके 'सम्' तथा 'आ' उपसर्गपूर्वक लुच् धातुसे, जिसका अर्थ देखना होता है, अन्तमें 'अन्' प्रत्यय और स्त्रियां टाप्के लगानेसे बनती है। इस प्रकार इसका अर्थ होता है—किसी वस्तुको सम्यक्रूपसे (अच्छी-तरह) देखना। किसी भी वस्तुको मार्मिक ढङ्गसे विधिपूर्वक :उलट-पुलट कर देखना ही समालोचना है। विरूप, सुरूप किसी भी वस्तुको देख कर हमारे मनमें यह भावना उठती है कि यह आकर्षक है या अनाकर्षक, सुन्दर है, रोचक है या अरोचक, उपयोगी है या निरर्थक। हम उसकी अच्छाइयों और बुराइयोंकी खोजमें लग जाते हैं और उस समय हमारी उत्सुकता बहुत आगे बढ़ जाती है कि अमुक वस्तु क्या है, कैसी है, किसलिये है, क्यों है, कब हुई, कैसे और किसके द्वारा इस रूपमें आयी, उसके दोष-गुण क्या है, उसकी उपयोगिताएं क्या-क्या हैं इत्यादि। यही है हमारा उस वक्ष्यमाण वस्तुके सम्बन्धमें प्रश्न, प्रश्नोपरान्त वस्तु ज्ञानके लिए प्रयत्न, स्वाध्यायपूर्ण स्वानुभूति और तत्पश्चात विचारोंका अभिव्यक्तीकरण! यही अभिव्यक्तीकरण समालोचना है।

वास्तवमें समालोचना रचनागत गुण दोषोंका विश्लेषणमात्र है। यह आलोच्य वस्तु लेकर आगे बढ़ती है और उसके गुण-दोषों और विशेषताओंको सुव्यक्त एवं प्रकाशित करती हुई रचनाको पठनीय बनाती है। कभी-कभी समीक्षा या समालोचना छिद्रान्वेषणके अर्थमें व्यवहृत होती है और उस समय उसका अर्थ निन्दा या उपहासके अतिरिक्त कुछ दूसरा मानी-मतलब नहीं रखता। किंतु वस्तुतः समालोचनाका अर्थ अप्रिय होनेपर भी निन्दा या उपहासमात्र नहीं है। अन्यथा उसे एकांगिनी हो जाना पड़ेगा। समालोचनाके विस्तृत क्षेत्रमें इस प्रकारका कोई रूढ़िगत अर्थ नहीं है। वह आलोच्य रचनाको देख कर केवल 'यह सुन्दर है या असुन्दर' इतना कह कर ही मौन नहीं हो जाती, बल्कि वह क्यों सुन्दर है या क्यों बुरी है, उसे भी प्रकट करती हुई आगे बढ़ती है। निष्पक्ष भावाश्रित स्वच्छन्दतापूर्वक रचना वैशिष्ट्य या उसकी विगर्हणा का बड़ी ही चतुरता, सतर्कता और सावधानीके साथ प्रतिपादन करती हुई एक निष्पक्ष निर्णायककी भांति उसका निर्णय करती है। निष्कर्ष रूपमें समालोचनाका मौलिक एवं पारिभाषिक अर्थ आलोच्य विषयका समुचित निर्णय करना है और समालोचक उस सुयोग्य निर्णायकका बोधक है जो यथोचित निरीक्षण और विश्लेषण कर उस विषयका यथावत् मूल्यांकन करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समालोचना और समालोचकमें चोली-दामन जैसा सम्बन्ध है।

साहित्यिक समालोचनाका अर्थ किसी साहित्यिक रचनाका उसके गुण-दोषोंके आधारपर मूल्यांकन करना—जैसी वस्तु हो वैसी ही कीमत लगाना है। इस प्रकार समालोचना अपने एक रूपमें आलोच्य रचना है और दूसरे रूपमें कसौटी। अर्थात् रचनाको कलाकी कसौटीपर कस कर परखना ही समालोचना है।

समालोचकोंका कार्य बड़ा ही अप्रिय और उत्तरदायित्वपूर्ण है। तिल-तण्डुल-न्यायेन गुण-दोषोंका पृथक्करण, नीर-क्षीर न्यायेन असुन्दर वस्तुओंसे—धूलकी ढेरीमेंसे सुन्दरको छांट कर निकाल लेना उसकी सबसे बड़ी योग्यता और क्षमता है। समालोचकोंको केवल कलाकारकी कृतियोंसे ही काम नहीं है, बल्कि उसके व्यक्तित्व और स्वभावादिसे भी काम है। किसी भी कलाकारके रचनागत गुण-दोषोंपर प्रकाश डालना, उसका उचित मूल्यांकन करना और उसकी योग्यताको निर्धारित करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य है। उसका लक्ष्य पक्षपातहीन होकर आलोच्य विषयके सुखद सौन्दर्य और उसकी विशेषताओंका प्रतिपादन करना है। समालोचनाका ध्येय महान है। सत्य, सौन्दर्य और लोकमांगल्यकी खोज करना ही समालोचनाका वास्तविक अर्थ है। साथ ही समालोचनाका यह भी लक्ष्य है कि जिन दोषोंसे रचनामें अनीप्सित एवं अरुचिकर दोष प्रवेश कर जाय वह उनसे अन्य लेखकोंको सावधान कर दे ताकि उनका अन्धानुकरण नहीं होने पाये और अन्य लेखक उन दोषोंकी पुनरुक्तिसे अपनी रचनाको बाल-बाल बचा लें। अन्यथा उनकी रचनाएं भी कलुषित, सदोष और असुन्दर हो जायेंगी। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि समालोचना दीपक और समालोचक हमारा पथ-प्रदर्शक है। वह पाठकोंको पठनीय पुस्तकोंके संचयनमें सहायता पहुंचाता है। वह हमारा उन्नायक है—साहित्यिक अग्रनेता है। साहित्यकी श्रीवृद्धिके अतिरिक्त वह हमारी भाषाको भी परिमार्जित और परिशोधित किया करता है। भाषाकी शुद्धाशुद्धताकी ओर आंगुल्यनिर्देश करता हुआ उसे एक सुसंस्कृत रूपमें ढाल कर परिष्कृत करना भी उसीका कार्य है।

समीक्षा—प्रणाली

समीक्षाकी कई प्रणालियां हैं। इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

[अ] सामान्य समीक्षा या साधारण समालोचना—इसमें रचनागत सामान्य गुण दोषोंका पृथक्करण करते हुए समालोचक अपने विचारोंको प्रकट करते हैं।

[आ] आदर्श समीक्षा या समालोचना—इसमें आलोच्य रचनाको दृष्टिमें रख कर एक आदर्श रचनाके गुणोंकी खोज की जाती है और ऊपरसे अपना निर्णय दिया जाता है।

[इ] तुलनात्मक समीक्षा या समालोचना—यहां आलोच्य रचनाकी किसी पूर्वालोचित रचनासे तुलना की जाती है और उसपर विचार विमर्श किया जाता है।

(ई) ऐतिहासिक समीक्षा या समालोचना—इसमें ऐतिहासिक रचनाकी परम्पराको दृष्टिमें रख कर आलोच्य रचनाओंमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक दशाओंका प्रतिबिम्ब दिखला कर उक्त रचनाका समय, स्थान और तारतम्य मिलाया जाता है। ऐतिहासिक घटनाओंकी खोज ही इसमें प्रधान रहती है। और बातें गौण रहती हैं।

[उ] चारित्रिक समीक्षा या समालोचना—इसमें रचनागत पात्रोंका चरित्रचित्रण देख कर उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाले रचयिताके चरित्रकी समीक्षा की जाती है।

(ऊ) मनोवैज्ञानिक समीक्षा या समालोचना—इसके अनुसार रचनासे ही रचयिताकी अन्तः प्रकृतिका पता लगाया जाता है। इसमें मनोविज्ञानकी प्रमुखता रहती है।

(ए) आध्यात्मिक समीक्षा या समालोचना—इसके अनुसार आलोचक आलोच्य रचनाको लेकर उसके रचयिताकी आन्तरिक बातोंकी खोज करता है।

ऊपर कह आये हैं कि समालोचक हमारा संशोधक और पथप्रदर्शक है और समालोचना अप्रिय वस्तु होनेपर भी साहित्य-मन्दिरका दीपक है। किसीने कहा है—"हितं मनोहारिच दुर्लभं बचः।" इत्यादि। समालोचकमें जो प्रमुख गुण होते हैं वे प्राकृतिक और उपार्जित दोनों ही प्रकारके होते हैं। कुछ प्रमुख गुणोंका सम्बन्ध मस्तिष्क और मनसे है जो उनकी विवेक बुद्धिसे विकसित एवं परिपुष्ट होते हैं। शुद्धाचरण तथा सदाचारपूर्वक रहना समालोचकके लिये परमावश्यक है, क्योंकि वह हमारा सबसे बड़ा उत्तरदाता है। आचरणकी विशुद्धता ही उसे निर्भीक और स्पष्टवादी बना सकती है। निर्णायक और उचित वक्ता होनेके लिये किसी भी समालोचकको पक्षपात-हीनता एवं अप्रिय सत्यताका दामन थामना ही पड़ेगा। सत्य प्रियता स्पष्ट-वादिता और निर्भीकताके सहारे वह वास्तविक समालोचक कहला सकता है अन्यथा वह साहित्य एवं

समान दोनोंका निन्दक शत्रु है। समालोचकको सत्यप्रिय एवं मधुर भाषी भी होना चाहिये। वह मीठी चुटकियां ले लेकर मजाकिये ढंगपर चिकोटियां काटते हुए किसी भी लेखकको उसकी रचनामें आये हुए दोषोंका जानकार बना सकता है इससे "एक पंथ दो काज वाली" कहानी चरितार्थ होगी। रचनाओंका दोषपरिहार तो होगा ही साथ ही साथ लेखकोंको भी अपनी भूलें अपनी ही आंखों दीख पड़ेगी। ऐसा समालोचक आलोच्य रचना तथा रचयिता दोनोंका सच्चा हितैषी साबित होगा। बीमारको हंसा हंसाकर प्रसन्न रखने वाला डाक्टर उसे अनायास संयमी, धीर और स्वस्थ्य बना सकता है। समालोचक साहित्यिक बीमारोंका डाक्टर है। फिर भी 'नीम हकीम खतरे जान' जैसे अनभिज्ञ समालोचककी समालोचना साहित्यपर कुठाराघात है, साहित्यिक हत्या है, उसका सत्यानाश है। इस तरह तनकर बैठनेवाला और अबाध गतिसे बालकी खाल निकालने वाला कलम-कसाई सजावार है—आस्तीनका सांप है। अयोग्य समालोचकको साहित्य-क्षेत्रमें प्रश्रय देनेवाले भी उसके साथ ही निर्वासनके पात्र हैं। नीर-क्षीर-न्यायेन समालोचकको गुणग्राही होना चाहिये। उसे राजहंसका गौरव प्राप्त है अतएव गुण ग्राहकता उसके लिये अपरिहार्य और अनिवार्य है। क्योंकि वह राजहंस है, नीर-क्षीरका पारखी है। किन्तु कहनेका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि समालोचनाके सिलसिलेमें समालोचकको तुलसी दासजीका "राजहंस गुण गहहिंपय, परिहरि बारि विकार" वाले सिद्धान्तके अनुसार सिर्फ रचनागत गुणोंको ही लेना चाहिये। नहीं, उसे तो दोषोंको भी लेना पड़ेगा। दोषोंकी नितान्त उपेक्षा उसकी छुआछूतको बढ़ाती है। हां, उसे दोष-प्रदर्शन इस प्रकार करना है कि उसका दूरीकरण हो जाय और साथ ही भविष्यमें न तो उसकी पुनरावृत्ति ही हो और न अन्धानुकरण ही हो। इस प्रकार का दोष प्रदर्शन ही रचनागत दोषोंकी बाढ़को रोक सकता है। दोष निरूपण करते समय समालोचकको रचना की विस्तृत या संकीर्ण परिधिके अन्दर बैठकर ही काम करना है। उसे आलोच्य वस्तु तक ही अपनेको सीमित रखना चाहिये अन्यथा वैयक्तिक आक्षेपों और निरर्थक साहित्यिक छींटे लगाने वाला समालोचक रचयिता या लेखकका व्यक्तिगत शत्रु ही समझा जायगा। न्यायप्रिय और निष्पक्ष होना समालोचकके लिये आवश्यक है। तुलनात्मक समीक्षा करते हुए समीक्षकको खूब सतर्क और निष्पक्ष रहना होगा अन्यथा वह 'विनायकं प्रकुर्वाणः रचयामास वानरम्' वाली उक्ति ही चरितार्थ करेगा। तुलनात्मक समालोचना समालोचकके लिए एक समस्या है। उसे हम नटकुण्डली भी कह सकते हैं, जिसमें कोई कुशल नट ही सफल होता है। कारण स्पष्ट है, क्योंकि नटको उसकी संकीर्ण परिधिमें अपने सर्वाङ्गको समेट कर प्रविष्ट होना है और आर-पार जाना है। यहीं समीक्षा तुलादण्ड या मापदण्ड कहलाती है; क्योंकि दो रचनाओं और दो लेखकोंका संतुलन न्याय और निष्पक्षताके कांटेसे ही सम्भव है। यही तुलनात्मक समीक्षा साहित्यका संतुलित रूप है। अथच समीक्षक साहित्यिक रचनाओंके गुण-दोष, कला-कौशल और विशेषताओंका एकमात्र निर्णायक है। एक बात बड़े मार्के की है और वह यह है कि समालोचना करते समय समालोचकको भी अपनी असमर्थता,अल्पज्ञता और दुर्बलताके लिये कुछ जगह देनी ही चाहिये और उसे यह भी सोचना चाहिये कि वही एकमात्र सर्वज्ञ या विशेषज्ञ नहीं है। सर्वः सर्वं न जानाति—सभीके साथ नियम रूपमें है कुछ अपवाद रूपमें नहीं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायनके शब्दोंमें—"मैं सर्वज्ञ नहीं हूं लेकिन कोई दूसरा भी सर्वज्ञ है, इसे माननेको मैं तैयार नहीं।"

कभी कभी समीक्षकके सामने कोई कोई विवादग्रस्त एवं मतभेदपूर्ण विषय भी आ जाता है। उसपर अपना विचार प्रकट करते हुए उसका भलीभांति अनुशीलनकर लेना है—खूब सोचविचार लेना है और बहुत नम्रता तथा सतर्कतापूर्वक अन्य मतोंका हवाला देते हुए अपना मत देना है। समालोचकका यह भी धर्म है कि वह आलोच्यवस्तु, उसके रचयिताके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखलाना न भूले। उसे लेखककी कृतिको लेकर खिलवाड़ नहीं करना है बल्कि पूर्णतया विचार लेना चाहिये कि लेखकका उद्देश्य क्या है और जिस दिशामें लेखककी लेखनी बढ़ती गयी है उसे भी कुछ देरके लिये उसी दिशामें उसी पगडण्डीसे एक चतुर जासूसकी भांति लेखकका पीछा करना चाहिये। तभी वह किसी अंश तक लेखकको समझ सकता है। अन्यथा लेखक और समालोचक विपरीत दिशामें चलकर गुमराह तो हो ही जाते हैं अपने पाठकोंको भी गुमराह करनेके अपराधी सिद्ध होते हैं। लेकिन यह भी स्मरण रहे कि समालोचकका लेखकके प्रति इतनी सहानुभूति न बढ़ जाय जिससे उसपर कोई पक्षपातका दोषारोपण कर सके। समवेदना या सहानुभूतिकी मात्रा उतनी ही हो जितनीसे निष्पक्षताको आकस्मिक धक्का न लगने पाये। इसी प्रकार समालोचक

विद्वान पाठकोंके बीचमें सर्वप्रिय और समदर्शी कहला सकेगा। समालोचनाके क्षेत्रमें किसी भी समालोचकके लिये मानसिक चांचल्य विशेषरूपेण अनर्थकारक है। अतएव समालोचकको सदा शान्त, धीर,गम्भीर और निर्भीक रहना चाहिये।

एक यशस्वी और सच्चे समालोचक होनेके लिये प्रत्येक समालोचकका कर्तव्य है कि वह अपने आपको अध्ययनशील, मननशील, गवेषक और अन्वेषक बनानेका पूर्ण प्रयत्न करे। उसे विद्याव्यसनी होना चाहिये। शैलियों, रीतियों, काव्योचित रसालंकारादिके ऐतिहासिक अनुसंधानमें दत्तचित्त रहना चाहिये। लोक-व्यवहारका ज्ञान प्राप्त करना भी उसके लिये नितान्त आवश्यक है।

आचार्य मम्मटके शब्दोंमें उसे इस भांति भी कह सकते हैं।

'शक्ति निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्य वेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।'

का० प्र० १ समुल्लास।

अर्थात् समीक्षा करनेकी शक्ति। शक्तिसे तात्पर्य किसी विशेष संस्कार (प्रतिभा) से है, जो समालोचनाका बीजरूप (मूलकारण) है, जिसके बिना समीक्षा हो ही नहीं सकती; अथवा यदि की भी जाय तो उपहासका कारण हो। लोक शब्दसे तात्पर्य उन सभी व्यापारोंसे है जो स्थावर और जंगम अर्थात् चराचर पदार्थोंसे सम्बन्ध रखते हैं। शास्त्रोंसे तात्पर्य उन ग्रन्थोंसे है जो छन्द, व्याकरण अभिधान, कोष, कला, चातुर्वर्ग, हाथी घोड़े खंग आदिके लक्षण बतलानेवाले महाकवि विरचित काव्यादि हैं। आदि शब्दके कथनका यह भाव है कि इतिहासादि ग्रन्थोंकी गणना भी शास्त्रोंमें की जावे। इन ग्रन्थोंके भली-भांति अध्ययन करनेसे समालोचना विषयक व्युत्पत्ति प्राप्त होती है, यह एक अन्य हेतु है। जो लोग आलोचना करना जानते हैं, उनकी आलोचना प्रणालीके एकान्त स्वाध्याय और मननसे—अर्थात् शक्ति, चातुर्य और अभ्याससे उत्कृष्ट समीक्षा हो सकती है।

हम अकसर देखते हैं कि हमारी अपनी धारणा और रुचि इतनी प्रधान हो जाती है कि हम उसीके अनुसार किसी लेखक या कविके प्रति अपनी श्रद्धा, स्नेह और सहानुभूति दिखलाते हैं और उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा किया करते हैं। किसी भी सत्समालोचकके लिये ऐसा पक्षपातपूर्ण व्यवहार कुत्सित, निन्द्य और हेय है। समालोचना कलाकारकी नहीं, उसकी कृतियोंकी की जाती है। किन्तु अपनी सीमासे बाहर आकर कलाकारोंके भी चारित्रिक, व्यावहारिक दोषादिकी तीव्र आलोचना करना किसी भी आलोचकके लिये मार्जनीय नहीं। किन्तु बड़े खेदकी बात है कि समालोचक अपने प्रमुख कर्तव्य और उत्तरदायित्वसे पिछड़ रहे हैं। उनकी वर्तमान नीति बड़ी ही निन्द्य है। अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभा मध्ये च वैष्णवाः वाली कहावत इनके साथ अक्षरशः चरितार्थ होती है।

बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिन सिद्धान्तोंके आधार पर किसी कलाकारकी प्रशंसाओंके पुल बांधे जाते हैं, उन्हीं सिद्धान्तों या विषयके आधारपर उसी दर्जेके लेखकों, कवियों और नाट्यकारों पर तीव्र आघात भी किये जाते हैं। इसका एकमात्र कारण समालोचककी सबसे बड़ी दुर्बलता और अनुदारता है। इस तरहकी समालोचना लेखकों और रचयिताओंके प्रति घोर अन्याय है—उनका गला घोंटना है। कुछ नौसिखुए समालोचकोंमें समालोचनाका माद्दा तो रहता ही नहीं, इतरां वे रचनाकी प्रौढ़ता एवं प्रबन्ध पटुताकी गहराई तक उतर ही नहीं पाते आपाततः उड़ते ही चलते हैं। उनकी दृष्टिमें यही है 'विहङ्गम दृष्टि' और 'व्याघ्रावलोकन'। सम्बन्ध निर्वाहका ज्ञान और वस्तु परिगणनकी शक्ति भी उनमें नहीं रहती। कुछ प्रचलित एवं रूढ़ शब्दों, शब्द वैचित्र्य और चमत्कारके फेरमें पड़कर वे अर्थका अनर्थ कर डालते हैं। भावोंके उत्कर्षापकर्ष को भी वे अपनी समीक्षामें नहीं दिखला पाते। इनकी समालोचना-पद्धति ही निराली हुआ करती है। स्वाध्याय और अनुभूति-हीनता इसका एकमात्र बीजकारण है। चरित्र सम्बन्धी घात प्रतिघात वासना तथा प्रेमकी द्वन्द्वावस्था एवं मनोवैज्ञानिक आरोहावरोहादिको सूक्ष्म दृष्टि, स्थिर सहानुभूतिके साथ ये चित्रित नहीं कर सकते हैं। रचनागत सौंदर्य किन किन खास स्थलोंमें अन्तर्निहित है, अनुभूतियां सहजसिद्ध हैं वा प्रयत्न साधित, कल्पनाका चिन्तन-साधित रूप यथार्थ या व्यर्थ है इत्यादि का ये सम्यक् विश्लेषण करनेमें कोरे असमर्थ हैं। एक शब्दमें यों कहा जा सकता है कि ऐसे समीक्षकोंमें साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाले अनुसन्धान और पर्य्यालोचनका नितान्त अभाव है।

प्रसङ्ग-गर्भत्व एवं अर्थगर्भित वक्रताकी गहराई तक इन दिनों पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, श्री जैनेन्द्र तथा पं० जनार्दन झा 'द्विज' आदि इने गिने समीक्षक

ही उतर सकते हैं। और गहरेपानीमें पैठनेसे ही मोती भी मिलता है।

समालोचनाकी प्राचीनता भारतीय है, इससे किसी भी मर्मज्ञ विद्वान इनकार नहीं कर सकता। हां, उन दिनों हमारे भारतमें जब कि संस्कृत साहित्यका बोलबाला था—उसीकी तूती बोलती थी, समालोचनाका एकमात्र उद्देश्य दोष-गुण-निरूपण ही था। संस्कृत साहित्य की प्राचीन समालोचना-प्रणाली लक्षण ग्रन्थोंकी परम्परामें मौजूद है। तदनुसार उस समयके आचार्य या साहित्य मीमांसक, जिन काव्य रचनाओंको उत्कृष्ट समझा करते थे उन्हें रसालंकारादिके उदाहरणोंमें रखते थे और जिन्हें दुष्ट या दूषित समझते थे उन्हें दोषोंके उदाहरणोंमें। फिर भी उनमें परस्पर मतभेद बना रहता था और अच्छे ठहराये हुए पद्य सदोष एवं दुष्ट ठहराये हुए निर्दोष मान लिये जाते थे। दण्डीके काव्यादर्श राजशेखरकी काव्य मीमांसा मम्मटके काव्य-प्रकाश, विश्वनाथके साहित्य-दर्पण एवं पण्डितराज जगन्नाथके रसगङ्गाधर आदि लक्षण-ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धके अनेक खण्डन-मंडन विद्यमान हैं।

उन दिनों अग्निपुराण (समय अनिश्चित) दण्डी (छठी शताब्दी, अनुमित) रुद्रट (वामनसे पूर्व) वामन (नवीं शताब्दीके पूर्वार्धसे पूर्व) भोज (ग्यारहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध) मम्मट (बारहवीं शताब्दी) वाग्भट (मम्मट के पीछे) पीयूष वर्ष जयदेव (बारहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध) विश्वनाथ (चौदहवीं शताब्दी) गोविन्द ठक्कुर काव्य-प्रकाशके मर्मज्ञ काव्य प्रदीपकार (सोलहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध, अनुमित) पंडितराज (सत्रहवीं शताब्दी, शाहे-बक्त शाहजहां) आदि आचार्योंने अपने अपने लक्षण ग्रन्थों-में काव्यालङ्कार, रस, गुणादि विषयोंकी तर्कपूर्ण मीमांसा की है और प्रायः सभीकी समीक्षा-प्रणाली एक सी है। उदाहरण देनेसे निबन्धका कलेवर जामेसे बाहर हो जानेका डर है। सुविज्ञ पाठक स्वयं विचार कर लेंगे। हमें केवल इतना ही बतलाना है कि उन दिनों कवियोंकी विशेष-ताओंका दिग्दर्शन बड़ी ही संक्षिप्त प्रणालीमें हुआ करता था, उसकी पूर्त्ति आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "दो एक श्लोक बद्ध उक्तियां कह कर ही लोग सन्तोष मान लिया करते थे, जैसे—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिः मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

× × × ×

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थ गौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

जैसा कि आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें लिखा है कि उन दिनों "किसी कवि या पुस्तकके गुणदोष या सूक्ष्म विशेषताएं दिखलानेके लिये एक दूसरी पुस्तक तैयार करनेकी चाल हमारे यहां न थी।" यही कारण था कि परवर्त्ती साहित्याचार्योंने अपने लक्षण ग्रन्थोंमें पूर्ववर्त्ती आचार्योंकी धज्जियां उड़ायी हैं। आचार्य मम्मटके 'काव्यप्रकाश'में दी गयी 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती' काव्य-परिभाषाका साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथने समालोचना की है और दर्पणकारके 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'की पण्डितराजने अपने रसगंगा-धरमें खिल्ली उड़ायी है। यह थी हमारी अपनी भारतीय समालोचनाकी परम्परा।

योरपमें समालोचना साहित्यकी परम्परा हमसे विशेष उत्कृष्ट, परिमार्जित, व्याख्यात्मक और निर्णयात्मक रूपमें आ रही है। कलाकार और उसकी रचनाकी विशेष-ताओंका दिग्दर्शन करानेवाली, उसकी विचारधारामें गह-राईतक गोते लगाकर अन्तर्वृत्तियोंकी छानबीन करनेवाली पुस्तकें स्थायी साहित्यमें स्थान पाती थीं और पा रही हैं। योरपमें समीक्षा शास्त्रका क्रमिक विकास फ्रांसमें ही हुआ है। अभिव्यञ्जनावादके प्रवर्तक एवं काव्य मीमांसक इटली निवासी क्रोचे (Benedette-Croce) पर, जैसा कि श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' एम० ए० ने अपनी पुस्तक 'काव्यमें अभिव्यञ्जनावाद' में लिखा है कि उसपर भारतीय आचार्य वक्रोक्तिकार कुन्तलका पूर्ण प्रभाव है। फिर समा-लोचनाके क्षेत्रमें हम यूरोपीय विद्वानोंके पीछे, उनसे प्रभा-वित और ऋणी हैं।

भारतीय आचार्य परम्परासे प्रभावित प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वतीने तुलसीदासके रामचरितमानसपर दाद देते हुए उसकी समालोचना एक ही श्लोकमें की है।

आनन्द कानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसी तरुः।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमर भूषिता॥

यह परम्परा हिन्दी साहित्यके मध्ययुग—भक्तिकाल और रीतिकालतक एक रस रही। कुछ उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं।

सूर-सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहं तहं करत प्रकाश॥

* * *

तुलसी गंग दोऊ हुए, सुकविनके सरदार।
जिनकी कवितामें लसी, भाषा विविध प्रकार ॥
इत्यादि ।

हिन्दी साहित्यमें जैसा कि पण्डित रामचंद्र शुक्लने लिखा है, समालोचनाका सूत्रपात बाबू हरिश्चंद्रकें समयसे हुआ है। लेखके रूपमें पुस्तकोंकी विस्तृत समालोचना उपाध्याय पण्डित बदरीनारायण चौधरीने अपनी 'आनंद-कादम्बिनी'में शुरू की। प्रौढ़ निबन्ध साहित्यके युगमें अर्थात् खड़ी बोलीके यौवनकालमें इस प्रकारकी पुस्तक पण्डित महाबीरप्रसाद द्विवेदीजी की हिंदी—कालिदासकी आलोचना निकली। इसमें अनुवाद सम्बन्धी भाषा और भाव-दोष बड़े विस्तारसे दिखलाये गये हैं। द्विवेदीजीके अन्यान्य समीक्षा-ग्रंथ जैसे—

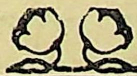
'विक्रमाङ्कदेव चरित चर्चा', 'नैषधचरित चर्चा', 'कालिदासकी निरंकुशता' संस्कृत साहित्याध्यायियोंके लिये विशेष महत्वपूर्ण और उपकारी सिद्ध हुए।

समालोचना-क्षेत्रमें आचार्य महाबीरप्रसाद द्विवेदी विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। उन्होंने पुस्तकोंकी अव्यस्थित, व्याकरण-विरुद्ध और उटपटांग भाषाकी कड़ी आलोचना कर हिन्दी साहित्यका आशातीत उपकार किया है। यह उनकी लेखनीका ही प्रभाव और चमत्कार था कि हमारे हिन्दी-साहित्यके लेखक सावधान हो गये और उन्होंने भरसक अपनी योग्यता और भाषाका सुधार किया।

साहित्यके समीक्षा क्षेत्रमें लखनऊके समीक्षक बन्धुत्रय मिश्र बन्धुओंने 'हिन्दी नवरत्न' निकाला और देवका विशेष पक्षपात करते हुए उन्हें हिन्दीका सबसे बड़ा कवि सिद्ध करनेका भरपूर प्रयास किया। बाद, कवियोंका एक विशाल-काय इतिवृत्त संग्रह (मिश्र-बन्धु-विनोद) लिखकर हमारा बहुत बड़ा काम किया। पण्डित महाबीरप्रसाद द्विवेदीके उपरांत आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लका विशेष प्रमुख स्थान है। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास, जायसी-ग्रन्थावलीकी भूमिका, भ्रमर-गीत-सार, और हिन्दी-साहित्यका इतिहास लिखकर अपना नाम अमर कर दिया है। तत्पूर्व पण्डित पद्मसिंह शर्माने बिहारीकी-सतसईकी बड़ी 'वशद-व्याख्या एवं तुलनात्मक समीक्षा की। इसमें उन्होंने आर्या-सप्तशती, गाथा-सप्तशती, अमरुक-शतक, रतन हजारा आदि पुस्तकोंकी 'बिहारी-सतसई'के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए साहित्य-परम्पराका उद्घाटन किया है। इससे पहले सतसईकी प्रशंसाके सम्बन्धमें आलोचनात्मक ढङ्ग के हमें दो दोहे मिले हैं।

सतसैयाके दोहरा, ज्यों नाविकके तीर।
देखतमें छोटे लगत, घाव करें गम्भीर ॥ (१)
दीरघ दोहा अर्थके, आखर थोड़े आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली सिमिट कूदि कढ़ि जाहिं ॥(२)

पण्डित रामचन्द्र शुक्लने लिखा है—"हो सकता है कि शर्माजीने भी बहुतसे स्थलोंपर बिहारीका पक्षपात किया हो, पर उन्होंने जो कुछ किया है वह एक अनूठे ढङ्गसे किया है। उनके पक्षपातका भी साहित्यिक मूल्य है। शर्माजीकी यह समीक्षा भी रूढ़िगत है। लेकिन इसे हिन्दी साहित्यको एक बड़ा भारी लाभ हुआ। वह यह कि अब तुलनात्मक समीक्षाकी प्रणाली चल पड़ी है। फलतः 'देव और बिहारी' और 'बिहारी और देव' हमें दो अपूर्व उपहार मिले। अब आशा है, हमें दिनोंदिन हिन्दी साहित्यके भाण्डारको भरनेके लिये एकसे एक बढ़कर रत्न मिलेंगे।" हमें पण्डित हजारी-प्रसाद द्विवेदी, श्री जैनेन्द्र, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पण्डित गुलाब राय एम० ए०, श्री लक्ष्मीनारायणजी 'सुधांशु' एम० एए०, पण्डित जनार्दन झा 'द्विज' आदि समालोचकोंसे बड़ी आशाएं हैं।



हमारी भोजनकी समस्या

प्रो० महेशचन्द्र, प्रयाग विश्वविद्यालय

मानव जातिकी आवश्यकताओंमें भोजनका स्थान महत्वपूर्ण है। ऋषिमुनि भले ही इसे न माने क्योंकि वे समाधि लगा कर वर्षों निराहार (?) रह सकते हैं। परन्तु मनुष्य सदैव स्वादपूर्ण तथा पौष्टिक भोजनकी खोजमें रहा है। आधुनिक कालमें यह खोज तीव्र हो गयी है इसका एक कारण यह है कि युद्ध क्षेत्रमें लड़ने तथा लामपर जानेके लिये ट्रेनिङ्ग पानेवाले सैनिकोंको भरपेट पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये। दूसरा और अधिक महत्व-शाली कारण यह है कि मानवताके नाते यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि प्रत्येक व्यक्तिकी आवश्यकताएं पूरी की जाय। शायद महती शक्तियां यह समझने लगी हैं कि जिस राष्ट्रकी जनताको स्वस्थ्य जीवन हेतु पर्याप्त भोजन मिलेगा वही राष्ट्र युद्धोत्तरकालमें अधिक समय तक जीवित रहेगा।

ऐसी दशामें भारतमें भी खाद्य समस्याकी ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। गत वर्षोंमें भारतकी भोजन सम्बन्धी स्थितिके कई मात्रिक तथा साधारण अनुमान बनाये जा चुके हैं। सर जान मीगांका कथन था कि साठ प्रतिशत भारतीयोंको एकसे अधिक बार भोजन नहीं प्राप्त होता। प्रयाग विश्वविद्यालयके श्री दयाशङ्कर दुबेके अनुसार एक तिहाई जनताको भोजन नहीं मिलता।

भोजन समस्यापर अधिक वैज्ञानिक प्रकाश भी पड़ चुका है। मनुष्यकी क्षुधाका माप कलारी कारबोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज यौगिक और विटामिनमें किया गया। डा० राधाकमल मुकर्जीके अनुसार इसको प्राप्त क्लारी-भोजनका सांतवां भाग अधिक चाहिये। न्युट्रिशन रिसर्व लेबोरेटरी (कुनूर) के श्री एक्रायडने हमारे लिये आवश्यक औसत कलारीकी मात्रा ही नहीं वरन् प्रोटीन, वसा, कार-बोहाइड्रेट, कैलशियम, फासफोरस, लोहा तथा विभिन्न विटामिनकी मात्रा भी निश्चित कर दी है। उन्होंने एक सामान्य भारतीयके भोजनमें प्राप्त इन पदार्थोंकी मात्रा का भी पता लगाया और संतुलित भोजनका एक नमूना भी बताया। (देखिये तालिका नं० १)

इसी द्वितीय महायुद्धमें अमेरिकामें चवालीस राष्ट्रोंके चुने नेताओंने भोजन मापनेके लिये एक 'अन्तर्राष्ट्रीय गज' निश्चित किया (देखिये तालिका नं० २)। आयु, कार्य तथा अन्य दशाओंको दृष्टिमें रखते हुए प्रत्येक मनुष्य, स्त्री और बच्चेके लिये आवश्यक भोजनकी निम्नतम मात्रा तय की गयी और यह आशा की गयी कि कालांतरमें खाद्य-पदार्थोंकी उत्पत्ति की इस प्रकार व्यवस्था की जाय कि प्रत्येक व्यक्तिको (चाहे वह किसी देश, जाति या रंगका हो) निम्नतम भोजनकी मात्रा प्राप्त हो जाय।

परन्तु अनुमानित वैज्ञानिक मात्राएं विवादरहित नहीं हैं। दैनिक कलारीकी मात्राको ही लीजिये। औसत भारतीयके लिये डा० एक्रायडने २६०० क्लारी आवश्यक कहा है। डा० राधाकमल मुकर्जीने रसोईघरमें होनेवाली कांट-छांटको दृष्टिमें रख कर २८०० क्लारी आवश्यक समझा हैं। कुछ अन्य विद्वान ३००० क्लारीका औसत लेते हैं और परिश्रम करनेवाले भारतीयके लिये ३०००-६००० क्लारी आवश्यक समझते हैं। इसके विपरीत भारतीय भोजनमें १६००-३००० क्लारी प्राप्त पायी गयी हैं और १६०० क्लारी भी भारतीय मजदूरकी कार्य-क्षमता बनाये रखती है। ऐसी स्थितिमें निम्नतम क्लारीकी मात्रा निश्चित करना कठिन है।

दूसरी विवादात्मक समस्या है प्रोटीन, वसा और कारबाहाइड्रेटका मानुषिक भोजनमें महत्व। आम तौरपर प्रोटीन सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है और इस बातपर जोर दिया जाता है कि प्राणी-जन्य प्रोटीन अतः दूध, दुग्धपदार्थ, अंडा, मांस आदि अधिक लिया जाय। वसा और कार्बोहाइड्रेटके सम्बन्धमें यह मत दिया जाता है कि उन्हें चाहे किसी भी वस्तुसे प्राप्त किया जाय। अतः घी और मक्खनके स्थानपर बनस्पतिका घी और तेल सस्ते बताये गये हैं। अमेरिकामें होनेवाली गवेषणाके अनुसार तो जमाये गये तेल उसी सरलता और पूर्णतासे पच जाते हैं जितनी से प्राकृतिक घी और तेल। यदि इस मतको मान लें तो भारतमें अधिक शीघ्रतासे बनस्पतिके घीका प्रचार होगा। परन्तु इस प्रकारके कृत्रिम घीमें कुछ ऐसी बुराइयां हैं जिनके कारण वे अवांछनीय बन जाते हैं। ऐसा घी कैलशियमके पाचनमें (जो हड्डी तथा सेल्सके लिये आवश्यक है) बाधा डालता है यह भी सिद्ध प्रायः है कि मक्खन व घीमें कुछ

ऐसे अम्ल होते हैं जो मनुष्यके शरीर व स्वास्थ्यकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। इन बातोंसे स्पष्ट है कि हम ऐसी गवेषणाओंके तथ्योंको अपना कर गलत रास्तेपर चले जायें। भाग्यवश मानव जाति घी और मक्खनमें इतना अन्धविश्वास रखती है कि दशा अनुकूल होते ही वह वनस्पतिके घीको स्वतः छोड़ने लगेगी। अस्तु।

इसी प्रकार कागजपर भोजनकी ऐसी सूचियां* बनायी जा सकती हैं कि उनसे हमारी मानसिक आवश्यकता पूरी हो जायेगी परन्तु व्यवहारमें वे गलत और अपूर्ण साबित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ कुछ दालोंमें प्रोटीनकी मात्रा अधिक होती है परन्तु वे ऐसी अपच होती हैं कि उन्हें अधिक मात्रामें खानेसे पाचन-व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है। इसी प्रकार कहा जाता है कि पत्तीदार साग तथा फलोंसे काफी विटामिन मिल जाते हैं परन्तु जिनके भोजनमें इनका बाहुल्य रहता है उनमें भी विटामिनकी कमी पायी गयी है।

इन बातोंको ध्यानमें रखकर कहा जा सकता है कि केवल निम्नतम भोजनकी मात्राकी तथा इसको दृष्टिमें रखकर गरीबोंके लिये सस्ते भोजनकी सूची तैयार करके हमारी भोजन समस्या नहीं हल की जा सकती। ऐसे खाद्यपदार्थोंका जो आसानीसे पचाये जा सकते हैं पता लगा कर उन्हें पैदा करना व बांटना होगा।

यह बताया गया है कि सन्तुलित भोजनके एक तिहाई भागमें साग और फल हों और पांचवें हिस्सेमें दुग्ध-पदार्थ, अण्डा, मछली, मांस आदि हों। साग और फलोंके लिये उपयुक्त योजना तथा कृषिकी वैज्ञानिक उन्नतिकी आवश्यकता है। व्यापारिक पदार्थोंकी खेतीका नियन्त्रण करना पड़ेगा। पिछले ५० वर्षोंमें अधिक पौष्टिक अन्नके स्थानपर कम पौष्टिक पदार्थोंकी उत्पत्ति बढ़ गयी और बढ़ रही है। इस प्रगतिको उलटना पड़ेगा। खाद्यपदार्थोंकी उपज-योजना, उनके भोजन-सम्बन्ध, महत्व तथा पाचन-क्षमताको दृष्टिमें रखकर ही बनानी होगी। अल्पकालमें इस योजनामें क्रयशक्ति, प्रचलित भोजन, धार्मिक प्रभाव आदिका ध्यान रखना होगा।

प्राणी-जन्य पदार्थ भी कृषि-योजनापर प्रभाव डालेंगे। ढोर, मुर्गी, मछली आदिके चारे-दानेका प्रबन्ध करना पड़ेगा। परन्तु कुछ विद्वानोंका मत है कि बिना भारतकी जनसंख्या नियन्त्रित किये प्राणीजन्य पदार्थोंकी पर्याप्त उत्पत्ति नहीं की जा सकती। यदि जनसंख्या इसी प्रकार एक प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ती रही तो हम भी चीनियोंकी भांति निरामिष भोजनपर निर्भर होते जायेंगे। चीनमें ढोर तेजीसे कम हो रहे हैं। अतः चीनियोंके भोजनमें दूध, मांस आदिका अभाव है और वहांके असन्तुलित तथा अपर्याप्त भोजनका यह एक मुख्य कारण है। यदि भारतको ऐसी स्थितिसे बचाना है तो प्रोपेगेण्डा, ब्रह्मचर्य तथा कृत्रिम उपायोंसे जनसंख्याका नियन्त्रण करना पड़ेगा।

* देखिये 'इतना तो खाइये' शीर्षक लेख, विशाल भारत, फरवरी १९४१।

— तब —

सजल लोचन तब हंसेंगे।
हृदय के असफल-मनोरथ, सफल होकर जब खिलेंगे
पुष्प से भी मृदुल मृदुतर, सुखद स्वप्नों में तिरेंगे
सजल लोचन तब हंसेंगे।

रश्मियों के स्वर थिरक कर, नृत्य सुमनों पर करेंगे
तड़ता किनरव सिहर कर, पुलकों से सज्ज होंगे
लघु लहरियां से गगन के, रजत तारागण मिलेंगे
तारकों से मेघ भी तो गगन—प्राङ्गण में सिलेंगे
सजल लोचन तब हंसेंगे।

बादलों की ओट में जब, रजनि-पति जाकर छिपेंगे
तब विरह-विह्वल हृदय दो कुञ्ज-छाया में मिलेंगे
सजल लोचन से अधर में, चित्र विरही के मिटेंगे
जब अवनि में मिलन के वरदान मनमाने मिलेंगे
सजल लोचन तब हंसेंगे।

—सुश्री प्रभा श्री खण्डे

सगाई

श्रीमती आशादेवी

जिस प्रकार वसन्तकी बहार बीत जानेपर, पतझड़के मनहूस मौसममें लहलहाते वृक्षोंकी टहनियां, जो किसी समय हरी-भरी पत्तियों, सुगन्धित फूलों और रसीले फलोंके बोझसे झुककर वायुका कोमल स्पर्श पा, नवोढ़ा नायिकाकी भांति झूमने लगती थीं, नंगी और सूनी होकर उदास दिखायी देने लगती हैं, उसी प्रकार यौवन और उन्मादका नशा उतर जानेपर मानव जीवन में भी ऐसा समय आता है कि जब रागरंग और उल्लासके स्थानपर उसमें विरक्तिकी भावना ही अधिक प्रबल हो उठती है। विरागकी उस खुमारीमें, मनुष्यको तब आमोद-प्रमोदपूर्ण कल्पनाओंका मनोहर संसार निरा थोथा और मिथ्या प्रतीत होने लगता है। हंसी-खुशी और उमंगमें वह प्रवाह नहीं रहता और उसकी गति शिथिल पड़ जाती है। रूप और लावण्यके प्रति कोई आकर्षण नहीं रह जाता और उसकी प्रवृत्तियां इस ओरसे विमुख होकर चरित्रकी निर्मलता और विचारोंकी उच्चता तक ही सीमित रह जाती हैं। दिनेश बाबूका जीवन भी वैभव और विलासितासे हटकर विराग और सादगीकी ओर खिंच चुका था। एक समय था, जब वह नारीका यौवन और सौन्दर्य देखकर तड़प उठते थे। हृदयमें कामनाओंकी आंधी उठने लगती थीं। प्यासी आंखें रूप-सुधा पान करनेपर भी तृप्त न होती थीं। दुनियामें उनके लिये यदि सुख और आनन्दका कोई केन्द्रविन्दु था तो वह था—नारीका मोहक रूप, उसकी मधुर मुस्कान और मीठी मनलुभावनी बातें। उन दिनों उनकी पलकोंपर नारीके मनलुभावने चित्र नृत्य किया करते थे। उनकी प्रत्येक स्वांसपर वासना उमड़ पड़ती थी उनका चंचल, कलुषित मन नित्य नये रूपपर आत्मसमर्पण करनेके लिये प्रस्तुत रहता था। यूनिवर्सिटीमें दाखिल होनेके पश्चात् उनके स्वतन्त्र उच्छृङ्खल जीवनका वर्षोंतक यही क्रम रहा। जैसे प्रेम और वासनाकी एक बाढ़ आयी थी और वह उसमें बहे चले जा रहे थे। इस बीचमें संयम, सदाचार और धर्मकी सत्ता मिटाकर उन्होंने जिस प्रकारके अनैतिक और अवांछनीय कार्य किये उससे उनकी बदनामी फैल गयी। उनके तरुण और अपरिपक्व जीवनमें उन्मादका जो तूफान उठा उसमें वह उड़ गये खुल खेले!

लेकिन इसके बाद उनकी तन्द्रा भङ्ग हुई। मनका अन्धकार, ज्ञान और बुद्धि के आलोक से दूर हो गया। उस घटनाका अमिट खेद अन्तरकी पीड़ा बनकर, आज भी उनके मानसमें मौजूद था। इस दर्दने दिनेश बाबूकी आंखें खोल दी और उन्हें सदैवके लिये सावधान कर दिया। उन्होंने समझा कि नारी एक ओर जहां आकर्षण और भोगविलासकी कोमल मूर्ति है, वहां दूसरी ओर वह पैनी छुरी भी है जो मनुष्यके हृदयकी गहराइयों में चुभ कर उसको लहू-लुहान भी कर देती है। मनोरमा देवीने उनके जीवनमें पैनी छुरीके समान ही काम किया था। आज भी एकांतमें जब वह स्मरण करते थे, तो उनका रोम-रोम आत्मग्लानि, अपमान और घृणासे सिहर उठता था। मनोरमा देवी उनकी अर्धाङ्गिनी बनकर उनके सुखद भविष्यका निर्माण करनेवाली थीं। सगाई होनेके एक दिन पूर्व, शीतकालकी सर्द और कुहरे भरी रातमें उन्होंने मनोरमाके साथ असभ्य बर्ताव किया। मनोरमा कालेजके सहभोजसे निबट कर घर लौट रही थी। दिनेश बाबूने सोचा कि नये नगरमें भी नया स्टंट होना चाहिये। आदतसे लाचार थे। मनोरमाने शोर मचाया। दिनेश बाबूने भागनेकी कोशिश की पर लोगोंने उन्हें घेर लिया और उनकी काफी लानत-मलामत की। दूसरे सगाईके शुभ उत्सवपर जब वे दोनों

एक दूसरेसे मिले तो :मनोरमाने उन्हें ठुकरा दिया। ऐसे दुश्चरित्र, मुंहफट आवारा युवकसे विवाह करनेके लिये वह कैसे तैयार हो सकती थी । दिनेश बाबूके लिये यह चोट असह्य थी। तिलकका टीका लगनेके बजाय कलंकका टीका लगा।

उनके पिता रायसाहब सुरेशमोहनके कानोंमें, जब इस अप्रिय घटनाकी खबर पहुंची, तो वह क्षुब्ध हो गये। लाड़ले एकलौते बेटेकी आदतोंसे वह वाकिफ थे और सोचते थे कि रूपगुण सम्पन्न बहू मिल जानेपर वह सुमार्गपर आ लगेगा, किन्तु उसने वहां भी बदनामीका ढिंढोरा पीटा। बेटेसे बिगड़कर बोले—"क्यों बे, तूने मुझे मुंह दिखाने लायक भी न रखा। रास्ता चलते औरतोंसे छेड़-खानी करता है। अच्छा होता, तू चुल्लूभर पानीमें डूब मरता।"

दिनेश बाबूको लगा, जैसे पिताजी जलेपर नमक छिड़क रहे हैं। अपराधीकी भांति गर्दन झुकाये वह चुपचाप खड़ा रहा।

राय साहब फुफकार कर बोले—"बेशर्म चल दूर हो मेरी आंखोंसे। ऐसे नालायकका मैं मुंह भी देखना पसन्द नहीं करता।" दिनेश बाबू फिर भी चुप थे। सचमुच उनका अपराध अक्षम्य था।

(२)

उपर्युक्त घटनाका शोक दिनेश बाबूके हृदयपर महीनों तक छाया रहा। फल यह हुआ कि उनका रंग-ढंग बदलने लगा। एम० ए० एल-एल० बी० की डिग्री हासिल करनेके पश्चात् वह पी० सी० यस० की परीक्षामें बैठे, लेकिन उनके पर्चे बिगड़ गये और वह अनुत्तीर्ण हो गये। इसके बाद उन्होंने सेक्रेट्रियेटमें नौकरीके लिये कोशिश की, किंतु वहां भी उन्हें निराश होना पड़ा। चाहा कि एक्साइज महकमेंमें ही स्थान मिल जाय पर सिफारिश बिना वहां भी सफलता न मिली। जैसे उनके जीवनमें एक बारगी ही दुर्भाग्य और असफलताके बादल उमड़ पड़े। राय साहब कोशिश और दौड़-धूप करते, तो उनको कहीं न कहीं अच्छा स्थान अवश्य मिल जाता पर उन्होंने उनसे जैसे नाता ही तोड़ लिया था। बेटेके भविष्यकी अब उन्हें चिंता न थी। दिनेशकी मा यदि उनसे कुछ कहतीं, तो वे मुंह बनाकर गम्भीरताके साथ उत्तर देते—'मैंने पढ़ा-लिखाकर अपना फर्ज अदा कर दिया। अब वह और उसका काम जाने। मुझसे कोई बात मत कहो। मैं उसके लिये कुछ भी करनेको तैयार नहीं।" बात यह थी कि दिनेश बाबूकी हरकतोंसे वह परेशान हो चुके थे और अब उससे दूर ही रहना चाहते थे। उसने उनकी उम्मीदोंपर पानी फेर दिया था। क्या-क्या हौसले थे उनके मनमें! सोचते थे धूमधामसे व्याह करेंगे। बरातियोंके लिये स्पेशल ट्रेन ले जायंगे। नाच-गानेकी महफिलें जमेंगी। दहेजमें काफी धन-सम्पत्ति मिलेगी और मनोरमा जैसी सुशील सुशिक्षित बहू घर आयेगी, किन्तु दिनेश बाबूने सारा बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया।

जो हो, मनुष्यकी आंख ठोकर खानेके बाद ही खुलती है। बिना चोट और चपत खाये वह सतर्क और सावधान होकर चलना सीखता ही नहीं। दिनेश बाबू भी अपनी गलतियोंसे जीवनमें सुधार मार्गकी ओर अग्रसर हुए और अपने पैरोंपर खड़े होनेकी आवश्यकताका अनुभव किया। इसी प्रेरणाके कारण उनको बहुत दिनोंतक अभिभावकोंके आश्रित रहकर बेकार नहीं बैठना पड़ा। आई० जी० यस० में कुछ जगहें खाली थीं। दिनेश बाबूने विज्ञापन पढ़कर आवेदन-पत्र भेज दिया। योग्यता और व्यक्तित्वकी उनमें कमी न थी। उन्हें पद मिल गया। इस प्रकार वह अपने जीवन संग्राममें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कभी कल्पना न की थी, कि उनको अपने अभिभावकोंसे दूर नये शहरमें किराये के मकानमें रहना पड़ेगा। किन्तु परिस्थितियां मनुष्यसे सब कुछ करा लेती हैं। दिनेश बाबूकी आरामतलबीमें जिन्दगी बीती थी। बंगलेमें रहते थे। मोटरपर सैर करते थे और शौक-मौजमें मनमाना खर्च करते थे। सिरपर कोई जिम्मेदारी न थी। इसलिये आरम्भमें उन्हें बड़ी अड़चनें मालूम पड़ीं। ठीक समयपर दफ्तरकी हाजिरी देना। अफसरोंके आदेशका पालन करना। फाइलों और 'आफिस-नोटों'में सिर खपाना आदि ऐसी बातें थीं—जिससे वे परेशान हो उठते। लेकिन बादमें धीरे-धीरे उनकी मुश्किलें आसान होने लगीं।

तब दिनेश बाबूने समझा कि जिन्दगी फूलोंकी सेज नहीं कांटोंका ताज है। ताज वही धारण करता है, जो संकटोंसे घबड़ाता नहीं, धैर्य को खोता नहीं और साहसको हाथसे जाने नहीं देता। जो पग-पगपर आनेवाली कठिनाइयों और आपदाओंका मुकाबिला करता हुआ अपने कर्तव्य और धर्मपर दृढ़ रहता है और निरन्तर आगे बढ़ता ही रहता है। वह महीनेमें कई सौ रुपये उपार्जन करते, समझ-बूझकर खर्च करते और आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते थे।

इससे वह सन्तुष्ट और सुखी दोनों ही थे। सन्तुष्ट इसलिये थे, कि वह स्वावलम्बी थे। इच्छाएं और मनोकामनाएं उनके नियन्त्रणमें थीं। घरकी देख-रेख और सफाई आदिके लिये उन्होंने नौकर रख छोड़ा था और भोजन बनानेके लिये महाराज! सुबह मुंह अन्धेरे वह वायुसेवनके लिये निकल जाते। तत्पश्चात् दैनिक कर्मसे निवृत हो खा-पीकर आठ बजे दफ्तरके लिये चल देते और शामको ६ बजेसे पहले वापस न आते। रातको भोजनोपरान्त, समाचार पढ़ते, रेडियो सुनते और सो जाते। यही उनकी दिनचर्या थी। स्वास्थ्य, साहित्य और विज्ञानसे रुचि थी और इस विषयकी पुस्तकोंका उनके पास अच्छा संग्रह हो गया था। रविवारके दिन वह पत्रोंका उत्तर लिखते, जरूरतकी चीजें खरीदते, दोस्तोंसे मिलते अथवा निकटवर्ती लेबर सेंटरमें जाकर वहांके कार्यक्रमोंमें भागलेते।

नगरके जिस मुहल्लेमें वह रहते थे, वहां अधिकतर शिक्षित समुदायके नौकरी पेशा लोग ही रहते थे। दिनेश बाबू उन लोगोंके बीच कुछ ही समयमें उनके आदर और सम्मानके पात्र बन गये। उनकी आदर्शवादिता, विचारोंकी उच्चता और बर्तावकी स्वच्छता देखकर लोग उनकी प्रशंसा करते और उनसे मिलने और वार्तालाप करनेके लिये उत्सुक रहते थे। मुहल्ले भरमें 'मि० डी० एम० मेहरा' की चर्चा थी। लोग कहते—'कैसे नेक,सरल और निरभिमानी नौजवान हैं कि किसीके झगड़े-बखेड़ेमें नहीं पड़ते। अपनी राह आना और अपनी राह जाना, गोया दुनियाकी सभी अच्छाइयां उसीमें केन्द्रित हो गई हैं। कोमल और सहृदय तो इतना है कि हरेककी सहायता करनेको प्रस्तुत रहता है। जैसे किसीको निराश करना जानता ही नहीं।' इस प्रकार वह अपने सद्गुणों और संयमकी बदौलत अब पहले वाले दिनेश बाबू न थे। एक महान अन्तर उनमें हो गया था और इसके लिये उन्हें गर्व था।

अवकाशके समय, कमरा खोलकर आराम कुर्सीपर लेटे हुए जब वह रेडियो संगीतका आनन्द लेने लगते, तो पड़ोसके अनेक बच्चे वहां इकट्ठे हो जाते। अपने एकाकी जीवनमें उन्हें बच्चोंसे स्नेह हो गया था। वह उनसे बात करते और उनके हास्य विनोदमें निर्द्वन्द भावसे भाग लेते। लज्जा उन सबोंमें सबसे सुन्दर भोली लड़की थी। फुदक फुदक कर चलती, तुतलाकर बोलती और हंसती तो उसके बाल्य सुलभ मुखपर फूल झड़ते। दिनेश बाबू उसको सबसे अधिक प्यार करते और उनका यह प्यार कुछ ही समयमें ममत्व और अपनत्वमें परिणत हो गया। इस अनुरागके कारण लज्जाके पिता बाबू जगदीश बिहारीलालसे उनकी घनिष्टता बढ़ी। जगदीश बाबू भी स्वभावके बड़े भावुक, रसिक और मिलनसार थे। वे वायलीन बजानेके शौकीन थे। उसे बजाकर वह अपने मित्र मि० मेहराको सिनेमाके गीत सुनाते और उनका मनोरंजन करते और उस समय दिनेश बाबू आत्म-विह्वल हो पुष्पकी भांति खिल उठते।

(३)

कई वर्ष बीत गये। दिनेश बाबूकी अब अपने यूनीवर्सिटी जीवनकी गत अनैतिक, बातें बहुत कम .याद आतीं। जैसे उनके काले कारनामोंका अध्याय निर्मल चांदनीकी भांति उज्वल हो गया था। इस बीचमें एकाध बार जब उन्हें घर जानेका अवसर मिला और मासे भेंट हुई तो माने फिर विवाहकी भूमिका बांधना शुरू की। आंखोंमें आंसू भरकर बोली—'बेटा, क्या मेरे जीते-जी मेरी अभिलाषा पूरी न होगी। बहू देखनेकी बड़ी साध थी। हठ छोड़ दे। मैं तेरे पिताको समझा-बुझाकर ठीक कर लूंगी।' लेकिन दिनेश बाबूके संस्कार काफी दृढ़ हो चुके थे और वह सहजहीमें पसीजने वाले न थे। विवाह और स्त्रीसे उन्हें घृणा हो गयी थी।

एक दिन जगदीश बाबूसे भी उनकी इसी विषयपर बहस छिड़ गयी। जगदीश बाबू हंसकर बोले—'मि० मेहरा, आप भी क्या अजीब आदमी हैं। शादी करके सुखी जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते?'

दिनेश बाबूने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'इस तजबीजके लिये, आपको धन्यवाद देते हुए मैं कहूंगा, कि जो आनन्द अकेलेमें है वह बीबी-बच्चोंका. खटराग बांध लेनेमें कहां? नित्य नयी फिक्रें, गृहस्थीकी परेशानियां, बीबीके नखरे, बच्चोंके पालन-पोषणका उत्तरदायित्व—यह झगड़ा कौन मोल ले?'

जगदीश बाबूने तर्क उपस्थित किया—'वाह साहब, बीबी बच्चोंको आप खटराग बताते हैं। वह हमारे सुख-दुःखके साथी और जीवन-यात्राको सरल बनाते हैं और जो लोग बीबीके नखरोंसे घबड़ाते हैं वही वासनाकी गन्दी गलियोंको सूंघते फिरते हैं। रही फिक्रों और परेशानियोंकी बात सो हरेकके साथ जीवन-भर लगी ही रहती हैं।'

दिनेश बाबू मुंह बनाकर बोले—'लेकिन क्षमा कीजिए मैं अपने लिये विवाहकी जरूरत नहीं समझता।'

जगदीश बाबूने देखा कि मित्रपर दूसरा ही रंग चढ़ा

हुआ था। कहने लगे—'तब आप प्रकृति और आत्माके प्रति विद्रोह करते हैं और देश और समाजके प्रति अपने उत्तरदायित्वका पालन नहीं करते। मानव हृदयमें पुनीत प्रेमकी जो धारा प्रवाहित होती रहती है वह नारी जीवनकी सरितासे मिलकर नये विश्वका निर्माण करना चाहती है, किन्तु आप उसके वेगको रोके हुए हैं। यह आप जैसे युवकोंका नहीं तपस्वियों और योगियोंका काम है। मुझे सन्देह है कि आप इस साधनामें सफल हो सकेंगे।'

दिनेश बाबूने उत्तर दिया—"आपका तात्पर्य है कि मैं अपना प्रेम पत्नी तक ही सीमित कर दूं। मेरे प्रेमका दृष्टिकोण इससे कहीं अधिक विशाल और ऊंचा है।'

जगदीश बाबू सिगरट जलाकर धुएंके छर्रे फेंकते हुए बोले—'आपने भी क्या कमालकी बात कही। भिन्न भिन्न लोगोंके लिये प्रेम भी भिन्न भिन्न रूप और भावोंमें प्रकट किया जाता है। कहीं श्रद्धा और सम्मानकी भावना अधिक रहती है, कहीं सहानुभूति और आत्मीयताका विचार रखना पड़ता है। लेकिन विवाहित जीवनमें पत्नीके प्रति जो प्रेम प्रदर्शित किया जाता है उसमें सर्वोच्च सुखकी भावना अन्तर्निहित रहती है। यह चीज तर्ककी अपेक्षाअनुभव करनेपरही समझी जा सकती है।'

दिनेश बाबू फिर भी अपनी बातपर अड़े रहे। बोले—मेरे विचारसे नारीके कारण प्रेमकी अपेक्षा वासनाकी भावनाएं ही अधिक सजग और बलवती होती हैं। मैं पूछता हूँ कितने मनुष्य ऐसे हैं जिनका प्रेम पत्नी तकही सीमित रहता है और वे कुत्सित भावनासे अन्य स्त्रियोंकी ओर आंख नहीं उठाते। इस छिपे पापकी अपेक्षा इस झगड़ेसे दूर रहना कहीं अच्छा है।'

'बिल्कुल गलत।' जगदीश बाबू किंचित उत्तेजित होकर बोले—'नारी-पुरुषके जीवनका एक आवश्यक अंग है। वह मनुष्यको पुरुषार्थी और सहृदय बनाती है। प्रलोभनसे दूर रखती है और उसमें उत्साह और कर्तव्यका बीज बोती है। नारी विश्वकी निर्माता है और वह उसमें सुख-शांति एवं प्रेमका निर्माण करती है।'

दिनेश बाबू मुस्कुराकर बोले—'मेरा अपना अनुभव है कि विवाहसे विरक्ति रखने वाले लोग स्त्री सम्मोहनमें कभी नहीं फंसते। जर्मनीके सर्वेसर्वा हिटलर यदि अविवाहित न होते तो शायद अपने पराक्रमका इतना प्रदर्शन कभी भी न कर पाते।'

जगदीश बाबूने उत्तर दिया—'लेकिन मि० मेहरा, शायद आपको पता नहीं, कि वह भी किसी प्रेमिका द्वारा अपने हृदयकी प्यास बुझाते हैं।'

दिनेश बाबू विनम्र होकर बोले—'आखिर आपकी मंशा क्या है जो आप विवाहकी आवश्यकतापर इतना जोर दे रहे हैं।'

'मेरी मंशा स्पष्ट है कि आप अपने दिमागसे अविवाहित जीवनके स्वप्नको निकाल कर सुबुद्धि और शांतिसे काम लें और उजड़े जीवनको हरा बनानेके लिये विवाह करलें।'

"बस इतनीसी बात।" यह कहते हुए दिनेश बाबू खिलखिला कर हंस पड़े। जैसे हंसीहीमें वह इस बातको टाल देना चाहते थे।

रात काफी भीग चुकी थी। इसलिये जगदीश बाबू छड़ी उठा कर चलते-चलते गम्भीरतापूर्वक बोले—"जी हां, मैं देखूंगा कि आप इस चक्करसे बच कर नहीं जा सकते।"

(४)

दूसरे दिन जगदीश बाबूने पत्नीसे मित्रकी उपर्युक्त बातोंका जिक्र करते हुए कहा—"आसानीसे दाल गलते नहीं दिखायी देती। मेहरा साहब विवाहके घोर विरोधी हैं। औरतोंकी उन्होंने इतनी बुराइयां की कि मैं सुन कर दङ्ग रह गया।"

पत्नीने आश्चर्य चकित होकर उत्तर दिया—"अच्छा ये बात है। आप उनकी बड़ी तारीफ किया करते थे। आजकलके अधिक अङ्गरेजी पढ़े-लिखे लोग ऐसी ही ऊल जलूल बातें निकाला करते हैं।"

जगदीश बाबू—"तो फिर उनको रास्तेपर कैसे लाया जाय?"

पत्नी—"मुझे तो निराश होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता। कोशिशमें लगे रहिये। उनके जैसा सुन्दर स्वस्थ्य और सुयोग्य-पात्र मुश्किलसे मिलेगा।"

जगदीश बाबू—"यही तो मैं भी सोचता हू। लेकिन...

पतिको निराश होते देख पत्नीने कहा—"आपकी मैं सहायता करूंगी। मुझे विश्वास है, मैं मेहरा बाबूको विवाहके लिये राजी कर लूंगी।"

"तुम कैसे राजी कर लोगी।"

"किसी न किसी ढङ्गसे राजी ही कर लूंगी।"

'सो कैसे?"

"किसी मौकेपर उन्हें निमन्त्रण देकर, घर बुलाइये और मेरा उनसे परिचय करा दीजिये।"

"इससे मतलब ? जबर्दस्ती परिचय कैसे करा दूं ।"

"यह भी कोई कठिन बात है। अवस्थामें वह आपसे छोटे हैं ही ।"

"हां, हां, तब ?"

"तब मैं उनसे देवर भौजाईका रिश्ता जोड़ कर स्वयं बात कर लूंगी ।"

"यह दिल्लगी खूब रहेगी ।"

"वाह इसमें दिल्लगीकी कौन-सी बात। जहां स्नेह और घनिष्टता होती है वहां स्त्रियोंसे भी ऐसे रिश्ते कायम हो जाते हैं। मान लीजिये अनुराधासे उनका विवाह तय हो गया, तो उस समय क्या उनसे मिलना जुलना और बातचीत करना न होगा। आखिर हमें तो अपना काम निकालना है ।"

"अच्छी बात है। लेकिन निमन्त्रण कैसे दिया जाय ?"

"अगले साल लज्जाकी सालगिरह है। तभी उन्हें बुला लीजिये। एक पंथ दो काज होंगे ।"

"बहुत ठीक। लज्जाको वह प्यार भी करते हैं और निमन्त्रण स्वीकार करनेमें उन्हें प्रसन्नता भी होगी ।"

"देख लीजिये। आप तो जरा-जरा-सी बातपर उलझ पड़ते हैं। तरकीबसे काम लेनेपर, सभी कठिनाइयां आसान हो जाती हैं ।"

"देखिये जब यह तरकीब भी कारगर हो जाये ।"

"आशा तो ऐसी ही है। आगे भगवानकी इच्छा ।"

इसी समय जगदीश बाबूकी छोटी बहन अनुराधा थाली परोस कर ले आयी—अनिंद्य सुन्दरी और षोड़शी। घड़ीमें नौ बजे थे। जगदीश बाबू हाथ मुंह धोकर शीघ्रतापूर्वक भोजन करने लगे।

(९)

बाबू जगदीश बिहारी लालकी पत्नी सुशिक्षित, समझदार और सुलझे हुए विचारोंकी महिला थीं। पर्देकी कायल न थी। इसलिये उन्हें दिनेश बाबूसे मिलने और वार्तालाप करनेमें कोई झिझक न थी।

एक दिन लज्जाने जब तुतला कर दिनेश बाबूसे कहा—"ताताजी, तल हमाली बलछगांठ है। अम्माने आप तो न्योता दिया है। तयाल लहियेगा।" तो दिनेश बाबू प्रसन्नतासे खिल उठे। गोदमें उठा कर उसके घुंघराले बालोंपर हाथ फेरते हुए बोले—"बहुत अच्छा बेटीजी। अपनी अम्मा से पूछना, कि वह हमें क्या खिलायेंगी ?"

तब लज्जाने अपनी बाल्य सुलभ मुसकुराहटमें उत्तर दिया—"बली अत्ती-अत्ती मिताइयां खिलायेंगी--लड्डू, इमलती, बालूताही औल न दाने त्या-त्या ?"

दूसरे दिन शामको दिनेश बाबू जगदीश बिहारीलालके यहां पहुंचे। साथमें वह लज्जाके लिये फल, मेवा, मिठाइयां और खिलौने लाये थे। खिलौनोंको देख कर प्रसन्नतासे तालियां पीटते हुए वह बोली---"ओहो हो, हमाले ताताजी कितने अत्थे हैं। कैसी बलिया लेलगाड़ी लाये हैं ।"

तत्पश्चात दिनेश बाबू भोजन करने बैठे। साथमें जगदीश बाबू भी थे। पत्नी कड़ाहीपर स्वयं भोजन बना रही थीं। दिनेश बाबूने उस वातावरणमें आत्मीयताका अनुभव करते हुए कहा---इतना स्वादिष्ट भोजन एक अर्सेसे नहीं मिला। मैं तो अपने महाराजसे आजिज आ गया हूं। उसे भोजन बनानेकी कोई तमीज ही नहीं। किसी तरह उलटा-सीधा पका कर रख देता है ।"

यह सुन कर जगदीश बाबूको भूमिका बांधनेका अवसर मिला। भोजनोपरान्त सिगरेट जला कर कहा---बात यह है कि यह काम मर्दोंका नहीं औरतोंका है और इसी वजहसे मैंने उस दिन विवाहके लिये इतना जोर दिया था। अकेले होनेमें यही सब दिक्कतें हैं। खाने-पीनेको ठीक नहीं मिलता और दुनिया भरकी तमाम जिम्मेदारियां पूरी करनी पड़ती हैं ।"

दिनेश बाबूने उत्तर दिया---"हां, पाक विद्याके लिये स्त्रियां जरूर उपयुक्त हैं लेकिन विवाह तो बिलकुल व्यर्थ की चीज है ।"

"आप भोजन और घरके सुप्रबन्धको साधारण समझते हैं। इसका हमारे रहन-सहन और दिनचर्यापर बड़ा प्रभाव पड़ता है। किरायेके टट्टुओंसे गृहस्थी नहीं चल सकती ।"

इस बीचमें जगदीश बाबूकी पत्नी भी कार्यसे निवृत हो चुकी थी। उन्हें दिनेश बाबूकी बातोंपर हंसी आ रही थी। इसलिये, उन्होंने झटपट केश संवारे, साड़ी बदली, आइनेमें रूपविन्यासको देखा और निःसंकोच भावसे उस मित्र-मण्डलीके सामने उपस्थित हुईं। मुसकुरा कर दिनेश बाबूको नमस्ते करते हुए कहा---"मेहरा बाबू यदि आप मेरी धृष्टता क्षमा करें तो मैं आपके सामने अपना दृष्टिकोण रखते हुए आपसे पूंछू कि आपको विवाह और स्त्रीसे इस कदर चिढ़ क्यों है ?"

अपरिचित महिलाको अचानक हस्तक्षेप करते देख कर दिनेश बाबू द्विविधामें पड़ गये। कौतूहलवश मित्रके कानमें फुसफुसा कर पूछा---"यह देवीजी कौन हैं ?"

जगदीश बाबू बेतकल्लुफीसे पत्नीकी ओर देख कर बोले--"देवीजी आपकी भावज और ईजानिबकी श्रीमतीजी हैं। आपसे बात करना चाहती थीं। विवाह और स्त्रीकी अब आप जितनी बुराई करना चाहें कर लें।"

इसपर दिनेश बाबू कुछ देर उलझनके साथ सिर झुकाये मौन बैठे रहे। तत्पश्चात् संकोच भावसे बोले---"हमारे मित्र भी अजीब मजाकियां हैं। आपको व्यर्थ ही परेशान किया।"

लेकिन श्रीमतीजी तर्कका अस्त्र सम्भाल कर आयी थीं दृढ़तापूर्वक बोलीं---"मेहरा बाबू, यों रंगामेजीकी बातोंसे काम न चलेगा। मुझे मालूम है कि आप नारी जातिके प्रति अच्छे विचार नहीं रखते और इसीलिये शायद आप विवाह विरोधी भी हैं। लेकिन आपको जानना चाहिये कि विवाह धर्म है, भौतिक आवश्यकता है और मानव-जीवनको सरल बनानेका सबसे उत्तम उपाय है। यह समाज का पवन-पावन कर्तव्य है। संक्षेपमें स्त्री जीवनरथका पुरुष के अतिरिक्त दूसरा पहिया है, वह अर्धाङ्गिनी है। पुरुष तो आधा ही है। उसे पूर्णता नारी ही देती है।"

दिनेश बाबू इन बातोंको सुनकर अवाक् हो गये। कुछ समझमें न आया कि क्या कहकर अपनी स्थिति स्पष्ट करें। सहसा विद्युत आलोकमें उन नवपरिचितोंने एक दूसरेको देखा। उनकी आंखें चार हुई और तत्काल ही उनके चहरों पर आश्चर्य और कौतूहलके भाव उदय हो आये। जैसे कोई भूली हुई पुरानी बात मस्तिष्कमें जाग्रत हो उठी। कितना परिवर्तन था। पहिचानना ही मुश्किल था। क्षीण काया, पिचके गाल, और धंसी हुई आंखोंमें तेज चमक उठा था। यह देखकर श्रीमतीजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। हंसकर बोलीं—"अच्छा, दिनेश बाबू हैं। इतने दिनों बाद मिले। आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गयी। आपने अपने परिश्रम और लगनसे जो महानता और उच्चता प्राप्त की है, वह सचमुच प्रशंसनीय है। अब आप क्या मेरे इस छोटेसे अनुरोधका स्वीकार करनेकी कृपा न करेंगे?"

इधर दिनेश बाबू भी आश्चर्य सागरमें गोते लगा रहे थे उन्होंने सोचा—यह मनोरमा नहीं, तो क्या उसकी प्रतिमूर्ति है। पर आंखोंपर विश्वास करना ही पड़ा। उनके बिगड़े अव्यवस्थित और पतनगामी जीवनमें उसीने सुधार का बीज डाला था! बहन होती, तो शायद आज भी वह नरकके कीड़े बने होते। अस्तु अपनी दुर्बलता छिपाते हुए वह बोले—"देवी जी, विवाह और नारीकी ओरसे मुझे इतना विरक्त बनानेका कारण तो आप ही हैं।"

मनोरमा संयत होकर बोली—"गलतियां मनुष्य ही करता है। लेकिन जो उन गलतियोंसे शिक्षा ग्रहण करके अपना सुधार कर लेता है, वही आदर्शवादी कहलाता है। इस दृष्टिकोणसे साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा आप बहुत ऊपर उठ गये हैं। ईश्वर की भी यही इच्छा है कि अब आप विवाह कर लें और मुझे इस सुन्दर संयोग द्वारा अपनी सेवा-सत्कार करनेका अवसर दें।

दिनेश बाबू दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोले-"आपकी बात माननेमें मुझे कोई आपत्ति न थी, किन्तु जीवनमें एक अमूल्य चीज जो मैंने खो दी है, उसकी पूर्ति अभी तक नहीं कर सका और उसको प्राप्त किये बिना मुझे दुःख है कि मैं कुछ नहीं कर सकता।"

"वह क्या?" मनोरमाने जिज्ञासु भावसे पूछा।

"उस घटनाके कारण रायसाहबके ऊपर गहरा आघात पड़ा। वह मेरी ओरसे निराश हो गये। नाराज होकर मुझसे बोलना बन्द कर दिया। उस पितृ प्रेमके अभावमें मुझे जो क्लेश और मानसिक व्यथा है वह मैं ही जानता हूं। काश, आज वह मुझसे प्रसन्न होते तो मैं कितना सुखी होता।" यह कहते हुए दिनेश बाबूकी मुख-मुद्रा शोकांकित भावोंसे म्लान हो उठी।

"और यदि मैं उन्हें समझा बुझाकर राजी कर लूं?" मनोरमाने आशान्वित होकर कहा।

"तो मैं इसको अपना परम सौभाग्य समझूंगा और आपका चिरकृतज्ञ रहूंगा।"

"ईश्वरने चाहा, तो राय साहबकी नाराजी अवश्य दूर हो जायगी। मैं आज ही पत्र लिखकर उनसे प्रार्थना करूंगी यह कहते हुए मनोरमाने अनुराधाको पान लानेका आदेश दिया।"

जगदीश बाबू पत्नी और मित्रके सम्भाषण पर बैठे-बैठे जम्हुआइयां ले रहे थे। बोले—"बातचीतका सिलसिला कुछ समझमें न आया। आप लोगोंका क्या कुछ पुराना परिचय भी है?"

मनोरमाने दिनेश बाबूकी ओर देखकर कहा—"जी हां, गलतफहमियां दूर की जा रही थीं।"

इसी समय पान-इलायचीकी तश्तरी लेकर अनुराधा उपस्थित हुई। गोल-सुडौल मुंह, छरहरा शरीर, उज्ज्वल रङ्ग और रसीली आंखें। यौवनका मादक समीरण अङ्ग-

प्रयत्नमें डोल रहा था। मनोरमाने उसकी ओर देखकर कहा—"मेरा बाबूको पान क्यों नहीं देती? शर्मानेकी कौन-सी बात है।"

अनुराधाके हाथ कांप रहे थे। पान देकर वह चली गयी। मनोरमाने उसकी ओर संकेत करते हुए कहा—"दिनेश बाबू, इस लड़कीका उद्धार करना न करना अब आपके वशकी बात है। हम लोगोंने उसे आप ही के प्रेम-सूत्रमें आबद्ध करनेका संकल्प किया है।" जगदीश बाबू पत्नीकी इस युक्तिपूर्ण कार्यवाही पर मन-ही-मन मुग्ध हो रहे थे और दिनेश बाबू सोच रहे थे—जिस मनोरमाकी उपेक्षाके कारण उन्होंने आजीवन अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञा की थी वही अनुराधाकी सगाईका प्रस्ताव लेकर उनके विरागपूर्ण जीवनमें पुनः मधुकी वर्षा करने आ रही थी। संयोग कितना प्रबल है!

पुनर्निर्माण-योजनाके सिद्धान्तोंकी विवेचना

श्री रामपूजन तिवारी, एम० ए०, शान्ति-निकेतन

युद्ध समाप्त हो जानेके साथ ही सभी राष्ट्रोंके सामने पुनर्निर्माण योजनाका प्रश्न अत्यधिक महत्वका हो गया है। युद्ध-रत प्रायः सभी राष्ट्र, युद्धके दौरानमें ही इन योजनाओंको तैयार करनेमें लगे हुए थे। युद्धमें विजय पानेके प्रयत्नोंकी ओर ही उन राष्ट्रोंकी सारी शक्तियां लगी हुई थीं, फिर भी वहांकी सरकारों और देशके नेताओंका ध्यान युद्धके बाद की समस्याओंकी ओर भी लगा हुआ था; जिसके फलस्वरूप अनेक देशोंमें सरकारी या गैर सरकारी तौरपर अनेक योजनाओंका प्रादुर्भाव हुआ। अभीतक अधिकांश देशोंके उद्योग-धन्धे लड़ाईके सामान तयार करनेमें ही लगे हुए थे। शान्तिकालीन बहुतसे उद्योग-धन्धे भी युद्धमें काम आने वाले सामानोंका तैयार करनेवाले उद्योगधन्धोंमें परिवर्तित कर दिये गये हैं। समाजका बहुत बड़ा जन-समुदाय अभी तक युद्धके कामोंमें लगा हुआ था। संसारकी आर्थिक नीति ही युद्ध पर आधारित थी। आज जब युद्ध समाप्त हो गया है। तब बहुतसे सैनिक फौजसे हटाये जायेंगे और लड़ाईके सामान तैयार करनेवाले उद्योगधन्धोंके बन्द होनेसे मजदूरोंकी एक बड़ी संख्या बेकार हो जायगी। ऐसी हालतमें स्वभावतः कई एक प्रकारकी समस्याएं प्रत्येक राष्ट्रके सामने आ उपस्थित होती है। बेकारीका प्रश्न सबसे कठिन और जटिल है। इसके समाधानका प्रश्न प्रायः सभी राष्ट्रोंके सामने समुपस्थित है। इसके साथ ही युद्धकालीन उद्योग-धन्धोंके बन्द होनेके बाद शांतिकालीन उद्योग-धन्धोंका पुनर्गठन भी कम जटिल नहीं है। गत १९ वर्षोंके अन्दर दो महायुद्धोंका होना भी दुनियाको इस बातकी ओर संकेत कर रहा है कि कौन-सा उपाय किया जाय कि भविष्यमें ऐसे भयङ्कर नरसंहारसे संसार परित्राण पावे और सुदृढ़ शान्तिकी स्थापना हो। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके सम्बन्धमें भी एक नये दृष्टिकोणकी आवश्यकता महसूस की जाती है।

हमारे यहां आजसे कुछ ही दिनों पहले तक अधिकांश लोग इन योजनाओंके प्रति उदासीनसे रहे हैं। युद्धके उस तूफानीकालमें युद्धकी समाप्ति, शान्तिकी स्थापना दूरकी चीजें मालूम होती थीं। उस समय युद्धके खतम होनेकी कल्पना एक दूरकी वस्तु थी। इतनी जल्दी युद्धकी समाप्तिकी कल्पना कोई नहीं कर सकता था। परन्तु आज परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि इन समस्याओंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें और उनका हल निकालनेकी कोशिश करें। सामाजिक और आर्थिक नियन्त्रण तथा व्यक्ति स्वातन्त्र्यको लेकर संसारके विद्वानोंने अनेक प्रकारसे विचार किया है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका प्रश्न इस हद तक पहुंच गया था कि लोग किसी प्रकारके नियन्त्रणको चाहे वह कितनीही कम मात्रामें क्यों न हो, एकदम अनुचित और अविवेकपूर्ण मानते थे। परन्तु आज यह प्रश्न और यह बहस मुबाहिसा व्यर्थकी वस्तु बन गयी है। आज यह बात मान ली गई है कि नियन्त्रण और किसी प्रकारकी एक योजना समाजके लिये आवश्यक हैं। समाजशास्त्रियोंके लिये नियन्त्रण और योजनाके अच्छेपन और बुरेपनका ही सवाल अब महत्वका रह गया है। मध्य-युगमें उत्पादन व्यक्तिगत था। वह छोटे पैमानेपर ही सर्वत्र प्रचलित था। खेती करने वाला किसान या अपने हाता घरमें बैठकर दस्तकारीके औजारोंकी सहायतासे काम करने वाला मजदूर अपने औजारोंका मालिक था। पूंजीवादके आगमनके पहले इस व्यक्तिगत उत्पादनकी जगह पर उन

काम करनेवाले मजदूरोंका एक छोटे पैमानेपर सहयोग हुआ, इसके बाद कारखाने खुले और अन्तमें बड़ी बड़ी फैक्टरियां बनी। इस प्रकार व्यक्तिगत उत्पादन बदलते बदलते सामाजिक उत्पादनका रूप धारण कर चुका है। एक वस्तुके तैयार करनेमें सैकड़ों हजारों मजदूरोंका श्रम लगा हुआ है। आजके उत्पादनका आधार शृंखलाबद्ध पहलेसे विचारी हुई एक योजना है। अतएव आजकी बदली हुई परिस्थितिमें हमारे लिये एक योजनाकी रूपरेखा तैयार करना आवश्यक हो गया है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और सामाजिक नियन्त्रणको योजनाका परस्पर विरोधी समझना एक पुरानी बात हो गयी है। किसी भी वस्तुके आधारभूत सिद्धान्तोंकी छानबीन करके ही हम किसी प्रकारकी योजना बना सकते हैं। योजना बनानेके पहले हमें उन सिद्धान्तोंको ठीक कर लेना होगा जिन्हें दृष्टिबिन्दुमें रखकर हम कोई भी योजना बनाएंगे।

वर्तमान समस्याओंकी हल सम्बन्धी बातें सोचनेवाले तीन तरहके लोग हैं। पहले तो वे हैं जो यह सोचते हैं कि इस लड़ाईके उपरान्त भी साधारण परिवर्तनोंके साथ पूर्व जैसी ही स्थिति आ जायगी। वे समझते हैं कि इस लड़ाईसे हमारे सामाजिक सम्बन्धोंमें विशेष परिवर्तन नहीं होगा। अतः उनकी पुनर्निर्माणकी योजनाएं एक-देशीय हैं। अपने देशके आर्थिक संगठन तक ही उनकी योजना सीमित है। उनकी पुनर्निर्माणकी परिभाषामें लड़ाईसे हुई क्षतिकी पूर्ति तकका ही समावेश है। जिसका मतलब है कि (क) लड़ाईके कारण विघटित उद्योगधन्धोंको किस तरहसे पुनः संगठित किया जाय और युद्धकालीन उद्योगधन्धोंको शान्तिकालीन रूपमें कैसे परिवर्तित किया जाय। (ख) लड़ाईके बाद सैनिकोंके हटाये जाने और युद्धोद्योगमें लगे हुए मजदूरोंके बेकार होनेपर उनकी रोजीकी समस्या कैसे हल की जाय, (ग) युद्धके कारण अन्नकी महंगीसे कृषि सम्बन्धी समस्याओंमें जो परिवर्तन हुए हैं उनसे शांतिकालीन अवस्थामें कैसे सामंजस्य रखा जाय और (घ) सड़कोंकी मरम्मत और क्षतिग्रस्त मकानों, फैक्टरियों इत्यादिका पुनर्निर्माण किस ढंगसे किया जाय। यद्यपि ये सारी समस्याएं सभी देशोंके सामने समुपस्थित हैं फिर भी उपर्युक्त ढंगसे सोचनेवाले लोग एक राष्ट्रको ही दृष्टिकोणमें रख कर अपनी योजना बनाते हैं। दूसरे प्रकारके वे लोग हैं जो सोचते हैं कि इस युद्धके बाद बहुतसे परिवर्तन होंगे। सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धोंमें बहुत कुछ हेर-फेर हो जायेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें नयी-नयी समस्याएं आ उपस्थित होंगी। अतएव इनकी योजनाओंमें पुनर्निर्माणके कार्यों को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके साथ सम्बद्ध रखनेकी चेष्टा पायी जाती है। इनके मतानुसार इस प्रकारकी किसी भी योजना के लिये अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिको मद्दे नजर रखना आवश्यक है। उनका कहना है कि प्रत्येक राष्ट्र अगर केवल अपने ही स्वार्थको दृष्टिमें रख कर नीति निर्धारित करेगा और अगर अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर कोई सम्मिलित समझौता नहीं हुआ तो फिर भविष्यमें आजकी तरह हमें कष्ट झेलने पड़ेंगे। अभी तक सस्तेसे सस्ता माल तैयार कर बाजारपर कब्जा करनेकी नीति ही अख्तियार की जाती रही है। ज्यादासे ज्यादा इस बातपर ध्यान दिया जा रहा है कि किस प्रकारसे आयातकी अपेक्षा निर्यातको बढ़ा कर दूसरे देशोंपर आर्थिक नियन्त्रण रखा जाय और वहां अपनी पूंजी लगा कर माल तैयार कराया जाय। इसके फलस्वरूप बाजारपर कब्जा करनेकी लड़ाई एवं अन्य आर्थिक लड़ाइयोंकी परिणति विश्वयुद्धके रूपमें हो जाती है। अतएव उनका कहना है कि तथाकथित बड़े-बड़े राष्ट्र जैसे इंगलैंड, रूस और अमेरिकाका पारस्परिक सहयोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके लिये अपेक्षित है। इन राष्ट्रोंको चाहिये कि एक ऐसी योजना बनावें जिसमें कि दुनियामें कच्चे माल तथा तैयार मालकी रफ्तनी समुचित ढङ्गसे हो। तीसरे प्रकारके वे लोग हैं जिनका कहना है कि पहलेके अनुभवोंसे हमें फायदा उठाना चाहिये। वे कहते हैं कि किसी भी योजनाके लिये यह आवश्यक है कि वह वर्तमान उत्पादन प्रणालीके दोषोंसे मुक्त हो, नहीं तो संसारका कल्याण नहीं हो सकता। आज तक जो भी आर्थिक संगठन और योजनाका दृष्टिकोण रहा है उसकी अच्छी छानबीन होनी चाहिये। वर्तमान आर्थिक ढांचेके स्वरूपमें कुछ उलट फेर करनेसे ही समस्या हल नहीं होगी, चाहे वह राष्ट्रीय पैमानेपर हो, चाहे अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर। अतएव भविष्यकी किसी भी योजनाके लिये वर्तमान आर्थिक ढांचेकी नींवको दुरुस्त करना सबसे जरूरी है।

इस प्रकारसे हम देखते हैं कि आजके समाजने समझ लिया है कि किसी न किसी प्रकारकी योजनाकी उसे आवश्यकता है, किसी-न किसी प्रकारके आर्थिक नियन्त्रणकी उसे जरूरत है। योजनाके प्रकारमें भले ही मतभेद हो, परन्तु योजनाकी आवश्यकताको सब विचारशील लोगोंने मान लिया है। हमने ऊपर लिखा है कि आजकी समस्याओं

का हल दृष्टिकोणकी भिन्नताके कारण लोग कई एक प्रकार से करना चाहते हैं। दृष्टिकोणकी इसी भिन्नताके कारण हिन्दुस्तानमें कई प्रकारकी पुनर्निर्माण योजनाएं बनी हैं। हमारा उद्देश्य उन योजनाओंके ब्योरेपर विचार करना नहीं है बल्कि उन सिद्धान्तोंका विवेचन करना है जिन्हें आधार मान कर योजनाएं बन सकें या बनी हुई योजनाओं में सुधार हो सके। इस प्रकारके विवेचन हीसे हम समझ सकेंगे कि किस प्रकारकी योजना हमारे देशके लिये उपयुक्त होगी।

वर्तमान आर्थिक ढांचेके दो प्रधान स्तम्भ हैं। पहला अनियन्त्रित प्रतियोगिता और दूसरा पूर्ति तथा मांगका सिद्धान्त। नफेको ही दृष्टिमें रख कर उत्पादनका परिमाण निर्धारित किया जाता है। समाजकी आवश्यकताएं नहीं बल्कि उसकी क्रय-शक्तिका ही ध्यान वस्तुओंके उत्पादनके समय रखा जाता है। जब यह कहा जाता है कि मालकी खपत नहीं हो रही है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि देश की आवश्यकता पूरी हो गयी बल्कि इसका मतलब यह है कि देशके पास क्रय-शक्ति नहीं है। इसी संकुचित मांगके आधारपर माल तैयार होता है। माल नफाके साथ बेचनेके लिये तैयार किया जाता है, देशकी आवश्यकता पूर्तिके लिये नहीं। पूंजी उसी मालके उत्पादनमें लगायी जाती है जिसकी बिक्रीकी अधिकसे अधिक सम्भावना दीख पड़ती है। यही सम्भावना प्रतियोगिताको जन्म देती है। नफेकी सम्भावनाको देख कर विभिन्न व्यवसायी अपनी पूंजीको किसी विशेष उद्योगमें लगाते हैं और दूसरेको बाजारसे हटा देनेके लिये तरह-तरहके उपाय करते हैं। इसलिये उत्पादन मनमाने ढङ्गसे होता है। समाजको दृष्टिमें रख कर ऐसे उत्पादनपर न कोई नियन्त्रण रहता है और न कोई खास व्यवस्था ही। वर्तमान आर्थिक प्रणालीके अन्तर्गत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर बराबर संघर्ष चलता ही रहता है।

हमारे यहां अभीतक जितनी भी पुनर्निर्माणकी योजनाएं बनी हैं उनमें बम्बई-योजनाकी सबसे अधिक चर्चा रही है। देश और विदेशके पत्रोंमें नाना दृष्टिबिन्दुओंसे इसपर विचार किया गया है। अतएव हमारे लिये इसके आधारभूत सिद्धांतोंकी विवेचना करना ही समीचीन होगा। इस योजनामें लोगोंकी दशा सुधारनेपर काफी विचार किया गया है और इसके लिये औद्योगीकरणपर विशेष जोर दिया गया है। योजना बनानेवालोंका कहना है कि योजनाके अनुसार काम करनेपर देशकी स्थिति अत्यन्त सुधर जायगी।

सारी योजनाको देखनेसे मालूम होता है कि वर्तमान आर्थिक ढांचेके मूलको ठीक मानकर ही यह योजना बनी है। वस्तुओंके उत्पादनके लिये जिस सिद्धान्तको माना गया है उससे हमारा उपर्युक्त कथन अधिक स्पष्ट हो जायगा। उसमें एक जगह कहा गया है, कि—

"रोजमर्रेके व्यवहारमें आनेवाली चीजोंके उत्पादन करनेवाले कौन-कौनसे और किस प्रकारके उद्योगधन्धे बढ़ेंगे, यह अन्ततः लोगोंकी आयपर ही निर्भर करेगा। इस प्रकारके किन-किन उद्योगोंको बढ़ाया जाय इस बातका निश्चय समय-समयपर लोगोंकी मांगोंके परिवर्तनको ध्यान-में रखकर किया जायगा।"

ऊपरके उद्धरणमें हम स्पष्ट ही देखते हैं कि योजनाके बनानेवालोंके दिमागमें वर्तमान आर्थिक प्रणालीकी पूर्ति और मांगवाला सिद्धांत ही काम कर रहा है। रोजमर्रेके व्यवहारमें आनेवाली चीजोंका उत्पादन लोगोंकी मांग और क्रय-शक्तिपर निर्भर करेगा। भविष्यमें इस योजना के अनुसार उन्हीं वस्तुओंका उत्पादन होगा जिनके लिये खरीदार हो सकें। उत्पादनका आधार नफा होगा न कि लोगोंकी आवश्यकता।

हमारे यहां अधिकांश लोग इसी ढङ्गपर सोचते हैं। सर जे० पी० श्रीवास्तवने नई दिल्लीमें पुनर्निर्माणकी नीति निर्धारिणी कमिटीकी मीटिंगमें भाषण देते हुए कहा था—

"उद्योग-धन्धोंकी दृष्टिसे हिंदुस्तानकी तरक्की हुई है और भविष्यमें अपने तैयार मालोंके निर्यातके लिये कुछ निकटस्थ देशों जैसे चीन, बर्मा, हिंदचीन, मलाया अफगानिस्तान, टर्की, फारस और लालसागर आदि देशोंकी ओर उसका देखना हरेक प्रकारसे युक्तिसंगत है। इन देशोंके साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्धको इसी दृष्टि-कोणसे देखना होगा। हरेक हालतमें हमलोगोंको जापानके बाजारोंपर अधिकार करनेकी अवस्थामें रहना चाहिये।"

इस प्रकारसे हम देखते हैं कि वर्तमान आर्थिक ढांचे को आधार मानकर ही यह योजना बनी है। आजकी बदली हुई परिस्थितिको ध्यानमें रखकर ऊपर-ऊपरसे कुछ भले ही परिवर्तन कर दिये गये हैं परन्तु मूलतः वर्तमान आर्थिक-प्रणाली ही आधार मानी गयी है। वर्तमान आर्थिक-प्रणालीका सबसे बड़ा अभिशाप व्यापार-चक्र है। व्यापारिक मन्दी और विश्वव्यापी आर्थिक संकट काफी प्रयत्न करनेके बावजूद भी संसारमें उपस्थित होते ही जा रहे हैं। इस प्रणालीका सबसे बड़ा दोष, जो यह स्वयं उत्पन्न करती

है यह व्यापार-चक्र ही है। अतएव किसी भी योजनाको बनाते समय हमारे लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान आर्थिक ढांचेके इस मौलिक दोषपर ध्यान रखें, अन्यथा हमें भी वही सारी बातें भुगतनी पड़ेंगी जो अन्य देश भुगत रहे हैं।

बम्बई-योजनामें औद्योगीकरणपर विशेष जोर दिया गया है। आजकी परिस्थितिमें औद्योगीकरणकी आवश्यकता अधिकांश लोग महसूस करते हैं। परन्तु नफाके लिये जो उत्पादन होता है उसके लिये खरीददारकी आवश्यकता होती है। नफाके लिये जो माल तैयार होता है उसकी बिक्री अगर न हो तो उसका उत्पादन भी नहीं होगा। हिन्दुस्तानकी क्रय शक्ति अत्यन्त ही भिन्न है। ऐसी हालतमें अगर यहांकी क्रय शक्ति नहीं बढ़ती तो उद्योग धन्धोंका भी प्रसार नहीं हो सकता। मौजूदा परिस्थितिमें भीतरी बाजारका होना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि विदेशी बाजारोंमें प्रतियोगिता अत्यन्य ही तीव्र है। अतएव उसीके भरोसे यहांकी औद्योगीकरणकी योजना सफल नहीं हो सकती।

हिन्दुस्तानमें बहुसंख्यक लोग कृषिपर निर्भर करते हैं। यहां कृषिकी हालत बिल्कुल बदतर है। जमीनकी पैदावार कम हो गयी है। उसके टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। जमीनसे भी जो थोड़ी आय होती है उसका बहुत बड़ा भाग कर्ज, टैक्स वगैरह की अदायगीमें चला जाता है। सब कुछ दे दिलाकर किसानके हाथमें कुछ नहीं रह जाता। औद्योगीकरणके लिये कृषिकी उन्नति जरूरी है। कृषिकी उन्नतिसे ही किसानोंकी क्रयशक्ति बढ़ सकती है और क्रयशक्तिका बढ़ाना औद्योगीकरणके लिये आवश्यक है। लेकिन कृषिकी उन्नतिके लिये और वैज्ञानिक ढंगसे खेती करनेके लिये यहांके छोटे छोटे जमीनके टुकड़े बिल्कुल अनुपयुक्त हैं। कई एक प्रकारकी सामाजिक और कानूनी उलझनोंमें यहांकी खेती उलझी हुई है। जब तक इसमें आमूल परिवर्तन नहीं होता तब तक यहांकी कृषिकी उन्नतिके लिये कोई उपाय नहीं। औद्योगीकरणकी किसी भी योजनाके लिये इस बातको ध्यानमें रखना अत्यावश्यक है।

नये नये उद्योगधन्धोंकी उन्नतिके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें संरक्षणकी भी बात कही जाती है। संरक्षणके लिये देशमें बाहरसे आने वाले मालपर कर लगाया जाता है। इसका नतीजा होता है कि बाहरसे कम माल आता है और जो माल आता भी है वह देशके मालसे प्रतियोगिता नहीं कर सकता। इस प्रतियोगिताके अभावमें देशमें तैयार मालका मूल्य बढ़ जाता है और दूसरी ओर लोगोंकी क्रय-शक्ति ज्योंकी त्यों रहती है। हमारे यहां लोगोंकी क्रयशक्ति योंही कमजोर है,इसलिये संरक्षणकी नीतिके कारण बढ़े हुए मूल्यवाले मालको वे और नहीं खरीद सकते। इसका फल यह होगा कि उत्पादन कम होने लगेगा और उद्योग-धन्धोंकी उन्नति होनेके बजाय उसकी अवनति ही होगी। इसलिये संरक्षणकी नीति किस परिमाण तक सफल हो सकती है इस पर योजना बनाने वालोंका ध्यान जाना आवश्यक है।

बाहरी देशोंके साथ व्यापारका प्रश्न वर्तमान समयमें एक कठिन समस्या है। प्रत्येक जगह प्रतियोगिता है। अपने मालको बेचनेकेलियेऔर बाहरकेबाजारपर कब्जा करनेकेलिये दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमालोंका मूल्य घटाना पड़ता है। इसके लियेकई उपायकाममें लाये जाते हैं। यहां कुछलोगोंका कहना है कि राष्ट्रीय सरकार बाहरी बाजारपर अधिकार जमानेके लिये अपने यहांके उद्योग-धन्धोंको आर्थिक सहायता दे सकती है। परन्तु सरकार अगर इस बातको तय कर ले तो उसे उद्योग धन्धोंको आर्थिक सहायता पहुंचानेके लिये टैक्स बढ़ाना जरूरी हो जायगा। इसका फल यह होगा कि लोगोंकी आर्थिक अवस्था और भी खराब हो जायगी। अतएव बाहरी बाजारपर कब्जा करनेकी चेष्टामें देशके बाजारको बहुत दूर तक खोना पड़ेगा। ऐसी दशामें देशके लोगोंकी न आर्थिक हालत ही सुधर सकती है और न उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि ही हो सकती है।

इन सारी बातोंपर गौर करनेसे हम इसी नतीजेपर पहुंचते हैं कि इस प्रकारकी कोई भी योजना तभी सफल हो सकती है जब कि वस्तुओंका उत्पादन सामाजिक आवश्यकताओंको दृष्टिमें रखकर किया जाय न कि व्यक्तिगत नफेको देखकर और देशकी क्रय-शक्तिको आधार मानकर। व्यक्तिगत पूंजी लगानेकी जब तक स्वतन्त्रता रहती है तब तक कोई भी आदमी उसी उद्योग-धन्धेमें अपनी पूंजी लगाना चाहेगा, जिसके नफेकी सम्भावना दीख पड़ेगी। और जबतक ऐसी स्वतन्त्रता है तबतक ऐसी कोई भी योजना नहीं बनाई जा सकती, जिसमें सभी उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका समावेश हो।

उत्पादनका प्राथमिक उद्देश्य आवश्यकता पूर्ति ही है। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर जो भी योजना बनेगी वह समाजके लिये हितकर होगी। तैयार की हुई वस्तुओंको खरीदनेके लिये लोगोंकी क्रय-शक्ति बढ़ाना ही हमारा उद्दे-

समाजमें विवाहका महत्व

श्री तेजनारायणलाल शास्त्री

मानसिक विकासके लिये जिस प्रकार उत्तम विचार एवं शिक्षित-सुसंस्कृत-सभ्य समाजकी आवश्यकता है, उसी प्रकार शारीरिक विकासके लिये भी विवाहकी नितान्त अपेक्षा है। कल्पना या भावनाकी उड़ानमें अपने मनको कुछ कालके लिये भले ही हवाई किला बना कर हम समझा लें, सन्तोष कर लें किन्तु जीवनके सत्यको व्यक्त करनेके लिये हमें वास्तुजगतमें आना ही पड़ता है। हम इससे भाग नहीं सकते। भोजन-छाजनके बिना हमारा जीवन अनुप्राणित नहीं हो सकता, नष्ट हो जाता है। जीवन तो आहार-विहारके आधारपर ही टिका हुआ है, लेकिन शक्तिके अनुसार ही हम कोई कार्य न्यूनाधिक मात्रामें करते हैं। प्रकृतिने हमें सीमित शक्ति दी है जो संयमके द्वारा पुष्ट एवं दृढ़ होती है और असंयम, अनियन्त्रणसे स्खलित, निर्बल एवं विनष्ट।

जितने जीव-जन्तु इस जगती तलपर हैं उनमें अवस्थानुकूल अपनी काम-वासनाको तृप्त करनेकी लालसा जगती है और वे एक दूसरेके प्रति आकर्षित होते हैं। जोड़ा ढूंढ़ते हैं और तन-मनकी रतिका निराकरण करते हैं। वे अपनेसे भिन्न जातिके प्रति ही आकृष्ट होते हैं और यही कारण है कि नर-नारी एक दूसरेके सहारे अपने अभावका भराव करना चाहते हैं। विवाह-बन्धन तन और मनका मेल करता है। दो विकल आत्माका मिलन होता है और प्रकृतिके नियमका पालन हम करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि यह विवाह प्राकृतिक है या अप्राकृतिक है? समाजको संयमके सूत्रमें बांध रखनेके लिये क्या यह आवश्यक है या निराधार है? तो यही उत्तर मिलता है कि मनुष्य जानवर नहीं है। वह प्रकृतिका सर्वोत्तम रत्न है। उसका लालन-पालन प्रकृतिकी गोदमें होता है। वह सामाजिक प्राणी है। एक तरफ वह विवेकी वैज्ञानिक है और दूसरी तरफ है असहाय। वह अकेला कुछ नहीं कर सकता। उसे अपने जीवन-विकासके लिये समाजमें रहना होगा इससे भाग कर वह जंगलमें तप-साधन कर धुनी रमा कर भले ही साधु सन्यासी बन जाय लेकिन उसका मन दबी हुई काम-वासनाको छिपाये हुए नाना प्रकारके अप्राकृतिक एवं अनहोनी कामको तो करेगा ही। या तो शरीर ही जर्जर एवं नाना प्रकारकी बीमारियोंका घर हो जायगा या मन ही उद्भ्रान्त हो जायगा। यह स्पष्ट है कि शरीर आरोग्य नहीं रहनेसे कोई तप या साधना नहीं सफल हो सकती, क्योंकि उसका सम्बन्ध मनसे है। मनको सबल, संयमित रखनेके लिये आवश्यक है कि शरीरकी रक्षा होती रहे। संयमके नामपर उसके साथ जानबूझ कर अत्याचार नहीं किया जाय। ऐसी स्थितिमें प्रकृति अकाल ही जीवन-लीला समाप्त कर देती है।

ज्यों-ज्यों हमारी ज्ञानरश्मियोंका विकास होता गया, त्यों-त्यों हम व्यष्टिसे समष्टिकी ओर आने लगे। नूतन समाजका संगठन हमने किया है और नवीन युगका निर्माण भी। विवाहकी प्रस्तुत प्रणाली हमें उस ओर खींचती है, जब समाज विवाह-बन्धनसे मुक्त था। या यों कहिये कि हम जंगली अवस्थामें थे। कोई भेदभाव नहीं था। मानव-जीवन पाषाण युगमें घिरा हुआ था, फिर लौह युगमें आया और आज अग्नि-युगमें चरमसीमा तक पहुंच गया है। विचार कर देखा जाय तो विवाहकी प्रवृत्ति भावना विवेकके द्वारा उत्पन्न हुई है। बुद्धि जहांपर परिष्कृत हो जाती है, वहां सत्यता स्पष्ट हो जाती है और हम वास्तविकताकी ओर अग्रसर होते हैं। प्रकृतिने जितने भी नियम बनाये हैं वह हमारे जीवनको कायम रखनेके लिये ही। और हम भी नाना प्रकारके नियमसे अपने जीवनको बांधते हैं। विवाह हमें यह बता देता है कि हम कृत्रिम नियम बन्धन-

---

य नहीं होना चाहिए, बल्कि उनकी आवश्यकता पूर्ति होनी चाहिये। अभावके सिद्धान्तपर आधारित हमारा अर्थशास्त्र इस समस्याको सुलझानेमें समर्थ नहीं होसकता। औद्योगिक क्रान्ति और विज्ञानकी आश्चर्यजनक उन्नतिने इस बातको सम्भवकर दिया हैकि उत्पादनशक्ति द्वारा देशकी आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं। देशकी वास्तविक मांगको पूरा करनाही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। किसी भी ऐसी योजनाके लिये हमें अपने दृष्टिकोणमें परिवर्तन करना होगा, तभी मानवका कल्याण हो सकता है और तभी दुनियामें सुख-शांतिकी स्थापना हो सकती है।

का उन्मूलन कर दें और प्राकृतिक अवस्थामें चले आवें ताकि वासनाका नग्न रूप सामने आ जाय। लेकिन चिन्तनशील मानव इस उच्छृङ्खलताको सामाजिक प्राणी होनेके नाते कदापि सहन नहीं कर सकता। भले ही जानवर नग्नरूपमें निर्लज्ज होकर अपनी काम-वासनाकी तृप्ति कर लें लेकिन जहां संस्कृति संस्कारका सम्बन्ध है वहांपर तो मनुष्य अवश्य ही विवाहको अप्राकृतिक रूप नहीं देकर प्राकृतिक रूप ही देगा। क्योंकि वह जानवर नहीं है।

माना कि मनुष्यने अपने विवेकके अनुसार विवाह संस्कारको जन्म दिया और प्रकृति इस बन्धनको तोड़ना चाहती है—नग्नरूपमें रखना चाहती है। हमारी वासनाएं हमें इस स्वच्छन्दता, उद्दण्डताकी ओर उत्तेजित करती है। लेकिन मनुष्यकी उपमा पशुकेकार्यकलापसे नहीं दी जासकती। आजके मानवने तो कल्पना, स्वप्नको साकारकर देनेका भरसक प्रयत्न किया है और सफल भी हुआ है। उसका जीवन ही प्रकृति है या मनुष्य ही प्रकृति है। चेतना या आत्माका विकास जिस ढंगसे मनुष्यके जीवनमें हुआ—अन्य प्राणियों में नहीं हो सका और न होनेकी सम्भावना ही है।

मानव-जीवनके ऐतिहासिक पृष्टका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करनेपर ही पता चलता है कि वह अनादिशक्तिका ही अंश है। जहां सभी प्राणियोंका आविर्भाव हुआ, वहां सृष्टिके आरम्भसे ही मानव मौजूद था और इसका प्रमाण इसका प्रस्तुत विकास ही है। क्योंकि किसी भी कार्यके पीछे कारणकी करामात तो लगी ही रहती है। भले ही कारणका उपयुक्त स्पष्टीकरण एवं विकास कार्यमें न हो सके, लेकिन किसी-न किसी रूपमें तो वह है ही। यह तर्क देकर कि जिस जानवरको पूंछ होती है—सिंह होता है—ठीक नहीं जंचता। परन्तु सिंह हो चाहे नहीं हो, पूंछ तो रहती ही है। धुआं जहां नहीं दिखायी पड़े वहां यह अनुमान कर लेना कि आग नहीं है यह, कोरी दलील होगी। हां, यह भले ही हो सकता है कि आगके बिना धुआं नहीं हो सकता। बस, इस प्रकार हमें मानना पड़ेगा कि बिना कारणके कोई भी कार्य हो नहीं सकता। आजके चेतनशील मानव विकासको देख कर यह अवश्य ही पता चल जाता है कि उसका निर्माण किसी उत्तम कलाकार एवं विवेकी, शक्तिसम्पन्न प्राणीके द्वारा ही हुआ है वह अन्य जीवजन्तुओंसे बहुत ही भिन्न है, बेमेल है। आज तो सत्य या आध्यात्मको साकार रूप देकर ही मानव चैन लेना चाहता है। वह प्राकृतिक विशेषताओं का अनुसन्धान कर इतना साबित कर देना चाहता है कि प्रकृति उसके लिये है, उसके नियन्त्रणमें है न कि वह प्रकृति का पुछल्ला है। जहां तक उसे प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेमें सफलता मिली है वहां तक तो अवश्य ही उसने उसे नियन्त्रित कर लिया है और उसपर हावी भी हो गया है।

विवाहकी प्रथा कोई नयी नहीं है, बहुत ही प्राचीनतम है। यह हमें भूल जाना है कि आदिम युगमें किसीका पता ठिकाना नहीं था कि कौन किसका माता-पिता है और कौन है किसका पुत्र। यदि सचमुच हम मानवताकी परिभाषा करने चलते हैं, तो उस स्वर्णयुगकी ओर जाना होगा जहां सीता-सावित्री, दमयन्ती, अरुन्धतीने उस समयके समाजका मुखोज्वल किया था पतिव्रतधर्मका पालन किया था अलौकिक जीवनका आदर्श हमारे सामने रखा था और आज हम जिसका अंकुर मनोभूमिमें उगते देखते हैं। उसे हरा-भरा कर विश्वको अपनी संस्कृतिका सन्देश देते हैं जिसके लिये आज वह व्याकुल है, व्यथित है।

पाश्चात्य सभ्यताके भ्रमजालमें पड़कर हमारे देशके युवक-युवती-विवाहको हेय दृष्टिसे देखने लगे हैं। वे अपनी जीवनकी कामनाको स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसारित करनेमें अपने को कृत्य-कृत्य समझ रहे हैं। आर्थिक कठिनाइयां भी उनके सामने आ सकती हैं, लेकिन विवाहके नामपर वे टाली नहीं जा सकतीं और शिक्षितवर्ग आज विवाहसे विरक्त होकर चाहते हैं कि निरंकुश वासनाका नग्नरूप समाजके सामने रखें। उसकी शृङ्खलाओंको छिन्न-भिन्न कर दें और अधिनायकवादका बोल-बाला हो, ताकि वह खुलकर कुरीतियां एवं भ्रष्टाचारको फैलावें। इसको महत्व नहीं दिया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति प्रौढ़ा अवस्थामें बिना विवाहके ही सरस एवं मधुमय जीवन बिता रहा है, संयमशील है। ऐसा कहना अपनेको धोखा देना है। क्योंकि हमारा तरुण मन तो दिनमें हजारों दफे विवाह करता है। कल्पनाका घर बसाता है और उजाड़ता है, तब तो उस होड़में पीछे ही रह जाता है। जंगली जातियोंमें ही देखिये। उन्होंने अपनी सुख-सुविधाके अनुसार विवाह-प्रथा चलायी और सस्तेमें जोड़ा चुनकर जीवन-यापन करते है। भले ही उन्हें हम असभ्य कहें, लेकिन जहांतक विवेकका सम्बन्ध है वे भी एक समाज, मण्डली या गिरोहमें रहते हैं।

जहांपर हमारी वासना अप्राकृतिक रूपसे उत्तेजित होती है—वहांपर पशुता खुलकर खेलती है। हमारी मानवता धूलमें मिल जाती है। समाजमें हम

गर्दन उठाकर सीना तानकर चल नहीं सकते। इस वैज्ञानिक युगमें ऐसी घटनाएं भी घटी हैं, जो बिलकुल ही अप्राकृतिक है भावना, विवेक-विहीन। ऐसा तो स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिये। लेकिन ये घटनाएं कभी-कभी समाजमें उभड़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? अतृप्त वासनाका यह विभत्सरूप तभी सामने आता है जब कि बे-मेल विवाह होता है। असन्तोष, अधैर्यका राज्य जिस घरमें रहता है जहां शिक्षा, नैतिकता धर्म आचारको ताकपर रखकर व्यक्ति दुष्कर्म एवं पापमें निरत हो जाता है। वहां लाखों वर्षकी पनपी हुई मनुष्यता नष्ट हो जाती है। उसके प्रायश्चितका विस्तार तो गंगाकी बालू या गायका गोबर निगलनेपर भी नहीं हो सकता।

कोई भी इतिहास सामाजिक अवस्थाके अनुकूल ही लिखा जाता है। उसमें मानव जीवनका संघर्ष और घटनाओंका वर्णन रहता है और रहता है मानवताके उज्वल भविष्यका चित्रण। जो इतिहास या समाज शास्त्र हमें पतनकी ओर ले जाता है, हमें उससे बचना चाहिये। भावी-सन्तानको इससे सावधान रखना चाहिये ताकि उसका जीवन संस्कृति, संस्कारसे आवद्ध होकर उन्नतिशील हो सके एवं सच्ची स्वतन्त्रता तथा सुख-शांतिका आनन्द उसे प्राप्त हो सके। ऐसे जघन्य कर्ममें वह नहीं पड़ जाय जो उसके जीवन-विकासका बाधक हो। वासनाको अप्राकृतिक रूप देना बहुत निन्दनीय है, समाजको पतनके गर्तमें ले जाना है।

सुखी दाम्पत्य जीवन तो उसीका हो सकता है जो अपनेको एक 'नारी ब्रह्मचारी' बनानेमें प्रयत्नशील रहता है। जानवरोंके बच्चे जिस प्रकार जन्म लेते ही चतुर और होशियार हो जाते हैं—कूदने-उछलने लगते हैं, उस प्रकार आदमी के बच्चे नहीं। उनमें धीरे-धीरे विकास होता है और ज्ञान भी अधिक होता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने समयानुसार संसर्ग-सम्पर्कका जो नियम बना दिया, उसका पालन आज का मानव नहीं करके अत्यन्त ही खिन्न एवं आध्यात्मिक विकाससे वंचित हो गया है जिसके परिणामस्वरूप इस युगका वायुमण्डल ही अशांत एवं विषाक्तमय हो गया है। स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध केवल जीवनको ढोनेके लिये ही गठित नहीं किया जाता, बल्कि उसे अपूर्व एवं अलौकिक बनानेके लिये विवाह-बन्धनमें आबद्ध कर दिया जाता है, ताकि मानवता, जीवनमें निखरती जाय, स्पष्ट होती जाय।

तारोंका गीत

जलते रहो, जलते रहो!

(१)

चाहे पवन धीरे चले,
चाहे पवन जल्दी चले,
आंधी चले, झंझा मिलें,
तूफानके धक्के मिले,
तिल भर जगहसे बिन हिले,
जलते रहो, जलते रहो!

(२)

या शीत हो, कोहरा पड़े,
गरमी पड़े, लूएं चले,
बरसात की बौछार हों,
ओले, बरफ ढ़क ले तुम्हें,
आकाश से पर बिन गिरे,
जलते रहो, जलते रहो!

(३)

चाहे प्रलय के राग में,
जीवन-मरण का गान हो,
दुनिया हिले, धरती फटे,
सागर प्रबलतम सांस ले,
पिघले बिना सब देखकर
जलते रहो, जलते रहो!

—महेन्द्र बी० ए०, विशारद

किसान

चमका अर्द्ध-चन्द्र फिर नभमें, वासव-बज्र धंसा धरणीमें

आज अनागतके जीवनमें देख रहे हम कैसी हलचल
खोया शैशव, लुटी जवानी, :मस्त बुढ़ापा गावे मंगल
पंचभूतका यह पुतला रे, पंचभूतसे भिड़ने जाता
बोले चलकर संग, दिगंबरि ! जय मानव-कुदालका नाता
एक उबाल आज आयी है भाग्य-कर्मकी वैतरणीमें।
चमका अर्द्ध-चन्द्र फिर नभमें, वासव-बज्र धंसा धरणीमें

फिजा और यह जर्जर मानव ? देखे दुनिया आंखों वाली
मरुथल, और शस्य लहराते ? उड़े कामना पांखों वाली
तृण-तृण लेकर सृष्टि योगमें :दिया इसीने अमर सहारा
ऊंचे-नीचे महल बनाकर कलातीर्थ का क्षेत्र संवारा
मिट्टीको सोना करनेकी शक्ति भरी इसकी करनीमें।
एक उबाल आज आई है, भाग्य कर्मकी वैतरणीमें ॥

करामात इसकी ही तो रे, नन्दन-बन जो फूल रहा है
जादू इसका ही दुनियामें जो विलास-सुख झूल रहा है
छेद रत्न-गर्भाकी छाती जितने रत्न निकाले इसने
सत्य बात देखे भी होंगे, उतने रत्न जगतमें किसने ?
लेखा-जोखा अभी लगा लें ज्ञान मत्त करनी-भरनी में।
मिट्टीको सोना करने की शक्ति भरी इसकी करनीमें ॥

मथा :समुद्र देव-दानवने, चौदह अद्‌भुत रत्न निकाला
मिला गरल तो कातर होकर शंकरके आगे ला ढाला
यह तो वह है, समुद पी गया स्वयं गरल रे जो शंकर बन
नीलकंठसे घटकर कब यह ? नील वरण कर अपना सब तन
क्या है छोड़ गए यदि तुलसी, सूर इसे कविता-सरणीमें।
लेखा-जोखा अभी लगा लें ज्ञान-मत्त करनी-भरनीमें ॥

निठुर, राजपथसे कुटियों तक प्रेत इसीका डोल रहा है—
प्रथम-प्रलयसे जग-जीवनमें कठिन मरण रस घोल रहा है-
दो दानोंसे हीन न इसका ही नश्वर तन विधि छूटेगा,
जाने कौन इसीके संग-संग अखिल-सृष्टि-घट भी फूटेगा,
संभलो, नृपति-रंक डूबेंगे एक साथ इस भव-तरणीमें।
क्या है छोड़ गए यदि तुलसी-सूर इसे कविता सरणीमें ?

बेंच रहा ईमान बंग क्यों कुल-ललनाएं खोती अस्मत ?
यह अशोककी भूमि शोकमें बिललाती क्यों ले दारुण-व्रत ?
राम-कृष्णका अवध आज किसके हाथों वध-थल बनता है ?
गांधीका गुजरात शीश किस दुखमें यह पल-पल धुनता है ?
जला रहा मानव ही जगको स्वार्थ-साधनामें जरणी में।
संभलो नृपति-रंक डूबेंगे एक साथ इस भव-तरणीमें।
चमका अर्द्ध-चन्द्र फिर नभमें, वासव-बज्र धंसा धरणीमें

—का० वशिष्ठ नारायण 'बिंदु'



पत्रकारकी पत्नी

सुश्री चन्द्रप्रभा द्विवेदी

जिस समय लकड़ियोंका ढेर गृहिणी चूल्हेमें आग जलानेके लिये लगा रही थी उसी समय विनोदजीने अपनी पुरानी साइकिल खड़खड़ाते हुए घरमें प्रवेश किया। पत्नीका हृदय दहल उठा।

"ओह! अब क्या हो?? वे आ गये और यहां खाना…।"

जैसे जैसे विनोदके पैरोंकी आहट निकटसे निकटतम आती गयी वैसे ही वैसे अपराधिनी माधवी भयके गर्तमें लुढ़कती गयी। अन्तमें चूल्हेकी आगके साथ ही पति के हृदयकी क्रोधाग्नि तेजीसे जल उठी और उनके विकृत चेहरेका मन ही मन अन्दाजा लगाती हुई माधवी कांप उठी जिससे हाथकी लकड़ी छूट गयी। चूल्हेकी आग दब गयी और तेजीसे धुआं निकलने लगा। विनोद अपने नामके सर्वथा विपरीत मूर्ति बने खड़े थे। माधवीसे चार आंखें होते ही कहा।

"परस दीजिये जो भी हो कच्चा-पक्का…।"

माधवी इस व्यंगसे क्षार हो गयी। टूटे पंखेसे तेजीके साथ हवा करने लगी, जैसे परीक्षा भवनमें तीसरे घण्टेको सुनकर सुस्त विद्यार्थी शेष प्रश्नको लिखनेके लिये शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाता है जिसमें उत्तर-पुस्तक सौंपते-सौंपते भी दो-चार नम्बर और पाने योग्य कुछ पंक्तियां लिख जाय किन्तु परीक्षककी बाज दृष्टि भी उसी चिलबिलाती चिड़ियाकी ओर अधिक सतर्कतासे लगी रहती है। इधर शरीरकी दुर्बलताके साथ ही जैसे तेजीसे अन्य व्याधियां एक बड़े रोगकी वृद्धि करती हैं उसी प्रकार माधवीकी दोनों छोटी बालिकाओंने भी रोना आरम्भ कर दिया, जिनको अभी तक वह स्वादिष्ट चीजोंके नाम गिना कर किसी प्रकार चुप रख सकी थी ताकि अपने एकमात्र पुत्रको शान्तिपूर्वक दूध तथा दवा पान कराती रहे जिसके लिये डाक्टरका सख्त आदेश था। पतिदेवने दोहराया।

"खानेको दोगी या नहीं जी?"

"दूंगी क्यों नहीं? बना लूं?"

"कब बनेगा? अभी समय नहीं हुआ?"

"थोड़ी देर है, मेरा सुधीर…।"

"तुम्हारा सुधीर…क्या दिन भरमें तुमको इतना भी अवकाश नहीं मिला था कि थोड़ा सा खाना तैयार कर डालतीं? दिन भर प्रेसमें खटकर जब शामको घर पहुंचो तब चूल्हेका मुंह फूंका जा रहा है, इसके स्पष्ट माने यही हैं कि मेरे मुंहमें आग लगायी जा रही है।"

माधवी अपराधिनी है जो समय पर खाना नहीं तैयार कर सकी तो भी वह बेकार नहीं बैठी थी। भले ही प्रेसमें मासिक बिजलीका सम्पादन न करती रही हो किन्तु अपने बीमार हृदयके टुकड़ेको लिये हुए एकाकिनी ही न जाने कितने संकल्प-विकल्पोंसे लोहा लेती हुई उस बच्चेको अभी सुला सकी थी जो एक सप्ताहसे खाट पर पड़ा है। कमसे कम विनोद इतना तो सोचते। यदि यह भी न सोचें तो अपने लिये यह अपशब्द क्यों निकाल रहे हैं? क्या वह केवल अपने ही भर हैं! नहीं अपनेसे कहीं अधिक वह माधवीके हैं, क्योंकि वही तो उसके भगवान् हैं इस प्रपञ्च-पूर्ण विश्वमें एक शक्ति एवं शान्तिपूर्ण अवलम्ब हैं। फिर वह ऐसे अवलम्बको थोड़ेसे विलम्बके कारण क्यों नष्ट कर देनेको तुले हैं! कदाचित यह एक सहृदय, जनताके सेवक, समाज एवं साहित्यके उन्नायक भावुक सम्पादकके सोचनेके विषयसे बाहरकी बात है। उनके लिये पत्नी और पुत्र क्या कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति है। भले ही माधवीने आंसू भरी आंखोंसे हाथ जोड़ कर अनेकों बार प्रार्थना की थी कि अब ऐसे अपशब्द वह कभी भी भविष्य में न निकालेंगे बल्कि बदलेमें माधवीको गिन-गिन कर सौ गालियां दे लिया करेंगे किन्तु खेदकी बात थी कि क्रोधके विराट प्रदर्शनके सम्मुख विनोद प्रतिज्ञा करके भी निभानेमें असमर्थ हो जाते थे। बदलेमें माधवीकी आंखोंसे ठंडी ठंडी आंसूकी बूंदें जमीनमें गिरीं और कुछको वह चुपचाप पी गयी। वह स्वयं इससे दुःखी थी पर कहती किससे? उसके इस धैर्यका, सहन शीलताका मूल्य कहां?

आग किसी भी तरह जलनेको तैयार न थी। उसने अपना कोप धुएंके रूपमें दिखाया जिसमें दम घुटाते हुए चीख-चिल्ला रहे थे स्वस्थ और बीमार बच्चे और फुफकार रहे थे विनोद।

"क्यों जी, अपनी राजकुमारियोंको चुप कराती हो या उठा-उठाकर इन अभागोंको पटकूं! तभी तुमको शान्ति

मिलेगी; बोलो, बोलती क्यों नहीं ! तुम्हारा सुधीर तो आनन्दसे अबतक सो रहा था । क्या कर रही थीं ?"

माधवीने सिर उठाया फिर मुंह मोड़ कर बोली—"पालने पर झूल रही थी, जब आपको अपने एकमात्र बच्चेको बीमारी तकका बोध आनन्दसे होता है तब मैं सिवाय पालना झूलनेके और क्या कर रही थी ।"

सचमुच अपने आवेश पर विनोद लज्जित हो उठे थे। उन्होंने गोदमें छोटी बालिकाको उठा लिया और ब मार बच्चेके कमरेमें जाते हुए बोले—"क्या करूं ? दिन भर दिमाग खपानेके बाद एकदम पशु हो जाता हूं। बताओ माधवी ! एकमात्र तुम्हीं तो मेरी शान्ति और सुख हो । जब तुमकोभी आनेपर अस्त-व्यस्त पाता हूं तब उलझ पड़ता हूं। क्या तुम इसके लिये रूठ गयी हो ? माना कि तुमको भी बहुत काम पड़ जाता है पर मेरा भी तुमको कुछ ध्यान रखना उचित है ? कितना टेंपरेचर था सुधीर का ?"

"१०९ दोपहरसे बढ़ा है, अभी जाकर सो सका था तो…।"

"मेरी आवाजसे जागा है…अच्छा जाओ अब तुम रसोईमें, मैं इसके पास हूं ।"

कृतज्ञतासे माधवीने पतिकी ओर देखा और चुपचाप बाहर आ गयी । धीरे-धीरे अंधकार बढ़ा आ रहा था। साथ ही नभसे उतरते अंधेरेमें तारिकाओंके चमकते कण प्रकट हो चले थे जो सुदूर थे सुन्दर थे और नेत्रको अपने में उलझा कर किसी कल्पनामें विभोर कर देनेवाले थे। पिताको शांत देखकर मुन्नी जो कुछ बड़ी थी धीरेसे बोली—

"मां रूठ दयी हैं ?"

विनोदने उसकी ओर देखा, फिर धीरेसे कहा—"हां।'

"क्यों ?"

"जो तुम रोने और मचलने लगी थीं ।"

"अब न मचलूं दी ।" छोटी बालिका बूढ़ों जैसी गम्भीर बन कर बोली ।

विनोदको हंसी आ गयी । वह कपड़े उतार चुके थे, बदन पर एक बनियाइन तथा जांघिया थी। मुन्नीने तपाकसे पूछा—

"मेरे लिये तस्वीर लाये !"

"ओह, हां रखी तो मैंने बहुत सी, पर चलते समय ड्रावर में भूल आया ।"

साथ ही विनोदका मस्तिष्क फिर अपने आफिसमें जा पहुंचा; कल्पना रानी मुस्करा कर जहां स्वागतके लिये खड़ी थीं—वह सोचने लगे—"थोड़ी कसर और रह गयी है । भाव

अभी पूर्णतया व्यक्त नहीं हो पाया है, केवल उसीको अङ्कित करना होगा । मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं होने दूंगा, न तो धनिक पर और न निर्धन पर । यह सत्य है कि धनिक लोग निर्धनोंको अपने थोड़ेसे पैसोंपर खरीदे रहते हैं; कमसे कम उनके अमूल्य और स्वस्थ जीवनको तो वह अवश्य पीस डालते हैं और जब छोड़ते हैं तब थकाकर बेकार और निर्बल बना कर; और इसके बदलेमें महीनेकी पहली तारीखको चांदीके कुछ टुकड़े भर देते हैं ।

पर मैं यह सब क्या खुराफात सोच रहा हूं ! आज मेरा सुधीर खाटपर पड़ा है उसकी न तो मैं सेवा ही कर सकता हूं और न उसकी उचित व्यवस्था; यों अपनेको समझा बुझा देनेके लिये यह उत्पात क्यों है ! जिस सज-धज और सफाईकी व्यवस्था मुझे 'बिजली' की करनी है, दीवालीका विशेषांक होगा, वैसा ही प्रकाशपूर्ण निर्मल…। इधर घर भी बिना मरम्मत एवं सफाईके पड़ा है, मकान मालिक रुपयोंका मालिक है किरायेदारोंकी सुविधा का नहीं ?"

तभी मुन्नीने पूछा —'बाबूजी—दीवाली कब होगी ?'

'किसी दिन हो ही जायगी ।' विनोदने उसकी ओर अरुचिके साथ देखा, फिर अपनी चिंतामें लीन हो गया ।

'मैं बहुतसे खिलौने खरीदूंगी ।'

'औल मिथाई बी…।'

'बाबूजी ! उस दिन इतने दीप क्यों जलाये जाते हैं ?'

'तब क्या रोज जलाये जांय ?'

दोनों लड़कियां स्वीकृति सूचक सिर हिलाती हुई बोलीं —'हानि क्या है ?'

'हां, हानि तो कुछ नहीं है, पर लाभ भी क्या है ?'

'रोज-रोज दीवाली चारों ओर उजाला ।'

'पर उसमें खर्च भी तो लगता है, सालमें एक दिनकी बात दूसरी है ।'

'तो उस एक दिन ही क्यों जलता है ?'

विनोद विचारमें पड़ गये—'जलाये तो लक्ष्मीके प्रसन्नतार्थ जाते हैं किन्तु उनका आवाहन केवल आवाहन भर ही रह जाता है ।' उन्होंने सिर उठाया—सिद्धि सदन गणेश और अतुल विभूति दात्री लक्ष्मी…नहीं वह तो भृगुजीकी उद्दण्डतासे ही रूठ चुकी हैं—विप्रवंश पर, सरस्वती उपासकोंपर, फिर उनकी कृपा हो भी तो कैसे ? अच्छा होता कि भगवान विष्णु भी उनको ब्रह्माकी तरह दुत्कार देते । वे भृगुजीके कोपके कारण बने और उनकी प्रतिक्रिया विष्णुपर चरण प्रहारके रूपमें प्रकट हुई। चरणोंकी सेवामें रत

लक्ष्मी आने देकर वह तिरस्कार क्योंकर सहन कर सकती थीं ? परिणाम वही हुआ, महान तो उठ बैठेऔरचरण दबवाते हुए अपनी कठोर छातीके आघातके लिये क्षमा मांगने लगे।

उन्हें महत सिद्धि प्राप्त हो गई, किन्तु लक्ष्मीकी कहीं भी कृपा नहीं हुई। सरस्वतीने लक्ष्मी द्वारा तिरस्कृत अपने पुत्रोंको अभय दान दिया किन्तु मनसा और वचसा तक ही। क्या आज वही दशा हमारी नहीं हो रही है ? आज मेरे कामसे ही समाज और साहित्यके उत्थान पतनका घोष होता है, आफिसकी टेबिलसे सरसराती लेखनी जिस समय संसारमें दहाड़ती है उस समय बड़े बड़े वक्ता मौन हो जाते हैं, बलवती राष्ट्रोंका मस्तक झुक जाता है, बड़े बड़े नेता बगलें झांकने लगते हैं, राज्य सत्ताका कठोर शासन दब जाता है और निर्बल जनता सबलताका अनुभव प्राप्त करती है। किन्तु मेरे बच्चे ! मेरी पत्नी ! बदलेमें मुझसे क्या पाती हैं ? महीनेमें चांदीके चन्द टुकड़े, जिनसे बंधा होनेपर भी बिखरा हुआ जीवन क्रम, उसीमें त्योहार बीमारी और विश्वका व्यापार चलाना पड़ता है फिर भी कलका कोई ठिकाना नहीं है।

सारे संसारमें विप्र जहां राष्ट्र एवं साहित्यके विधाता बन बैठे वहां उनकेलिये एक फूसका झोपड़ा, तथा जङ्गली कंद मूल आहारके लियेहै। उसीमेंतृप्तिऔर शान्ति। विप्र वंशको तबसे भयानक दैन्यका सामना करना पड़ा। सुव्यवस्था की बागडोर हाथमें रखते हुए भी उन्हें मधुकरीका पात्र ग्रहण करना पड़ा। इतनेसे ही उनकी विपत्ति न टली, वह घृणाके उपेक्षाके शिकार हुए जो जीवनके अनन्त क्षणोंको मृत्युसेभी बुरा बना देती हैं। अन्तमेंसबोंकोफिर सरस्वतीकी सेवा छोड़कर लक्ष्मीकी शरणमें जाना पड़ा। लक्ष्मी घृणासे मुख फेरकर खड़ी थीं। सरस्वती भी न सहायक हुई कि स्तुति द्वारा वह प्रसन्न की जातीं। आखोंमें आंसू और हृदयमें लज्जा भरकर वह उन्नत ललाटसे धरतीपर गिर पड़े, पर इससे क्या होता है, पतिके तिरस्कारका क्षोभ दूर हो सकता है ? जो उनके विशाल वक्षपर इतने जोर-से लात लगा था कि उसका निशान सदाके लिये अङ्कित हो गया है।क्या कौस्तुभ मणिकी जगह कठोरपैर ही उचित था, नहीं कभी नहीं, वह मुख न देखेंगी ऐसे वंशका। अब विश्व का ब्रह्मत्व- अहम्मन्य देवतेवालोंके लिये लक्ष्मीकी किंचित् कृपा-दृष्टि बहुत मूल्यवान् थी ! ऐसे महारथी दैन्यको अंकुश देना प्रभुके लिये आवश्यक था। अन्ततः अपनी पूजाके लिये आज्ञा दी कि जो दीपावलीके दिन सुगंधिसे विभूषित हो, घर भित धूपदानोंके धूमसे मण्डित हो, सारी रात उनका ध्यान और पूजन करेगा तब अर्द्ध निशामें श्वेत वसना, श्वेत पद्म-धारिणी प्रसन्न होकर उनके निर्मल मन्दिरमें प्रवेश करेंगी। किन्तु महाजनोंसे कर्ज लेकर दूकानदारोंसे घृत धूप आदि खरीदते देखकर उसके भी कान खड़े हो गये—"यह रोजके भिखारी आज इतना व्यय किस बूतेपर कर रहे हैं ? इसमें रहस्य है।"

सभी महाजनोंने एक साथ सिर हिलाया और कारण पूछा—विप्रवंशने सारी कथा सुनायी। तब तो असलीके स्थानपर नकली घृत-धूप मिले और सब कुछ महाजनकी कोठीमें पहुंचा इधर यह नकली वनस्पति घीके दुर्गन्धिपूर्ण प्रदीप जलाते हैं उधर नगरमें कीमती सुगन्धि और असली घृत दीप जले। अर्द्ध निशा आयी और आयी भाग्य लक्ष्मी— इस व्यापारमें विप्र समाज कच्चे साबित हुए और महाजन पक्के। हां, इसपर कृतज्ञ लक्ष्मी पुत्रोंने द्वादशी पूर्णिमा और अमावस्याको सीधा देनेका नियम बना दिया जो घर बैठे सरस्वती पुत्रोंको प्राप्त हो जाता था इतना क्या कम था। राष्ट्र और साहित्यकी बागडोरको अपने सबल किन्तु दीन-हाथोंमें धारण करनेवालोंको और चाहिये भी क्या ! दूसरों का कुशल चाहनेवालोंके हाथमें केवल कुश !

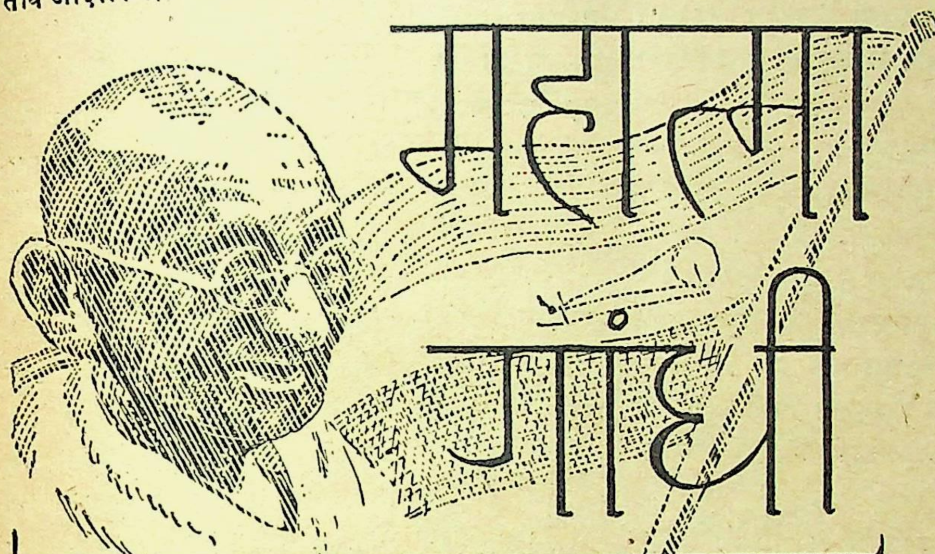
जीवनके प्रकाश पूर्ण दिनमें खटनेके बाद घर पहुंचो तब वही जंगली सादा आहार और सादा वस्त्र, मेरा, मेरे परिवारका। 'बिजली'का विशेषांक निकलेगा सम्पादित मैं करूंगा और जेब गर्म होगी संचालक की, लक्ष्मी आयेंगी उनकी सुरभिमय, प्रकाश पूर्ण कोठीमें और सरस्वती आयेंगी. मेरे घर, सादे वस्त्रमें निराभरण। बीमार सुधीरका क्या होगा ? दोनों बालिकाओंका क्या होगा ?

सुधीर सोतेसे उठ बैठा—"कितना अनार लाये हैं बाबू जी, एक. दो, तीन।" फिर वह गिर पड़ा।

विनोदने उसी दशामें देखा. मलिन-वसना पत्नी भी दौड़ कर आ गयी—उन्होंने सबोंको देखा, सब कुछ देखा और उन्मादीकी भांति बोले —

"अभी लाया सुधीर, हां सचमुच तीन अनार आयेंगे। मैं बिकूंगा और लाऊंगा, तुम अच्छे हो जावो।"

वह खूंटीसे कमीज उठाते हुए बाहर निकल गये। दोनों बालिकाएं एक दूसरेकी ओर देखने लगीं—'एक मुझे भी मिलेगा'. और माधवी ! जनताके, समाजके सेवककी ओर दयाभरी दृष्टिसे देखती हुई दो मोतियां बिखरा कर बेटेकी शैयापर आ बैठी।



श्री जहूर बख्श हिन्दी कोविद

भारतवर्षमें जितने महापुरुष हुए हैं, उनमें महात्मा गांधीका विशेष स्थान है। परमात्माने उनके रूपमें भारतवर्षको एक ऐसा अपूर्व और गरिमा-मय दान दिया है जो अनुपमेय है—अपनी उपमा आप है। महात्मा गांधी भारतीय आदर्शके प्रतीक हैं और उनमें भारतीय संस्कृति अत्युच्चकोटिके विकासको प्राप्त हुई है। भारतके चरम उत्थानकी एकांत भावना ही उनके श्वासोच्छ्वासकी प्राण वायु है। उन्होंने भारतवर्षको और विश्वको जो कुछ दिया है, उसमें नवीनता न होनेपर भी जो मौलिकता है वह एकमात्र उनकी अपनी है। उनकी इस मौलिकताने भारतकी इस धमनियोंमें एक ऐसे शक्ति स्रोतका सञ्चार किया है जिसका प्रबल प्रवाह अत्यन्त तीव्र गतिसे उसे चरम उत्कर्षके सागरकी ओर लिये जा रहा है। मानवी दृष्टिसे महात्मा गांधी पूर्ण पुरुष हैं; और उनमें जो पूर्ण पुरुष वास करता है वह भारतके एक-एक शिशुको पूर्ण पुरुषके विकसित रूपमें देखनेका अभिलाषी है। अपनी इस सदभिलाषाकी पूर्तिके हेतु उन्होंने जो त्याग किया है—जो तप किया है, वह इतना महान है कि उसकी सीमाका स्पर्श कर सकना भी सम्भव नहीं है।

धार्मिक दृष्टिसे ईश्वरमें अखण्ड विश्वास रखना और उनकी निश्छल उपासना करना मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य है। महात्मा गांधीमें ये दोनों गुण ऐसी विकसित-मात्रामें विद्यमान हैं कि वे अन्तर्प्रेरणाकी ध्वनि सुनते हैं और—तदनुसार ही उनके सम्पूर्ण कार्य होते हैं। उनकी अन्तर्प्रेरणाकी ध्वनि इतनी गम्भीर—इतनी शक्तिशाली होती है कि उसके सामने सरस्वतीके प्रबलसे प्रबल तर्क भी चूर-चूर हो जाते हैं। परन्तु ईश्वरके प्रति अखण्ड विश्वास एवं निश्छल उपासना-भावकी पूर्ण समाप्ति तो जनता-जनार्दनकी सेवामें ही होती है। अतएव गांधी-जीवनका भी एक-एक क्षण जनता-जनार्दन के प्रति उत्सर्ग होनेको आकुल रहता है। उनकी इस सेवा-धर्म-मय-कर्त्तव्य धारा में मनुष्यके भयानकसे भयानक विरोध और प्रतिरोध तिनकेके सदृश बह गये हैं। इस सम्बन्धमें उनके वेश्याओं और हरिजनोंके प्रति किये गये प्रयत्न हमारे सामने बड़े ही बलदायक उदाहरण पेश करते हैं। जिन वेश्याओंको संसार घृणाकी दृष्टिसे देखता है उनमें महात्मा गांधीने प्रभुकी साकार ज्योतिके दर्शन किये और दया विगलित हृदयसे उनके अन्तरमें होनेवाले करुण हाहाकारको सुना। उनकी इस भावनापर सङ्कीर्णता, अभिमान और घृणासे हंस पड़ी। परन्तु महात्मा गांधीने निस्सङ्कोच भावसे वेश्याओंके प्रति 'बेटी' और 'बहिन' जैसे पवित्र शब्दोंका सम्बोधन किया, एवं समाजके इस दूषित अङ्गकी ओर सहानुभूतिका निमन्त्रण दिया। ऐतिहासिक दृष्टिसे महात्माजीके इस कृत्यका महत्व भगवान् बुद्ध और अम्बापालीकी घटनासे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। हरिजनोंके प्रति तो महात्माजीकी निस्पृह एवं सक्रिय सहानुभूति भारतीय इतिहासमें स्वयं ही उपमा और उपमेय जैसी घटना है। समाजमें सदियोंसे हरिजनोंके प्रति घृणाका जो गहरा अन्धकार छाया हुआ था; उसे नष्ट करनेके लिये महात्माजी सूर्यसे किसी प्रकार कम प्रमाणित नहीं हुए। यद्यपि धार्मिक सङ्कीर्णताका हिंसक गोर-बम विस्फोटके साथ भीषण सिंहनाद करता रहा, तथापि महात्माजी

पर्वतके समान गम्भीर बने रहे । हरिजनोंके प्रति उनकी कार्यकारिणी शक्ति अबाध गतिसे बढ़ती गयी। फलतः उच्च जातीय अभिमानके पैर ढीले पड़ गये और अब समाजको बोध हो रहा है कि हरिजन रूपी अङ्गको अशक्त और अक्रिय रखकर उसने वास्तवमें अपने ही साथ एक घृणित पाप किया था । इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वतीने हरिजन उत्थानका जो कोमल पोधा रोपा था वह आज महात्मा गांधीकी स्नेहवृष्टि द्वारा पल्लवित और पुष्पित होता दिखायी दे रहा है।

उक्त कार्य जहां महात्माजीके सेवा-धर्मके द्योतक हैं, वहां उनके पवित्र प्रेमके भी सूचक हैं ! वास्तवमें महात्माजी के प्रेमकी परिधि असीम है । उसने जाति और देशसे आगे बढ़कर सम्पूर्ण विश्वको आवृत कर लिया है। आज संसारमें ऐसा कौन है, जिसकी ओर महात्मा गांधीके प्रेम-सागरकी निर्मल लहरें नहीं बढ़तीं ? यदि हरिजन उनके हार हैं, तो मुसलमान नयन-तारे । एक बार स्वर्गीय सर अहमद साहबने कहा था कि हिन्दू और मुसलमान मेरी दो आंखें हैं। उनके इस कथनको महात्माजीने व्यावहारिक और प्रयोगात्मक रूपसे सत्य कर दिखाया है। वे हिन्दुओं और मुसलमानोंको सदैव एक दृष्टिसे देखते हैं। उनके सामने न एक अधिक है और न दूसरा कम । अपनी इस भावनाको मूर्तरूप देनेके लिये उन्होंने हिन्दू-मुसलिम ऐक्यके सम्बन्धमें अधिकसे अधिक प्रयत्न और कठोरसे कठोर तप किया है। हिन्दू और मुसलमान तो भारतीय ही ठहरे महात्मा गांधीके समक्ष एक साम्राज्यवादी अङ्गरेज या जर्मन भी कुछ कम प्रेमपात्र नहीं हैं और उनका कोमल हृदय उसके एक रक्त-बिन्दुको भी भूपतित होता हुआ नहीं देख सकता। इसी औदात्यपूर्ण, प्रेमभावनाकी ओटमें महात्माजीने अपने भयानक और घातक शत्रुको भी एक मधुर मुसकानके साथ क्षमा कर दिया है । वास्तवमें उनकी प्रेमसाधना और क्षमाशीलता लोकोत्तर है धन्य है।


किशोर गांधी

प्रकृतिका यह नियम है कि त्याग, पर दुःख-कातरता, कष्ट-सहिष्णुता, शांति आदि गुण-विशुद्ध प्रेमोपासकके पीछे-पीछे चलते हैं। महात्मा गांधीका त्याग आकाशके समान अनन्त है। वे "कबिरा खड़ा बजारमें, लिये लुकाठ़ी हाथ; जो घर फूके आपना, चले हमारे साथ" वाली उक्तिके प्रत्यक्ष आदर्श हैं। देशप्रेमके लिये उन्होंने अपने विलास और ऐश्वर्यका धूल सदृश्य त्याग दिया है और अब उनके पास एक लघु वस्त्रखण्डके सिवा कुछ शेष नहीं रहा है। महात्मा गांधीके इस त्यागका पर-दुःख-कातरतासे घनिष्ठ सम्बन्ध है । उन्होंने नमक, घी और शक्कर जैसे स्वादिष्ट पदार्थोंका त्याग और सस्ते तथा पौष्टिक भोजनोंका आविष्कार केवल अपने आत्मिक विकास या शारीरिक विकारोंके दमनार्थ ही नहीं किया है; वरन् दीनजनोंके प्रति हार्दिक सहानुभूति भी उनके इन कार्योंका एक उद्देश्य रहा है। पर-दुःख-कातरताकी दैवी भावनाने उनको इस प्रकार अनुप्रमाणित कर रखा है कि वे दीनोंकी अधिकार रक्षा और दुखियोंकी सेवाके लिये मैला साफ करते हुए भी संकुचित नहीं होते । इस पर-दुःख-कातरता ने महात्मा गांधीको कष्ट-सहिष्णु बना दिया है। उन्होंने वर्षों बन्दीगृहकी यातनाएं सही हैं परन्तु उनके अधरद्वय सदैव एक दिव्य मुस्कानसे रंगे हुए दिखायी दिये हैं। शांतिके तो वे सागर ही हैं । भयंकरसे भयंकर स्थलमें भी कभी उनकी शांति उद्वेलित होती हुई नहीं देखी गयी। उनके जैसे शांति उपासक इस समय कदाचित् विश्वभरमें मिलना असम्भव है। अपने इन गुणोंसे महात्माजीने भारत को गम्भीर एवं स्थायीरूपसे प्रभावित किया है और इन्हीं गुणोंके कारण अनेक विदेशी श्रद्धालु उनमें महात्मा बुद्ध या हजरत ईसाकी प्रतिच्छविके दर्शन करने लगे हैं।

विगत यूरोपीय महायुद्धके अवसरपर मौलाना शिबलीने अङ्गरेजोंको लक्ष्य करते हुए कहा था —

"इस सादगीपर कौन न मर जाये ऐ खुदा!
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं !!"

वास्तवमें शिबली साहबकी इस उक्तिके आदर्श तो महात्मा गांधी ही हैं। वे प्रकृतिसे योद्धा हैं और उनका सम्पूर्ण जीवन युद्धमय रहा है। एक योद्धामें जितनी वीरता होनी चाहिए, उनमें सदैव उससे कहीं अधिक मात्रामें

पायी गयी है। उन्होंने बार बार खाली हाथों और खुली छातीसे महान् ब्रिटिश साम्राज्यकी असीम शक्तिको चुनौती दी है और संसारने प्रत्येक बार देखा है कि समरभूमिमें एक ओर महात्मा गांधी अजेय भावसे खड़े मुस्कुरा रहे हैं और दूसरी ओर पशुबलकी वह अधिष्ठात्री देवी कांप रही है। भारतके इतिहासमें उनकी वीरताका यह उदाहरण अप्रतिम है और उसकी गणना सदैव, संसारकी आश्चर्य-जनक एवं कौतूहलपूर्ण वस्तुओंमें की जायगी। महात्माजी के यौद्धिक जीवनमें एक और भी बड़ी विशेषता है। गम्भीर से गम्भीर युद्धमें व्यस्त रहने पर भी उनके समयका एक एक क्षण रचनात्मक कार्योंमें व्यय होता है। उत्तमसे उत्तम लेखों-की एक बड़ी संख्या युद्ध कालमें ही उनकी लेखनीसे प्रसूत हुई है।

महात्माजी जैसे त्याग-वीर और युद्ध-वीर हैं, वैसेही सत्य-वीर भी हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन सत्यका प्रयोग करते करते ही व्यतीत हुआ है। उनको कभी किसीने सत्यसे पश्चात्पद होते नहीं देखा। उनका अन्तर और बाहर सत्यपूर्ण है। सत्य ही उनका शस्त्र और सत्य ही उनका अस्त्र है तथा सत्य ही उनका युद्ध-बल है। सत्यका सम्बल लेकर ही वे प्रत्येक युद्धमें अजेय रहे हैं। महात्माजी दानवीर ऐसे हैं कि उन्होंने अपना तन, मन, धन और परिवार तक स्वदेशको अर्पण कर दिया है। इतना ही नहीं, उनके जीवनकी सम्पूर्ण साधना भी आज देशकी अमूल्य निधि बनी हुई है। महात्माजी वाग्वीर ऐसे हैं कि उनकी मनोहर वाणीके सामने बड़े बड़े विरोधी प्रभावित और पराभूत होते हुए देखे जाते हैं। 'प्रण-वीर' और 'कर्म-वीर' तो वे पहिलेसे ही हैं। उन्होंने जो प्रण किया, उसका निर्वाह भी अवश्य किया। जिस कार्यमें हाथ लगाया, उसे तत्परता और दृढ़तासे समाप्त करनेकी चेष्टा की। धर्म-वीरमें जो गुण होने चाहिये वे भी महात्माजीमें विद्यमान हैं। उन्होंने आरम्भसे जिस सेवा-धर्म या मानव-धर्मको ग्रहण किया है, वे उसपर सदैव समान भावसे स्थित पाये जाते हैं। कहनेका अभिप्राय यह कि महात्मा गांधी सर्व-लक्षण-युक्त वीर पुरुष हैं और ऐसे वीर पुरुष संसारमें क्वचित् ही पाये जाते हैं।



विद्यार्थी गांधी

कहते हैं कि वीर पुरुषोंके हृदय पुष्पसे भी अधिक कोमल और वज्रसे भी अधिक कठोर होते हैं। महात्मा गांधीका चरित्र इस लोकोक्तिका पूर्णतया समर्थन करता है। उनके हृदयमें निस्सन्देह पुष्पकी कोमलता और वज्रकी कठोरता पायी जाती है। दीन-दुखियोंके प्रति करुणार्द्र होना तो उनका नित्य कर्म है। परन्तु उनके हृदयकी पुष्पाधिक कोमलताका सर्वोत्तम परिचय उस दिन मिला था जिस दिन उन्होंने साबरमती आश्रममें असह्य यन्त्रणासे छटपटाते हुए बछड़ेपर गोली चलवा दी थी। इस घटनापर भारतकी सङ्कीर्ण धर्मान्धता अत्यन्त क्षुब्धतथा मर्माहत हो उठी थी परन्तु महात्माजीने जिस दृढ़तासे उसका सामना किया था वह अवश्य ही वज्राधिक कठोर थी। अनौचित्यके प्रति तो महात्मा जीकी कठोरता सदासे हमारे सामने एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती रही है।

उपरोक्त सद्गुणोंके कारण महात्मा गांधीकी विद्याबुद्धि का भी बड़ा सुन्दर निखार हुआ है। भारतमें अवश्य ही महात्मा गांधीसे श्रेष्ठ विद्या-वागीशोंका अभाव नहीं है, परन्तु महात्मा गांधीकी विद्या-बुद्धि और प्रतिभा शुद्ध राष्ट्रीय सम्पत्ति है। उसपर जन साधारणका एकाधिपत्य है और गत पचीस वर्षमें केवल उसीके सहारे भारतकी बड़ी बड़ी सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याएं हल हुई हैं। महात्माजी राजनीतिके धुरन्धर आचार्य हैं। वे जटिलसे जटिल राजनैतिक गुत्थीको उसी प्रकार चुटकी बजाते सुलझा देते हैं. जिस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस कठिनसे कठिन आध्यात्मिक पहेलीको एक छोटीसी कहानी द्वारास्पष्ट कर देते थे परन्तु महात्माजीकी राजनीति छलकौशल रहित शुद्ध सात्विकऔर दर्पणके समान उज्ज्वल है। यथार्थमें उनका सम्पूर्ण जीवन पवित्र राजनीतिसे ओत-प्रोत है। इस सम्बन्धमें एक उदाहरण देना सम्भवतः अनुचित न होगा। महात्माजी नमक सत्याग्रहके लिये डंडीकी ओर कूच कर रहे थे और सो भी अपनी नीतिका स्पष्ट सन्देश लार्ड इर्विन महोदयके निकट भेजते हुए। ऐसी पवित्र राजनीतिका इतना सुन्दर उदाहरण संसारके इतिहासमें क्वचित् ही मिलेगा।

नेतृत्वकी दृष्टिसे महात्मा गांधीका स्थान अत्युच्च है। एक सर्वश्रेष्ठ नेतामें जो गुण होने चाहिये वे सब उनमें पूर्ण मात्रामें विद्यमान हैं। इस सम्बन्धमें उनकी तुलना निस्सन्देह श्रीकृष्णसे की जा सकती है। जिस प्रकार श्रीकृष्णने महाभारतका नेतृत्व किया था उसी प्रकार गत पच्चीस वर्षोंसे महात्मा गांधी भी एक अत्यन्त कुशल सेनापतिके सदृश भारतीय स्वातन्त्र्य युद्धका सञ्चालन कर रहे हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय स्वतन्त्रताका युद्ध महाभारतकी अपेक्षा कहीं विशेष महत्व पूर्ण है और महात्माजी उसे अविराम गतिसे सफलता पूर्वक चलाते जा रहे हैं। इतना ही नहीं देशमें जितने भी राजनीतिक आन्दोलन चलते हैं उन सबके केन्द्र बिन्दु भी महात्माजी रहते हैं और उन सबको महात्माजीकी अपूर्व कार्यक्षमतासे विशेष बल प्राप्त होता है।



बैरिस्टर गांधी

हमने अभी तक जो विवेचन किया है. उससे सिद्ध होता है कि महात्मा गांधी ऐसे दिव्य पुरुष हैं, जिनके अस्तित्वसे कोई भी राष्ट्र अपनेको महान गौरवशाली एवं सौभाग्यशाली समझ सकता है। परन्तु जनसाधारण ही नहीं बहुधा शिक्षित जन भी महापुरुषोंके जीवनमें चमत्कारका अनुसन्धान करनेके अभिलाषी रहते हैं। अपनी इसी प्रवृत्तिके अनुसार ग्रामीण जनोंने महात्मा गांधीके सम्बन्धमें अनेक मनोरंजक एवं चमत्कार पूर्ण कहानियां गढ़ डाली हैं। कभी कभी साधारण पढ़े-लिखे लोगोंके मुंहसे भी उनके विषयमें एकाध चमत्कारपूर्ण बात सुनाई दे जाती है। तो क्या वास्तवमें गांधी जीवन चमत्कार पूर्ण है? हां, वह निस्सन्देह चमत्कारोंका आधार है। ऊपर हमने महात्माजीके जिन गुणों और कार्योंका उल्लेख किया है उन्हींमें विचारवान पाठकोंके लिए चमत्कारोंका कोई अभाव नहीं है। फिर भी अगली पंक्तियोंमें उनके कुछ दिव्य चमत्कारोंका उल्लेख करना सुखद प्रतीत होता है।

जब अगणित भारतीय भूखकी ज्वालामें छटपटा रहे थे दो हाथ वस्त्रके लिये तरस रहे थे तब इस वैज्ञानिक युगमें महात्मा गांधीकी दृष्टि चरखेपर जाकर ठहर गयी। उनको उसमें भारतीय दासत्वके बन्धन शिथिल होते हुए दिखायी दिये। फलतः चरखे और खद्दरका आन्दोलन उन्नत होने लगा। साधारणजनोंकी तो बात ही क्या, विलासमें आकण्ठ लिप्त बड़े-बड़े लक्ष्मी-पुत्र भी खद्दरके अनन्य उपासक बन बैठे। फिर तो खद्दरका महत्व यहां तक बढ़ा कि उसने फैशनका स्वरूप धारण कर लिया। यह खद्दरकी ही कृपा है जो आज अगणित दीनजनोंको दो रोटियां मिलने लगी हैं स्वदेशी वस्त्र व्यवसाय की आशातीत उन्नति हुई है और विदेशी वस्त्र व्यवसायकी कमर टूट गयी है। क्या यह महात्मा गांधीका असाधारण चमत्कार नहीं है? वास्तवमें उन्होंने खद्दरके रूपमें मृतप्राय देशको संजीवनी बूटी देकर वैसा ही कार्य किया है जैसा कि कोई तपस्वी अपने तपोबलसे किसी मृतकको अपने एक ही पदाघातसे जीवित कर दे।

यदि कोई महात्मा गांधीका इससे भी बढ़ कर चमत्कार देखनेको इच्छुक हो तो उसे सत्याग्रह आन्दोलनके इतिहासका अध्ययन करना चाहिये। सत्यकी शक्ति सदैव अजेय मानी गयी है। परन्तु यह तथ्य सर्वांशमें सत्य नहीं है। संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है कि सत्य सदा ही विजयी नहीं होता। अनेक बार उसे निर्बल असत्यके सामने पराजित होना पड़ा है। अतएव महात्मा गांधीने सृष्टिमें पहली बार अहिंसाका पुट देकर सत्यको सदाके लिये अजेय बनानेकी चेष्टा की है। निस्सन्देह उनका यह प्रयत्न मौलिक था और वह सर्वथा सफल रहा। संसारने आंखें खोल कर देखा कि उन जैसे अस्थि-चर्मावशिष्ट निहत्थे तपस्वीके सामने दक्षिण अफ्रिकाकी गर्वीली ब्रिटिश-सत्ता नत-मस्तक हो गयी। क्या यह महात्मा गांधीका कोई साधारण चमत्कार था?

परन्तु महात्मा गांधीके असाधारणसे असाधारण चमत्कार तो उनके अहिंसा-धर्मकी साधनासे ही संलग्न हैं। अहिंसा भारतके मानव धर्मका एक बहुत प्राचीन अंश है। महात्मा बुद्ध और वर्द्धमान महावीर उसके सबसे बड़े प्रचारक हो गये हैं। परन्तु उनका दृष्टिकोण विशुद्ध धार्मिक था और उन्होंने प्राणीमात्रको कर्म और वचनसे तो क्या

साठ वर्षतक जिन्दा रहना भी गनीमत समझा जाता है। कितने ही तो भरी जवानीमें इस संसारसे विदा हो जाते हैं और बहुतोंकी जवानी आती ही नहीं वे उससे पहले ही मर जाते हैं। कितने ही आदमीको जवानीसे पहले ही बुढ़ापा आ घेरता है प्राचीनकालमें आदमीका जीवन प्राकृतिक होनेकेकारण स्वास्थ्यके नियमोंका स्वयं पालन हो जाता था। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती गयी, जीवनमें कृत्रिमता आती गयी। अब गांवोंका हाल होता गया। शहरी जीवन बढ़ गया। शहरोंमें रहनेवाले सभ्य आदमी प्रायः पैदल बहुत कम चलते हैं, थोड़ी दूर जानेके लिये भी सवारीका उपयोग करते हैं। बहुतसे काम मशीनोंसे हो जाते हैं, इससे आदमी दौड़-धूप और मेहनतके दूसरे कामोंसे भी जी चुराते हैं। बहुधा आदमी दिन भर घर या कारखानेके भीतर काम करते हैं, जिससे ताजी हवा या आक्सीजन काफी मात्रामें नहीं ले सकते। कितने ही विद्यार्थी और नौकर या कारीगर आदि रातको भी बहुत देरतक काम करते रहते हैं। बिजलीकी रोशनी होनेसे इसमें बड़ी असुविधा हो गयी है। इस तरहसे समयपर और काफी देरतक वे नहीं सो सकते। फिर सिनेमा, थियेटर आदि मनोरंजन भी आजकल बहुत बढ़ गये हैं। ये भी दर्शकोंकी नींद पूरी होनेमें बड़े बाधक हैं। यह तो व्यायाम और विश्रामकी बात हुई। इसी तरह भोजन, वस्त्र और मकानके बारेमें विचार किया जा सकता है। तन्दुरुस्ती और दीर्घ जीवनके लिये बहुत जरूरी बातोंमेंसे कुछ ये हैं—सादा खान-पान, शारीरिक परिश्रम या व्यायाम, काफी समयका विश्राम या निद्रा, खुली या ताजी हवामें रहना, कुछ अंशतक धूपका सेवन और मनकी प्रसन्नता। इन बातोंकी उपयोगिता विज्ञानने भलीभांति सिद्ध कर दी है, पर अभी वैज्ञानिक नियमोंका प्रचार बहुत कम हुआ है और कितने ही आदमी यह जानते हुए भी कि अमुक बातें हमारे स्वास्थ्यके लिये हानिकर हैं, अपनी आदत या दूसरे कारणोंसे उन्हें छोड़ नहीं रहे हैं। जिन-जिन देशोंमें विज्ञान की उन्नति और प्रचार अच्छी तरह हो गया है और अनुकूल वातावरण बन गया है, उनके निवासियोंके स्वास्थ्यमें काफी सुधार हुआ है और हो रहा है।

मौजूदा हालतमें संसारके बहुतसे हिस्से ऐसे हैं, जो न तो पुराने जमानेकी तरह प्राकृतिक जीवन ही बिताते हैं और न उनमें स्वास्थ्य-विज्ञानके ही यथेष्ठ व्यवहारके साधन हैं। इन हिस्सोंमें लोगोंका स्वास्थ्य बहुत खराब है और औसत उम्र भी बहुत कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन देशोंमें सर्वसाधारण इतने गरीब हैं कि काफी भोजन नहीं मिल पाता। लाखों और करोड़ों आदमियोंको सालभरमें कभीभी भरपेट भोजन नहीं मिलता।

इसके अलावा बहुतसे आदमी जो भोजन करते हैं, उसमें पोषकतत्व बहुत कम होता है। विज्ञान कई बातोंमें लोगोंको प्राकृतिक जीवनकी उपयोगिता बताकर उन्हें अपना खान-पान और रहन सहन सादा बनानेकी प्रेरणा देता है। उदाहरणके लिये विज्ञानसे मालूम होता है कि मैदा या बेसनका उपयोग स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक है उसकी जगह हाथ चक्कीका पिसा आटा अधिक लाभकारी है, भुने हुए अन्नमें पोषकतत्व और भी अधिक होते हैं। तले हुये या छौंके हुये पदार्थ, मिठाई, पकवान आदिका सेवन जहां तक हो सके, न करना चाहिये। हरे शाक तरकारी फल आदि बहुत गुणकारी हैं। मिर्च मसाले आदि शरीरके लिये अनावश्यक हैं। चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट, भांग, गांजा, शराब, अफीम आदि तो बहुत ही नुकसान पहुंचाते हैं। इसी तरह आदमीको अपना शरीर हर समय बहुतसे कपड़ोंसे ढ़के रखना ठीक नहीं, बदनमें कपड़ा हलका रहे और जहां तक बने कुछ समय तो उसे खुला रखकर धूप और हवा लगने देना चाहिये। सभ्य आदमीने अर्धनग्न अवस्थासे घृणा की, लेकिन विज्ञानने बताया कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे 'अर्धनग्न' रहना अधिक लाभकारी है। इसी तरह सभ्यताने कई कई मंजिलोंके, आसमानसे बातें करने वाले, पक्के मकान बनाए। लेकिन यह अनुभव किया जा रहा है कि एक मञ्जिलके खुले मकान बहुत उपयोगी हैं। कुछबातोंमें कच्चे मकानकी यदि उनकी ठीक सार-संभार होता रहे तो वे पक्के मकानोंसे भी अधिक लाभकारी हैं।

आदमीने सभ्यता की ओर कदम बढ़ाया, सोचा था, इससे अधिक सुख मिलेगा। पर ऊपरके विवेचनसे मालूम होता है कि हम 'असभ्य' आदमीकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ नहीं है, बल्कि अधिक कमजोर रोगी और थोड़ी उम्र वाले हैं। सभ्यता हमारे लिये वरदान न होकर अभिशाप बन रही है। कहा जा सकता है कि 'आदमी अभी पूर्ण सभ्य नहीं हुआ है, सभ्यता अभी अधूरी है, पूर्ण सभ्यता आदमीको स्वस्थ, बलवान और अधिक उम्रवाला बनावेगी।' यह तो एक अलग ही विषय है। मौजूदा हालतमें हमें चाहिये कि अगर हम सुख और स्वास्थ्य चाहते हैं तो यथासम्भव प्राकृतिक जीवन बितावें। फैशन, शौकीनी और आडम्बरसे बचें। इसीमें हमारा वास्तविक हित है।

जारके शासनकालमें रूसकी महिलाओंको तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं थी। रूसी महिलाओंको किसी भी विषयमें अपना मत प्रकट करनेका अधिकार नहीं था। सरकार और जन कार्योंमें उसके लिये दरवाजे बन्द थे। वैवाहिक सम्बन्धोंको निश्चित करने वाले जार शाही कानूनमें औरतोंको दासीसे कुछ भी अधिक अधिकार नहीं दिये गये थे। पैदाइश दुर्भाग्यसूचक समझी जाती थी और यदि किसीपरिवारमें अनेक बालिकाएं पैदा हो जातीं थी तो उसे बड़ाही अपमानजनक समझा जाता था। किन्तु रूसकी महान अक्तूबर समाजवादी क्रांतिने महिलाओंको पुनर्जन्म दिया। इसके परिणाम स्वरूप रूसी महिलाओंको पुरुषोंके बराबर अधिकार प्राप्त हुए। रूसी सोवियट संघके विधानके अध्याय १२२ में कहा गया है—'रूसी सोवियट संघकी महिलाओंको आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवनमें पुरुषोंके बराबर अधिकार प्रदान किये जाते हैं। पुरुषोंके बराबर स्त्रियोंको काम, कामका पारिश्रमिक, विश्राम एवं छुट्टी, सामाजिक-

सोवियट रूसकी महिलाएं

श्रीमती माधवी देवी विशारदा

उस समय पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां अधिकतर निरक्षर हुआ करती थीं। श्रमिक वर्गकी स्त्रियोंके भाग्यमें खासकर आनन्द नामकी कोई चीज नहीं थी। मजदूरनी स्त्रियों और बालिकाओंसे मोटे और सख्त काम कराये जाते थे और उनको पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत कम मजदूरी दी जाती थी। पुरुषोंके समान उनको प्रतिदिन १० से १२ घंटे तक काम करने पड़ते थे और उनका जीवन अर्द्ध बुभुक्षित, अज्ञान और अभावकी अवस्थामें व्यतीत होता था। अक्सर बेकारी और निर्दय शोषणके कारण श्रमिकोंके परिवार छिन्न भिन्न हो जाया करते थे। सुबहसे शाम तक अथक परिश्रम करने वाली किसान महिलाओंकी अवस्था भी किसी हालतमें अच्छी नहीं थी।

रूसकी अनेक अल्पसंख्यक जातियोंकी महिलाओंकी हालत सबसे अधिक दयनीय थी। जारके रूसके पूर्वी इलाकोंकी महिलाएं अत्यन्त साधारण मानव अधिकारोंसे भी वंचित थीं। उनको अपना चेहरा बुर्केके अन्दर छिपाये रखना पड़ता था। पुरुषोंके साथ एक टेबुलपर बैठनेकी भी उनको इजाजत नहीं थी। किसी परिवारमें बालिकाकी

बीमा और शिक्षाके अधिकार देकर तथा माताओं और शिशुओंके स्वार्थोंकी सरकार द्वारा हिफाजत तथा गर्भावस्था और सन्तानोत्पत्तिमें पूरे वेतनके साथ छुट्टी और जच्चा गृहों तथा शिशु-सदनोंकी सुविस्तृत व्यवस्था कर उन अधिकारोंके उपयोगकी सम्भावनाको महिलाओंके लिये सुनिश्चित बनाया जाता है।" रूसी सोवियट सङ्घके विधानके अध्याय १३७ में कहा गया है—"महिलाओंको पुरुषोंके समान निर्वाचन करने और निर्वाचित होनेका अधिकार है।"

रूसी महिलाओंको कानूनके अनुसार प्राप्त अधिकारोंका उपयोग करनेका सभी मौका दिया जाता है। आज सोवियट सङ्घके राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्रकी सभी शाखाओंमें असंख्य महिलाएं काम कर रही हैं। रूसकी दोनों पञ्चवर्षीय योजनाओंकी अवधि (१९२८-३७) में काम करनेवाली महिलाओंकी संख्या ३० लाखसे बढ़कर ९० लाख तक पहुंच गयी हैं। इसके साथ ही महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्योंमें भी महान परिवर्तन हो गया है। जारके रूसमें १८९७ की जनगणनाके अनुसार श्रमजीवी महि-

लाओंमेंसे ५९ प्रतिशत बड़े जमीन्दारों, पूंजीपतियों, व्यापारियों और धनी सरकारी अफसरोंके गृहोंमें नौकरानीका काम किया करती थीं, २९ प्रतिशत बड़े खलिहानोंमें नियुक्त थीं, ४ प्रतिशत शिक्षा और स्वास्थ्य संस्थाओंमें काम करती थीं और १३ प्रतिशत उद्योग कारखानोंमें नियुक्त थीं। १९३६ में सोवियट रूसकी कुल श्रमजीवी महिलाओंमेंसे ३९ प्रतिशत बड़े उद्योग-धन्धोंमें तथा १९ प्रतिशत दूकानों भोजनालयों और यातायात प्रतिष्ठानोंमें काम किया करती थीं और २० प्रतिशत डाक्टर अथवा शिक्षक थीं तथा सिर्फ दो प्रतिशत गृहोंमें नौकरानीका कार्य करती थीं। शेष २४ प्रतिशत महिलाएं विभिन्न उद्योग-धन्धों, विज्ञान अथवा कलाके कार्यमें नियुक्त थी।

सोवियट रूसमें ऐसे अनेक उद्योग प्रतिष्ठान हैं, जिनमें महिलाओंकी संख्या पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक है। लेनिनग्राडके स्कारोखोद जूताके कारखानेमें कामकरनेवाली महिलाओंकी संख्या ६० प्रतिशत है। उत्पादन और साधारण जनकार्यमें समान रूपसे सक्रिय भाग लेनेमें महिलाओंकी सहायता करनेके लिये सोवियट सरकारने असंख्य धातृगृहों और शिशुसदनोंकी स्थापना की है, जहां माता अपने बच्चोंको रखकर काम करने जा सकती है। १९३७ में सोवियट रूसके धातृगृहों और शिशुसदनोंमें १८ लाखसे अधिक शिशुओंके लिये स्थान था। तृतीय पञ्चवर्षीय योजनाके अनुसार १९४२ तक ४ लाखसे अधिक शिशुओंके लिये स्थानकी व्यवस्था की गयी। सामूहिक खलिहानों द्वारा फसलके समय स्थापित शिशु सदनों और धातृगृहोंमें ५७ लाखसे अधिक शिशु १९३७ में रखे गये थे। सर्वसाधारण भोजनालयों और तैयार भोजनकी सुविस्तृत बिक्रीसे भी रूसी महिलाओंको अपने घरेलू कार्योंके एक बहुत बड़े भाग से छुट्टी मिलती है। रूसमें ३० हजारसे अधिक साधारण भोजनालय हैं; १९३८ में उन भोजनालयोंमें १२ अरब रुबल और १९३९ में १३ लाख ५० करोड़ रुबलकी खाद्य वस्तुएं बिकीं।

रूसके अन्य सभी श्रमिकोंके समान रूसी नारियोंको भी प्रतिदिन ७ घण्टे काम करना पड़ता है किन्तु अनेक प्रकारके ऐसे कार्य भी हैं जहां सिर्फ छः घण्टे भी काम करना होता है। पुरुषों और स्त्रियों—दोनोंको समान काम और समान पारिश्रमिक मिलता है। पुरुषोंके समान ही रूसी नारियां वार्षिक छुट्टी पाती हैं और उसका वेतन भी उनको मिलता है। स्वास्थ्य सुधारनेके लिये किसी स्वास्थ्यकर स्थान अथवा विश्रामकेन्द्रमें वे निःशुल्क रह सकती हैं। अच्छे कार्य करने अथवा विशेष चातुर्य दिखाने पर महिलाओंको सम्मानित भी किया जाता है।

शताब्दियोंसे जिन कार्योंको पूर्णतया पुरुषोंका समझा जा रहा था, उनको भी रूसी नारियां क्रमशः अपने हाथोंमें लेने लगी हैं। सेना विभागमें भी नारियोंकी कमी नहीं और अनेक रूसी नारियां वर्तमान युद्धमें विशिष्ट पराक्रम प्रदर्शित कर चुकी हैं। क्रांतिके पूर्व रेलवेमें किसी महत्वपूर्ण पदपर स्त्रियोंको नियुक्त नहीं किया जाता था किन्तु आज रूसी रेलोंमें ९ लाखसे अधिक स्त्रियां काम कर रही हैं और उनमें अनेक दायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हैं। इन महिला रेल कर्मचारियोंमें ४०० से अधिक स्टेशन मास्टर, १४०० असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर तथा १० हजार इञ्जीनियर और कारीगर हैं। रूसकी ऐसी कोई भी महिला-श्रमिक अथवा खलिहान मजदूरनीको, जो आवश्यक कार्य-क्षमता और व्यवस्था पटुता प्रदर्शित कर सकती है किसी भी स्थायी प्रतिष्ठानका प्रबन्धक बनाया जा सकता है। रूसमें महिला इञ्जिनियर, डाक्टर, विमानचालक, वैज्ञानिक कार्यकर्ता सभी हैं। उद्योग, कृषि, विज्ञान अथवा कलाकी कोई शाखा अथवा कोई सरकारी कार्य ऐसा नहीं है जिसमें महिलाएं काम न करती हों। सोवियट रूसके बड़े उद्योगों और निर्माण व्यवसायोंमें आज कल एक लाख से अधिक महिला इञ्जीनियर नियुक्त हैं। जारके रूसमें महिला डाक्टरोंकी संख्या २ हजारसे भी कम थी लेकिन इन दिनों रूसमें करीब डेढ़ लाख डाक्टर हैं जिनमें महिलाओंकी संख्या प्रायः आधी थी।

कृषि कार्योंमें महिला श्रमिकोंके उपयोगका स्वरूप बहुत बदल गया है। करीब १९० लाख स्त्रियां आजकल सामूहिक और सरकारी खेत खलिहानोंमें काम कर रही हैं किन्तु उनकी अवस्था जारके शासन कालकी किसान औरतोंके समान दयनीय नहीं है। सामूहिक खलिहान प्रणालीने रूसी नारियोंको पुनर्जन्म दिया है। क्रान्तिके पूर्व किसान परिवारकी स्त्रियां सुबहसे शाम तक काम करने के बाद यह नहीं जान पाती थीं कि उन्होंने सचमुच कितना कमाया। किन्तु सामूहिक खलिहानमें काम करनेवाली प्रत्येक महिला इन दिनों ठीक बता सकती है कि वह अपने परिवारमें कितना पारिश्रमिक लाती हैं। आरम्भमें ऐसा समझा गया था कि स्त्रियां सिर्फ आसान कामोंको करनेमें ही समर्थ हैं और उनके जिम्मे हंसिया और कुदालीसे भारी

कोई औजार नहीं दिया जा सकता। किन्तु आज रूसमें १९ लाखसे अधिक ट्रेक्टर चालक हैं और उनमें महिलाओंकी संख्या पुरुषोंसे किसी प्रकार कम नहीं है।

किन्तु स्त्रियोंकी शक्ति और कार्यक्षमताके बावजूद रूस के श्रमिक कानून उनको शक्तिसे अधिक कार्य नहीं करने देते। उदाहरणार्थ कठिन परिश्रमके कार्यों में महिलाओं और १८ वर्षसे कम उम्रके युवकोंको नियुक्त करनेपर रूसी कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। माताओंको गर्भावस्थाके छठे माससे सन्तानोत्पत्तिके छः मास पश्चात तक रातके समय काम नहीं करने दिया जाता। वार्षिक छुट्टीके अलावा रूसी श्रमिक महिलाओंको सन्तानोत्पत्तिके ३९ दिन पूर्वसे २८ दिन पश्चात् तक पूरे वेतनके साथ छुट्टी दी जाती है। खलिहानोंमें काम करनेवाली स्त्रियां सन्तानोत्पत्तिके १ मास पूर्वसे १ मास बाद तककी छुट्टी पूरे वेतन के साथ पाती हैं। गर्भवती स्त्रियोंको छठे महीनेसे हल्के काम दिये जाते हैं और उनके वेतनमें जरा भी परिवर्तन नहीं होता। सन्तानवती महिलाओंको प्रत्येक ३॥ घण्टे बाद बच्चेको दूध पिलानेके लिये आधे घण्टेकी छुट्टी दी जाती है।

विवाह और परिवार सम्बन्धी सोवियट कानून माता और सन्तानके हितोंकी रक्षा करता है। सोवियट रूसमें स्वतन्त्र और समान व्यक्तियोंके स्वेच्छापूर्ण ऐक्यको ही विवाह कहा जाता है। सोवियट रूसमें सरकार सम्पूर्ण समाज—दोनोंके हितके लिये तथा पत्नी और सन्तानोंके व्यक्तिगत और साम्पतिक अधिकारोंकी रक्षाको आसान बनानेके लिये विवाहके रजिस्ट्रेशनको प्रोत्साहन दिया जाता है। किन्तु बिना रजिस्ट्रीके विवाह भी रूसी कानून के अनुसार पूर्णतया वैध हैं। सोवियट रूसमें भी अवैध सन्तान नहीं होती, सभी बालकोंको समान अधिकार प्राप्त है। पति और पत्नीकी पारस्परिक स्वीकृति अथवा उनमेंसे किसी एककी आकांक्षासे विवाह सम्बन्ध भंग किया जा सकता है। तलाककी स्वीकृति देते समय सरकार इस बातका निर्णय करती है कि सन्तानोंके भरण-पोषणके लिये उसके माता और पिता कितना देंगे तथा सन्तान किसके साथ रहेगी। सोवियट सरकारने १९३६ में एक प्रस्तावित कानूनपर रूसी जनताकी राय मांगी थी और उसकी अपीलमें सरकारने रूसी जनताकी भावनाओं और हितोंको स्पर्श किया था। उस कानूनका उद्देश्य माता और सन्तानकी और भी अच्छी तरह रक्षा करना, अक्सर गर्भपातके घातक परिमाणोंसे महिलाओंको बचाना, पैतृक दायित्वोंके प्रति किसी गैर जिम्मेदार रुखको दबाना और साधारणतः परिवारको सुदृढ़ बनाना था।

उस नये कानूनमें गर्भपात करनेपर प्रतिबन्ध लगानेका प्रस्ताव किया गया था। जिस गर्भके कारण नारीके जीवन अथवा स्वास्थ्यपर खतरा उपस्थित होता हो अथवा माता-पिताके किसी रोगकी छूत गर्भस्थ—सन्तानको लगनेकी आशङ्का हो, वैसी हालतमें गर्भपात करनेकी छूट दी गयी थी। इसके अतिरिक्त उस कानूनमें स्त्रीके भरण-पोषण तथा तलाक सम्बन्धी नियमोंको और भी सख्त करनेका प्रस्ताव किया गया था। राष्ट्रव्यापी विचार विमर्शके पश्चात सरकारने उस कानूनको जनताकी पूर्ण सम्मतिसे स्वीकार कर लागू करनेकी आज्ञा दे दी। समाजवादके अन्तर्गत ही परिवारको सुदृढ़ करनेका संगीन संघर्ष करना सम्भव है, क्योंकि उस व्यवस्थामें तनिक भी शोषण नहीं है और समस्त श्रमिक जनताकी भौतिक सुख-सुविधाकी क्रमानुसार उन्नतिको सामाजिक विकासका नियम माना जाता है। रूससे बेकारीका पूर्णतया निराकरण होने, महिलाओंको आर्थिक स्वतन्त्रता मिलने, समग्र जनताकी भौतिक सुख-सुविधामें वृद्धि होने तथा सन्तानके भविष्यके सुनिश्चित होनेके फलस्वरूप इस कानूनको अमलमें लाना सम्भव हुआ। इस कानूनके कार्यान्वित होते ही रूसी सरकारने विशाल परिवारोंकी सन्तानवती माताओंके हितके लिये विशाल रकम निर्धारित कर दी।

सातवीं सन्तानकी उत्पत्ति होनेपर माताको प्रतिवर्ष दो हजार रूबल बच्चेकी पांच वर्षकी उम्र तक मिलते हैं और तत्पश्चात प्रत्येक सन्तानकी उत्पत्तिपर उतनी ही रकम मिलती जाती है। दस बच्चोंकी माताको उसके बाद प्रत्येक संतानकी उत्पत्तिपर पांच हजार रूबल मिला करते हैं और संतानकी पांचवीं वर्षगांठ तक ३ हजार रूबल प्रतिवर्ष मिलते रहते हैं। २७ जून १९३६ को गर्भपात विरोधी कानून लागू होनेके बादसे अबतक सोवियट सरकारने बड़े परिवारोंकी माताओंके हितसे २०० करोड़ रूबलसे अधिक रकम खर्च की है। इस कानूनके अनुसार परिवारोंको सुदृढ़ बनानेका उद्देश्य पूर्णतया सफल हुआ। तलाकोंकी संख्या में अत्यधिक कमी हो गयी और सन्तानोत्पत्तिमें दुगुनेसे अधिक वृद्धि हुई।

रूसी महिलाएं ज्ञानार्जनके लिये उत्सुक हैं और सरकार उन्हें सभी प्रकारके अध्ययनमें सहायता देती है।

सोवियट सरकारने अबतक ९ करोड़से अधिक वयस्क पुरुषों और महिलाओंको साक्षर बनाया है, साथ ही अनेक वयस्क इन दिनों उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे है। आजकी रूसी महिलाएं कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें भी शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। रूसी कालेजों और विद्यालयोंके प्रायः ७ लाख छात्रोंमें ४३ प्रतिशत स्त्रियां हैं। ट्रेनिंग स्कूलों और मेडिकल कालेजोंमें महिलाओंकी संख्या पुरुषोंके बराबर ही है। खेल-कूद और साहसिक कार्योंमें भी रूसी महिलाएं विशेष दिलचस्पी रखती हैं। ९ लाखसे अधिक रूसी युवतियोंने श्रम और देशरक्षाकी परीक्षा पास की है और अनेक महिलाओंने विमान चलाने तथा पैराशूटसे कूदनेमें सारे संसारमें रेकार्ड कायम किया है।

जारके रूसमें वेश्यावृत्ति कानूनी दृष्टिसे वैध थी और इस कारण समस्त राष्ट्रमें उसका अत्यधिक प्रसार था किंतु अब रूसमें एक भी वेश्या नहीं रह गयी है। इसको पुलिसने कानूनसे नहीं बन्द किया गया वरन् रूसी नारियोंकी स्वतन्त्रता और आर्थिक सुरक्षाके कारण इसका स्वयं खात्मा हो गया है। देशके रचनात्मक कार्यमें भाग लेनेसे रूसी महिलाओंको आर्थिक स्वतन्त्रताके अतिरिक्त शासन कार्यमें भाग लेनेका भी समानाधिकार प्राप्त हो गया है। सोवियट संघके सुप्रीम सोवियटके सदस्योंमें महिलाओंकी संख्या १८९ है। संघ प्रजातन्त्रोंके सुप्रीम सोवियटमें ८४८ महिलाएं हैं। ग्राम और नगरके कार्योंमें १९ लाखसे अधिक महिलाएं सक्रिय भाग लेती हैं। सोवियट रूसमें महिलाओंके मस्तिष्क एवं कार्यक्षमताका उपयोग समाजके हितमें होता है और परिणामतः इससे रूसी महिला जगतका हित साधन होता है।

जेल-जीवनपर एक दृष्टि

सुश्री मनोरमा सिनहा

यूरोपीय देशोंमें जहां देशभक्तोंका मान, धन और पद देकर बढ़ाया जाता है वहां भारतके देशभक्तोंको देशभक्तिका मूल्य जेलके सीखचोंमें बन्द होकर यातनाएं सहकर चुकाना पड़ता है! यह क्यों? क्योंकि भारत गुलाम देश है। ब्रिटिश राज्यकी छायामें रहते हुए उसके विरुद्ध सिर उठाने का किसीको अधिकार नहीं। यदि भारतवासी अपने देशकी हीन दशापर दो बूंद आंसू गिराते है तो वह ब्रिटिश राजनीतिके विरुद्ध हैं। यदि देशकी भलाईके लिये एक पग भी आगे बढ़ते हैं तो वह ब्रिटिश संरक्षणका अपमान है। यहां तो कुशल इसीमें है कि चुपचाप अत्याचारोंको सहते जाइये और उसपर भी साम्राज्यवादके गुण गाइये। पर क्या यह उचित है? किन्तु इस स्थानपर मुझे औचित्य अथवा अनौचित्यकी ओर ध्यान नहीं देना है। मेरा उद्देश्य इस समय उस जीवनपर प्रकाश डालना है जो जनताकी पलकोंकी ओट में छिपकर उसकी आंखें खोल देता है और जिसके बारेमें जनता भांति-भांतिकी कल्पनाएं करके भी वास्तविक स्थितिको पूर्णतः नहीं जान पाती। इसीलिये जेल-जीवनके कुछ उदाहरण मैं यहांपर रख रही हूं ताकि उन्हें पढ़कर उस जीवनका थोड़ा-बहुत अनुमान कर सकें।

यों तो कांग्रेसके जन्मके कुछ दिनोंके पश्चात् ही इसके अनुयायियोंको सरकारकी मेहमानी स्वीकार करनी पड़ी है किन्तु अगस्त सन् १९४२के आंदोलनमें पकड़े गये अतिथियों के साथ सरकारने विशेषरूपसे अङ्गरेजी सभ्यताकी औपचारिकताएं वर्त्ती है। इन राजनीतिक बन्दियोंमें न केवल देशके बड़े-बड़े नेताओंको ही जेलके कठोरतम नियमों का पालन करना पड़ा है वरन् छोटे-छोटे देशभक्त भी इनके साथ घुनकी तरहपिस गये हैं। अगस्त १९४२के कैद किये हुए ये बन्दी नेतागण जब इस वर्ष जुलाई-अगस्तमें मुक्त किये गये तो इनकी दशा देखकर रोना आता था।

श्री आसफ अली साहब जेलसे मुक्त किये गये पर कब? जब कि उनका स्वास्थ्य जवाब दे चुका था। मुखपर झुर्रियां-सी पड़ गयी थी और रङ्ग भी पहलेसे काला पड़ गया था देखनेमें साठ वर्षके बुड्ढेसे प्रतीत होते थे। पेचिशके कारण उनमें इतनी भी शक्ति न रह गयी थी कि वह दिल्ली स्टेशनपर पैदल चलकर कारतक पहुंच पाते, अतः कुर्सीपर डालकर उन्हें कारतक लाया गया। पण्डित जवाहरलालजी की दशा भी कम शोचनीय न थी। जेलके तीन वर्षोंने उनके स्वास्थ्यमें इतने परिवर्तन कर दिये कि वह अपनी आयुसे बीस वर्ष बड़े लगने लगे। आंखोंके नीचे गड्ढे पड़ गये और अधरोंपर सूखी पपड़ियां किन्तु मुखकी कांति दुगनी अवश्य थी। डा० किदवई साहबकी तन्दुरुस्ती भी बहुत गिर चुकी है। आजाद साहबमें भी पहले जैसी ताजगी न दिखायी पड़ी। यद्यपि इन नेताओंमें इतनी पीड़ा झेलनेपर भी उत्साह

शत गुना अधिक बना हुआ था परन्तु स्वास्थ्यकी ओरसे लगभग सभी निराश हो गये थे। पर ईश्वरको धन्यवाद देते हैं कि उसने इन नेताओंके प्राण जो देशके प्राण हैं अस्थि-पिंजरमें ही सही, उनको देशकी सेवाके लिये देदिया।

अब तनिक उन देशभक्तोंकी ओर देखिये जो इनसे भी दीन दशामें जेलसे बाहर आये हैं। इनमें सुभाष बाबूके भतीजे, द्विजेन्द्रनाथ बोस, शिशिर और अरविन्द बोस हैं। जेलमें इन लोगोंके साथ जैसा बर्त्ताव किया गया है उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। द्विजेन्द्रनाथ, जिनकी आयु इस समय २८ वर्ष है १९४१में भाषण देनेमे अपराधमें पकड़े गये थे। छः मास इस अपराधकी सजा भुगत लेनेपर भी ये जेलके बाहर न रह सके। सन् १९४२में इन्हें लाहौर जेलमें भेज दिया गया जहां डेढ़ वर्षके पश्चात् ये कैम्पबेलपुर जेलमें पहुंचा दिये गये।

शिशिर बाबूका अपराध इतना ही था कि ये अगस्त १९४२में एक जुलूसका नेतृत्व ग्रहण किये हुए थे। अक्तूबर सन् १९४४ में ये दोबारा पकड़े गये और पहिले दिल्ली और फिर लाहौर जेलमें भेज दिये गये।

अरविन्द जो इन तीनोंमें सबसे छोटे है उनकी गिरफ्तारी मई सन् १९४१में हुई जब कि ये कालेजमें पढ़ते थे। इनका अपराध बस इतना ही है कि ये सुभाष बाबूके भतीजे हैं। इन्हें भी अन्य दो भाइयोंकी भांति पंजाबके जेलोंकी हवा खानी पड़ी। मोण्टगोमरी जेलसे ही इन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी। यहांसे ये फिर कैम्पबेलपुर जेल भेज दिये गये जहां कैदकी शेष अवधि इन्होंने काटी।

द्विजेन्द्रनाथजी इस समय चार बीमारियोंके शिकार बने हुए हैं और शिशिर बाबू भी दो-तीनके। पर इन बीमारियोंका कारण जेलकी धूल भरी रोटियां ही केवल नहीं वरन् अन्य अत्याचार भी हैं। लाहौर जेलमें जो सख्तियां इन लोगोंपर हुईं वह बहुत ही अमानुषिक एवं पाशविक है। संसारकी इतनी उन्नतिशील सभ्यताके नाम पर यह काला धन्धा लगानेके लिये कम नहीं। इसके साथ ही साथ ब्रिटिश राज्यके 'यशचन्द्र'के लिये ये 'ग्रहण'से कम नहीं। इन लोगोंको इस 'पृथ्वीके नर्क'में रखा गया जिसके लिये सरकारकी नीतिपर काफी आक्षेप हो रहे हैं।

द्विजेन्द्रनाथके हाथ और पांव लौह शृङ्खलाओंमें जकड़े हुये थे जो बन्दीगृहके द्वारसे बंधी हुई थी। यदि क्षणभरके लिये भी वह आंख झंपाते तो घूंसों और लातोंके प्रहारसे उनकी आंख खुल जाती थी कितनी क्रूरता है! एक क्षण भी सोनेका अधिकार नहीं! जाने कितनी स्वप्निल रातें इन्होंने पलकोंहीमें काटीं? क्या ये मानव नहीं? क्या इनके शरीरको विश्रामकीआवश्यकता नहीं? इंगलैंडमें जहां गोयरिंग आदि शत्रुओंको भी विश्राम करनेका अधिकार है वहां भारतके देशभक्तोंकी यह दशा? इसके अतिरिक्त जिस कोठरीमें उन्हें बन्द किया गया था वह इतनी गन्दी थी कि उस गन्दगीकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। घूसेकी मारसे उनकी रीढ़की हड्डियोंमें सख्त चोट लगी जिसके कारण सप्ताहों तक पीड़ा इनका साथ न छोड़ सकी और इन्हें उनींदी रातोंमें उस कठोर दण्डको सहना पड़ा। इतने पर भी कर्मचारियोंकी पिपासा शान्त न हुई। इनसे भांति भांतिके प्रश्न पूछे जाते और जब वह उत्तर देनेसे इन्कार कर बैठते तो उन्हें धमकियां दी जातीं थी कि वह गोलीसे उड़ा दिये जायेंगे। उन्हें एक कमरेमें जिसमें १६० का ताप रहता बन्दकर दिया जाता और ये अचेत हो गिर पड़ते। किन्तु इस दण्डोंको मैं बहुत ही हल्का दण्ड कहूँगी। अच्छा तो होता यदि उनको अंगारोंपर चलाया जाता अथवा दहकते लोहेसे शरीर दगवाया जाता। १६० का ताप तो कुछ भी नहीं। पर अंग्रेजों और उनके टुकड़खोरोंको ज्ञात होना चाहिये कि भारतवासियोंके हृदयोंमें देशभक्तिका अंकुर इतने हीसे समूल नष्ट होनेको नहीं है। उसको मिटानेके लिए उनकी बड़ीसे बड़ी शक्ति भी बेकार है। कांग्रेसकी नीति इतनी कमजोर नहीं जो ऐसी यातनाओंसे हिल जाय। इन निरंकुशोंको भी दिल दहलानेवाली धारणा अपने दिलोंसे निकाल देनी चाहिये कि वह देशभक्तोंको कठोर दण्ड देकर देशको स्वतन्त्रताके पथसे मोड़ सकेंगे। भारतको स्वाधीनता चाहिये और वह मिलेगी चाहे उसके लिये :कितनी ही बलियां क्यों न चढ़ानी पड़ें।

पंजाब गवर्नमेंटका यह ओछा व्यवहार काले अक्षरोंमें अमर रहेगा। अरविन्द बोसने लाहौर जेलके अत्याचारोंको बहुत ही निन्दनीय एवं सभ्यताके विरुद्ध कहा है और यह उचित भी है। उनको न केवल शारीरिक यातनाएं ही सहनी पड़ती हैं वरन् मानसिक यातनाएं भी असंख्य थीं। गोलीसे उड़ा देनेकी धमकी इन वीरोंके लिये कुछ भी न थी। अरविन्द इस धमकीके उत्तरमें कहते थे कि वह स्वयं ही अपनेको गोलीसे उड़ानेके लिये तैयार हैं। केवल आज्ञाकी देर है। इन सब अत्याचारोंका प्रभाव इन लोगोंके स्वास्थ्यपर बहुत ही बुरा पड़ा और उसका परिणाम यह हुआ कि

कितने ही दिनों तक द्विजेन्द्र बाबू सीधे न चल सके। डेढ़ वर्ष लाहौरकी सिली कोठरीमें बैठते बैठते उन्हें गठिया होगया, बुखार आने लगा, 'हाई ब्लड प्रेशर' हो गया और रीढ़की हड्डीमें भी तकलीफ शुरु हो गयी। शिशिर बाबूको अनेक रातें जागते बिता देनेके कारण 'इन सोमनिया' हो गया और पाचन शक्तिका भी ह्रास हो गया। इन लोगोंकी ऐसी दशा होनेपर ही सरकारने इनपर या अपनेपर इतना उपकार किया कि अपने सिर हत्या लेना उचित न समझ इनके कंकालको जनताके हाथोंमें सौंप दिया।

लाहौर जेलका यह कलुषित एवं क्रूरतम अत्याचार किसी देशकी सभ्यताके नामपर बट्टा लगा सकता है। केवल लाहौर ही नहीं अनेक जेल ऐसे हैं जहां राजनैतिक बन्दियों-के साथ ऐसा ही बर्त्ताव किया जा रहा है अन्तर केवल इतना है कि लाहौर जेलका व्यवहार जनताकी आंखोंके आगे आ गया है और अन्य जेलोंमें टट्टीकी ओटमें शिकार खेला जा रहा है।

बलिया जेलसे छूटे हुए एक कांग्रेसीसे मिलनेका मुझे अभी हाल हीमें सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनसे ज्ञात हुआ कि जेलमें खानेमें अखाद्य पदार्थ केवल इसलिये मिलाये जाते हैं ताकि कैदी ठीकसे खा न सके और यदि खा भी ले तो बीमार पड़ जाय। वह खानेको तरसे पर ग्रास मुंहमें डालने की हिम्मत न करें। पशुओंके साथ भी तो ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता। उनको भी पेट भर भोजन दिया जाता है। फिर मनुष्यका शरीर तो 'दूध और मधुसे बना शरीर' है।

इनके अतिरिक्त अभी भी बहुतसे कांग्रेसी जेलकी कोठरियोंमें सड़ रहे हैं। पर सरकारका ध्यान उन्हें मुक्त करने-की ओर नहीं है। लार्डवेवलकी महान् क्षमा-नीति (Forget & Forgive) भी इनको जेलकी चहारदीवारीके बाहरकी हवा खिलानेमें असमर्थ हो रही है। अब देखना है इन देश-भक्तोंके भाग्य कब उदय होते हैं।

अब तनिक उन वीरोंकी ओर भी निहार लीजिये जो जेलहीमें शहीद हो चुके हैं। इनकी संख्या भी कम नहीं है पर जनता इस वास्तविकतासे कितनी परे है इसका अनु-मान लगाना कठिन है। श्री दीवान सिंहजीकी मृत्यु जनताने अभी भूली न होगी। क्या मैं पूछ सकती हूं उसका दायित्व किसपर है? एक पुस्तकका बहाना लेकर इस वीरात्माका जीवन दीप बुझाया गया, पर क्या यह देश-के लिये हितकर हुआ? पुलिस व जेल कर्मचारियोंने जो सफाई दी है वह इतनी भद्दी एवं भोंड़ी है कि उसपर विश्वास भी नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि एक पुस्तक न मिलनेके कारण दीवान सिंहजीने भूख हड़ताल कर दी और पांचवें दिन उनके प्राण पखेरू उड़ गये। पर इतना स्वस्थ तरुण केवल पांच दिनकी भूख हड़तालसे क्योंकर चल बसता? कुछ समझमें न आया। इसके पश्चात् उनके घर-वालोंको उनकी मृत्युकी सूचना तक न दी गयी। पता नहीं उनके शवका क्या हुआ? इसमें अवश्य कुछ जेलके कर्म-चारियोंका षड्यन्त्र है और इसका पता तभी लग सकता है जब सरकार स्वतन्त्रतापूर्वक छान-बीन करनेकी आज्ञा दे।

दूसरी घटना रमेशचन्द्रजीकी है। जिनके लिये कहा जाता है कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली। पर आत्महत्या क्यों की? इसका सन्तोषजनक उत्तर जेल कर्मचारी न दे पाये। वास्तविकता तो कुछ और ही है जिसका अभी तक पता नहीं चल सका।

जेलकी दीवारोंके अन्दर इतने भीषण काण्ड हो रहे हैं और बाहर जनता उनसे पूरी तरह परिचित भी नहीं। परन्तु अब धीरे धीरे जनताके सामने वास्तविक परिस्थि-तियां रखनेकी चेष्टा की जा रही है। जनताको जबतक वास्तविकताका ज्ञान न होगा तबतक वह इसके विरुद्ध आन्दोलन भी न कर सकेगी और जिससे उन लोगोंका जीवन केवल रहस्यमयी कहानियां ही बनकर रह जावेगा। जनताको प्रयत्न करके देशके अन्य भक्तोंको कारागारसे निकलवा लेना चाहिये ताकि भविष्यमें वह उनकी सेवाओंसे लाभ उठा सके।



स्वप्न

प्रो० लालजीराम शुक्ल एम० ए०

स्वप्नका स्वरूप

स्वप्न हमारा एक सामान्य अनुभव है। यह हमें प्रत्येक दिन दिखायी देता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जागता और सोता है उसी प्रकार स्वप्न भी देखता है। किन्तु बहुतसे स्वप्न हमें स्मरण नहीं रहते। हम जागते ही उन्हें भूल जाते हैं। इसलिये बहुतसे लोगोंको प्रतिदिन स्वप्न होनेका ज्ञान नहीं होता।

स्वप्नके देशकाल जाग्रत अवस्थाके देश-कालसे भिन्न होते हैं। हमारा शरीर एक ही जगह पड़ा रहता है किन्तु स्वप्नावस्थामें हमारा मन संसारमें विचरण करने लगता है और वह कितनी ही नयी सृष्टियोंकी उत्पत्ति कर लेता है। कभी-कभी एक मिनटमें इतना लम्बा स्वप्न हम देखते हैं कि हमें मालूम होता है वर्षों बीत गये। स्वप्नावस्थाका अनुभव मनोराज्यके अनुभवके समान होता है। दोनों प्रकारके अनुभवोंका आधार वास्तविक जगत्‌का अनुभव अवश्य है किन्तु स्वप्न और मनोराज्य-की सृष्टि वास्तविक जगत्‌की सृष्टिसे भिन्न होती है। जो घटनायें वास्तविक जगत्‌में सम्भव है, वे मनोराज और स्वप्नमें घटित हो जाती है। यदि कोई मनुष्य विस्तर पर लेट कर अपने विचारोंका चेतना द्वारा नियन्त्रण करना बन्द कर दे और मनको जो कुछ वह करता है करने दे तो वह शीघ्र ही अपने आपको मनोराज्यकी सृष्टि करते पायेगा। इस अवस्थाके पश्चात स्वप्नावस्था आ जाती है जिसका अन्त सुषुप्ति अवस्थामें होता है। मनोराज्यकी अवस्थामें जाग्रत अवस्थाका ज्ञान ही विचारोंका सञ्चा-लन करता है किन्तु स्वप्नावस्थाका द्रष्टा जाग्रत अव-स्थाके द्रष्टासे एकदम भिन्न होता है। जिस प्रकार कि स्वप्नावस्थाका दृश्य जगत जाग्रत अवस्थाके दृश्य जगतसे भिन्न होता है।

स्वप्नोंका अधिक देखना बुरा माना जाता है। स्वप्नोंके ऊपर हमारी चेतनाका कोई भी नियन्त्रण नहीं होता। हम जैसे स्वप्न चाहें वैसे नहीं देख सकते और न उनका आना ही रोक सकते हैं। भयंकर स्वप्नोंका बार-बार देखना शारी-रिक व मानसिक स्वास्थ्यके लिये हानिकर होता है। वास्तवमें इस प्रकारके स्वप्न मन, अथवा शरीरमें स्थित विकारके सूचक हैं न कि उनके कारण। भयंकर स्वप्नोंको रोकनेके लिये स्वप्नोंके कारण जानना आवश्यक है। कारण में परिवर्तन होनेसे स्वप्नोंमें परिवर्तन हो सकता है।

स्वप्नके कारण

स्वप्न शारीरिक अथवा मानसिक उत्तेजनाके कारण होते हैं। शारीरिक उत्तेजना दो प्रकारकी होती है एक शरीरमें स्थित विकारों द्वारा और दूसरी बाहरी पदार्थों द्वारा। मानसिक उत्तेजनायें भी दो प्रकारकी होती हैं। एक जाग्रत अवस्थाके अनुभव जन्य और दूसरी आन्तरिक इच्छा-जन्य। इन दोनों प्रकारके कारणोंपर पृथक्-पृथक विचार करना आवश्यक है।

शारीरिक उत्तेजना

ऊपर कहा गया है कि शारीरिक उत्तेजना दो प्रकारकी होती है। परिस्थिति-जन्य और शारीरिक विकार जन्य। जब हम किसी गन्दे और बदबूदार कमरेमें सोते हैं अथवा गन्दे कपड़ोंको ओढ़ कर सोते हैं तो अप्रिय स्वप्नको देखते हैं।। मुंह ढांक कर सोनेसे बुरे स्वप्न आते हैं। हमारी सांस द्वारा निकली बदबू फिर हमारे दिमागमें जाती है और बुरे स्वप्नोंको पैदा करती है। मुंहसे निकलनेवाली हवा जह-रीली और दुर्गन्धित होती है। यही हवा सांस द्वारा जब फिर हमारे शरीरमें जाती है तो उसके जहरका प्रभाव हमारे दिमागपर भी पड़ता है। इससे हमारी अचेतन अव-स्थामें हमें एक प्रकारकी पीड़ा होती है। यह पीड़ा यदि हमारी जाग्रत अवस्थामें हो तो असह्य हो जाय और उससे मुक्त होनेके लिये हम तुरन्त चेष्टा करें। किन्तु अचेतन अवस्थामें हम इस प्रकार क्लेशसे मुक्त होनेकी चेष्टा नहीं करते अतएव हमारी यह दुखदायी उत्तेजना हमारे बुरे स्वप्नोंका कारण बन जाती है। इसी प्रकार सोनेकी जगहपर गन्दगी रहनेसे स्वप्न अच्छे नहीं आते।

सोनेके स्थानपर बाहरसे हल्ला-गुल्लाकी आवाज आना एक विशेष प्रकारके स्वप्नका कारण बन जाती है। यदि बाहरसे आनेवाली आवाज मनमोहनी और रोचक हो तो स्वप्न भी सुन्दर होते हैं। और यदि यह अरोचक और दुख-दायी हो तो स्वप्न भी दुखदायी हो जाते हैं। यदि निद्रित अवस्थामें किसी व्यक्तिको कोई शारीरिक कष्ट दिया

जाय तो वह दुखदायी स्वप्नोंका कारण बन जाता है। मान लीजिये सोते समय किसी व्यक्तिको ठण्ड लग रही है तो वह उस समय अप्रिय स्वप्न देखेगा। सोते समय यदि किसी व्यक्तिके मुंहपर पानी छिड़का जाय तो वह बरसात के स्वप्न देखेगा। मायर महाशयने इस प्रकारके स्वप्नोंपर अनेक प्रयोग किये हैं। यदि सोते समय किसी व्यक्तिके तलवेपर पानी लगाया जाय तो वह पानीमें चलनेका स्वप्न देखता है।

जिस प्रकार बाहरसे आनेवाली वस्तुओंके कारण स्वप्न होते हैं उसी तरह आन्तरिक और शारीरिक विकारों के कारण भी स्वप्न होते हैं। यदि किसी मनुष्यको किसी विशेष प्रकारकी पीड़ा है तो उसे दुखदायी स्वप्न होंगे। ज्वरकी अवस्थामें अच्छे स्वप्न नहीं होते। जिस प्रकार रोगीकी कल्पना अभद्र होती हैं उसी प्रकार उसके स्वप्न भी अभद्र होते हैं। जब शरीर अधिक रोग-ग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य भयंकर मानसिक चित्रोंको अपने सामने देखने लगता है। ये मानसिक चित्र उसे स्वप्नमें भी दिखायी देते हैं। सुन्दर स्वप्नोंको देखनेके लिये शारीरिक और मानसिक मजबूतीकी आवश्यकता है।

कभी-कभी आनेवाली बीमारी स्वप्नमें दिखायी देती है। यह बीमारी सम्भव है कि उसी रूपमें न दिखायी दे जिस रूपमें वह आनेवाली है। कभी-कभी वह उसी रूपमें दिखायी देती है जिस रूपमें आनेवाली होती है।मान लीजिये किसी मनुष्यको उसके विशेष अङ्गमें फोड़ा निकलनेवाला है तो वह इस फोड़ेके निकलनेका स्वप्न फोड़ेके निकलनेके पहले ही देख लेता है। स्वप्नका फोड़ा कभी-कभी उसी जगह होता है जहां वह फिट होता है और कभी-कभी दूसरी जगह निकलता है। कभी-कभी आनेवाली मानसिक बीमारियां अचानक मानसिक चित्रोंके रूपमें हमारे सामने आती है। हम देखते हैं कि हम किसी एक बड़े राक्षसके द्वारा त्रासित किये जाते हैं या हमें कोई भूत सता रहा है। इस प्रकारके स्वप्न आनेवाली बीमारिकोंके सूचक भी होते हैं।

इनका वास्तविक कारण शारीरिक उत्तेजनाएं हैं। यही उत्तेजनायें मानसिक प्रतिमाओंमें परिणत हो जाती हैं। हमारे अचेतन मनकी शक्ति चेतन मनकी शक्तिसे कहीं अधिक है। हम मनकी अचेतन अवस्थामें शरीरके अनेक उन विकारोंको जान लेते हैं जो भविष्यमें बीमारीका रूप धारण करते हैं। अपने चेतन मनसे हम शरीरकी उन सूक्ष्म उत्तेजनाओंका ज्ञान नहीं कर सकते जो कि बीमारीके पूर्व अवस्थामें होती है। किन्तु हमारा अचेतन मन उन उत्तेजनाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेता है और स्वप्नोंके रूपमें उन्हें प्रदर्शित करता है।

मानसिक उत्तेजना

स्वप्नके प्रमुख कारण मानसिक उत्तेजनाएं ही होती हैं। ये दो प्रकारकी होती हैं वातावरणके अनुभव-जन्य और आन्तरिक-इच्छा-जन्य। हमारे अधिक स्वप्न जाग्रत अवस्थाकी उत्तेजनासे पैदा होते हैं। मान लीजिये हम फ्रांस की क्रांतिकी पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सो जाते हैं तो हम अपने स्वप्नमें उसी क्रान्तिका दृश्य देखने लगते हैं जो उस पुस्तक में चित्रित रहती है। जब सिनेमा देखनेके पश्चात सिनेमाका दर्शक सो जाता है तो सिनेमाके दृश्यसे मिलता-जुलता स्वप्न वह देखता है। कभी-कभी दृश्य जगतकी उत्तेजना तुरन्त ही स्वप्नमें परिणित नहीं हो जाती वह कुछ कालके पश्चात् स्वप्नमें परिणत होती है। स्वप्नमें यह उत्तेजना दूसरी उत्तेजनाओंसे मिल जानेके कारण वैसे ही स्वप्न नहीं पैदा करती जैसे कि वह जाग्रत-अवस्थाके अनुभवमें हुई थी। स्वप्न और जाग्रत अवस्थानें इतनी विषमता होती है कि हम स्वप्नके अनुभवमें जाग्रत अवस्था के अनुभवका कार्य पहचान नहीं सकते।

स्वप्नोंके उपरोक्त कारण प्रायः सभी मनोवैज्ञानिकोंने माने हैं। फ्रायड महाशयने स्वप्नोंके कारणोंके ऊपर एक नया प्रकाश डाला है। इनके अनुसार हमारे सभी स्वप्नों के कारण हमारी दबी हुई इच्छाएं हैं। मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारकी इच्छाएं होती हैं। ये इच्छायें स्वभाव-जन्य है। इसमें कुछ इच्छायें नैतिक होती हैं और कुछ अनैतिक होती हैं। अधिक नैतिक इच्छाओंकी तृप्ति जाग्रत अवस्थामें हो जाती है। हमारा चैतन्य मन इनका विरोधी नहीं होता। किन्तु हमारी अनैतिक इच्छाओंकी तृप्ति हमारी जाग्रत अवस्थामें नहीं होती। हमारा नैतिक मन इसका दमन करता है। जिन इच्छाओंकी तृप्ति जाग्रत-अवस्थामें हो जाती है वे शान्त हो जाती हैं। वे मनमें किसी प्रकारकी उत्तेजनाका कारण नहीं बनती। किन्तु जिन इच्छाओंकी तृप्ति नहीं होती वे शान्त नहीं होतीं किन्तु वे अनेक प्रकारकी मानसिक उत्तेजनायें पैदा करती हैं। ये उत्तेजनायें व्यक्तिके अचेतन मनमें स्थित रहती है और उसकी अर्द्धचेतन अवस्थामें प्रकाशित होनेकी चेष्टा करती हैं। स्वप्न इन दबी हुई वासनाओंके कार्य हैं। स्वप्नमें ये

वासनायें प्रकाशित होती हैं और अपने आपकी तृप्तिके लिये अनेक प्रकारके भोगोंका निर्माण करती हैं । किन्तु स्वप्नावस्थामें भी हमारा नैतिक मन पूर्णतः अचेतन नहीं रहता । हमारी पाशविक भोगेच्छायें इस मनसे डरती हैं । अतएव अनेक प्रकारके स्वांग रचकर वे बाहर निकलती हैं । इस प्रकारके स्वांग नैतिक मनको धोखेमें डालनेके लिये रचे जाते हैं । जिस प्रकार सरकारके सेंसरके डरसे चोर, डाकू लोग खुले रूपसे समाजमें विचरण नहीं कर पाते, उसी तरह हमारी भोगेच्छायें स्वप्नावस्थामें भी अपनी तृप्ति खुले रूपसे नहीं कर पातीं । और जिस तरह चोर-डाकू अनेक प्रकारके स्वांग अपने-आपको छिपानेके लिये रचते हैं इसी तरह ये वासनायें भी अनेक प्रकारके स्वांग रचती हैं । इस तरह सांकेतिक रूपसे, स्वप्न दबी हुई भोगेच्छाओंकी अपने-आप तृप्ति करनेकी चेष्टा है ।

फ्रायड महाशयके कथनानुसार हमारे अधिक स्वप्नोंका कारण काम-वासना ही है क्योंकि यही जीवनमें व्यक्तिकी सबसे प्रबल वासना है और इसीका दमन सबसे अधिक होता है । पानीमें तैरना, हवामें उड़ना, पहाड़ोंपर चढ़ना, खोहोंमें घुसना, पीड़ित होकर भागना, बच्चोंके साथ खेलना ये सभी स्वप्न काम-वासनाकी तृप्तिके सूचक हैं ।

काम-वासनाके अतिरिक्त दूसरी उत्तेजनाएं भी स्वप्नोंका कारण होती हैं । किसी भी प्रकारके स्थायी भाव स्वप्नके कारण बन जाते हैं । जिन स्थायी भावोंका प्रकाशन जाग्रत अवस्थामें होता रहता है उनकी शक्ति क्षीण होती रहती है अतएव वे अधिक उद्वेगात्मक स्वप्नोंके कारण नहीं बनते । किन्तु जिन स्थायी भावोंका प्रकाशन प्रतिकूल परिस्थितिके कारण अथवा चेतनमनके नैतिक प्रतिबन्धके कारण नहीं होता वे स्थायी भाव बड़े उद्वेगात्मक स्वप्नोंके कारण बन जाते हैं । बैर,ईर्ष्या,लोभ सभी प्रकारके स्थली भाव उन स्वप्नोंके कारण होते हैं जिनसे हमारा मन उद्विग्न होता है । इन स्थायी भावोंमेंसे अनेक स्थायी भाव मानसिक गांठके रूपमें मनुष्यके मनमें स्थित रहते हैं जिन्हें स्वयं जानना कठिन होता है । ऐसी मानसिक ग्रन्थियां जटिल स्वप्न उत्पन्न करती हैं । अपने सम्बन्धीकी मृत्यु, किसी राक्षससे लड़ना, ऊपरसे गिरना आदि भयंकर स्वप्न अवांछनीय मानसिक ग्रन्थियोंके परिणाम होते हैं । जिस व्यक्तिके मनमें पिताके प्रति बैर भाव है वह ऐसे स्वप्न देखता है जैसे किसी बड़े आदमीके मरनेका स्वप्न, शिक्षकके मरनेका स्वप्न, जोकि पिताकी मृत्युकी इच्छाका सूचक है । दूषित मनमें इस प्रकारके अनेक स्वप्न आते हैं । इसी तरह जिस व्यक्तिके मनमें किसी व्यक्तिके प्रति प्रबल भाव है अथवा उससे ईर्ष्या या घृणा करता है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिसमें कि उसके इन भावोंका प्रकाशन होता है । ये भाव स्वप्नमें उसी व्यक्तिके प्रति प्रकाशित हो सकते हैं जिसपर वे पहले पहल आरोपित हों अथवा दूसरे किसी व्यक्तिके प्रति । स्थायी भावोंका स्थानान्तरित होना एक साधारण मानसिक अनुभव है । जो व्यक्ति एक विशेष-व्यक्तिको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखता है वह उस व्यक्तिके अभावमें किसी दूसरेही व्यक्तिको उतनी ही घृणाकी दृष्टिसे देखने लगता है चाहे सब प्रकारकी घृणाका वह पात्र हो या न हो । यह हमारी जाग्रत अवस्थामें होता है । स्वप्नावस्थामें इस प्रकार स्थायी भावोंका स्थान्तरित होना और भी सरल होता है । हमारी स्वप्नावस्थामें हमारे मानसिक भाव वे ही रहते हैं जो हमारी जाग्रत अवस्थामें रहते हैं । स्वप्न और जाग्रत अवस्थामें भेद सिर्फ दृश्यमान पदार्थका होता है अर्थात् भेद उन पदार्थोंका होता है जिन पदार्थोंपर ये स्थायी भाव आरोपित होते हैं । यदि किसी मनुष्यके मनमें ईर्ष्या,घृणा और बैरके स्थायी भाव हैं तो वे जिस प्रकार जाग्रत अवस्थामें आरोपित होनेके लिये व्यक्ति विशेष अथवा वस्तु विशेषकी खोज कर लेते हैं उसी प्रकार वे स्वप्नावस्थामें भी अपने आरोपणके लिये विशेष पदार्थकी खोज कर लेते हैं । जाग्रत अवस्थाका पदार्थ निर्मित नहीं माना जाता । स्वप्न अवस्थाका पदार्थ मनके द्वारा निर्मित होता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि यदि किसी मनुष्यके मनमें अवांछनीय स्थायी भाव हैं तो उसके स्वप्न वांछनीय होंगे । और यदि उसके मनमें सुन्दर स्थायी भाव हैं तो उसके स्वप्न सुन्दर होंगे । स्थायी भावोंके बदलनेसे स्वप्नोंमें मौलिक परिवर्तन हो जाता है ।

यहां इस तथ्यको स्मरण रखना आवश्यक है कि वास्तविक जगतमें प्रकाशन होते समय स्थायी भाव जिस प्रकार कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार स्वप्न जगतमें प्रकाशित होते समय ठीक उसी तरह कार्य नहीं करते । बैरका स्थायी भाव हमारी जाग्रत अवस्थामें हमें शत्रुके नाशके लिये अनेक योजनाएं बनानेके लिये प्रेरित करता है । हम उसका विनाश चाहते हैं और ऐसी ही कल्पनाएं मनमें उसके प्रति लाते हैं । हम अपने मनमें किसीसे बैरके कारण अपने विनाशकी कल्पना नहीं लाते ।पर स्वप्नमें ऐसा नहीं होता ।

हमारा मन शत्रुओंद्वारा त्रस्त होनेका अनुभव हमें कराता है। अर्थात् हमारी स्वप्नकी कल्पना कभी-कभी हमारेही प्रतिकूल होती है। जाग्रत अवस्थामें हम दूसरोंसे घृणा करते हैं स्वप्नावस्थामें दूसरोंको अपने प्रति घृणा करते हुये हम पाते हैं। जाग्रत अवस्थामें धन-संचयकी कल्पना हमारे मनमें आती है स्वप्नावस्थामें धनके चुराये जाने अथवा उसके विनाशकी कल्पना हमारे मनमें आती है। जाग्रत अवस्थामें हम दूसरेकी मृत्यु चाहते हैं, स्वप्नावस्थामें हम अपनी हीमृत्यु देखते हैं।

इस प्रकारकी स्थिति हमारी आत्माकी उत्तेजना रहित इच्छाके कारण होती है। फ्रायड महाशयका कथन है कि मनुष्यमें मृत्युकी इच्छा वैसी ही प्रबल है जैसे जीने की। इसको उन्होंने निर्वाणकी इच्छा कहा है। यह उत्तेजनारहित होनेकी इच्छा है। वास्तवमें यही इच्छा स्वप्नोंके होनेका मूल कारण है। हमारा साधारण विश्वास है कि स्वप्न हमारी नींदको भङ्ग करते हैं किन्तु यह विश्वास एक भूल है। स्वप्न नींदकी रक्षा करते हैं। नींद निर्वाणकी इच्छाका सूचक है यह प्रतिदिनके निर्वाणकी अनुभूति है जिसके बिना कोई मनुष्य जी नहीं सकता। इसकी प्राप्तिके लिये मनकी प्रबल उत्तेजनाओंका शान्त होना अति आवश्यक है, जिस प्रकार जीवनकी सभी उत्तेजनाओंका शान्त होना निर्वाणकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है। ये उत्तेजनाएं उनके विपरीत प्रकाशन अथवा कारणसे ही शांत होती हैं। बैर, घृणा आदिकी शान्ति उनके विपरीत मनोभावोंकी उत्तेजनासे होती है अथवा उनके फलोंके भोग से होती है। इस प्रकारके मनोभावोंके फलोंका भोग स्वप्नमें कुछ कुछ हो जाता हैं। बैर और घृणा, भय तथा क्लेशमूलक हैं। जब हमारे मनमें बैर और घृणाकी प्रबलता होतीहै तो हमारा स्वभाव भय और क्लेशकारी परिस्थियोंका पूर्वी मनोभावोंका निराकरण करनेके लिये अपने काम रच लेता है इस तरह हम अपने-आप ही अपने-आपको यन्त्रणा देते हैं।

कुछ स्वप्न हमें आदेशके रूपमें मिलते हैं। ये वास्तवमें हमारी अन्तरात्माके आदेश मात्र हैं। कभी कभी हम किसी महान पुरुषको विशेष प्रकारका आदेश देते हुए पाते हैं। इस प्रकारके स्वप्न हमारी आन्तरिक इच्छाके सूचक हैं। जब कभी हम किसी विकट परिस्थितिमें पड़ जाते हैं जिसमें हम नहीं जानते कि क्या करना उचित है और क्या नहीं और जब विचार करते करते हमारा मन शिथिल हो जाता है तो हम किसी बाहरी प्रकाशकी आशा करते हैं। जब इस प्रकारके प्रकाशकी इच्छा हमारी प्रबल आन्तरिक इच्छा हो जाती है और जब इस इच्छाकी तृप्ति किसी भी वाह्य साधनोंसे नहीं होती तो वह आदेशात्मक स्वप्नोंका कारण बन जाती है। धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले लोगोंको अनेक ऐसे स्वप्नोंकी अनुभूति होती है। इन आदेशोंपर चलनेसे मनुष्य अवश्य कामयाब होता है। इसका कारण यह है कि हमारे चेतन मनका ज्ञान हमारी विचारकी शक्तिसे परिमित है। चेतन मनकी युक्तियां चेतन मनके ज्ञानसे परिमित होती हैं। वस्तु स्थितिमें ऐसी बहुत सी बातें होती हैं जिसका ज्ञान हमारी चेतनाको किसी समय भी नहीं होता। यदि कोई मनुष्य तर्क वितर्कके द्वारा ही अपने कार्योंका सञ्चालन करे तो वह न तो कोई महत्वपूर्ण कार्यकर सकेगा और न उसके निर्णयही महत्वकारी होंगे। एडलर महाशयका कथन है कि मनुष्य विक्षिप्त अवस्थामें ही किसी कामके करनेके पूर्व उसके सभी पहलुओंपर विचार करता है। इस प्रकारका विचार करनेवाले व्यक्तिका मन सदा डावांडोल रहता है और वह दीर्घ सूत्री होता है। जब चेतनाके विचार और उक्तियां अचेतन मनकी प्रेरणाके अनुसार होतीहैं तभी मनुष्यको किसी कार्यमें सफलता मिलती है। इस प्रकारकी प्रेरणाका आदेश जब जाग्रत अवस्थामें मिलना सम्भव नहीं होता तब उसे स्वप्नावस्थामें मिलता है।

बहुत पुराने समयसे मनुष्योंमें यह विचार चला आया है कि मनुष्यके कुछ स्वप्न भावी घटनाओंके सूचक होते हैं। वैज्ञानिक विचार इस प्रकारकी धारणाका विरोधी है, आधुनिक विज्ञान जड़वादी है अतएव इस तरहके स्वप्नोंमें विश्वास अविचार माना जाता है। किन्तु यदि हम उन कवियोंकी रचना देखें जिन्हें आज भी संसार बुद्धिमान मानता है तो हम देखेंगे कि सभी कवि इस प्रकारके स्वप्नोंमें विश्वास करते हैं। शेक्सपियरकी रचनाओंको देखिये। जूलियस सीजर नामक नाटकमें केलियूरनियां अपने पति जूलियस सीजरकी मृत्युका स्वप्न, उसकी मृत्यु होनेके पहले ही देख लेती है। प्ल्यूटार्कने भी अपनी रोमन वीरोंकी गाथा में (जिससे कि शेक्सपियरने जूलियसर सीजरकी कथा ली है) कैलियूरिनियाके इस स्वप्नका उल्लेख किया है। अतएव हम देखते हैं कि इस प्रकारके स्वप्नोंमें न सिर्फ शेक्सपियरका विश्वास है प्ल्यूटार्कका भी विश्वास है। बाल्मीकी रामायणमें भी हम इस प्रकारके स्वप्नोंमें विश्वास पाते हैं। भरत अपने पिताकी मृत्युका स्वप्न उनकी मृत्युका समाचार सुननेके पहले ही देख लेते हैं। बौद्ध धर्म ग्रन्थ 'मालिन्द राजाके प्रश्न' में भी इस प्रकारके स्वप्नोंमें विश्वास पाया

जाता है। हाल हीकी बात है कि यहांके एक प्रतिष्ठित सज्जनने अपने मित्रके घरमें चोरीहोनेका स्वप्न रातको दोबजे देखा। उन्होंने अपना एक नौकर उस मित्रके घर कुशल समाचार पूछनेके लिये भेजा। नौकरको वहां पहुंचनेपर ज्ञात हुआ कि वास्तवमें उनके मित्रके घर चोरी हो गयी थी। लेखकके एक भिक्षु मित्रको एक बार रातके समय एक व्यक्तिके जल जानेका स्वप्न हुआ। दोपहरके पहले उन्होंने एक जले हुए व्यक्तिको उसी तरह अस्पतालमें जाते हुए देखा जिस तरह कि वह स्वप्नमें देखा गया था। उस व्यक्तिके जलने की घटना उस स्वप्नके बाद हुई थी। दो वर्ष पूर्व मेरे एक विद्यार्थीको उसके पिताकी मृत्युकी सूचना देनेवाला स्वप्न हुआ। इस स्वप्नके आठ-दस घण्टे बाद उन्हें अपने पिताकी मृत्युका तार मिला। सीशोर महाशयने एक ऐसे स्वप्न का वर्णन किया है जिसमें वह अपनी मृत्यु देखता है। पीछे उस व्यक्तिकी मृत्यु वैसे ही हो गयी जैसी उसने देखी थी। एक माताने अमेरिकामें अपने पुत्रको जहाजके साथ डूब जाने का स्वप्न देखा। उसका पुत्र उस समय योरोपमें था और अपने घर अमेरिका जाना चाहता था। माताने पुत्रको घर न आनेके लिये तार दिया किन्तु इसी बीचमें वह लड़का चल पड़ा था और उसकी मृत्यु जहाज डूबनेसे हो गयी। लेखकने एक स्वप्न इस प्रकारका सुना एक स्त्रीको स्वप्न हुआ कि वह नर्मदा नदीमें स्नान करते समय पानीमें डूब गयी। इस स्वप्नको उसने अपने साथी सहेलियोंसे कहा। वास्तवमें वह इस स्वप्नके दो एक रोज बाद नर्मदा नदीमें डूब कर मर गयी। विज्ञान चाहे जो कुछ कहे इस प्रकारके स्वप्नोंको आकस्मिक एवं निराधार नहीं माना जा सकता। सम्भव है कि हमारी चेतनाके ज्ञानके परे कोई ऐसी शक्ति है जो कि भावी घटनाओंको जान सकती है और जो भावी घटनाओंकी रूप-रेखा स्वप्नोंके रूपमें हमारे मनमें प्रकाशित कर सकती है इस शक्तिकी खोज करना भावी विज्ञानका कार्य होगा।

स्वप्नके निराकरणके उपाय

स्वप्नके निराकरणके उपाय उनके कारणोंके भली प्रकार अध्ययनसे स्वतः ही सूझ जाते हैं। स्वप्न किसी न किसी प्रकारकी उत्तेजनाके कारण होते हैं चाहे वह उत्तेजना बाह्य हो अथवा आंतरिक। जिस प्रकारकी उत्तेजना होती है उसी प्रकारके स्वप्न होते हैं। बहुतसे स्वप्न दोनों प्रकारकी उत्तेजनाओंके मिश्रणसे होते हैं। उत्तेजनाओंके परिवर्तनसे स्वप्नमें परिवर्तन होना सम्भव है। बाह्य जगत्-जन्य उत्तेजनाओंमें परिवर्तन सरलतासे किया जाता है किन्तु मानसिक स्थितिकी उत्तेजनाओंमें परिवर्तन करना इतना सरल कार्य नहीं है। मानसिक जगतकी उत्तेजनाओं को बदलनेके लिये स्वभावका बदलना आवश्यक है। जबतक मनुष्यके स्थायी भाव बदल नहीं जाते, उसकी मानसिक ग्रंथियां खुल नहीं जाती तबतक उसके स्वप्नोंमें विशेष प्रकारका परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि मनुष्यके स्थायी भाव और ग्रन्थियां अवांछनीय हैं तो उसके स्वप्न दुःखद होंगे। इनमेंसे कितनी ही ग्रन्थियोंकी जड़ शैशव-अवस्थामें जमती हैं और ग्रन्थियां बड़ी जटिल होती हैं अतएव उनका खुलना भी बड़ा कठिन होता है किन्तु प्रति दिनके अभ्याससे यह सम्भव है।

अवांछनीय स्थायी भावोंका निराकरण विपरीत मनोभावोंको दृढ़ करनेसे होता है। बैर भावनाका निराकरण मैत्री भावनासे होता है। घृणाके भावोंका निराकरण प्रेम-भावनासे। पातंजलिके योगसूत्रमें समाधि लाभके लिये मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा—इन चतुष्भावनाओंका अभ्यास अनिवार्य बताया गया है। मैत्री भावना बैर भावनाकी विरोधी है। मुदिता इसकी, करुणा, घृणा की और उपेक्षा दंभकी विरोधी है। इन भावनाओंका अभ्यास करनेसे जिस प्रकार जाग्रत अवस्थामें शांति लाभ होती है उसी तरह भयंकर स्वप्नोंका होना भी मिट जाता है। बौद्धधर्मके ग्रंथों में भी इन भावनाओंका अभ्यास सम्यक समाधिका एक रूप बताया गयाहै। 'राजा मिलिंदके प्रश्न' नामक बौद्धधर्म ग्रन्थमें मैत्री-भावनाके अभ्यासके जो दस लाभ बताये गये हैं उसमें बुरे स्वप्नोंका न होना भी बताया गया है। प्रत्येक व्यक्ति इसका अभ्यास करके स्वयं देख सकता है कि कहां तक इस विषयमें हिन्दू और बौद्धधर्म ग्रन्थोंका कथन सत्य है। मैत्री भावनासे भयंकर स्वप्नोंका न होना यह अनुभवगत वस्तु है जिससे मैत्रीभावनाके कारण वैर भावना सूचक सभी स्थायी भाव शिथिल हो जाते हैं चाहे वे चेतन मनको ज्ञात हो अथवा अज्ञात हों। हमारी सभी भावना-ग्रन्थियोंका निराकरण मैत्री भावनाके दृढ़ अभ्याससे हो जाता है। इनके निराकरण होनेपर बुरे स्वप्नोंका आना भी बन्द हो जाता है।

सारांश यह है कि सभी बुरे स्वप्न शारीरिक अथवा मानसिक गन्दगीसे होते हैं। इस गन्दगीके हटानेसे चित्त शांत होता है। उसमें किसी प्रकारका क्षोभ नहीं रहता। अतएव दुखदायी स्वप्नोंका भी अन्त हो जाता है। क्षोभ ही दुखदायी स्वप्नोंका कारण और उसका विनाश ही दुखद स्वप्नोंके अन्तका उपाय है।

रातका सपना

लें॰ मेट्रोपोलटन नाइट मेयर

मैं एक दुःस्वप्न देख रहा हूं। तोपें अबतक भैरवनाद कर रही हैं और बमोंके भीषण धड़ाके कानके पर्देको फाड़ रहे हैं। मशीनगनोंकी कड़कड़ाहट साफ सुनायी पड़ रही है और सेन्ट मार्टिन्स लेनसे हेमार्केटको पार करती हुई सन-सन गोलियां चल रही हैं। मुझको अपना प्रथम संवाद अविलम्ब भेजना है। यह बात दूसरी है कि नाजी सेंसर मेरे संवादको बाहर जाने देंगे अथवा नहीं। नाजी प्रेस परामर्शदाता सावरफुन्सने मुझसे कहा है कि एकमात्र मैं ही तटस्थ प्रेस अफ़सर हूं जिसका समाचार आज रातको बाहर भेजा जा सकता है। मैं, इयान मैनली, संसारके सभी समाचार-पत्रोंमें कल प्रातःकाल शीर्षस्थान प्राप्त करूंगा किन्तु 'हमारे फुटबाल संवाददाता' के रूपमें नहीं। मैं यहां स्पोर्ट्स रिपोर्टर बनकर आया था। युद्ध-सम्बन्धी समाचारोंके बारेमें संवाद भेजनेकी मैं कुछ भी जानकारी नहीं रखता। कुछ ही घण्टे पूर्व मैंने अपना पहला तार निम्नाशयका भेजा था :—

जर्मनोंने ब्रिटिश सरकार पर आज शामके ९ बजे पूरा अधिकार जमा लिया। विराम वेम्बली फाइनल मैचके बाद हिटलरपर आज तीसरे पहर गोली चलायी गयी विराम फ्यूहरको घात नहीं लगा। विराम आक्रमणकारी कथित अमेरिकन परिचय अज्ञात गेस्टापोकी गोलीसे मृत्यु विराम स्टेडियममें मृत्यु संख्या ९९०। कई हजार घायल भगदड़में हजारों आहत। विराम वेस्ट मिंस्टरका एक हिस्सा आस-पासके मकान टाइम बमसे ध्वस्त। जर्मन कथनानुसार विप्लववादी षडयन्त्र विराम। अनेक विरोधी सदस्य मृत। मन्त्रिमण्डल सुरक्षित। विराम क्रामडन तथा अन्य हवाई अड्डोंपर जर्मन झपट्टेमार बमबाजों द्वारा बमबाजी। विराम भीषण युद्धकी खबर अपूर्ण।

यह समाचार किसी भी संवाद सम्पादकके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण और आकर्षक है। गत एक या दो वर्षोंकी घटनाओंके कुछ कटिंग और थोड़ी कल्पना शक्तिसे इस समाचारको कई कालमोंमें प्रकाशित किया जा सकता है। ब्रिटेनका युद्ध, लुफ्तवाफकी भीषण बमबाजी, गृह रक्षक दलका सङ्गठन, 'खून-पसीना-परिश्रम सब कुछ और उसके बाद शान्ति और सम्मानपूर्ण समझौतेके प्रस्तावोंके साथ डिप्टी फ्यूहर एडोल्फ हेसका आगमन। इसके बाद ही आश्चर्यजनक सशस्त्र विद्रोह हुआ और उसके परिणाम स्वरूप किलारनीकी सन्धि हुई।

प्रथम दृष्टिमें यह उचित सन्धि प्रतीत हुई, यह नाजियों की धूर्ततापूर्ण चाल थी। इस सन्धिके मुताबिक जर्मनीका अपने विजित यूरोपीय देशोंपर और ब्रिटेनका अपने साम्राज्य पर अधिकार अक्षुण्ण रहता था। कोई क्षतिपूर्ति नहीं, कोई प्रतिशोध नहीं। "पारस्परिक सुरक्षाका स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दतापूर्वक आदान-प्रदान" एक फन्दा था। एक ब्रिटिश रक्षक डिवीजन एक टैंक और पैराट्रुप डिवीजनके साथ बर्लिन गया। इसी प्रकार जर्मन तूफानी सेनाका तीन डिवीजन लन्दन पहुंचा और उसका हार्दिक स्वागत किया गया। वस्तुतः अंग्रजोंको एक जर्मन डिवीजनका आकार पहले ही जान लेना चाहिये था। वास्तवमें सैन्य दलोंका यह आदान-प्रदान पूर्णतया अनुपातसे हुआ था। जर्मन सेना आकारमें ब्रिटिश सेनासे १० गुना बड़ी थी। इसका मतलब यह हुआ कि इङ्गलैंडने अपनी सेनाकी शक्तिसे वञ्चित होकर उसके बदलेमें एक विशाल जर्मन सेना मंगायी।

सर्वप्रथम नौसेनाको लेकर मतभेद उत्पन्न हुआ। ब्रिटिश जङ्गी बेड़ेके आधे भागको सद्भावपूर्ण वातावरण स्थापित करनेके लिये बाल्टिकमें और शेष आधे भागको जर्मनोंके निरीक्षण और प्रशंसाके लिये चैनेल बन्दरगाहोंपर भेजना निश्चित हुआ था। भूमध्य सागरमें भी इसी प्रकारकी व्यवस्था की गयी थी और मुसोलिनीको ब्रिटिश एडमिरल की उपाधि प्रदान करनेके अवसरपर वह विशेष रूपसे ब्रिटिश जङ्गी बेड़ेका मुआयना करनेवाले थे। किन्तु नौसेनाकी यह सारी व्यवस्था किसी प्रकार विफल होती गयी। [redacted] कतर ब्रिटिश जहाज कनाडा पहुंच गये यद्यपि स्काटलैं [redacted] श्रमी तटपर अब भी कुछ जहाजोंके मौजूद रहनेकी खब [redacted] । ऐसा कहा जाता है कि कुछ दुस्साहसी ब्रिटिश युव [redacted] सनके 'विक्टरी' जहाजको जर्मनोंके सामने पोर्ट्समाउ [redacted] गाकर वेलफास्ट ले गये।

इसके सिवा और कुछ विशेष गड़बड़ी नहीं हुई और यदि हुई भी तो जर्मनोंने उसे दबा दिया। ब्रिटेनके अधिकतर समाचार पत्रोंके बन्द हो जानेके कारण नाजी नियन्त्रित

बी० बी० सी० के ब्राडकास्टोंके सिवा और कोई खबर नहीं सुनी गयी। किन्तु ब्रिटिश पुलिसकी कार्यप्रणाली अन्य देशोंकी पुलिससे भिन्न है अतएव स्काटलैंड यार्डमें गेस्टापो को कार्य करनेमें सफलता नहीं हुई। ब्रिटेनकी पुरानी बेली प्रथाको नाजी स्वरूप प्रदान कर दिया गया किन्तु जूरी प्रणालीको स्थगित करनेका जर्मनोंका साहस नहीं हुआ। अक्सर प्रमाणके प्रतिकूल निर्णय होने लगे। न्यायाधीशों द्वारा सरकारी वकीलोंके विरोधके बावजूद अत्यन्त मामूली सजा दी जाने लगी। उदाहरणार्थ, ब्रिटिश युवतियोंके साथ आनन्द मनानेकी चेष्टा करनेवाले जर्मनोंको उनके पिता अथवा भाई अथवा प्रेमी गोली मार देते अथवा छुरा भोंक देते थे और इसके लिये 'प्राकृतिक कारणोंसे मृत्यु' का फैसला दिया जाता था।

इसके बावजूद नाजियोंने ब्रिटेनमें शांति स्थापित करने की कोई चेष्टा उठा नहीं रखी। ब्रिटेनकी जनताको रिबनट्रापने बड़े दिनके अवसर पर अपना संदेशा देते हुए कहा था कि "जर्मन और अंग्रेज जनताको एक साथ अनुशासनपूर्वक अवश्य ही कदम बढ़ाना सीखना चाहिये।" यदि अंगरेज ऐसा नहीं सीखेंगे तो उनको सिखाया जायगा। किन्तु यह काम कुछ कठिन था। अन्ततः ब्रिटिश पर न तो विजय प्राप्त की गयी थी और न उसने आत्मसमर्पण ही किया। वेम्बलीमें इङ्गलिश कप फाइनलका खेल देखनेके लिये हिटलरको जानबूझ कर और खास योजनाके अनुसार आमन्त्रित किया गया था। इसका उद्देश्य खास कर श्रमिक वर्गको लेकर था।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी संगीन हो चली थी। जर्मनोंने घोषित कर दिया था कि अमेरिकावाले हमेशा गड़बड़ी पैदा करना चाहते हैं और ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके साथ उन्होंने गुटबन्दी कर रखी है। निश्चय ही, राष्ट्रपति रूजवेल्टकी स्थिति अत्यन्त जटिल हो गयी थी। कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका और उत्तरी आयरलैंडकी पार्लामेण्टोंने विरामसन्धि और किलारनीकी संधि को स्वीकार करना नामंजूर कर दिया तथा साम्राज्य-युद्ध-कौंसिलका अधिवेशन ओटावामें स्थायी रूपसे आरम्भ हो गया और उस कौंसिलके नेता फील्ड मार्शल स्मट्स तथा डिप्टी नेता मि० मैकेंजीकिंग बनाये गये।

अतएव आज जो घटना हुई है उसको द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होनेका चिन्ह समझा जा सकता है। किन्तु इस समय किसी प्रकारकी अटकलबाजी उचित नहीं है। मुझको फिर बाहर जाकर प्रेस ब्यूरोका हाल-चाल देखना चाहिये। समाचार पानेके लिये उत्कण्ठित संसारके अन्धकारको दूर करना मेरा कर्तव्य है। अङ्गरेजी भाषा-भाषी समाचारपत्रों को संवाद भेजनेवाला एकमात्र मैं ही हूं। वस्तुतः सभी वैदेशिक संवाददाता और संसारके प्रायः सभी देशोंके रिपोर्टर आज दिनके तीसरेपहर वेम्बलीमें एकत्र थे किन्तु उन गरीबोंको एक भी समाचारपत्र भेजनेका अवसर नहीं मिला।

वहांका हत्याकांड रोमांचकारी था। अब भी मैं वहांकी घटनाको ठीक तरह समझनेमें असमर्थ हूं। क्या सचमुच जर्मन बमबाजोंने ठसाठस भरे स्टेडियमपर झपट्टामार बमबाजी की। मेरे समान अनेक व्यक्तियोंके भाग निकलनेपर भी वहां करीब एक लाख व्यक्ति मौजूद थे। नाजी प्रेस परामर्शदाताको धन्यवाद; मैं स्टेडियमसे सकुशल बच निकला। उसने मेरी जान बचायी, यह ठीक है किन्तु अपनी रक्षाके लिये मैं जीवन भर उसका ऋणी रहूँगा। इस बातके ख्यालसे ही मुझको घृणा होती है। नाजी लोग कभी भी अपने दिली दोस्तके लिये ऐसा कोई काम नहीं करते जिसमें उनका कोई स्वार्थ-निहित न हो।

टेलिफोनकी घण्टी अचानक बज उठी। सावरफुल्स मुझसे मिलना चाहता है। उसने मेरे लिये एक सशस्त्र मोटर गाड़ी भेजनेकी व्यवस्था की है। हमारी मोटरगाड़ी जब ब्लूम्सबरीसे सनसनाती हुई निकली, तबतक मैं कुछ भी नहीं देख सका था। तोपोंके भीषण शब्द और मशीनगनोंकी कड़कड़ाहट उस समय भी सुनायी पड़ रही थी। सावरफुल्स उस समय आनन्दके कारण गुनगुना रहा था जबकि मैं उसके सजे हुए सुविशाल कमरेमें पहुंचा। मुझको देख कर धुंधले रंगके चश्मेके पीछे उसकी आंखें आनन्द और हास्यसे चमक उठीं। "क्यों! आजका दिन कैसा रहा? स्वागत मेरे दोस्त। मेरा ख्याल है, आज तुमने बहुत बड़ा खरीता लिखा है, क्यों, और हम जर्मनोंने बहुत बड़े काम किये हैं। मेरे प्यारे दोस्त, तुम दुनियाको बता दो कि हमने लन्दनपर किस प्रकार कब्जा जमा लिया। मैं तुमको पूरा विवरण—रक्त और आंसुओंकी कहानी बताता हूं। मैं तुम्हें सर्वाधिकार दे रहा हूं, जिससे तुम सारे संसारमें इस अद्वितीय घटनाको प्रचारित कर सको। इनमेंसे तुम अपने इच्छानुसार चुन लो। अनेक विशेष समाचार तैयार हैं। वेस्टमिनिस्टरका युद्ध। विण्डसरपर तूफानी सैनिकोंका आक्रमण। ब्रिटिश रक्षक सैनिकोंका सफाया। हाईगेटसे मूरगेट तक नाजी पंक्ति

पर रोमेल तैनात। अग्रगति जारी। सुन्दर, क्यों ? ऐसा मालूम हुआ कि जिन घटनाओंको मैंने अपनी आंखों देखा था, वे बिलकुल भ्रम थीं—सेण्टजेम्समें लन्दन लाइब्रेरीको भस्मीभूत करते हुए अग्नि निःक्षेपक टैंक, रित्सहोटलका ध्वंस, ग्रीन पार्कमें रक्षक सैनिकोंपर गोलीवर्षण, ट्राफलगर-स्कायरमें नेलसनकी प्रस्तरमूर्तिका उड़ाया जाना, वेस्ट-मिनिस्टर पुलपर ह्वाइटहालके रक्षक सैनिकोंका अन्तिम मोर्चा, हे मार्केटका हत्याकांड, सेवोयकी बर्बरता—सभी घटनाएं मुझको भ्रममात्र प्रतीत होने लगीं। वस्तुतः जर्मनोंने वेम्बली स्टेडियमपर बमबाजी की थी। लन्दनके सभी खेल के मैदानोंपर :लुफ्तवाफने इसी प्रकार बम बरसाया था। सावरफुन्सने स्पष्ट रूपसे बता दिया कि मृत व्यक्तियोंकी संख्याका उसको कुछ भी अनुमान नहीं था। 'कमसे कम १० लाख हो सकता है २० लाखके आसपास लोग मरे हों, मगर यह ठीक ही हुआ।' आगे उसने कहा—'निश्चय ही, हमारे फ्यूररपर आक्रमण करनेवालोंको इससे अच्छा सबक मिल गया। अब हम लोग यह कार्रवाई बन्द कर रहे हैं। समझ गये, मेरे दोस्त।" मैंने अपनेको जब्त रखा और ट्राफलगर स्कायर वापस जानेके लिये उसकी मोटर-कारका उपयोग करनेके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया।

जब मैं आगे बढ़ा उस समय सर्वत्र श्मशानकी निस्तब्धता थी। किसी भी स्थानपर एक भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। उद्यानोंमें सुन्दर पुष्प भूलुण्ठित हो रहे थे और ऐसा प्रतीत होता था मानों लाशोंके चतुर्दिक किसी ने पुष्प वर्षा की हो। रसेल स्कायरके बीचोबीच नाजियोंने लाशोंके ढेर लगाकर उनकी अन्तिमक्रियाका उपक्रम आरम्भ कर दिया था और फूलोंके गुच्छोंसे भरे हुए अनेक रंग-बिरंगे पेड़ बनके बीच शोभायमान हो रहे थे। मेरी बांह पर बंधे हुए परिचय पत्रने, जिसपर अङ्ग्रेजी और जर्मन भाषाओंमें 'प्रेस' लिखा हुआ था, मुझको आगे जानेमें मदद दी। मैं सेण्ट मार्टिन्स लेन स्थित अपने निवासस्थान-को वापस जाना चाहता था। किन्तु होलबर्नके खण्डहरोंने, जहां अत्यन्त खूंखार युद्ध हुआ था और मोलोटोव बमोंसे तीन जर्मन टैंकोंको चकनाचूर कर दिया गया था,—मुझको वापस लौटनेको बाध्य किया। शायद, यह अच्छा ही हुआ। लिंकन,—इन फील्ड्समें मुझको कुछ ब्रिटिश रक्षक सैनिकोंने रोका और गिरफ्तार कर लांगएकड़ भेज दिया। ऐसा मालूम हो रहा था कि डेली हेराल्ड कम्पनी अबतक वहां नाजियोंके प्रतिरोधमें संलग्न है। मैंने जब अपने कागजात उनको दिखाये और कई बार 'प्रेस' शब्दको दुहराया तो उन अङ्ग्रेजोंने कहा—"ठीक है" और मुझको छोड़ दिया। स्टैंड पैलेस होटल और चेरिंगक्रास अस्पतालके पीछेसे मीलों का चक्कर काटकर अन्तमें मैं अपने घर पहुंचा। एक प्याला ब्रांडी पी कर मैंने अपनेको तरोताजा किया।......

मैंने निश्चय किया कि यहांसे मुझको किसी प्रकार भागना ही होगा। मेरा विश्वास है कि लन्दनके मध्यमें जबतक वे प्रकाश मौजूद रहेंगे तबतक अङ्ग्रेजोंको नतमस्तक नहीं किया जा सकेगा किन्तु यहांसे निकल कर संसार को सच्ची खबर देना किसीके भी लिये आवश्यक है। अमेरिकाको समय रहते हस्तक्षेप करना चाहिये। अमेरिकाको अपनी ही भलाईके लिये ऐसा करना चाहिये। उत्तरी इङ्गलैण्डमें जबतक अङ्ग्रेज डटे हैं और अल्सटरमें दूसरा मोर्चा कायम हैं तबतक ब्रिटिश द्वीपसमूह पराजित नहीं हो सकता।

पास ही एक भीषण धड़ाका सुनायी पड़ा। तोप, बन्दूक, बम—कर्णभेदी भैरवनाद! हे भगवान् लांगएकड़पर उन्होंने बमबाजी आरम्भ कर दी। मैं जर्मन जहाजोंकी घर-घराहट स्पष्ट सुन रहा हूं। बमोंके लगातार विस्फोट से हमारा यह कंपाउण्ड और इस्पातका अति आधुनिक मकान हिंडोलेकी तरह डोल रहा है। वे लोग लन्दनका कुछ भी बाकी रखना नहीं चाहते थे। वेस्टमिंस्टर ध्वस्त, वेस्ट एण्डका अर्द्ध भाग नष्ट, ईस्ट एण्ड मटियामेट, आस-पास के अधिकतर इलाकोंका सफाया।...........

हमारे लेखकने सखेद सूचित किया है कि खटमलोंके सामूहिक आक्रमणके कारण उनकी नींद एकाएक खुल गयी और उसको इससे अधिक कुछ भी स्मरण न रहा।



चमेली और आजादी

(१८ वें पृष्ठका शेष)

नहीं है। इधर उधर पड़े रहते हैं। अब शीत पड़ेगा तो वृन्दावन या हरद्वार चले जायेंगे। बना बनाया खाना मिलेगा। तकलीफ कुछ कम हो जायगी।

ये बातें रामदेवको आश्चर्यमें डालती है। अपनी स्थिति-से एक सीढ़ी नीचे ये लोग हैं। फर्क क्या है। वह कमाकर पैसे पाता है, ये भीख मांग कर पाते हैं। असमर्थ हैं इसीसे हाथ पसारते हैं। इनका सुख यही है। उसका सुख चमेलीको लेकर है। तब हरेक जञ्जीरें उसे ज्यादा नर्म नहीं लगीं। उसने कहा—"तुम भी आदमी हो और मैं भी। तुम्हारा बना मैं शौकसे खाऊंगा। आदमीसे आदमीका काम चलता है। कभी मैं तुम्हारे काम आऊंगा। ये लो पैसे…" रात भर भिखारियोंके साथ बिताना, साथ रहना, बातें करना, अपना मन बहलाना, ऐसी ही बातें हैं। सवेरे जब वह अलग हो रहा था, उस समय 'राम राम' के भाव भरे शब्दोंमें खिंचाव नहीं था। तब नये सिरेसे चमेली खिली।

शहरमें आ जानेपर इतिहास शुरू होता है। तीन चार दिन बिना किसी घटनाके बीत गये। पैसे खर्च होते थे। ठोकरें खानी होती थीं। कभी किसी पार्कमें, और कभी जनताकी आम जगहोंमें रात कटती थी। आंखें हमेशा खुली होती थी। हरेक तरहके आदमी उसने देखे। मोटरों पर चढ़नेवाले भी देखे। गांवकी पाठशाला जैसे स्कूल और कालेज देखे बड़े बड़े। सिनेमाके बावले जवान शहरके लड़के देखे। केवल आदमियत नहीं देखी। वह मजदूरोंसे मेल बढ़ाना चाहता था। लेकिन वे कम शानमें नहीं रहते। हरेक जगह शोषण की गुञ्जाइश है। बड़ा अपने नीचे वालेको धोखा देता है। अफसर जनताको ठगता है। इज्जत और रुपयोंके नामपर। असल बात कमजोरी और मजबूती की है। अपने क्षेत्रमें मजदूर भी बहादुर बने होते हैं। ज्यादा दाम लेते हैं। मध्यवर्गके लोगोंको नौकर न मिलना ऐसी ही एक घटना है।

रामदेव आजिज आकर सोंचता है कितने खराब तरीके हैं। बराबरी एक दूसरेमें नहीं। इससे भला उसका गांव है। गांवमें पैसा कमसे कम है, पर आदमी तो है। मेल-मिलाप तो है। आपसमें मित्रता हैं, लगाव है और यहां तो सब पशु…लेकिन उसे कुछ कहनेका हक नहीं है।

आखिर एक सस्ते होटलमें उसकी नौकरी हो गयी। दरवान बन गया। ऐसी नौकरीके लिये उसे निजी खोज थी। कमसे कम काम और अच्छी जिम्मेवार जगह। उसी सिलसिलेमें होटलके आने जानेवाले इन्सानोंसे जान-पहिचान होती गयी। पैसे भी दो एक आने रोज मिलने लगे। सब मिला कर महीनामें सोलह सत्रहका हिसाब था। पेट भरनेपर और बातें याद आयी। चमेलीकी जरूरत खूब पड़ी। मौकेके लिये होटलकी एक नौकरानीसे दोस्ती हो गयी। वह सांवली थी और चंचल। हंसी वह पी जाती थी और हरेक हरकतके नजदीक आनेका विश्वास दिलाती थी। पीछे उसने जाना इसी तरह बीसों नौकरानियां यहां हैं जो खास अवसरपर सेवामें काम पाती हैं, सस्ते दामोंपर।

सुबह शाम मेहनत करके वह खुश था। धीरे-धीरे वह सोचने लगा कि मेहनत करनेवाला हरेक आदमी मजदूर होता है। होटलका मैनेजर मजदूर है। आफिसोंके क्लर्क मजदूर है। रेलका टिकट बेचनेवाला स्कूलोंका मास्टर, मिलोंके कारीगरसे लेकर वेश्याएं तक। बहुत-सी शंकाएं उसे मिलती थी पर जवाब नहीं मिलता था। कभी उस सांवली नौकरानीसे बातें कर लेता। वह कुछ जवाब नहीं देती थी। टाल जाती थी। वैसे ही एक दिन उसने पूछा, "पैसे लेकर तुम कितने काम कर सकती हो?"

वह चुप रही, उत्सुक।

"मेरा मतलब है, मेरे साथ सोनेके लिये कितने रुपये लोगी?" तब उसने गालियां दी थी। क्रोधसे जीभ काटती थी। किन्तु वह सोच नहीं सकता था कि जब पेटके लिये गन्दी नौकरी करनी होती है तो और जरूरतोंके लिये क्यों इन्कार होता है? वह खुद चमेलीको इसीलिये प्यार करता है क्योंकि जरूरत है। नहीं तो ऐसे महंगे समयमें, जब खानेकी तरकीबसे हड्डियां निकल आती है और लहू सूखता है किस-किसका भार लिया जाय। तब उसे लगता कि राजका काम है जरूरतें पूरी करना। स्वर्ग नरक कुछ नहीं है आदमीकी बनायी हुई मशीन और मशीनोंकी तरह।

मजदूरोंका एक दल था जिसका मतलब इकाई बनाना था कि सब मिल कर किसी अन्यायके खिलाफ लड़ सकें। वह उनमें जा मिला। अपनी बातें कही। चमेलीकी बातें कही। फायदा बस इतना ही हुआ कि एकने छोटेसे

घरके एक कमरे, उसे दे दिये। उसका भार उतर गया और वह छुट्टी लेकर गांवसे ले आया चमेलीको जो खुशबूमें किसी नौकरानीसे कम न थी। चमेलीके साथ रह कर वह और सचेत होकर काम करने लगा। बहुत सी बातें उसे मालूम होने लगी कि अकाल आदि खुद आदमीका रचा हुआ है और बीमारियां इसलिये बढ़ती हैं कि उन्हें फैलने दिया जाता है। तब वह उन लोगोंके लिये मरने लगा जो उनके पीछे मरेंगे। चमेली बहुत नासमझ थी, वह हंसती थी। समय बचा कर मजदूरोंके साथ, खास कर फिरोजके साथ हंसी मजाक करती थी।

देशका, शहर-शहरका वर्तमानके प्रति असन्तोष था। हालत खराबसे खराब हो रही थी पूंजीवादकी रगड़में इन्सान पिसता थी। लाखोंके व्यापार होते थे। मिल और फैक्टरी गरीबोंका लहू चूसते थे। नतीजा यह था कि सामाजिक सतह पर मौत और अकालका हाहाकार छाया था। गतिरोध की अवस्था थी। मजदूरोंके पास निराशासे भागनेका एक अस्त्र था और वह शराब। मजदूरोंके संघ बेकाम थे। उनके पास सामर्थ्य नहीं था। उनकी अपनी लाचारियां थी। रामदेव प्रतीक्षा करता था, कोई समझौता हो जानेके लिये। हिन्दू-मुसलमानके मेलके सवालसे उसे अन्धेरा लगता था। मुसलमानोंमें केवल फिरोजको वह जानता था और कह सकता था बुरा शख्स वह नहीं है। तब उसने सभाओंमें जाना शुरु कर दिया था। बहुत-सी बातें वह नहीं समझता था। जो समझता था वह सिर्फ एक उबालमें।

बरसातके भीगे दिन थे। नमी और उष्णतासे, बाजार की लापरवाहीसे बीमारियां और सालोंकी तरह आयीं। मलेरिया और हैजा पहले भिखमंगोंके घेरेसे उठी, फैलीं और गरीब अमीर सबोंसे होते हुए मजदूरोंके बीच थमीं।

रामदेवको बहुत दुख लगा जब वह चंचल नौकरानी दो दिनोंकी बीमारीमें चल बसी। वह मिन्नतें कर चुका था दवाके लिये। वह ब्याहता औरत थी जिसका पति कल-कत्ते या आसाममें रहता था। मरते वक्त वह औरत नर्म हो गयी थी, कहती थी, मैं उनका आसरा देखते जा रही हूं और तुम्हारी बात भी न मान सकी।"

रामदेवको रुलाई आयी थी। मिलके अधिकतर मज-दूर ज्वरसे पीड़ित थे। उन्हें पैसे नहीं थे इलाजके लिये, और न पथ्यके लिये। देशी जड़ी-बूटी वे खाते थे। उनका काम छूट गया था। उन्हें सिर्फ मरनेका आसरा था।

मालिकोंका रुख नहीं बदला। मदद उन्होंने बिल्कुल नहीं दी। बाकी मजदूर देनेसे इन्कार करते रहे। हड़तालका भय उन्हें नहीं था। दूसरे आदमी आने लगे थे।

तब एक दिन फिरोजकी हालत नाजुक हो गयी। राम-देवने देखा चमेलीपर असर अच्छा नहीं है। आसारभी अच्छे नहीं हैं। चमेलीने कहा—"चलो गांव चलें! बचेंगे तो नौकरी बहुत होगी।"

उसने नाराज होकर कहा था "जानके डरसे मरते हुए साथियोंको छोड़कर भाग जाऊं। तू डरती है तो चली जा..."

"यह कैसे होगा। तुम कैसी कड़वी बात कहते हो..." वह रो पड़ी। वह परेशान थी। वह साहस खो चुकी थी। रातको फिरोजकी हालत गिर गयी। उसने चमेलीको पास बुलाया। उसके हाथ लेकर रूखे होठोंपर रखा...... चमेली सिहर उठी।

घड़ी भरको, रामदेव ईर्ष्यासे जला। :चमेली उदास हो गयी, हट दूर गयी।

फिरोज एक राहगीर था, जो चला गया। एक-एक करके नौकरानी, फिरोज, रामू, बंशी, मोहन सब चले गये। हार कर एक दिन उसे बचे-खुचे साथियोंको लेकर, शहर के डाक्टरोंसे भीख मांगनी पड़ी। अस्पतालोंमें जगह नहीं थी। मरनेवालोंको कमी नहीं होती थी। सिविलसर्जनके वह पांव पड़ रहा था। "डाक्टर साहब दया कीजिये। इन्हें सूई दे दीजिये......" वे बिगड़ पड़े, "ये तेरे कौन हैं बाप-दादे। रुपये लाओ, एक इञ्जेक्शनके पांच-पांच!" वे मजदूर एक दूसरेको देखते रहे और उनका रक्त सफेद होता था। वे बिलकुल निराश थे—किस्मतके आसरेमें।

रामदेवकी नौकरी चल रही थी। अपने रुपये वह सस्ते दवाखानोंसे दवाएं लानेमें खर्च करता था और जरूरतपर देता था। वह समझता था कि एक आदमी या उसकीतरहके कुछ आदमियोंकी मददसे अधिक फ़ायदा न होगा। उसके सामने दो ही राहें थीं। जिस तरह रहता था वैसे ही गुजारना, या मुंह छिपाकर भाग आना, जहां भूखकी समस्या और खराब थी। उसे अपनी जानका डर नहीं था। चमेलीकी चिन्ता उसे बहुत थी—वह पीली लगती थी। जरूरत उसकी अक्सर अभी भी होती थी। वह जानता था पेटमें बच्चा है लेकिन अपनी भूखसे वह लाचार था।

वर्षा गिरने लगी। बहुत अधिक वर्षासे बाढ़ आनेकी सम्भावना थी। बीमारियां शान्त हुईं मिलें चलने लगीं। अखबारोंमें लाखों मौतकी खबर छपी। यह संख्या झूठ थी। आंखों देखी बातें, अधिक सची होती हैं। आंधी बहुत

आती है, क्रान्ति नहीं आती। अनाजकी उपजके अनुपात एकसे नहीं होते। ये पूंजीवादी खुद दूर नहीं होंगे, उन्हें निकालना होगा। जिन मिनारोंपर वे स्थित हैं, उन्हें धूलमें गिराना होगा। तब वह स्थिति अमन-चैनकी होगी।

इतिहासके इन अरसोंसे गुजरकर वह एक समझदार आदमी बन गया था। वह काममें विश्वास करने लगा था। नौकरी मनके लायक लेनेको राजी था। वह चाहता था, अपनी तरह गरीबोंकी मदद करे। वे भिखमंगे उसे हमेशा याद आते थे। वह चाहता था स्वतन्त्रताकी लड़ाई के साथ-साथ विकास जारी रहे। फिर भी आजादीका इतना ही अर्थ वह निकालता था कि गांवकी उपज गांवमें रहेगी, कपड़े मिलेंगे, सुख होगा, पैसे होंगे। और कुछ कल्पनाएं फलेंगी। वह लड़ाई लड़नेका आदी हो गया था।

सहसा एक दिन होटलवालेको किसीने गोली मार दी। और रुपये उसके छिन गये। औरतोंपर जबर्दस्ती हुई। इतने निर्दय बदलेके लिये वह तैयार नहीं था। लेकिन नयी बात नहीं थी, आई और चली गयी।

होटल टूट गया। रामदेवको चला जाना पड़ा। वह आसानीसे मिलमें काम ले सकता था। लेकिन वह स्वतन्त्र कामके लिये घूमने लगा। जैसे चर्खेका काम, खादी भण्डारकी नौकरी आदि।

चमेली बीमार थी। उसे खांसी होती थी। उसकी बातें अक्सर दुःख देती थी। चमेली कहा करती, "अब मैं नहीं बचूंगी तब तूं क्या करेगा।"

वह सोंच नहीं सकता था। मौत उसे डर दिखाती है। वह प्रार्थना करता चमेलीसे कि मरना मत। ईश्वर पर विश्वास उसे कम था।

सात दिनतक चमेली बीमार रही। कफमें फीके लहू आने लगा था। वह स्वास्थ्य छोड़ रही थी।

वह सोचता चमेलीको क्या हो गया है?

उसे बताया गया चमेली सचमुच सख्त बीमार है। ज्यादा दिन नहीं बचेगी। इस रोगसे छुटकारा मरनेपर ही होता है। बहुत रुपयोंकी जरूरत है।

वह दुगने उत्साहसे काम खोजने लगा।

एक दिन अखबारोंमें खबर आयी कि समझौता होनेको है। कांग्रेसके नेता छूट जायंगे, देशको काफी हक मिलेंगे।

यह खबर वह चमेलीको सुना आया—वह समझना बूझना छोड़ चुकी थी।

उसकी आशा फिर गयी थी।

दूसरे दिन अखबारके हिन्दीके अक्षरोंको जोड़ जोड़ कर उसने पढ़ा, जवाहरलाल नेहरू छूट गये। सभामें उन्होंने कहा है, वह सरकार जो हमें गरीबोंके प्रति कर्तव्य करनेमें रोकती है, वह नरकका भागी है, और वे भी जो डर कर चुप रहते हैं।"

वह जोशसे चमेलीको यह खबर सुनाने लगा वह बुझी-बुझी सी थी। हाथ उठा रही थी।

रामदेवने कहा—"चमेली, तेरी यादमें मैं हमेशा अपना कर्त्तव्य करता रहूँगा।" दिशायें सिन्दूरकी तरह लाल हो आयी थी, जैसे क्रान्तिके बादल हों।

साधना

ओ प्रकाश की पहली रेखा!
ज्योतिर्मय संसार बना दो।

पा खर रवि किरणों का चुम्बन
प्राण पुलक चञ्चल हो जाएं
रुदन नहीं, हो हास अधर पर
दिग्दिगन्त निर्मल हो जाएं
अंध विश्व के अंतराल में
एक अमर नव ज्योति जगा दो!

प्रखर रश्मि कर के स्पन्दन से
अंधकार उज्ज्वल हो जाये
पावस-पवि-छवि - सा अन्तस में
नव अमन्द आभा मुस्काये
विश्व - तिमिर की गुहा-गुहा में
एक अनोखा रास रचा दो!

ओ प्रकाश की पहली रेखा!
ज्योतिर्मय संसार बना दो।

—वैद्यनाथ सिंह 'दिनेश'



चयनिका

वेस्ट प्वांयटके विद्यार्थी

युद्ध एक दैवी वरदान है जिसके निराकरणका कोई शस्त्र नहीं है। पृथ्वीके आदि युगसे जब मनुष्य पैदा हुआ संघर्षका जन्म हुआ और उसके बादसे युद्ध अनिवार्य हो गया। न तो संघर्षका अन्त हो पाता है और न युद्ध ही कब्रमें सो पाता है। एक की जिन्दगीका दूसरेको बहुत बड़ा भरोसा है और दोनोंके दोनों अपने-आपको, अपनी सत्ताको जीवित रखनेके लिये युद्धका शंख फूंका करते हैं। प्रत्येक महायुद्धके बाद विजेता इस बात का प्रयत्न करता है कि आगे युद्ध न हो पर उसका यह प्रयास ही आगे चलकर युद्धका कारण बन जाता है और फिर अस्त्र-शस्त्रोंकी झङ्कार गूंजने लग जाती है। अमेरिकाका वेस्ट प्वांयट नामक स्थान १४० सालसे अमेरिकाको युद्धकी ज्वाला मिटानेके लिये सैनिक देता चला आ रहा है। जब-जब अमेरिकाको किसी भी देशने युद्धके लिये चुनौती दी है इस स्थानने सबसे पहले आगे बढ़कर उसका स्वागत किया है। यहांके सिपाही बड़े ही सधे तथा मंजे होते हैं। इसका कारण है स्थानका प्रभाव। लगातार डेढ़ सौ सालके सैनिक वातावरणने यहांकी हवामें अनुशासन, देशभक्ति और कृतज्ञताज्ञापन इस बुरी तरह भर दिया है कि इसका प्रभाव आपसे आप यहांके सैनिकोंपर पड़ जाता है। यहां के प्राकृतिक-दृश्य भी सीधे स्वर्गसे लैंडलीज बिलके हिसाबमें लिये गये मालूम पड़ते हैं। न्यूयार्कके उत्तर-पूर्व हिस्सेके हडसन नामक स्थानकी ऊंची-नीची सतहपर यह १६ हजार एकड़ जमीनमें फैली हुई है। इस शहरके सभी मकान भूरे हैं तथा सामनेकी ओर हडसन नदीकी तीव्र-गामिनी धारा है एवं चारों ओर हैं हरे-भरे जंगलोंका घेरा।

महत्वके खयालसे यह अमरीकाका अत्यधिक महत्व-पूर्ण स्कूल है। यहांके पाठ्यक्रममें भी प्रथम स्थान सैनिक शिक्षाको ही प्राप्त है किन्तु इसके साथ ही साथ सहयोगी विषयोंमें गणित और विज्ञानकी भी शिक्षा दी जाती है। यहांका पाठ्यक्रम भी अमेरिकाके अन्य स्कूलोंसे बहुत ही सख्त है। इसका कारण है कार्यकी व्यापकता। न्यु प्वांयट की यह स्कूली शिक्षा-पद्धति एकदम अमेरिकन विचारोंके ढङ्ग पर है क्योंकि अमेरिका सैनिकोंका देश नहीं वरन् सभ्य और शान्तिप्रिय नागरिकोंका देश है। अतएव इसे युद्धकालमें ही सैनिकोंकी आवश्यकता होती है और युद्ध समाप्त होते ही न तो वहां सैनिकवादका नारा लगाया जाता है और न देशको किसी भी अन्य देशोंके खिलाफ भड़काया ही जाता है। यहांके विद्यार्थियोंको शान्तिकाल में यह बतलाया जाता है कि तुम राष्ट्रकी बहुमूल्य सम्पत्ति हो जो राष्ट्रके संक्रामककालमें देशकी जनताको इस योग्य बना देती है कि वह अपने देशको और जातिको गुलाम होनेसे बचा लेती है। तुम्हारी ईमानदारी कर्तव्य और देशके प्रति वफादारी करनेवाले व्यक्तियोंको जन्म देती है जिनपर देश और समाजके जीवनकी उन्नति निर्भर करती है। गणित और इञ्जीनियरिंग जैसे शुष्क विषयके साथ ही साथ इन सैनिक विद्यार्थियोंके लिये ड्रिल तथा खेल-कूदका भी विशेष आयोजन है। खेल-कूदमें इनके लिये फुटबाल, बेस-बाल, बास्केटबाल, मुक्केबाजी, तैरना, बना-पटा तथा कुश्ती की व्यवस्था है। सामाजिक संस्कृतिको बनाये रखनेके लिये इनके लिये नाच और गानेका भी प्रबन्ध है।

वेस्ट प्वांयटमें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद भी ये स्पार्टनमें सैनिक जीवन व्यतीत करनेके लिये भेज दिये जाते हैं। स्पार्टनमें इनके दैनिक जीवनका कार्यक्रम ५--५० से प्रारम्भ होता है। ५-५० पर इन्हें बिगुल बजाकर जगा दिया जाता है। दस मिनटमें ये नित्यकर्मसे निवृत्त हो जाते हैं और उसके बाद ही आध घण्टेके भीतर ही भीतर इन्हें अपना कमरा साफ कर लेना पड़ता है। ठीक साढ़े ६ बजे इन्हें जलपान मिल जाता है और उसके बाद इन्हें सामरिक साहित्यका अध्ययन करना तथा सैनिक शिक्षा लेनी पड़ती है।

वर्तमान सामरिक दोषोंको जानते हुए भी वेस्ट प्वांयट के विद्यार्थी अपने सैनिक जीवनको नष्ट नहीं करते। साम-रिक कार्योंकी विशेषता पैदा करनेकी योग्यता यहांके विद्या-र्थियोंको अमेरिकाके अन्य स्कूलोंमें दी जाती है किन्तु वेस्ट प्वांयटका यह स्कूल, तो सैनिकोंका आदर्श-कला-भवन समझा जाता है।

संसार प्रसिद्ध गली

संसारमें बड़ी बड़ी घटनाएं ही नहीं नामी हुआ करतीं वरन् सड़कें और गलियां भी इस तरह नामी होती हैं कि उनके इतिहासपर दृष्टिगत करते ही हमें उस देशका इतिहास मिल जाता है, उसके नव जागरणकी झलक दिखलाई पड़ जाती है। ठीक यही बात लन्दनके फ्लीट स्ट्रीट नामक गलीके विषयमें भी कही जाती है। इस गलीका महत्व संसारकी राजनीतिके उत्थान और पतनसे सम्बन्ध रखता है। यह वह गली है जहांसे ब्रिटिश साम्राज्यकी राजनीति को प्रभावित किया जाता है—यह वह गली है जिस ओर मुंह करके ही ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ कुछ बोलनेका साहस करते हैं। फ्लीट स्ट्रीट नामक यह गली बहुत लम्बी और चौड़ी नहीं है वरन् कुछ ही सौ गज लम्बी है। यह सेंट पालके गिर्जेघरके पाससे प्रारम्भ होती है और सेंट क्लीमेंट डांस चर्चके पास जाकर समाप्त हो जाती है।

लन्दनसे प्रायः प्रकाशित होने वाले १७०० मासिक, वार्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र इसी गलीसे प्रकाशित होते हैं। फ्लीट स्ट्रीटमें जगह न मिलनेके कारण कुछ ऐसे भी पत्र हैं जिन्हें अन्य गलियोंमें जाना पड़ा है किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि उन पत्रोंके आफिस भी फ्लीट स्ट्रीटके इतने आस-पास हैं कि उनकी खिड़कियां और दरवाजे प्रायः सभी फ्लीट स्ट्रीटकी ही ओर पड़ते हैं। फ्लीट स्ट्रीटसे निकलनेवाले पत्रोंकी लोकप्रियता भी लन्दनमें कम नहीं है क्योंकि संसार भरमें पाठकके लिहाजसे लन्दन शहर संसारका सर्वश्रेष्ठ शहर है। संसारमें लन्दन ही वह नगर है जहां दैनिक अखबारोंकी एक करोड़ प्रतियां खपती हैं। इसके अलावे लाखों साप्ताहिक और मासिक पत्रोंकी भी प्रतियां खप जाती हैं।

फ्लीट स्ट्रीट भले ही कुछ सौ गज लम्बी गली है किन्तु उसके आस-पासकी आबादी और स्थान उसीके अन्तर्गत माने जाते है और इस रूपसे फ्लीट स्ट्रीटका जो विस्तार है उसमें ३६०० सौ, समालोचनात्मक, कहानी, चित्र सम्बन्धी तथा अन्यान्य प्रकारके पत्र निकलते हैं जिनकी बीस-बीस और पचीस-पचीस लाख प्रतियां देखते-देखते हाथों-हाथ बिक जाती हैं। प्रत्येक पत्रका रविवारी अंक कमसे कम ४० लाख प्रतियोंसे कम नहीं निकलता।

जिन अखबारोंकी इतनी प्रतियां बिका करती है अब जरा उनके प्रेसकी ओर भी दृष्टिपात करना बुरा न होगा। यहांकी मशीनें घण्टेमें ३० हजारसे कम अखबार नहीं छापतीं एवं इन मशीनोंमें जो कागज लगाये जाते हैं वह मीलोंसे कम लम्बा नहीं होता और रोशनाईका हिसाब टनसे नीचे नहीं जाता।

युद्धके दिनोंमें फ्लीट स्ट्रीटकी व्यस्तता बहुत बढ़ गयी थी। दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह लाख शब्द टेलीप्रिंटरपर नित्य आते थे, एवं रेडियोकी तस्वीरोंके अलावे हजारों हजार अखबारके संवाददाता प्रतिक्षण, मोटर, ट्रेन और हवाई जहाजसे आते थे और उनमेंसे चुन-चुनकर आवश्यक समाचारों तथा चित्रोंको पाठकोंका कौतूहल मिटानेके लिये सम्पादकोंको अखबारमें देना पड़ता था।

इस गलीमें जहां अखबारोंकी इस बुरी तरह विविधता है वहां तरह तरहके मकान भी हैं। १७ वीं सदीसे लेकर २० वीं सदी तकके जितने तरहके मकान होते हैं इस गलीमें सभी हैं। जैसे जैसे इस गलीके विषयमें पाठक बहुत कुछ जानते जा रहे हैं वैसे ही वैसे इस गलीके इतिहासकी विचित्रता भी बढ़ती जायगी। आज जिस जगहपर यह गली अवस्थित है वहांपर कभी फ्लीट नामक नदी बहा करती थी और उसमें बड़े बड़े जहाज चला करते थे। किन्तु विधिका विधान नदी भर दी गयी और आज वहां गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी हैं। इस गलीका नाम फ्लीट स्ट्रीट इसलिये रखा गया था कि इस नदीपर एक पुल था जिसके पारकी सड़क फ्लीट ब्रिज स्ट्रीट कहलाती थी। किन्तु जब नदी भर गयी और उसपर मकान बसने लग गये तो उस गलीका नाम भी फ्लीट स्ट्रीट रख दिया गया।

इस गलीमें सबसे पहले कैक्सटनके एक निवासीने छापाखाना खोलनेका साहस किया था। उस छापाखानाकी स्थापना ऐसी शुभघड़ीमें हुई थी कि आज फ्लीट स्ट्रीका नाम संसारमें अमर हो गया। यह पन्द्रहवीं सदीकी बात है। फ्लीट स्ट्रीटके एक छोरपर आज भी वह मशीन स्मारकके रूपमें रखी हुई है। इस गलीसे सबसे पहले प्रकाशित होनेवाले पत्रका नाम 'डेली-कोरांट' (Daily Courant) था जो सन् १७०२ में प्रकाशित हुआ था। शेक्सपियरकी सबसे पहली किताब इसी गलीसे प्रकाशित हुईथी और यहींसे शेक्सपियरका नाम विदेशोंमें सुना गया था। १७वीं शताब्दिके बादसे इस गलीका भाग्य पलटा और फिर तो इस गलीके काफीहाउस और मदिरालय लन्दनके सांस्कृतिक केन्द्र हो गये। फ्लीट स्ट्रीटके इन मदिरालयों और काफी हाउसोंमें संसारके जिन बड़े बड़े पढ़े लिखोंने आश्रय लिया है उनमें—

डा० जानसन, लैम्ब, ऐडिसन, स्विफ्ट, स्टीले, पोप गोल्ड-स्मिथ, इज़ाक, पाल्टन एवं बेन जानसनका नाम अति प्रसिद्ध है। ये तो फ्लीट स्ट्रीटके मदिरालय और काफी हाउसके अतिथि ही थे किन्तु फ्लीट स्ट्रीटसे जिन व्यक्तियोंका नाम पत्रकार जगतमें आगकी तरह फैल चुका है उनमें—डिकेन्स, जान विल्सस, डीलें, ली सेग, सलास एवं मैसिंघम तथा नार्थक्लिफ हैं।

विचित्र वसीयतें

संसारमें विचित्रताओंकी कोई कमी नहीं है कमी है केवल ऐसे उत्साही व्यक्तियोंका जो इन विचित्रताओंका पता लगायें। जिन सज्जनोंने साहसके साथ इन वस्तुओंकी छान-बीन की है उनके सामने ऐसी-ऐसी विचित्र घटनाएं आयी हैं जिन्हें पढ़कर अवाक रह जाना पड़ता है।

यूरोपके पिलमिको नामक स्थानमें मि० फ्लेमिंग नामक एक व्यक्ति रहा करते थे। ये एक बहुत बड़े कारबारी थे और इनके यहां सैकड़ों मनुष्य परवरिश पाया करते थे। १८६८ में इनकी मृत्यु हो गयी। इनकी मृत्युके बाद लोगोंको इस बातका पता लगा कि ये अपने कर्मचारियोंके नाम एक वसीयत छोड़ गये हैं। उस वसीयतके अनुसार उनकी सम्पत्तिसे वे कर्मचारी १० पौण्डके हकदार थे जो, मूंछ मुड़ा लेनेको तैयार हों और जो मूंछ मुड़ाना नहीं चाहते हों वे केवल मात्र ५ पौण्डके हकदार थे।

मि० हेनरी बड नामक सज्जन जो अभी कुछ दिन पहले गोलोकवासी हुए अपनी वसीयतमें अपने लड़केको इसलिये एक भी पैसा नहीं दिया कि उसने अपने पिताके मनोनुकूल मूछें नहीं रखी थी।

लार्ड चेस्टर फिल्डकी मृत्यु १७७३ में हुई। मृत्युके पूर्व अपने पुत्रके नामकी वसीयतमें वे लिख गये थे कि यदि मेरा लड़का फ्रिलिपटैन होप रेसका घोड़ा रखे या रेसवालोंसे संसर्ग रखे, कुत्ता पाले, न्युमार्केटमें रहे जो अपने बुरे कृत्योंके लिये अति प्रसिद्ध है, तो उसे वेस्टमिन्स्टरके गिर्जेके प्रधान पादरी तथा पुरोहितको ५०० पौण्ड देना होगा। ठीक इसके प्रतिकूल न्युमार्केटका जान पैरोम एक वसीयत कर गया था जिसके अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियोंमें रेसमें जीतनेवालेको २० गिन्नी उसकी सम्पत्तिसे मिलता था।

वसीयत करनेवालोंमें कुछ ऐसे भी वसीयतबाज हुए हैं जिन्होंने अपनी सम्पत्तिमेंसे केवल ५ शिलिंग ही अपने सम्बन्धियोंको दिये हैं और शेष वे किसी विशेष परिस्थिति या अवसरके लिये छोड़ गये हैं। एडवर्ड वर्टले मांटेगू ने अपनी वसीयतमें अपने लड़केको एक भी पैसा नहीं दिया। उसने वसीयतमें साफ शब्दोंमें लिख दिया था कि यह जीवन भर मेरा सब कुछ ले लेनेकी चेष्टामें रहा अतएव इसे एक भी पैसा मेरी सम्पत्तिसे न मिले। अपने एक लेखक मित्रको जिसने अपनी एक पुस्तक इन्हें भेंट की थी इन्होने केवल ५ शिलिंग दिये और साथ ही साथ यह भी लिख दिया था कि वे इस पैसेको अपने आड़े समयमें काममें लाये। मि० डेविस नामक व्यक्ति अपनी बीबी मेरी डेविसके नाम जो वसीयत कर गये थे उसमें वह लिख गये थे कि मेरी सम्पत्तिसे इसे केवल ५ शिलिंग इसलिये मिले कि यह अपने अन्तिम समयमें उस पैसेका दो घूंट शराब पी सके। साउथवर्कके मि० स्वेम मि० डेविससे भी बाजी मार ले गये। अपनी पत्नीके लिये ये केवल मात्र ६ पेंस छोड़ गये थे और यह आज्ञा दे गये थे कि इन पैसों से तुम अपने लिये फांसीकी रस्सी खरीद लेना।

जान रज नामक व्यक्ति इन सबोंसे बाजी मार ले गया। अपनी वसीयतमें वह एक पौंड प्रतिवर्ष उस गरीब व्यक्तिको दे



गया जो धार्मिक दिनोंमें ट्रीसूरूके पेरिस चर्चके निवासियोंको अहले सुबह जगा दे और गिर्जेमें किसी कुत्तेको न घुसने दे। पिटर साइयांस नामक व्यक्ति अपनी वसीयतमें लिख गया था—क्रिश्चियन अस्पतालके बच्चोंको प्रति शुक्रवारके दिन मिठाई, सूखे फल और १ पेनी उसकी सम्पत्तिसे मिले।

इन सभी वसीयतोंसे बढ़कर वसीयत डच निवासी एक बड़े व्यापारी की थी। अपनी वसीयतमें उसने अपनी मृत्युके बाद नीदरलैंडके सभी पाइपबाजोंको निमन्त्रित करने और प्रत्येक पाइपबाजको १० पौंड तमाखू तथा दो पाइप भेंट करनेका उल्लेख किया था। यही नहीं उसने साथ ही साथ यह भी अनुरोध किया था कि जिस समय मेरी अन्त्येष्टि क्रिया हो उस समय सभी पाइपबाज मेरी लाशको घेर कर बैठे बैठे केवल पाइप पियें और राख मेरे कफनपर झाड़ते जांय। इसकी मृत्युके बाद इसकी यह ख्वाहिस पूरी हुई और आमन्त्रित लोगोंको यह बतलाया गया कि अपने ८० वर्षके जीवनकालमें मि० क्लासस ४ टनसे भी अधिक वजनमें तमाखू पी गये थे तथा पांच लाख बोतलसे अधिक मधुपान कर गये थे।

दशमिक सिक्कोंका नामकरण

भारत सरकार सिक्कोंकी वर्तमान पद्धतिमें परिवर्तन करके देशमें दशमिक पद्धतिके सिक्के चलाना चाहती है, इस पद्धतिके अनुसार १०० सेंटका एक रुपया होगा। भारतीय जनतापर यह विदेशी शब्द "सेंट" अनावश्यक रूपसे लाद न दिया जाय, इसके प्रतिकारका उपाय भारतीय जनताको अविलम्ब करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सिक्कोंमें कुछ और सुधार भी आवश्यक हैं जिनका प्रस्ताव बहुत जोरदार समर्थनके साथ भारत सरकारके अर्थविभागके समक्ष उपस्थित किया जाना चाहिये, एक तो, सिक्कों अठन्नी चवन्नीपरसे भारतके प्रतीक कमलके अतिरिक्त अन्यान्य देशोंके प्रतीक चिह्न जैसे स्काटलैण्डका थिएल, आयरलैंडका शैमराक तथा इङ्गलैंडका गुलाब, हटा दिये जाने चाहिये। दूसरे, देशका नाम "भारत" अथवा "भारतवर्ष" दिया जाना चाहिये तथा देवनागरी अंकोंमें देशव्यापी विक्रम संवत्का उल्लेख होना चाहिये।

इस सम्बन्धमें यह बात विचारणीय है कि सिंहलमें, जहां सिक्कोंकी दशमिक पद्धति प्रचलित है, तामिल भाषा भाषी जनता 'सेंट' के लिये 'शतम्' शब्दका प्रयोग करती है तथा सिंहली भाषा-भाषी उसे 'सियस्' कहते हैं, सिंहली भाषाका 'सियस्' शब्द, हिन्दीके 'स' वा 'सौ' के समान ही, संस्कृत 'शतम्' का तद्भव रूप है। नेपाल और मलयकी जनताने तो 'सेंट' को पूछा तक नहीं, वह पूर्व प्रचलित पैसा से ही अपना काम चलाती है।

काशी नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रबन्ध समितिने अपने गत अधिवेशनमें भारत सरकारके अर्थविभागके समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करनेका निश्चय किया है, आशा है हिन्दी प्रेमी सज्जन तथा हिन्दी प्रचारिणी एवं भारतीय संस्कृतिकी पोषक संस्थाएं इससे सहमत होंगी और इन प्रस्तावोंका समर्थन करते हुए भारत सरकारके अर्थ सदस्यके पास अविलम्ब अपनी सम्मति भेज देंगी।

१. रुपयेके सौवें भागका नाम 'शती' रखा जाय।
२. रुपयेपर भारतका प्रतीक केवल कमल रहे, अन्यान्य देशोंके चिह्न न रखे जायं।
३. देशका नाम 'भारत' अथवा 'भारतवर्ष' अंकित किया जाय।
४. नागरी अंकोंमें विक्रम संवत्का उल्लेख हो।



अमेरिकाकी खुशामद—

प्रथम महासमर (१९१४—१८) की समाप्तिके बाद ब्रिटेन यद्यपि अमेरिकाका कर्जदार राष्ट्र हो गया था किन्तु राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे यूरोपका नेतृत्व वही करता था। वैदेशिक व्यापार और राजनीति दोनों के लिये संसारका एक नम्बर शहर लन्दन था न्यूयार्क या पेरिस नहीं। युद्धोपरान्त डालर और स्टर्लिङ्गका काफी संघर्ष रहा और ब्रिटेन तथा अमेरिकाकी पारस्परिक प्रति-द्वन्द्विता प्रतिस्पर्द्धाके कारण युद्ध समाप्त हो जानेपर भी संसारमें अशान्ति, असन्तोष और अभाव बना रहा। लन्दनका स्थान न्यूयार्क प्राप्त करे, इस दृष्टिसे अमेरिका बराबर अपनी आर्थिक शक्तिसे काम लेता रहा। परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश स्टर्लिङ्गकी स्थिति डांवाडोल हो गयी। ब्रिटिश स्टर्लिङ्ग और फ्रेंच फ्रांककी दर घटने लगी। प्रथम महासमरके पहले जो अमेरिका यूरोपका कर्जदार था युद्धो-परान्त वही अमेरिका यूरोपका महाजन बन गया। यह सब होते हुए भी अमेरिका ब्रिटेनके हाथसे व्यापारिक एवं राज-नीतिक, किसी भी क्षेत्रमें नेतृत्व नहीं छीन सका। इसका कारण यह था कि प्रथम महासमरके सञ्चालन और नेतृत्वका श्रेय सम्पूर्णतया ब्रिटेनको प्राप्त हुआ था किन्तु इस बार वह स्थिति नहीं है। ब्रिटेन आज तीसरे दर्जेका राष्ट्र हो गया है। उसकी राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक ख्याति बिलकुल लुप्त हो गयी है। इस समय संसारका नेतृत्व ब्रिटेन के हाथसे निकल कर रूस और अमेरिकाके हाथमें चला गया है।

इतिहासकी पुनरावृत्ति

आज हम प्रथम महासमरके बादके यूरोपके साथ द्वितीय महासमरके बादके यूरोपकी जब तुलना करके देखते हैं तो यह बात स्पष्ट दिखायी दे रही है कि आज भी अमेरिका ब्रिटेनके विरुद्ध वैसी ही चाल चल रहा है। ब्रिटेन तबसे आज कहीं अधिक दुर्बल हो गया है। अमेरिकाका मुकाबला करना तो दूर रहा अपने अस्तित्व एवं अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिये आज वह अमेरिकाका मोहताज है। अमेरिका की खुशामद पर ही वह अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। ब्रिटेनके साम्राज्यान्तर्गत सर्वत्र असन्तोष और विद्रोह की बारूदके ढेरके ढेर लगे हुए हैं। किसी समय भी विस्फोट हो सकता है। यह घटनाक्रमकी बात है कि प्रथम महा-समरके बाद ब्रिटेनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ते-बिगड़ते जब १९३१ में पराकाष्ठा पर पहुंच गयी थी उस समय वहां मजदूर सरकार थी और आज भी मजदूर सरकार है। १९३१में ब्रिटेनकी स्थिति इतनी नाजुक हो गयी थी कि अमेरिकाके शरणमें जाना अनिवार्य हो गया था। जिन शर्तोंपर अमेरिका ब्रिटेनको कर्ज देनेपर तैयार हुआ था वह शर्तें मजदूर सरकार और श्रमिक वर्गपर कुठाराघात करनेवाली थी। किन्तु तत्कालीन प्रधान मन्त्री मि० रामजेमैकडोनाल्डने ब्रिटेनके बैंकरों और पूंजीपतियोंकी रक्षाके लिये देश और अपनी पार्टीके साथ विश्वासघात किया और टोरियोंके समर्थन और सहयोगसे नयी सरकार बनायी जिसे राष्ट्रीय सरकार नाम दिया गया। प्रश्न आज यह है कि क्या मि० एटली भी अपने नेता रामजे-मैकडोनाल्डके पदचिन्हींपर चलेंगे ?

दूसरा रास्ता नहीं है

पिछले महासमरके बाद हम देख चुके हैं कि ब्रिटिश पाउण्डकी दर गिरनेके फलस्वरूप यूरोपमें और उसके कारण प्रायः समस्त संसारमें जो सङ्कटकाल उपस्थित हुआ था उसे देखते हुए भी अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस परस्पर एक

दूसरेके साथ सहयोग नहीं कर सके । आर्थिक नेतृत्वके लिये ये तीनों खासकर ब्रिटेन और अमेरिका परस्पर एक दूसरेसे लड़ते रहे। यदि संसारके हित और शान्तिको ये अपने आर्थिक नेतृत्वके ऊपर प्रथम स्थान देते तो एक संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय एक्सचेञ्ज मारकेट बनाने और इस तरह दूसरे महासमरका बीज न पड़ने देते। किन्तु यह तो अतीत की बात है। आज भी वैसी ही स्थिति है। उस समय अमेरिका अपनी मनमानी करनेकी स्थितिमें नहीं था। आज वह है। अमेरिका ब्रिटेनकी इस दयनीय स्थितिसे लाभ उठाना चाहता है। उस समय केवल आर्थिक नेतृत्व का प्रश्न था। आज आर्थिक और राजनीतिक दोनों नेतृत्व अमेरिका हथिया रहा है। ऐसी अवस्थामें ब्रिटेनके सामने,—जो अपना साम्राज्य बनाये रखना चाहता है,—अमेरिकाकी खुशामद करनेके सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। मि० एटलीने वाशिंगटनमें अमेरिकन पार्लमेंटकी दोनों परिषदोंके संयुक्त अधिवेशनमें भाषण करते हुए यह स्वीकार किया कि अमेरिका आज भूमण्डलमें सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र है और उससे किसी दूसरे राष्ट्रको कोई खतरा नहीं है। सब यह जानते हैं कि वह अपनी शक्ति भविष्यमें कभी अपने स्वार्थ अथवा प्रादेशिक लाभके लिये काममें न लायेगी।

लज्जाजनक आश्वासन

यह सभी जानते हैं कि परमाणु बमके आविष्कारने अमेरिकाको परमशक्तिशाली राष्ट्र बना दिया है। अभी तक यह कहा जाता रहा है कि इस महासंहारक अस्त्रका रहस्य अमेरिका और ब्रिटेनके अधिकारमें रहेगा। लेकिन प्रेसीडेंट ट्रूमैनने यह स्पष्ट रूपसे कह दिया है कि परमाणु बमपर रहस्यके अमेरिकाका एकाधिपत्य है और ब्रिटेनको भी इसमें हिस्सेदार नहीं बनाया जायगा। ब्रिटेनमें यह ताकत नहीं है कि वह अमेरिकाके इस एकाधिपत्यके विरुद्ध आवाज उठाये। इसके विपरीत मि० एटलीने स्पष्ट शब्दोंमें अमेरिकाको यह आश्वासन दिया है कि चुनावमें मि० चर्चिलकी पराजयसे उसे किसी तरहकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। ब्रिटिश साम्राज्यवादसे अमेरिकन पूंजीपतियोंको जरा भी डर नहीं है अतः वह आजके ब्रिटेनपर वैसा ही भरोसा कर सकता है जैसा चर्चिलके ब्रिटेनपर करता था। मि० एटली अपने पुराने नेता रामजेमैकडोनाल्डका अनुसरण कर पूंजीपतियोंके ब्रिटेनकी रक्षाके लिये ब्रिटिश साम्राज्यको बचाये रखना आवश्यक समझकर अमेरिकाकी हर तरहकी खुशामद कर सकते हैं। इससे अधिक लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है।

वर्तमान ब्रिटिश सरकार यदि केवल अपने स्वार्थोंसे सञ्चालित न होती तो इस गयी-बीती हालतमें भी वह संसारके शोषितों और पीड़ितोंकी तरफदारी करके अपना नेतृत्व बनाये रख सकती थी। किन्तु यह काम वह तभी कर सकती थी जब भारत, बर्मा, मलाया, सीलोन तथा जावा और इण्डोचीनके स्वातन्त्र्य आन्दोलनोंके साथ अपनी सची सहानुभूति दिखाकर इनके न्यायोचित अधिकारों और मांगोंकी पूर्तिमें सहायक बनती। ब्रिटिश जनताको अपना बल समझकर वह उस रास्तेपर चलती जिसपर चले बिना संसारका कल्याण नहीं है। किन्तु ब्रिटेनने न अतीतसे सबक लिया है और न वह वर्तमानके संकेतोंको देख रहा है। वह स्वार्थसे अन्धा हो रहा है। अतः आज अपने अन्याय और अनीतिको बनाये रखनेके लिये अमेरिकाकी खुशामद करनेके सिवा और कोई रास्ता उसके लिये नहीं रह गया। किंतु यह उसके सर्वनाशका रास्ता है।

विद्रोहाग्नि चारों तरफ—?

महासमर द्वारा प्रज्वलित भीषण प्रचण्ड आग शान्त हो गयी है किन्तु आगकी चिनगारियां अब भी सर्वत्र उड़ रही हैं। ये चिनगारियां धीरे-धीरे भयङ्कर विध्वंसक रूप धारण कर चुकी हैं। परतन्त्रताके अभिशापकी आंचमें तिल-तिल जलते रहनेकी अपेक्षा विद्रोहाग्नि भड़का कर मर-मिटनेकी प्रबल महत्वाकांक्षाको दबानेके लिये सारी साम्राज्यवादी शक्तियां युद्धके दौरानमें कही हुई अपनी बातोंको भूलकर उस समयकी अपनी परवशता और लघुताको हजम करके आज वही काम कर रही है जो जर्मनी, जापान और इटलीने करनेकी चेष्टा की थी। दूसरे राष्ट्रोंको येनकेन प्रकारेण अपने शासनान्तर्गत रखनेकी दुरभिसन्धिका परिणाम है कि दक्षिण पूर्व एशियामें इण्डोचीन,इण्डोनेशिया, मलाया, बर्मा और भारत तथा मध्यपूर्वमें फिलस्तीन, मिस्र, सीरिया लेबनान, ईराक और ईरान सर्वत्र असन्तोषका बवण्डर उठा हुआ है। पिछले युद्धके दौरानमें स्वतन्त्र होनेकी जो प्रबल राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो चुकी है उसे आज साम्राज्यवादी शक्तियां, यदि सम्भव हो तो कूटनीतिसे अन्यथा शस्त्रबल द्वारा, पाशविक उपायों द्वारा कुचलनेमें भी नहीं हिचकिचाती हैं।

आग बुझ नहीं सकती।

भारतीय राष्ट्रीय महासभाने १९४२ में जो नारा

'भारत छोड़ो' लगाया था वह आज परतन्त्र एशियाके घर घरमें गूंज रहा है। उसकी प्रतिध्वनि जावा और इण्डोचीनमें आकाशको विदीर्ण कर रही है। "इण्डोनेशिया प्रजातन्त्रके नेता डा० सोकार्नो ललकार रहा है कि "इण्डोनेशियापर पुनः अपना शासन लादनेकी डच चेष्टाका एक ही परिणाम हो सकता है—अन्तहीन रक्तपात और जीवन नाश।" उसकी यह ललकार आज साकार रूप धारण कर चुकी है। संसारकी साम्राज्यवादी शक्तियोंका सरदार ब्रिटेन इण्डोनेशियाकी स्वतन्त्रताके आन्दोलनको कुचलने और अपने सवर्ण भाई डचोंकी मददके लिये पूर्णशस्त्र-बलके साथ रङ्गभूमि पर पहुंच गया है। इण्डोनेशियामें रक्तकी धार बह रही हैं। जल, स्थल और आकाशसे दानवी शक्तियां अपनी पैशाचिकताका प्रदर्शन कर रही हैं किन्तु इण्डोनेशियन्स भी कृतसंकल्प हैं। करेंगे या मरेंगे उनका आदर्श है। जीवित रहेंगे तो स्वतन्त्र होकर अन्यथा अपने देशकी बलिवेदी पर मर मिटेंगे। एक छोटेसे देशकी स्वतन्त्रताकी अमिट चाहको मिटानेके लिये ब्रिटेन अपनी पूरी ताकतके साथ हालैंडकी मदद कर रहा है। किन्तु आज वे बड़े बड़े राष्ट्र, जो कलतक संसारसे अत्याचार और उत्पीड़न मिटानेके लिये परतन्त्रताका अन्त करनेके लिये जर्मनों और जापानियोंसे लड़ रहे थे इस छोटेसे देशकी पुकारपर कानोंमें तेल डाले बैठे हैं। आज अमेरिका और सोवियट कहां है? क्यों नहीं वे इस अन्याय और अनीतिके खिलाफ आवाज उठाते? सबै सहायक सबलके कोऊ न निबल सहाय। किन्तु दुर्बलका सबसे बड़ा बल उसका आत्म बल है। एशियाकी ये तमाम दुर्बल शक्तियां यूरोपकी स्वेच्छाचारी और साम्राज्यवादी शक्तियोंका सामना करनेको कृतसंकल्प हो चुकी हैं। करेंगे या मरेंगे यह संकल्प अब भारतकी सीमा पार कर एशियाके तमाम परतन्त्र राष्ट्रोंका नारा हो गया है। 'भारत छोड़ो' का स्थान एशिया छोड़ोने ले लिया है। बहुत दिनों तक यूरोप एशिया पर साम्राज्य कर चुका। उसका कल्याण इसीमें है कि वह एशियासे अपना किनारा कस ले अन्यथा एशियामें प्रज्वलित विद्रोहाग्निकी प्रचण्ड लपटोंमें तमाम पाशविक और राजनीतिक शक्तियां भस्मीभूत हो जायंगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

भेद नीति—

निदरलैण्ड न्यूज एजेन्सीके संवादसे ज्ञात हुआ है कि इण्डोनेशियाके राष्ट्रपति डाक्टर सुकार्नोने केन्द्रीय-राष्ट्रीय-समितिके अध्यक्ष मि० सुलतान शरियर द्वारा प्रस्तुत मन्त्रि-मण्डलकी नामावलीको स्वीकार कर लिया है। अब मि० शरियर प्रधान मन्त्री और वैदेशिक मन्त्री दोनों पदोंपर कार्य करेंगे। इस नव-गठित मन्त्रिमण्डलकी आलोचना करते हुए प्रवक्ताने कहा है कि 'इसका प्रभाव प्रजातन्त्रके ऊपर पड़ेगा और उसमें गत्यावरोध उत्पन्न हो जायगा।'

ब्रिटेनके पत्रोंमें मि० शरियरका बड़ा प्रचार है और मि० शरियर 'डच-भक्तों' में माने जाते हैं। मि० शरियरके इण्डोनेशियाकी क्रान्तिकारी प्रजातन्त्री शक्तियों की प्रचण्डता देखकर ब्रिटेन और हालैण्डने भेदनीतिका सहारा लिया है। इनकी प्रचेष्टा यदि सफल हो गयी तो इण्डोनेशियाके स्वतन्त्रता आन्दोलनकी प्रगति कुछ दिनोंके लिये रुक जा सकती है। डा० सोकार्नोने स्थितिको काबूमें रखनेके लिये बड़ी नीतिसे काम लिया है। यही कारण है कि उन्होंने मि० सुलतान शरियरको राष्ट्रीय भावनाओंको चरितार्थ करनेका अवसर प्रदान किया है। किन्तु :यदि वे एशियामें मि० जिन्नाका पार्ट अदा करेंगे तो यह निश्चित है कि क्रान्तिकारी शक्तियां उन्हें उखाड़ फेंकेंगी। आशा है कि मि० शरियर इस बातका ध्यान रखेंगे।

इस समय वहां साम्राज्यवादियोंकी तोपें बराबर आग उगल रही हैं। ब्रिटेन भारतीय सैनिकों द्वारा वहांकी राष्ट्रीय भावनाओंको कुचलना चाहता है। अमेरिका इस कार्यमें अपने उधार-पट्टाके अनुसार अस्त्र-शस्त्रोंसे सहायता कर रहा है। बड़ी दिलचस्प बात तो यह है कि ब्रिटेन इण्डोनेशियामें जो कुछ कर रहा है वह डचोंके साथ सहानुभूति दिखानेके लिये नहीं बल्कि साम्राज्यवादकी रक्षा करनेके लिये। एशियाके नव-जागरणको कुचलनेके लिये ब्रिटेनके साम्राज्यवादियों और अमेरिकाके बनियोंने आज आपसमें बंटवारा कर लिया है। ब्रिटेन इण्डोनेशिया, इण्डोचीन बर्मा आदिमें अपनी चालें चल रहा है। चीन-जापान आदिमें अमेरिकाने अपना षड़यन्त्र फैला रखा है। किन्तु इन साम्राज्यवादियोंको याद रखना चाहिये कि एशियाके इस नवजागरणको कुचला नहीं जा सकता। समय रहते सचेत हो जाना चाहिये।

फिलस्तीन—

फिलस्तीनकी समस्यापर कामन सभामें वैदेशिक मन्त्री मि० अर्नेस्ट बेविनने ब्रिटिश सरकारकी स्थिति स्पष्ट करनेके लिये एक वक्तव्य दिया है। मि० बेविनने अपने वक्तव्यमें कहा है कि अमेरिकन सरकार ब्रिटेनके सहयोगसे

यूरोपके यहूदियोंकी समस्याओंपर विचार करनेके लिये एक जांच समितिकी स्थापनाके प्रश्नपर राजी हो गयी है। जबतक स्थायी व्यवस्था नहीं हो जाती और फिलस्तीनका प्रश्न ट्रष्टीशिपके अन्तर्गत नहीं आ जाता तबतक उक्त समिति अस्थायी विचार करेगी और जहां तक ब्रिटिश सरकारका सम्बन्ध है वह राजाज्ञाका पालन करेगी। ब्रिटिश सरकार फिलस्तीनमें यहूदियोंको बसानेके लिये कोई कदम उठानेके पहले अरबोंसे परामर्श करेगी। ब्रिटिश सरकार अस्थायी और स्थायी व्यवस्थाओंपर भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके चार्टरके अनुसार विचार करेगी। समस्याके हल तक पहुंचनेकी साधारण गतिविधिमें ब्रिटिश सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी और कोई भी सशस्त्र प्रदर्शन सैन्यबलसे दबा दिया जायगा। हमारा विश्वास है कि यदि इस समस्यापर अरबों और यहूदियोंने उचित भावनासे विचार किया तो न केवल उपस्थित समस्याका समाधान ही होगा बल्कि मध्यपूर्वमें शान्तिमें भी सहायक होगा। जर्मनीमें नाजी अत्याचारोंसे उत्पन्न यहूदियोंकी समस्यापर ब्रिटिश-सरकारने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और सजग रही है। दुर्भाग्यवश यह सत्य है कि जबतक यूरोपकी स्थिति पूर्ण रूपेण स्थिर नहीं हो जाती है तबतक नाजी अत्याचारोंसे पीड़ित व्यक्तियों और जातियोंका भविष्य अन्धकारमय है। नाजी अत्याचार पीड़ितोंमें यहूदियोंकी सर्वाधिक संख्या है। ब्रिटिश सरकार इन अभागोंकी उन्नतिके लिये कोशिश करेगी। यहूदियोंकी समस्या मानवताकी समस्या है। हमलोग इस दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हैं कि यहूदियोंको यूरोपसे भगा दिया जाय और उन्हें उन देशोंमें बसनेकी अनुमति न दी जाय जिन देशोंसे उन्हें निकाल दिया गया है और न उन्हें यूरोपकी प्रभुताके पुनर्स्थापनके लिये अपनी बुद्धि और योग्यताका दान करनेकी अनुमति दी जाय। इस विषयमें हम जो कुछ कर सकेंगे करेंगे, लेकिन वह पूर्ण समस्याके समाधानके लिये पर्याप्त नहीं होगा। इधर हालहीमें यहूदियोंने हमलोगोंसे फिलस्तीनमें अधिक संख्यामें बसनेकी मांग की है।

हम ऐसे तमाम उपायोंकी खोज करनेके लिये उत्सुक हैं जिनके परिणामस्वरूप यहूदियोंको फिलस्तीनमें फिरसे बसनेकी उचित सुविधा प्राप्त हो सके। फिलस्तीनकी समस्या बहुत कठिन समस्या है। शासक देशोंके अनुसार फिलस्तीनके शासकके लिये यह आवश्यक है कि वह यहूदियोंको वहां बसनेकी सुविधा दे लेकिन शासकोंको आबादीके अन्य भागके अधिकार और प्रतिष्ठाकी भी रक्षा करनी पड़ेगी। ब्रिटिश सरकार उन तमाम प्रयासोंके लिये तैयार है जिनसे अरब और यहूदी एक साथ शान्तिपूर्वक रह सकें और देशकी उन्नतिके लिये सहयोगसे काम कर सकें लेकिन अभी तक ऐसे प्रयास असफल ही हुए हैं। कोई भी व्यवस्था एक दल स्वीकार कर सकता और दूसरा दल नहीं। जबसे फिलस्तीनका शासन-सूत्र हाथमें लिया गया है तबसे दोनों जातियोंमें बराबर मतभेद चल रहा है।

मि० बेविनके इस कथनसे साम्राज्यवादियोंको खुशी चाहे भले ही हुई हो लेकिन जिन यहूदियोंके दुःख दर्द हटानेके लिये वे मसीहा बने रहे हैं वे यहूदी अब ब्रिटिश सरकारकी चालबाजियोंसे परिचित हो गये हैं। मि० बेविनके भाषणसे फिलस्तीनमें असन्तोषकी लहर फैल गयी। ब्रिटिश सरकारके इस रुखकी निन्दाके साथ-साथ यहूदियोंने १२ घण्टे हड़ताल रखी। यहूदियोंके समस्त कारबार, कारखाने और यातायात बन्द रहे। चीफ रबीने दिन भर उपवास और प्रार्थना करनेका आदेश दिया। यहूदी पत्रोंने मि० बेविनके भाषणको 'महान विश्वासघात' बताया है। एक अज्ञात प्रवक्ताने यह भी कहा कि हमारे लाखों भाइयोंकी जितनी हानि हिटलर नहीं कर सका उतनी इस कापुरुषतापूर्ण नीतिके कारण होने जा रही है। यही नहीं फिलस्तीनके अरबोंने भी मि० बेविनके इस भाषणकी निंदा करते हुए कहा कि हमारी आशाओंपर बज्रपात हुआ है। ब्रिटिश सरकार १९३९ में श्वेतपत्रमें कही हुई बातोंसे भी हट रही है। मि० बेविनके भाषणकी जो प्रतिक्रिया फिलस्तीनमें हुई है उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि फिलस्तीनमें आजकल जो हो रहा है वह न तो यहूदियोंकी कट्टर जातीयतावादी भावनाके कारण हैं और न अरबोंके यहूदी विरोधी मनोभावके कारण ही है बल्कि फिलस्तीनकी समस्याके मूलमें ब्रिटेन के साम्राज्यवादियोंके षड़यन्त्र और फरेब हैं। यहूदियोंकी समस्या नाजी जर्मनीसे ही उत्पन्न नहीं हुई है वह सत्तर पचहत्तर वर्षका आन्दोलन है। ब्रिटेन के साम्राज्यवादियोंने इस आन्दोलनसे नाजायज फायदा उठानेका सुअवसर देख कर यहूदियोंका साथ देनेकी घोषणा की थी। १९१७ में बालफोर घोषणामें कहा गया था कि 'ब्रिटिश सरकार फिलस्तीनको यहूदियोंका जातीय निवास-स्थान बनानेकी बात स्वीकार करती है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वह अपनी पूरी शक्ति लगा देगी।"

प्रथम महायुद्धके बाद फिलस्तीनका शासनसूत्र ब्रिटेनके हाथमें आया। शासना (! te) देशमें स्वीकार किया गया कि फिलस्तीनसे यहूदियोंका प्राचीन सम्बन्ध है। उसीके आधारपर पुनः उन्हें उन्हींके देशमें बसाया जा रहा है। इधर तो ब्रिटेन यहूदियोंसे यह चाल चल रहा था उधर युद्धमें मदद लेनेके विचारसे उसने अरबों-कोभी विश्वास दिलाया था कि युद्धके बाद हम तुम्हें स्वतन्त्र कर देंगे।'पहला युद्ध और द्वितीय युद्ध दोनों समाप्त हो गये और अरब आजभी गुलाम है। ऊपरसे उनके सिरपर भारतकी भांति 'साम्प्रदायिकताका भूत' चढ़ा दिया गया है। ब्रिटेन-की इस दोतरफी नीतिको देखकर हमें उस राजाकी कहानी स्मरण हो आती है जो चोरसे कहता था चोरी करो, शाह-से कहता था होशियार। एक बात और। अभी तक फिलस्तीनमें अकेला ब्रिटेनका ही जाल-फरेब चल रहा था अब उसका महाजन अमेरिका भी इस कार्यमें मदद करने आ पहुंचा है। इण्डोनेशिया, चीन और इण्डोचीनमें आज जो कुछ हो रहा है कौन कह सकता है कि निकट भविष्य-में फिलस्तीनमें ऐसा ही नहीं हो सकता ?

यूरोपकी हलचल—

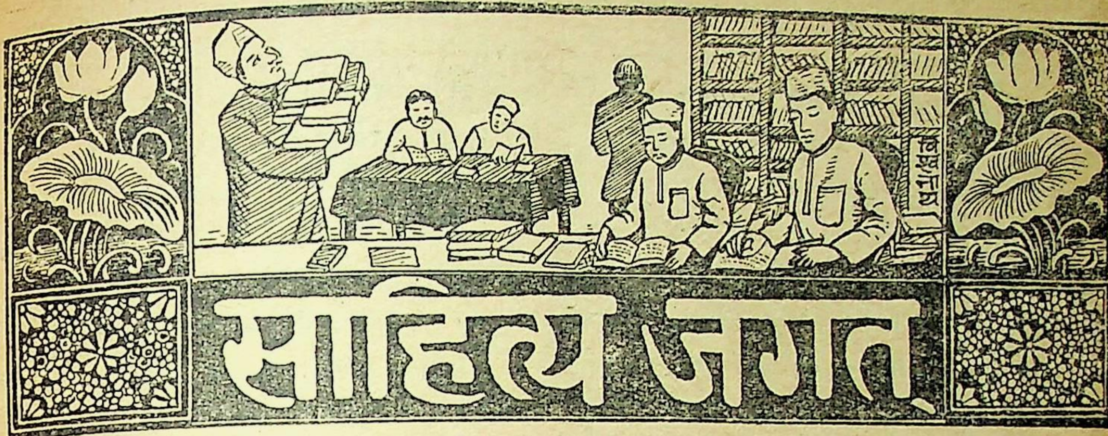
अभी फ्रांसमें जो साधारण चुनाव हुआ है उसमें जिन तीन प्रधान पार्टियोंकी विजय हुई है वे हैं कम्यूनिस्ट, ईसाई जनवादी और सोशलिस्ट। यह चुनाव दो प्रश्नोंपर लड़ा गया था। पहला यह कि नयी चुनी हुई असेम्बलीकी हैसियत विधान-परिषदकी होगी, या वह पुराने विधानके अनुसार सिर्फ धारासभा ही रहेगी, यानी नयी असेम्बलीको सिर्फ कानून बनानेका अधिकार होगा या वह देशके लिये नया विधान भी बना सकेगी;और दूसरा यह कि अस्थायी सरकार पूरी तरह विधान परिषदके अधीन होगी या विधान-परिषदके अधिकारोंको सीमित रखा जायगा।

पहले सवाल पर भारी बहुमतने नया विधान बनानेके पक्षमें मत दिया। तीसरे सवाल पर विधान-परिषदके अधि-कारोंको सीमित रखनेके पक्षमें अच्छा बहुमत रहा। चुनाव का नतीजा इस तरह था :—कम्युनिस्ट पार्टी १९१ ईसाई जनवादी—(डि-गालके समर्थक) १४२ सोशलिस्ट पार्टी १३९ दूसरी सभी पार्टियां १२४

चुनावमें यद्यपि कम्यूनिस्ट सदस्य अधिक संख्यामें चुने गये हैं किन्तु वोट सबसे अधिक ईसाई जनवादी पार्टीको मिले हैं। पुरानी जितनी पार्टियां थीं इस चुनावने उन सब-को समाप्त कर दिया। जिन दो प्रश्नोंको सामने रखकर चुनाव लड़ा गया था उनपर जेनरल डिगालेको राष्ट्रका पूर्ण समर्थन मिला है। ऐसा समझा जाता था कि कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियां मिलकर संयुक्त मोर्चा बनायेंगी। किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ। नागरिक स्वतन्त्रताके प्रश्न पर सोशलिस्ट कम्यूनिस्टोंके विरुद्ध जनवादी पार्टीके साथ हैं फ्रेंच वैदेशिक नीतिके मामलेमें मास्कोसे स्वतन्त्र अपनी अलग नीति रखनेके मामलेमें भी सोशलिस्ट और जनवादी एकमत हैं। परिणामस्वरूप जेनरल डिगालको इन दोनोंपार्टि-योंका समर्थन मिला और वे ही अस्थायी सरकारके प्रधान चुने गये। अब वे अपनी सरकार बनाकर १८७५ के तृतीय प्रजातन्त्रीय विधानके स्थानपर नवीन विधान बनानेका कार्य आरम्भ करेंगे यह कार्य ३० सप्ताहके भीतर हो जाना चाहिये। इस नवीन विधानके बन जानेके बाद सम्भवतः एक बार फिर शक्ति परीक्षाका अवसर आयेगा। जो भी हो फ्रांसके इस चुनावसे यह बात तो स्पष्ट है कि जनता अब प्राचीन व्यवस्थाको बिलकुल पसन्द नहीं करती। यदि कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट विधान बनानेमें एक साथ मिल-कर काम कर सके तो इसमें सन्देह नहीं कि फ्रांसका नया विधान क्रान्तिकारी स्वरूप ग्रहण कर सकेगा।

मार्शल टीटोकी विजय—

युगोस्लावियाके निर्वाचनमें मार्शल टीटोकी पार्टीविजयी हुई है। पूर्वीय यूरोप अब सम्पूर्णतया रूसका समर्थक हो गया है। पोलैण्ड, हंगरी, रूमानिया और युगोस्लाविया युद्धके पहले प्रतिक्रियाके गढ़ समझे जाते थे। पूंजीवादी सामन्त प्रथाके अन्तर्गत इन देशोंकी जनताका शोषण बुरीतरह किया जाता था। इस युद्धके दौरानमें इन देशोंके प्रगतिशील और क्रान्तिकारी पार्टियोंने समाजवादी भावना जाग्रत करके समाजकी काया पलट कर दी है। यूनान और बल-गेरियाके भावी निर्वाचनका परिणाम भी यही होनेवाला है। प्रतिक्रियावादी अपनी पराजय निश्चित समझकर निर्वाचनके पहले ही चिल्लपों मचाने लगे थे कि चुनाव स्वतन्त्र रूपसे न हो सकेंगे। किन्तु हंगरी और युगोस्ला-वियाके निर्वाचकोंपर निष्पक्ष व्यक्तियों को ही यह स्वीकार करना पड़ा है कि चुनावमें सबको पूरी आजादी मिली है। इस तरह यूरोपमें फ्रांस; स्पेन; बेलजियम और हालैंडके सिवा अन्य सभी देश ब्रिटेन और अमेरिकाके प्रभावसे नि-कल गये यह स्पष्ट है। जो देश बचे हुए हैं वे भी अपनेको अधिक दिनों तक इनके सम्पर्कमें रख सकेंगे; ऐसी सम्भा-वना नहीं प्रतीत होती।



शब्द और अर्थ

साहित्यालंकार श्री नागेश्वर सिंह, बी० ए० डिप०-एड०

व्याकरण शब्दोंके दो प्रकार बतलाते हैं,—एक सार्थक दूसरा निरर्थक। इस प्रकार उन्होंने कुछ ऐसे शब्दोंका भी अस्तित्व स्वीकार किया है, जो अर्थ—ऐश्वर्यसे रहित हैं। पर इसके विपरीत, महाकवि तुलसीदासने लिखा है, "गिरा—अर्थ, जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।" उनके मतानुसार, शब्द और अर्थका सम्बन्ध अविच्छिन्न है। उनमें तादात्म्य है, वे जल और तरङ्गकी तरह तत्वतः एक हैं। जल सर्वदा तरङ्ग नहीं होता, किन्तु तरङ्ग तो सर्वदा जल है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं किया जा सकता कि जलकी तरह शब्द भी कभी अर्थमय और कभी अर्थहीन होता है, परन्तु अर्थ सर्वदा शब्दके आश्रित होता है। चूंकि शब्द और अर्थ तत्वतः एक हैं, इसलिये शब्दमें अर्थका अभाव हो नहीं सकता। वस्तुतः यदि शब्द भाव-व्यञ्जक होते और मनोविकारको व्यक्त करनेके साधन हैं, तो उनके निरर्थक होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त दो परस्पर-विरोधी सिद्धान्तोंका समन्वय भी सम्भव है। व्याकरण उन शब्दोंको निरर्थक मानते हैं, जो चेतना-शून्य जीव-यंत्रोंसे उत्पन्न होनेके कारण भाव-वाहक नहीं होते। आंधी चलती है और पेड़की डालियोंके हिलनेसे शब्द होता है। वह शब्द निरर्थक ही होता है। पागलोंकी बड़बड़ाहट निरर्थक ही होती है। हां, इस समन्वयवादी सिद्धान्तके कुछ अपवाद भी हैं। ग्रामोफोन चेतना शून्य यंत्र होते हुए भी सार्थक शब्दोच्चार करता है और चेतना प्रधान मनुष्य भी जम्हाई लेते या खांसते समय निरर्थक शब्दोंका उच्चारण करता है। यों तो कुछ लोग पेड़ोंकी बोली समझते, मेघ-गर्जनका अर्थ लगाते हैं, (मघा गरजे, तीनों-को बरजे, यानी मघाके बाद तीनों नक्षत्रोंमें वृष्टि नहीं होती।) पर इन अर्थोंका आधार शब्द नहीं, श्रोताकी कल्पनामात्र है और इससे यहां प्रयोजन नहीं।

यहां यह कह देना आवश्यक है कि यदि मर्मराहट और बड़बड़ाहटको नादकी संज्ञा देकर शब्दकी कोटिसे भिन्न मान लिया जाय, तो शब्द निरर्थक नहीं हो सकते। इतना मान लेने पर कि मनुष्यों या उन्हींकी तरह पक्षियों (मैना, वगैरह) या यन्त्रों (रिकार्ड, रेडियो) द्वारा उच्चरित शब्द सार्थक होते हैं, यह विचारना रह जाता है कि शब्द और अर्थमें तादात्म्य है, या नहीं। गोस्वामीजीने शब्द और अर्थका सम्बन्ध जल और तरङ्ग-सा बतलाया है। तरङ्ग और जलमें कोई मौलिक भिन्नता नहीं है। जल ही एक विशेष परिस्थितिमें तरङ्ग बन जाता है। परन्तु, शब्द और अर्थ सर्वदा सब परिस्थितियोंमें वर्तमान रहते हैं। परिस्थितिके अनुसार अर्थ-गाम्भीर्य घट-बढ़ सकता है, पर अस्तित्व तो दोनोंका सदा ही बना रहता है। तरङ्गकी तरह अर्थका शब्दमें विलीन हो जाना सम्भव नहीं। शब्द लिखित होने पर चक्षुगोचर, उच्चरित होनेपर कर्णगोचर तथा अनुच्चरित रहने पर मनगोचर होता है, पर अर्थ सर्वदा मन-गोचर है। शब्द और अर्थमें अविच्छिन्न सम्बन्ध है अवश्य, पर वे तत्वतः एक नहीं है। शब्द पात्र है और अर्थ पदार्थ, शब्द शरीर है, अर्थ उसकी आत्मा। शब्द सीमित है और अर्थ

व्यापक है। जिस प्रकार परमात्मा सृष्टिके अणु-अणुमें व्याप्त हैं, उसी प्रकार एक ही भाव देववाणी तथा अनेकानेक देशवासियोंके शब्दोंमें व्याप्त है।

इस प्रसङ्गमें वक्ता और श्रोता की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह तो सत्य है कि प्रारम्भमें किसी अर्थ-विशेष का वाहक होकर ही शब्द प्रकट होता है। परन्तु आगे चलकर, विद्वान् और विचारक प्रयोगों द्वारा उसके अर्थ-गौरव को बढ़ा देते हैं। जिस प्रकार नवजात शिशु एक आत्माकी शक्ति लेकर पैदा होता है, किन्तु उसका बलविक्रम और पराभव केवल उसीके कारण नहीं होता। अपने वातावरण और सङ्गतिसे भी वह बहुत कुछ प्रभावित होता है। कभी-कभी तो कोई महान् व्यक्ति ही किसीकी उन्नति का प्रधान कारण बन जाता है। ठीक इसी प्रकार शब्द भी व्यक्ति और परिस्थितिके प्रभावसे चमक उठते हैं।

यह तो हुई शब्दके अर्थ-संचयकी बात। अब रही उसके व्यक्त होनेकी बात। वक्ता अपने मनोभावको व्यक्त करनेके लिये किसी शब्दको चुनता है। सम्भव है, शब्दका सञ्चित अर्थ वक्ताके मनोभावसे बिल्कुल मिले, न मिले। फिर, वह शब्द प्रयुक्त होकर श्रोताके मनमें एक प्रकारके भावको जगाता है। यह भाव, सम्भव है, वक्ताके मनोभावसे पूरा-पूरा मिले न मिले। यही कारण है, एक कविताके अनेक अर्थ लगाये जाते हैं। इस प्रकार अर्थ शब्दमें वर्तमान होते हुए व्यक्ति सापेक्ष्य भी हुआ।

अर्थ शब्दमें उसी प्रकार सम्पुट रहता है; जिस प्रकार रिकार्डमें सङ्गीत, बीजमें वृक्ष। वक्ता और श्रोताके संयोगसे वह प्रकट होता है। उसकी शक्ति इन दोनोंकी योग्यतापर अवलम्बित है। बजानेवाला गंवार हो, या सुननेवाला नासमझ या बहरा हो, तो रेकार्डका सङ्गीत पूरा-पूरा रङ्ग नहीं ला सकता। उसी प्रकार, वक्ता या श्रोता अयोग्य हुए तो अर्थ अपने पूर्ण गौरवके साथ प्रकट नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी सन्देशका प्रभाव सन्देश-प्रेषक, सन्देश-वाहक तथा सन्देश-ग्राहक की सम्मिलित योग्यताके अनुपातसे घटता-बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार अर्थ-गाम्भीर्य वक्ता, श्रोता तथा शब्दकी क्षमता पर अवलम्बित है।

समलोचना

शकुन्तलाकी विदाई—(खण्ड काव्य) लेखक पोद्दार रामावतार 'अरुण'। प्रकाशक तारा-मण्डल; मुजफ्फरपुर मूल्य बारह आने।

शकुन्तलाकी विदाई सचमुचमें करुण रससे ओत-प्रोत खण्ड-काव्य है और इसके शब्द-शब्दमें व्यथाकी भावना बोलती नजर आती है। यों तो कविकी कल्पनाकी पृष्ठभूमि ही कम करुणा पूरित नहीं है फिर भी इस पुस्तिकाको पढ़ कर आसानीसे यह बात जानी जा सकती है कि काव्यके पीछे कविका व्यक्तित्व अपने असाधारण रूपमें अवस्थित है। कविने कथोपकथन आदिका सहारा न लेकर अवश्य ही एक साहसका काम किया है। स्वच्छन्द-वर्णन और गठे हुए छन्द कविकी प्रतिभाके सजीव चित्र हैं।

शिक्षाका माध्यम—लेखक आचार्य श्री मन्नारायण अग्रवाल। प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा। मूल्य बारह आने।

४४ पेजकी इस छोटी सी पुस्तिकामें संसार भरके विद्वानोंके अभिमतको प्रमाणके रूपमें सामने रख कर लेखक ने यह सिद्ध किया है कि जबतक शिक्षाका माध्यम मातृभाषा न होगा भाषाकी उन्नति एकदम असम्भव है। लेखककी जोरदार लेखनीने गम्भीर विषयको छूकर उसकी उलझन को सुलझानेका जो प्रयत्न किया है वह महान है।

गीता-हृदय—लेखक श्री साने गुरुजी एम० ए०। अनु० श्री भवानी प्रसाद तिवारी, एम० ए०। प्रकाशक सुषमा-साहित्य-मन्दिर, १९२-१९९ जवाहरगंज, जबलपुर। मूल्य एक रुपया।

श्रीमद्भागवतगीताके अठारहों अध्यायका प्रवचन इस पुस्तकमें बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण ढङ्गसे किया गया है। महात्मा गांधीकी टिप्पणीने तो इस पुस्तककी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। पुस्तक मननीय और पठनीय है।

सुहागरात—(कहानी-संग्रह) लेखक व्यथित-हृदय। प्रकाशक भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। मूल्य तीन रुपये।

सुहाग-रात प्रेमपूर्ण नौ कहानियोंका संग्रह है। सभी कहानियां प्रायः वैसी ही घटनाओंसे सम्बन्धित हैं जिनमें वासनाकी गंध भरी होती है। अतृप्त हृदयकी उद्वेगिनी कल्पनाने लेखको पथ-भ्रष्ट तो अवश्य कर दिया है किन्तु यह बात अवश्य है कि लेखक पथभ्रष्ट होकर भी खुली आंखोंसे सबकुछ देखता रहा है। तीन रुपये दाम अधिक हैं।

बच्चोंकी आदतोंका विकास—लेखक श्रीराममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०। प्रकाशक विद्यामन्दिर लिमिटेड, नयी दिल्ली। मूल्य दो रुपये।

राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे देखा जाय या सामाजिक दृष्टिकोणसे बच्चे ही किसी देश; समाज या परिवारकी भावी आशा होते हैं। बच्चोंकी आदतोंका विकास यदि उचित और भावी दृष्टिकोणसे नहीं होता तो वे अपने और पराये दोनों के लिये घातक होते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने गम्भीरता-पूर्वक इस विषयपर प्रकाश डाला है। हर्षकी बात है कि जहां हिन्दीमें इस तरहकी किताबोंका अभाव है लेखकका यह प्रयास स्तुत्य है।

परमाणुबम—लेखक जगदीश जोशी। प्रकाशक प्रगति-शील-प्राच्य-प्रकाशन-परिषद ; १० द्वारकानाथ टैगोरलेन, कलकत्ता। मूल्य आठ आना।

परमाणु-बम इस युगका एक वह आश्चर्यकारी आविष्कार है जिसका अनुमान मानवने कभी किया ही नहीं था। चालीस पेजकी इस छोटी-सी पुस्तिकामें लेखकने अणुबमके विषयमें कुछ लिखनेका साहस किया है जो प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

बन्दीके गान—(कविता) श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' प्रकाशक माडर्न बुकडिपो, नयी सड़क, दिल्ली। मूल्य डेढ़ रुपया।

पुस्तकमें संग्रहीत सभी कविताएं कविने अपने डेढ़ सालके जेल जीवनमें लिखी हैं अतएव इसमें कहीं-कहीं गम्भीर अन्तर्वेदना और कहीं-कहीं फड़कती हुई राष्ट्रीय भावना दोनों स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती हैं। हां, इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कोई-कोई कविता बहुत ही दबी हुई तथा अस्पष्ट-सी हो गयी है। यों कविका प्रयास सुन्दर है।

कामायनी मीमांसा—लेखक प्रेमनारायण टण्डन। प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा—प्रयाग। मूल्य पन्द्रह आने।

बीसवीं सदीके एकमात्र महाकाव्य कामायनीकी आलोचनासे सम्बन्धित इस पुस्तकमें हिन्दीके चुने हुए समालोचकोंके पांच लेख संग्रहीत हैं। इन लेखोंमें कामायनीके गूढ़ तत्वोंकी विवेचना की गयी है और उसे अधिकसे अधिक स्पष्ट किया गया है ताकि सस्ती भावुकता और हल्के-फुल्के छन्दोंको पढ़नेवाले पाठक भी कामायनीकी विशेषताओंको समझें और उसे पढ़ें।

दोपहरियाके फूल—(गद्य-गीत) लेखिका कुमारी दिनेशनन्दिनी चौरड्या एम० ए०। प्रकाशक सुषमा साहित्य मन्दिर, १९२-१९९ जवाहरगंज, जबलपुर। मूल्य सवा रुपया।

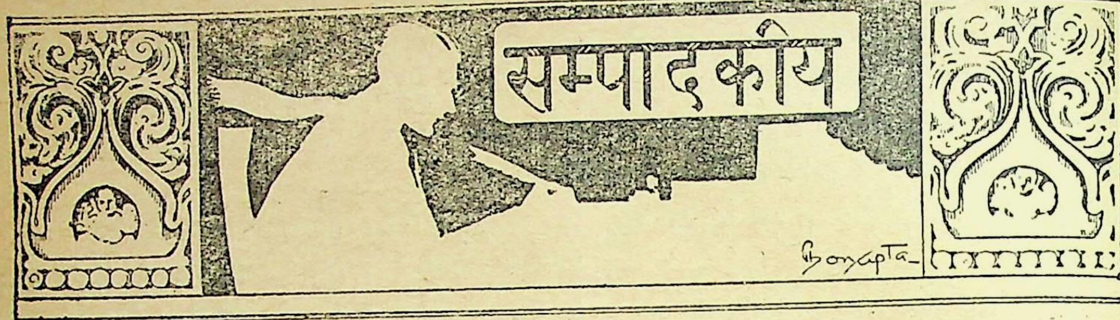
दिनेशनन्दिनी चौरड्या गद्य-गीत लिखकर हिन्दी संसारमें काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उनके इन्हीं चुने हुए गद्य-गीतोंका संग्रह है। वेदान्तवाद और छायावाद दोनोंके सम्मिश्रणने इस नारीके हृदयगत भावोंपर अधिकार कर यह दिखला दिया है कि गीतोंमें दोनों युगकी प्रतिछाया है। गीत बड़े ही सुन्दर और उच्चकोटिके हैं। प्रूफकी बेतरह गलतियां अवश्य ही खटकनेवाली बात है।

आदमखोर—(कहानी-संग्रह) लेखिका-चन्द्रकिरण सौनरिकसा। प्रकाशक सरस्वती-पुस्तक-मन्दिर जोगीवाड़ा, नयी सड़क—नयी दिल्ली। मूल्य ढाई रुपये।

कलाकी पहली अभिव्यक्ति फूलके रूपमें ही हुई है पहाड़के रूपमें हर्गिज नहीं। यह निर्विवाद सत्य है। उद्देश्यात्मक कलाकी सिद्धिके लिये हंसिया हथौड़ेकी आवश्यकता होती है किन्तु निरुद्देश्य कला (फूल) को परखनेके लिये सूझ की। श्रीमती सौनरिकसाकी कहानियोंके विषयमें भी यही बात सत्य है। पुस्तककी सभी कहानियां फूलकी तरह शून्यमें खिल उठी हैं और अपने सुबाससे आसपासके वातावरणको भर चुकी हैं। कहानियां पढ़ लेनेके बाद अपने आप मुंहसे वाह-वाह निकल पड़ता है जो इसकी सबसे बड़ी और सही खूबी है।

यहां आंसू बहाना है मना—(कहानी-संग्रह) लेखक राधेश्याम मिश्र। प्रकाशक, विद्या-मन्दिर लिमिटेड, कनाट सरकस, नयी दिल्ली। मूल्य डेढ़ रुपया।

जेलजीवनकी भिन्न-भिन्न कठिनाइयों तथा जेलकी कुव्यवस्थापर प्रकाश पड़नेके लिये कहानियोंकी रचना हुई है। लेखकके प्रयत्नसे जो कहानियां लिखी गयी हैं यद्यपि वे गहराईपूर्वक विषयको स्पर्श नहीं करतीं फिर भी साधारणतया अच्छी हैं।



आजाद हिन्द फौज !—

आजाद हिन्द सरकारके अन्तर्गत आजाद हिन्द फौज-का संगठन भारतको विदेशी दासतासे मुक्त करनेके लिये किया गया था। सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिका प्रसादजी वाजपेयीके शब्दोंमें "संसारमें राजशक्तिकी स्थापनाका उद्देश्य धार्मिक आचरणको प्रचलित करना है। राजनीतिक भाषामें कहें तो प्रजाको मात्स्यन्यायसे बचाना है। जहां छोटी मछलीको बड़ी मछली खा जाती है वहां मात्स्य-न्याय होता है, अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंसका जहां बोलबाला होता है वहीं मात्स्यन्याय होता है, बली दुर्बलको सताता है। जिसमें बली दुर्बलको न सता सके, इसलिये एक नियामकका प्रयोजन होता है, इसको प्रजा अपना राजा बनाती है और इसे अन्यायी व अधार्मिकको दण्ड देनेका अधिकार देती है, इसलिये यह दाण्डिक कहा जाता है।" नीति और विधानकी दृष्टिसे यदि देखा जाय तो भारत-वर्षमें स्थापित दाण्डिक या राजसत्ताका आधार अनीति और अन्याय बल है।

पिछले इतिहासमें न जाकर इतना कहना ही पर्याप्त है कि भारतवर्षकी जनताने कभी किसी कालमें अङ्गरेजोंको स्वेच्छासे अपना शासक नहीं माना। किन्तु जिसकी लाठी उसकी भैंसके अनुसार अंगरेज इस देशमें शासक बन बैठे। इस तरह छल-बल और कौशलसे स्थापित की गयी सत्ताको ब्रिटेनने सदा कानूनसे स्थापित सरकार सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। भारतवर्षने उसकी इस चेष्टाके खिलाफ बराबर विद्रोह किया है। १८५७ से अबतक बराबर ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध समयानुकूल रूपमें विद्रोह होता रहा है और अब भी हो रहा है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाका इति-हास आज विशेषतया १९२० के [illegible]से अबतक—ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध भारतीयोंके विद्रोहका इतिहास है।

विद्रोहका अधिकार—

संसारके तमाम नीति विधानोंमें जिस तरह राजाका शासन करनेका अधिकार माना गया है उसी तरह अन्यायी और स्वेच्छाचारी राजाके खिलाफ प्रजाका विद्रोहका अधिकार भी न्याय माना गया है। इसी न्यायके आधार-पर भारतपर भारतीयोंकी इच्छाके प्रतिकूल शासन करने-वाली ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ताके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिये श्री सुभाषचन्द्र बोसने भारतके बाहर भारतीयोंकी एक अस्थायी स्वतन्त्र सरकारकी स्थापना की थी और तत्कालीन नौ स्वतन्त्र राष्ट्रोंने इस सरकारकी वैधानिकता-को स्वीकार किया था। इस सरकारने अपना मन्त्रिमण्डल बना कर विदेशोंमें प्राप्त भारतीयोंकी एक स्वतन्त्र सेनाका संगठन किया था जिसका नाम आजाद हिन्द फौज पड़ा। अस्थायी आजाद हिन्द सरकारके प्रधान श्री सुभाषचन्द्र बोस इस सेनाके प्रधान सेनापति बने। इस तरह डा० कैलाशनाथ काटजूके शब्दोंमें "यदि निष्पक्ष दृष्टिकोणसे भारतीय राष्ट्रीय सेनाके इतिहासका अध्ययन किया जाय तो तीन बातोंका पता चलता है।

(१) द्वितीय विश्व-महायुद्धके सम्बन्धमें जब सारे संसारकी सैनिक शक्तियां उथल-पुथल मचा रही थीं, उस समय भारतके बाहर एक अस्थायी भारतीय राष्ट्रीय सर-कारका संगठन किया गया और उस समय अपना अस्तित्व रखनेवाली कमसे कम ९ विदेशी सरकारोंने उसे स्वीकार किया।

(२) प्राप्त साहित्योंसे पता चलता है कि इस अस्थायी भारतीय राष्ट्रीय सेनाने ब्रिटेनके विरुद्ध बाकायदा युद्धकी घोषणा कर दी थी और ऐसा करनेमें उसका एक-मात्र उद्देश्य भारतको विदेशी शासकोंके चंगुलसे छुड़ा कर स्वतन्त्र करना था।

(३) यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारत लगभग डेढ़ सौ वर्षोंसे ब्रिटेनका गुलाम है और सच या झूठ कहा जाता है कि ब्रिटेनने भारतपर विजय प्राप्त की थी। आजकी दुनियामें कोई भी किसी राष्ट्रपर दूसरे किसी राष्ट्रकी विजय स्वीकार नहीं कर सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय पहलू—

तब भला कोई भी स्वतन्त्र, निर्भीक और निष्पक्ष राय रखनेवाला व्यक्ति, समाज और राष्ट्र, यदि वह भारतकी महत्वाकांक्षाओंका विरोधी नहीं है तो, कैसे भारतको स्वतन्त्र करनेके लिये संगठित सेनाको देशद्रोही करार दे सकता है। विशी सरकारके आत्मसमर्पण करनेके बाद— स्मरण रहे कि उस समय वही फ्रांसकी एकमात्र वैधानिक सरकार थी—लन्दनमें जेनरल डिगाल द्वारा बनायी गयी अस्थायी सरकारको मित्रराष्ट्रोंने स्वीकार किया था। युद्ध बन्द होनेके बाद वही सरकार फ्रांसमें काबिज हुई। ठीक यही स्थिति स्थान भेदसे आजाद हिन्द सरकारकी थी। वैधानिक दृष्टिसे ब्रिटिश सरकार ही इस देशकी सरकार है। किन्तु देशका कोई वर्ग इसे नहीं चाहता जैसे जर्मन संरक्षित विशी सरकारको फ्रेंच न मानते थे। अतएव देशवासियोंकी इच्छाके प्रतिकूल बनी हुई विशी सरकारके खिलाफ विद्रोहका, बगावतका झण्डा खड़ा करनेवाले जेनरल डिगाल यदि देशद्रोही और राजद्रोही नहीं हो सकते तो भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्तासे लड़नेके निमित्त संगठित की गयी आजाद हिन्द सेना और उसके अधिकारियोंको किस विधानके अनुसार देशद्रोही या राजद्रोही करार दिया जा सकता है। डिगाल और सुभाषका उद्देश्य एक समान था। भारतका बच्चा-बच्चा वर्तमान शासनको अपना तथा अपने राष्ट्रका घोर अपमान समझता है। इस अपमानसे मुक्ति दिलानेके लिये संगठित की गयी स्वतन्त्र सरकार और उसकी आजाद हिन्द फौजका अन्तर्राष्ट्रीय विधानमें वही दर्जा होना चाहिये जो लन्दनमें बैठी हुई डिगाल सरकार और उसकी सेनाका था।

न्याय और स्वार्थमें सङ्घर्ष—

पहले महासमर (१९१४-१८) में चेकोस्लोवाकिया आस्ट्रियाके अधीन था। देशको स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त अवसर समझ कर कुछ देशभक्त, जिनमें चेकोस्लोवाकिया राष्ट्रके जन्मदाता मसारिक और वर्तमान राष्ट्रपति डा० बेनेसके नाम मशहूर हैं, वहांसे बाहर भाग गये थे। उन्होंने एक स्वतन्त्र सरकारका संगठन करके आस्ट्रियन सेनाके मातहत चेक सैनिकोंसे कहा कि 'तुम आस्ट्रियन सरकारकी ओरसे न लड़ो।' इस तरह इन चेक नेताओंकी बात मान कर जो चेक सैनिक आस्ट्रियाकी सत्ताके विरुद्ध खड़े हुए वे आस्ट्रियन सरकारकी दृष्टिमें देशद्रोही हुए किन्तु ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिकाने इनको देशभक्त माना। यही नहीं आस्ट्रियन सरकारको भी इनको विद्रोही नहीं सैनिक मानना पड़ा था। क्या ठीक वही स्थिति आज आजाद हिंद सेना और उसके सैनिकोंकी नहीं है। न्याय इस स्थितिका समर्थक है किन्तु स्वार्थ ऐसा करनेकी अनुमति नहीं देता। ब्रिटिश सरकारके स्वार्थ भारतीय जनताके स्वार्थोंसे भिन्न हैं। यही वजह है कि भारतीय स्वार्थोंकी रक्षाके लिये चलाये जानेवाले तमाम वैध आन्दोलनोंको कुचलनेके लिये ब्रिटिश सरकार पशुबलसे काम लेनेमें भी जरा नहीं हिचकती। उसकी इसी नीतिके फलस्वरूप जनताके हृदयोंपर शासन करनेवाले नेताओंको अपने जीवनका अधिक और श्रेष्ठ भाग ब्रिटिश कारागारोंमें बिताना पड़ता है तथा जननेताओंके बताये मार्गपर चलनेवाले देशवासियोंको असह्य यन्त्रणाओंका शिकार बनवा पड़ता है। तब भला अपनी सत्ताकी जड़ोंको हिला देनेवाली किसी शक्तिके संगठनको वर्तमान सरकार कैसे बर्दाश्त कर सकती है।

लोकमत देखो—

आज इसी आजाद हिन्द फौजके कितने ही अधिकारियोंके खिलाफ फौजी अदालतोंमें मामला चलाया जा रहा है। कितने ही व्यक्ति फांसीपर लटका दिये गये हैं। इन बीर सैनिकोंको ब्रिटिश साम्राज्यवादके प्रति अराजक बता कर इनके विरुद्ध युक्तप्रांतके गवर्नर सर मारिस हालेट जैसे अङ्गरेज जो विष-वमन कर रहे हैं वह भारतके हित लिये नहीं बल्कि निजी स्वार्थपर चोट लगती देख कर बौखला उठे हैं। तभी तो इस शिष्टताका भी ध्यान नहीं रखा कि विचाराधीन मामलाके दौरानमें इस तरहकी बातें कहना अभियुक्तोंके खिलाफ न्यायाधीशोंका मन विषाक्त करना है। किन्तु इस तरहके अंगरेजोंको एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि उनका यह प्रचार ब्रिटेन और भारतके बीच खुदी हुई खाईको और अधिक चौड़ा कर रहा है और इसके फलस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि फिर भविष्यमें लाख कोशिश करनेपर भी यह चौड़ी खाई पाटे

न पटे। भारतीय लोकमत इस तरहके ब्रिटिश प्रचारसे क्षुब्ध और असन्तुष्ट है। अतः इन अंगरेजोंको स्मरण रखना चाहिये कि भारतके इन वीर सैनिकोंपर प्रहार करके वे भारतके साथ शत्रुताका आचरण तो कर ही रहे हैं दरअसल उनका यह आचरण स्वयं उनके देशके लिये भी अहितकर और अवांछनीय है। आज भले ही यह बात उनकी समझमें न आये लेकिन एक दिन आयेगा जब उनके साथी इस बात को समझेंगे और इन लोगोंकी इस अदूरदर्शितापर पश्चाताप करेंगे।

कांग्रेस जिन्दाबाद—

अगस्त १९४२ में कांग्रेसने 'भारत छोड़ो' की नीति अपनायी थी। उसकी वह नीति अबतक बनी है और अपने इस निर्णयसे वह इञ्च भर भी नहीं हटना चाहती। यही कारण है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओंके निर्वाचन कांग्रेसने अगस्त १९४२ वाली नीतिके अनुसार ही लड़नेका निश्चय किया है। 'भारत छोड़ो' का नारा दो शब्दोंमें भारतके हृदयको संसारके सामने खोल कर रख देता है। इस नाराको कार्यमें परिणत करनेके लिये कांग्रेसने जो नीति स्वीकार की थी उसके अनुसार काम करनेका अवसर उसे नहीं मिला था। फिर भी वह नारा भारतीय-राष्ट्रके हृदयकी प्रतिध्वनि थी, यही कारण है कि भारत छोड़ो' नारा लगा करके असंख्यासंख्य व्यक्तियोंने अपने प्राणोंका बलिदान किया, सहस्रों व्यक्तियोंने कारागारका जीवन वरण किया। इतना ही नहीं उस नारा, और नीतिकी मर्यादाकी रक्षा करनेमें गांवके गांव, जिले के जिले बरबाद हो गये। ब्रिटिश नौकरशाहीने उस समय भारतमें नृशंशताका जो ताण्डव किया था संसारके इतिहास में उसका उदाहरण नहीं है।

कांग्रेस देशका गौरव है

देशको इस तरहकी प्रेरणा और बलिदानकी भावनासे अनुप्राणित कर सकनेके कारण भारतवासियोंको कांग्रेसपर गर्व है, गौरव है। वे जानते हैं कि कांग्रेसके हाथोंमें उनके स्वार्थ और अधिकार सुरक्षित हैं। उसकी नीति किसी सम्प्रदायके स्वार्थोंके मार्गमें बाधक नहीं है यह बात कांग्रेसने बराबर डंकेकी चोट कही है। यह स्पष्ट है कि भारतीय स्वार्थको क्षति पहुंचानेवाले किसी सम्प्रदायके स्वार्थोंको किसी तरह वांछनीय नहीं समझा जा सकता और ये स्वार्थ राष्ट्रीय उन्नति एवं समृद्धिको सदा क्षति पहुंचायेंगे। अतः यह उचित है कि राष्ट्रके सम्पूर्ण स्वार्थको दृष्टिगत रखकर हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने-अपने स्वार्थोंको घटायें बढ़ायें। मुसलिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों इसके लिये तैयार नहीं हैं। वे अपने-अपने सम्प्रदायके मुट्ठी भर सम्पन्न व्यक्तियों के स्वार्थोंको (वह भी अवैध) सर्वोपरि रखना चाहते हैं। यही कारण है कि ये दोनों संस्थाएं कांग्रेसके साथ मिलकर काम नहीं कर सकतीं। फलस्वरूप इन दोनों संस्थाओंसे लोहा लेनेके सिवा कांग्रेसके सामने अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। अतः आज इस चुनाव-मैदानमें कांग्रेस जन-बलके भरोसे हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग दोनोंसे मोर्चा ले रही है। कांग्रेसके सत्य-सिद्धान्त और आदर्शमें कितना बल और ताकत है यह इसीसे स्पष्ट है कि केन्द्रीय असेम्बलीके साधारण निर्वाचनमें आधेसे अधिक सीटें बिना लड़े ही कांग्रेसको मिल गयीं। कांग्रेसकी यह विजय बताती है कि जन-साधारणपर उसका कितना प्रभाव है। देश जानता है कि ब्रिटिश शासनसे मुक्त करनेके लिये आजतक कांग्रेसके सिवा अन्य किसी संस्थाने कोई प्रयत्न नहीं किया। अतएव इस तरहकी जीती-जागती संस्थाके मुकाबले जो संस्था आनेका साहस करेगी उसकी पराजय सुनिश्चित है।

क्रान्तिका पूर्व रूप—

कांग्रेसके सभी चोटीके नेताओंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि देशकी स्वतन्त्रता अब किसीके रोके नहीं रुक सकती। देश आज क्रान्तिके विस्फोटकी पूर्व स्थितिमें है। स्वतन्त्रताका प्रभात होनेवाला है। न मि० जिन्ना और न ब्रिटिश सरकारकी प्रचण्ड शक्ति स्वतन्त्रताकी किरणोंको प्रकाशित होनेसे रोक सकती है।

बम्बईमें केन्द्रीय असेम्बलीके निर्वाचन—दिवसके पूर्व सर्दार वल्लभभाई पटेलने कहा है कि कांग्रेस भयङ्कर क्रान्ति संघटित कर रही है। उसकी यह अन्तिम चोट होगी। क्रान्तिका विस्फोट होनेके पूर्व कांग्रेस चुनावका पूर्ण उपयोग करना चाहती है ताकि संसारको जनताकी इच्छा और शक्तिका पता चल जाय। विदेशी अखबार विरक्तिके स्वरमें कह रहे हैं कि कांग्रेस और पण्डित नेहरू देशमें अशांति फैला रहे हैं। ये लोग परोपकारी मूर्ख हैं अन्यथा वे यह समझते कि हमारा विद्रोह कभी बन्द नहीं हुआ, स्थगित नहीं हुआ और न अस्त हुआ है। अगस्त १९४२ का प्रस्ताव आज भी बना हुआ है। यह कभी नहीं हो सकता कि विदेशी दासताके बन्धनसे अन्तिम मुक्ति पानेके लिये जनसाधारण अपनी तैयारियां बन्द कर दें। चुनावका काम समाप्त होते ही हम फिर अग्नि परीक्षामें कूद पड़ेंगे।

वोट कांग्रेसको क्यों—

सर्दार पटेलका यह कथन प्रत्येक स्वतन्त्राभिलाषी भारतीयके अन्तस्तलकी वाणी है। आज भारतीयके हृदयमें ब्रिटिश शासनके खिलाफ विद्रोह नाच रहा है। इस समय जो संयम दिखायी दे रहा है उसका कारण है कांग्रेसका नेतृत्व। कांग्रेसने व्यवस्थापिकाओंपर अधिकार करनेका फैसला किया है। सवाल यह हो सकता है कि क्रांतिके पूर्व व्यवस्थापिकाओंपर अधिकार क्यों? बात यह है कि हम विदेशी शासन मिटानेको कृतसंकल्प हैं। हमारे इस प्रयासका सामना करनेके लिये इन व्यवस्थापिकाओंसे हमारे विपरीत काम लिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम इन परिषदोंपर कब्जा करें। इन परिषदोंमें हमें ऐसे व्यक्तियोंको भेजना चाहिये जो वहां सरकारी बेंचोंका उस समय डट कर सामना कर सकें जब हम अपना काम बाहर आरम्भ करें। अतएव आज प्रत्येक स्वतन्त्रताकामी भारतवासीका कर्तव्य है कि वह केन्द्रीय और प्रान्तीय चुनावमें कांग्रेसके उम्मेदवारको ही वोट दे।

ब्रिटिश सरकारकी घबराहट—

आजाद हिन्द फौजके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिये देशके विभिन्न भागोंमें जो प्रबल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है उसे देख ब्रिटिश अधिकारी मनही मन क्षुब्ध हो उठे और घबरा रहे हैं। जनताके मनोभावोंके विपरीत कार्य करनेवालोंके पास ऐसी स्थितिमें एक ही अस्त्र रहता है जिसका उपयोग वे अपनी घबराहटको दूर करनेके लिये आये दिन करते रहते हैं और वह अस्त्र है पाशविक दमन। कलकत्ता, बम्बई, मदुरा, लखनऊ और लाहौरमें छात्रोंके शान्त प्रदर्शनोंपर गोलियां चला कर ब्रिटिश अधिकारियोंने अपनी झल्लाहट प्रकट की है। किन्तु उनको स्मरण रखना चाहिये कि उनकी ये हरकतें भारतमें ब्रिटिश शासनका जनाजा निकालनेमें सहायता पहुंचानेवाली हैं। बन्दूकों और मशीनगनोंसे स्वतन्त्रताकी प्रगतिको नहीं रोका जा सकता, यदि यह बात ब्रिटिश सरकार समझ पाये तो ब्रिटेन और भारत दोनोंका हित होगा।

डिगाल मन्त्रिमण्डल—

फ्रांसके इस निर्वाचनमें यद्यपि कम्यूनिस्ट पार्टीके सदस्य सर्वाधिक संख्यामें चुने गये हैं किन्तु वैदेशिक मामलोंमें वोटरोंने अत्यधिक संख्यामें डिगालकी नीतिका समर्थन किया है। इस चुनावमें कम्यूनिस्ट पार्टी, ईसाई जनवादी और सोशलिस्ट पार्टीकी शक्ति प्रायः समान है। इस प्रकार निर्वाचित असेम्बलीके सामने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य तीसरे प्रजातन्त्री विधानके स्थानपर नये विधानकी रचना करना है। यह काम असेम्बलीको तीस सप्ताहके भीतर कर डालना होगा।

डिगालकी विजय

असेम्बलीके प्रथम अधिवेशनमें जेनरल डिगालको नयी सरकारका प्रधान चुना गया। किन्तु नयी सरकारका संगठन करनेके समय कुछ कठिनाइयां आयीं। कम्यूनिस्ट पार्टीने यह मांग उपस्थित की कि मन्त्रिमण्डलके तीन प्रधान पदों—वैदेशिक, गृह और युद्ध विभागों—में कोई एक कम्यूनिस्टको मिलना चाहिये। सबसे बड़ी अकेली पार्टी होनेके नाते उनकी यह मांग सर्वथा उचित थी। किन्तु डिगाल इस बातपर राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा कि जबतक इस बातके सुस्पष्ट और सुनिश्चित प्रमाण न मिलेंगे कि कम्युनिस्टोंकी नीति मास्कोसे नहीं बल्कि राष्ट्रीयतासे प्रेरित और अनुप्राणित होती है तबतक सरकारका एक भी प्रधान विभाग उनके मातहत नहीं रखा जा सकता। फ्रेंच इण्डोचीनमें ब्रिटेनकी वैदेशिक नीति फ्रेंच साम्राज्यकी रक्षा करनेमें सहायक सिद्ध हो रही है। अतः यह स्वाभाविक है कि साम्राज्यवादी फ्रांसके नेता डिगाल वैदेशिक मामलोंमें सहयोगके लिये रूसकी तरफ न बढ़कर ब्रिटेनकी तरफ बढ़ें। उन्होंने वही किया। डिगाल जानते थे कि वैदेशिक मामलोंमें सोशलिस्ट और जनवादी ईसाई पार्टी कम्युनिस्टोंका समर्थन न करेगी। अतः यह कहकर कि फ्रेंच सरकारके संगठनके सम्बन्धमें यदि मुझे पूर्णाधिकार न दिये जायेंगे तो मैं इस उत्तरदायित्वको नहीं ले सकता प्रधान पदसे इस्तीफा दे दिया।

फ्रांसका दुर्भाग्य

यह फ्रांसका दुर्भाग्य है कि दोनों प्रगतिशील पार्टियां कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट मिल नहीं सकीं और अन्तमें फ्रेंच असेम्बलीने सरकारके प्रधानका सेहरा डिगालपर ही बांधा। असेम्बलीने डिगालको यह निर्देश भी दिया है कि मन्त्रिमण्डलमें तीनों पार्टियोंके सदस्य बराबर संख्यामें रहें। सोशलिस्टोंके साथ न देनेके कारण कम्यूनिस्टोंके सामने राष्ट्रीय सरकारमें भाग लेनेके सिवा दूसरा रास्ता नहीं रह गया।

सर्वाधिकार सुरक्षित

नवीन मन्त्रिमण्डलमें डिगालने एक तरह सर्वाधिकार अपने हाथोंमें रखा है। सरकारके प्रधान होनेके साथ-साथ मि० चर्चिल और मि० एटलीकी तरह डिफेन्स मिनिस्टर भी वही हैं। संयुक्तराज्य अमेरिकाके प्रेसिडेण्टकी तरह सेनाके प्रधान भी वही हैं। वैदेशिक मन्त्रीका कार्य उनकी पार्टीके मो० विडाल्टको, जिनके पास पहले भी था, दिया गया है। इस तरह देखा जाता है कि इङ्गलैंडके सम्राट, अमेरिकाके राष्ट्रपति और ब्रिटेनके प्रधान मन्त्रीके जो अधिकार हैं वे सब अधिकार फ्रांसमें एक व्यक्तिके हाथमें हैं और वह है जेनरल डिगाल। अतः यदि यह कहा जाय कि डिगाल इस समय फ्रांसका डिक्टेटर हैं तो किंचित अत्युक्ति न होगी।

डिगालकी इस विजयपर साम्राज्यवादी ब्रिटिशपत्रोंने कूटनीतिक भाषामें हर्ष प्रकट किया है। वे इसे किसी पार्टीकी विजय न कह कर फ्रांसकी विजय बताते हैं। कहना न होगा कि डिगालने मास्कोके प्रति जो रुख दिखाया है उससे ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंको बड़ी स्वास्ति मिली है और अब उनको इस बातका विश्वास हो गया है कि पश्चिमी यूरोपमें फ्रांसके नेतृत्वमें रूसके विरुद्ध बेल्जियम, हालैंड और लक्सेमबर्गको मिला कर एक प्रभावशाली गुट बनाया जा सकेगा। स्वभावतः ब्रिटेनसे इस तरहके गुटको पूरा सहयोग और सहायता मिलेगी।

ब्रिटेनकी वैदेशिक नीति—

फिलस्तीन, ईरान और बर्मा, मलाया, जावा, फ्रेंच—इण्डोचीन तथा भारतके प्रति वर्तमान ब्रिटिश सरकारकी नीति प्रायः वैसी ही है जैसी चर्चिल सरकार की थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने कहा है कि ब्रिटेन अब संसारमें तीसरे दर्जेकी ताकत रह गया है। यह वास्तविकता है। ब्रिटेनके नेता जानते हैं कि साम्राज्यके बलपर ही वह प्रथम कोटिका राष्ट्र और यूरोपका नेता बना था। अतः ब्रिटेनको प्रथम कोटिका राष्ट्र बनानेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि उसका साम्राज्य अक्षुण्ण बना रहे। अतएव ब्रिटेनकी वर्तमान सरकार मजूर दलकी होते हुए भी वैदेशिक मामलेमें उसकी नीति वही है जो टोरी-प्रधान सरकार की थी। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश लेबरपार्टीकावामपंथीदल जावा और फ्रेंच इण्डोचीनमें वहांके राष्ट्रवादी स्वतन्त्रता आन्दोलनोंको कुचलनेमें ब्रिटिश और भारतीय सेनासे काम लेते देख क्षुब्ध हो उठा है। इस सरकारको बने अभी चार महीने भी नहीं हुए और अभीसे टोरियोंके साथ मिलकर सम्मिलित सरकार बनानेकी चर्चा आरम्भ हो गयी है। ऐसा जान पड़ता है कि लेबर पार्टीके नेता स्वर्गीय मि० रामजे मैकडोनल्डकी भांति अपनी पार्टीके साथ विश्वासघात करके टोरियोंसे मिलकर नाममात्रकी राष्ट्रीय सरकार बनानेका प्रयत्न करेंगे। ब्रिटेनके मतदाता, जिन्होंने लेबर पार्टीको अप्रत्याशित विजय प्रदान की है, लेबर लीडरोंके इस विश्वासघातको क्या बर्दाश्त करेंगे?

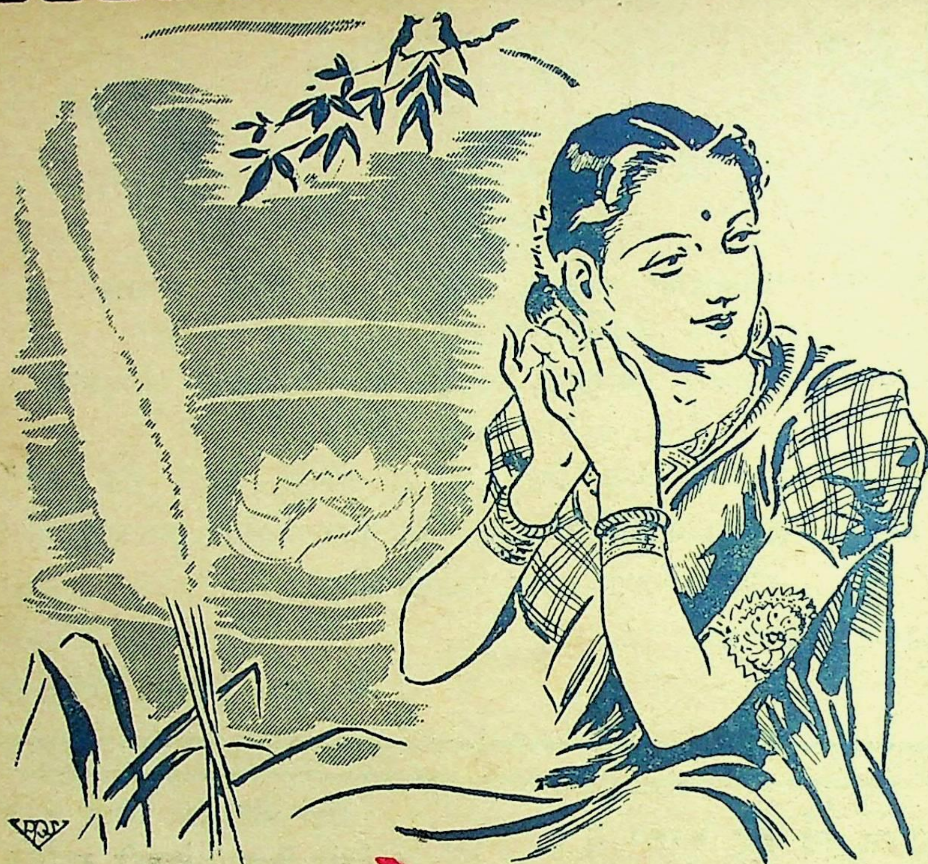
"भानु" जी का स्वर्गवास

वर्तमान हिन्दीके पिता तथा छन्द शास्त्रके प्रकाण्ड ज्ञाता "भानु" जी स्वर्गवास अवश्य ही हिन्दी साहित्य की एक ऐसी क्षति है जो बहुत दिनोंके बाद जाकर पूरी हुआ करती है। "भानु" जी जीवन भर सरस्वतीकी पूजा करते रहे और भावी पीढ़ियोंके लिये लिखते रहे—जो उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। अवश्य ही हिन्दी भाषा भाषी जनता उनके इस असामयिक निधनको शीघ्र भूल सकनेमें समर्थ नहीं हो सकेगी। शोक-सूचक समवेदना प्रकट करते हुए हम यहां एक बात निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं। मृत व्यक्तिके लिये केवल दो शब्द लिख देना ही आवश्यक नहीं है वरन उसकी स्मृतिको बनाये रखनेके लिये आवश्यक है कि हम उनके नाम पर कुछ करें। इस रूपमें हमारे सामने उनके नामके रूपमें एक ऐसा कार्य रह जाता है जिसकी सीमाके भीतर हम अपनी कार्यकुशलताके द्वारा बहुत कुछ कर सकते हैं और कमसे कम आजके युगमें तो यह आवश्यक सा हो गया है। अतएव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा अन्यान्य सभी प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं तथा साहित्यिक विद्वानोंसे हमारा यह अनुरोध होगा कि वे स्वर्गीय "भानु" जीके नाम पर कुछ न कुछ ऐसा कार्य करें जिससे देश और समाजमें साहित्यिक जागृति तथा नवचेतना आयें।

परमात्मा उनकी आत्माको शान्ति प्रदान करें।

नवलकिशोर सिंह द्वारा विश्वमित्र प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित और प्रकाशित।

Regd. No. C. 2230



घर और बाहर

जहां कहीं भी क्यों न रहें, अलंकार ही आपकी सौन्दर्य-वृद्धि करेगा। आधुनिक रुचिके अनुसार अभिनव प्रणालीसे प्रस्तुत—सभी प्रकारके रूप-रंगके गहनोंका श्रेष्ठ प्रतिष्ठान :—

कुण्डू ज्वेलरी वर्क्स

प्रोप्रायटर—जे० एल० कुण्डू

ज्वेलर्स और वाच मेकर्स

२०१, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता

फोन : ब० ब० ३६५५



स्पष्ट यह झलकता है कि ये तीनों मित्र नेता हिंसा और प्रतिहिंसा दोनों भावों से प्रभावित हैं। वक्तव्यमें जर्मनीके प्रसङ्गमें कहा गया है:—"जर्मन सशस्त्र प्रतिरोधको अन्तिमरूपसे कुचल देनेके बाद हम उस पर पूर्ण आत्म-समर्पणकी जो शर्तें लादेंगे उनकी नीति और कार्यक्रमके सम्बन्धमें हम सब सहमत हैं। ये शर्तें उस समय तक प्रकट न की जायेंगी जब तक जर्मनीकी

मार्च १९४५ वर्ष—१३, संख्या—६ चैत्र २००१

'हलाहल' की चार बूंदें

सिंधुमें बहता यह तृण सूक्ष्म,
कि मरुथलमें उड़ता कण क्षीण,
शून्य में भ्रमती जो यह भूमि,
बिंदु-सी स्थिति सत्ता से हीन,
और इस अणुपर अगणित जीव,
कि जिनमें मानव, धिक् अविवेक,
'सृष्टि के स्वामी' का ले नाम,
कराता है अपना अभिषेक!

पूर्वजों का था यह सौभाग्य,
कि उनका यह था दृढ़ विश्वास,
धरा पर छाया अम्बर नील,
दयामय देवों का अधिवास,
हमारे लिये किन्तु यह शून्य,
शून्य चिर, केवल विस्तृत शून्य,
किया करता है जो अविराम,
हमारी लघुता का उपहास,

देखने को मुट्ठी भर धूलि,
जिसे यदि फूंको तो उड़ जाय,
अगर तूफ़ानों में पड़ जाय,
महा निरुपाय, महा असहाय!
किन्तु दी किसने उसमें डाल,
चार सांसों में उसको बांध,
धरा को ठुकराने की शक्ति,
गगन को दुलराने की साध,

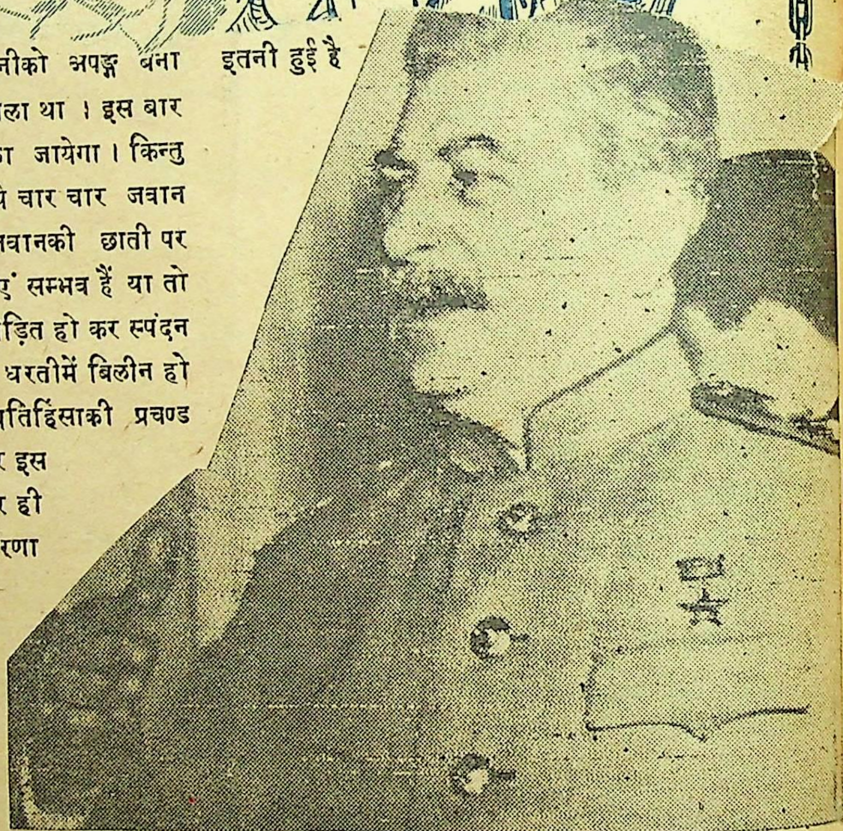
उपेक्षित हो क्षितिसे दिन रात,
जिसे इसको करना था प्यार,
कि जिसका होने से मृदु अंश,
इसे था उसपर अधिकार,
अहर्निश मेरा यह आश्चर्य,
कहां से पाकर बल - विश्वास
बबूला मिट्टी का लघुकाय,
उठाये कन्धों पर आकाश!

—बच्चन

Regd. No. C. 2230



छथा... ... ... जर्मनीको अपङ्ग बना इतनी हुई है कर मित्र शक्तियोंने अपने घेरेके भीतर डाला था । इस बार अपङ्ग भी बनाया जायेगा, घेरा भी डाला जायेगा। किन्तु इतना पर्याप्त नहीं सिद्ध हुआ। इसलिये चार चार जवान अपनी पूरी शक्तिके साथ पराजित जवानकी छाती पर सवारी कसे रहेंगे। इसकी दो प्रतिक्रियाएं सम्भव हैं या तो भू-शायी जर्मनी गुरुतर चापसे निष्पीड़ित हो कर स्पंदन हीन जीवन व्यतीत करते करते एक दिन धरतीमें बिलीन हो जायेगा, या फिर भू-शायी होकर भी प्रतिहिंसाकी प्रचण्ड और प्रबल भावना द्वारा बल प्राप्त होकर इस गुरुतर चापको सहते रहने और भीतर ही भीतर शक्ति सञ्चय करते रहनेकी प्रेरणा के फल स्वरूप फिर एक दिन वह ऐसे कम्प और वेगके साथ उठेगा कि छाती पर सवार लोग उस कम्प और वेगमें पड़कर हवा हो जायेंगे और संसार एक बार फिर रक्त और मौतका प्रलयङ्कर ताण्डव देखेगा।



याल्टा सम्मेलन विजेता

कहा गया है कि 'हिंसा जितनी बढ़ेगी क्रान्ति अथवा परिवर्तन उतना ही कम होगा।' इस कथनकी सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। विज्ञानके चमत्कारपूर्ण आविष्कारोंके बावजूद भी दुखदैन्य, अशान्ति, असन्तोष कम नहीं हुआ, बढ़ता ही जा रहा है। क्योंकि संसार पर शासन करनेवाले हिंसाके सिवा दूसरे मार्ग द्वारा संसारमें शान्ति और न्याय, स्वतन्त्रता और समानताके सिद्धान्तों तथा आदर्शोंको कार्यमें परिणत कि आज तलवार और तोपोंका स्थान इतने नवीन और भयङ्कर शस्त्रास्त्रोंने ले लिया जिनकी कल्पना शायद दानवोंने भी न की होगी। यह अनिवार्य है। जब तक हिंसाका समाज समर्थन करेगा, अन्याय और अनीतिके स्थान पर न्याय और नीतिको स्थापित करनेमें: जब तक हिंसासे काम लिया जायेगा तब तक समाज अपनेको 'मानव समाज' कहनेका अधिकारी नहीं हो सकता। आल्डस हक्सलीने



याल्टा सम्मेलन—संसारके भाग्य निर्णायक चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन

ठीक ही कहा है कि "हिंसा और हिंसाका परिणाम,—प्रतिहिंसा, सन्देह और असन्तोषका भाव जो हिंसाके शिकार होनेवाले व्यक्ति समाज और देशके भीतर पैदा होता है,—तथा हिंसा करनेवाले व्यक्तिके हृदयमें अधिकाधिक हिंसा करनेकी प्रवृत्तिका जाग्रत होना आदि बातें अत्यन्त चिरपरिचित एवं सब तरहसे बेहद अपरिवर्तनकारी हैं। हिंसात्मक विप्लवसे हिंसाके अनिवार्य परिणामोंके सिवा और कुछ भी हासिल नहीं हो सकता।"

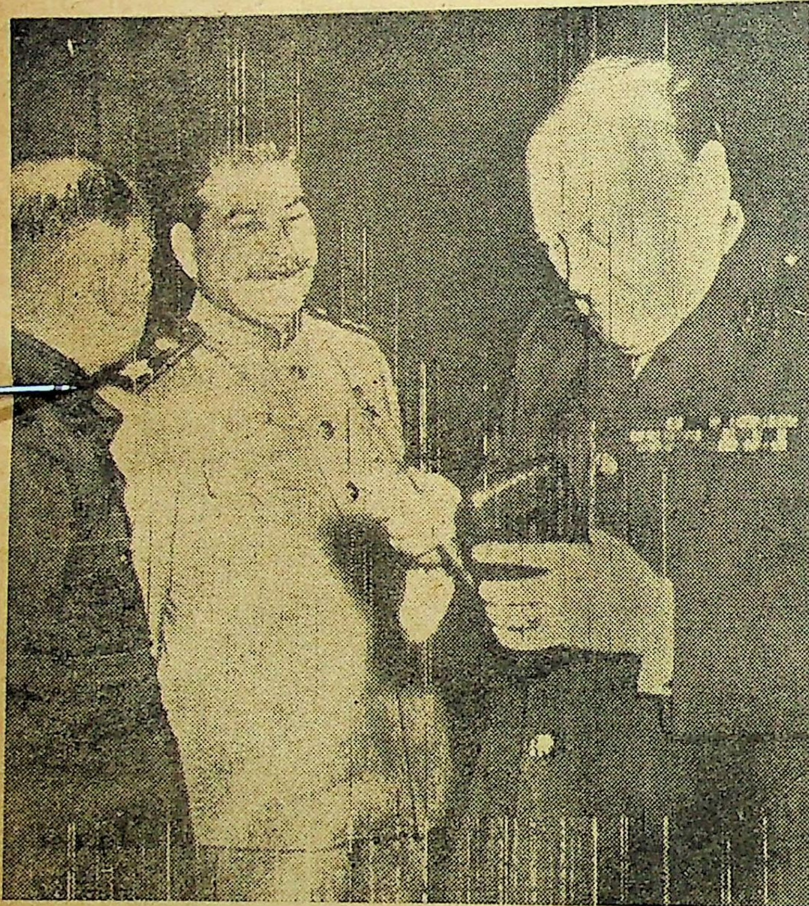
किन्तु, देखा जाता है कि याल्टा सम्मेलनमें साधारणतया संसारके सम्बन्धमें और खास कर जर्मनीके सम्बन्धमें हिंसाके भावसे प्रेरित हो कर ही निर्णय किये गये हैं। सम्मेलनकी समाप्ति पर मि० चर्चिल, प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट और मार्शल स्टालिनके हस्ताक्षरोंसे एक वक्तव्य निकाला गया है। इस वक्तव्यको देखनेसे स्पष्ट यह झलकता है कि ये तीनों मित्र नेता हिंसा और प्रतिहिंसा दोनों भावों से प्रभावित हैं। वक्तव्यमें जर्मनीके प्रसङ्गमें कहा गया है:—"जर्मन सशस्त्र प्रतिरोधको अन्तिमरूपसे कुचल देनेके बाद हम उस पर पूर्ण आत्म-समर्पणकी जो शर्तें लादेंगे उनकी नीति और कार्यक्रमके सम्बन्धमें हम सब सहमत हैं। ये शर्तें उस समय तक प्रकट न की जायेंगी जब तक जर्मनीकी पूर्ण और अन्तिम पराजय न हो जायेगी, सर्वसम्मत योजनाके अनुसार तीनों राष्ट्रोंकी सेनाएं अपने अपने अञ्चलके जर्मनीपर अधिकार जमायेंगी।" फ्रांसको भी इस बटवारेमें शामिल किया गया है। अपने हिस्सेके जर्मनी पर वह भी अपना अधिकार जमायेगा। इन चारों भागोंके शासनमें सङ्गसूत्र और सहयोग कायम रखनेके लिये एक सेण्ट्रल कण्ट्रोल बोर्ड बनेगा जिसका



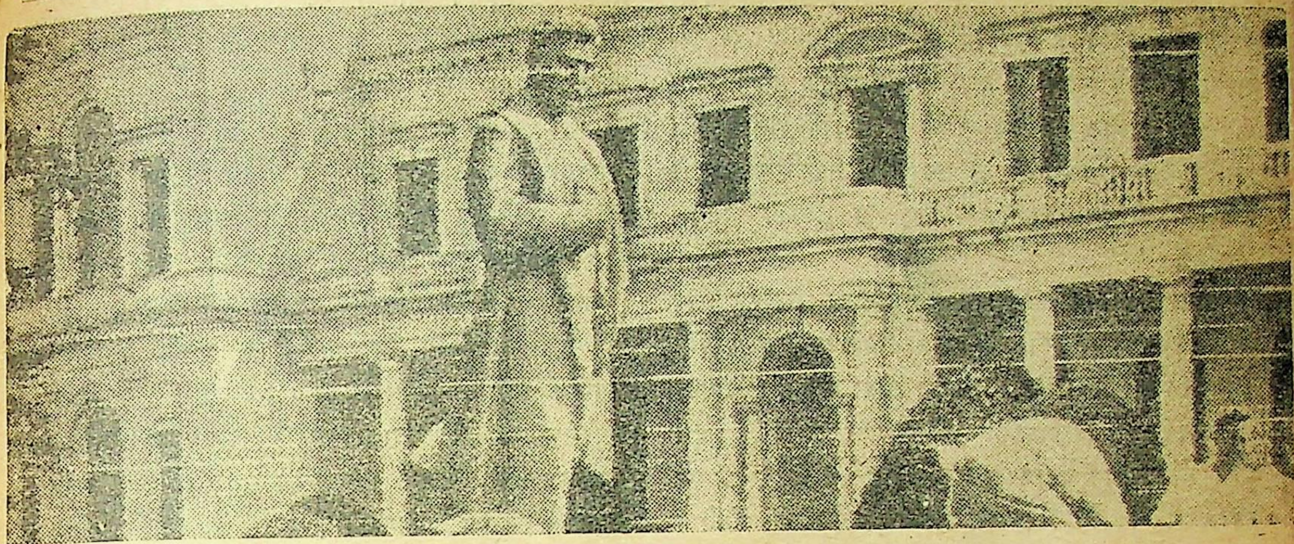
याल्टा-सम्मेलन-प्रीमियर चर्चिल मोटरमें बैठे प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टका अभिवादन कर रहे हैं

सदर मुकाम बर्लिनमें रहेगा। चारोंके प्रतिनिधि इस बोर्डके सदस्य होंगे। बर्लिन, शाङ्घाईकी तरह अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास (International Settlement) बनेगा या उसका स्वरूप इससे भिन्न होगा, अभी तक यह बात नहीं मालूम हुई। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि शक्तिभर जर्मनीको और उसकी राजधानी बर्लिनको कुचल डालनेमें कोई कसर नहीं रखी जायेगी। दावा भी त्रिनायकोंका कुछ कुछ ऐसा ही है। "जर्मन सैनिकवाद और नाजीवादको विनष्ट करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करना कि फिर कभी जर्मनी संसारकी शान्ति भङ्ग न कर सके, हमारा अटल उद्देश्य है। तमाम जर्मन सैनिक दलोंको निरस्त्र और तितर बितर कर देना, हमारा दृढ़ संकल्प है। जर्मन जेनरल स्टाफको, जिसने हमेशा बार बार जर्मनीके भीतर सैनिक भावना और मनोवृत्तिको उकसाया है, हम इस तरह तोड़ डालेंगे कि फिर कभी वह न पनप सके। सम्पूर्ण जर्मन सैनिक साज सज्जा और साधन सामग्रियोंको विनष्ट कर देंगे, सैनिक उत्पादन-के काममें आनेवाले तमाम उद्योग-धन्धेको निश्चिह्न कर देंगे या अपने नियन्त्रणमें रखेंगे, तमाम युद्ध अपराधी विचारके बाद फौरन दण्डित होंगे। जर्मनोंने जो जहांतमाम ध्वंस किया है उसकी क्षति पूर्ति, वस्तुके रूपमें, उनसे ली जायेगी। नाजी पार्टी, नाजी कानून, नाजी सङ्गठन और संस्थाएं निश्चिह्न कर दी जायेंगी। सार्वजनिक और सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रोंमें जनसाधारणपर नाजी और सैनिक प्रभावका नाम निशान भी न रहने दिया जायेगा। संसारकी भावी शान्ति और सुरक्षाके लिये आवश्यक समझी जानेवाली अन्य व्यवस्थाएं भी जर्मनीमें होंगी। हम जर्मन जनता को नहीं विनष्ट करना चाहते। किन्तु जर्मन तभी सुख स्वच्छन्दता पूर्ण शिष्ट जीवन बिता सकेंगे जब जर्मनीसे नाजीवाद और सैनिकवादका उन्मूलन हो जायेगा और तभी राष्ट्र मण्डलमें उसको स्थान मिलेगा।

"क्षतिपूर्तिके प्रश्न पर भी हम लोगोंने विचार किया है। हम यह महसूस करते हैं कि मित्रराष्ट्रोंकी जो क्षति जर्मनीने की है उसकी पूर्ति उसे वस्तुओंके द्वारा अधिकसे अधिक मात्रामें करनी चाहिये। क्षति एवं उसकी वसूलीका रूप स्थिर करनेके लिये एक कमीशन नियुक्त होगा। यह कमीशन अपना काम मास्कोमें करेगा।" यह है मित्र नायकोंका निर्णय जर्मनीके सम्बन्धमें। इस निर्णयसे प्रतिहिंसाकी भावना टपक रही है। इसमें सुधार और जर्मनोंको सही रास्ते पर लानेकी भावना कहीं है ही नहीं। हम नहीं समझते कि इस उपायसे वे जर्मन जातिकी मनोवृत्ति बदल सकते हैं। जो व्यक्ति चाहता है कि दूसरेमें सुधार हो, उसकी मनोवृत्ति बदले, उसकी हिंसा और घृणा प्रेम और उदात्त भावनामें बदले, उसे चाहिये कि वह स्वयं पहले अपनेको सुधारे। जो समझदार है वह भी जब नासमझीसे काम लेता है तो नासमझ और नालायककी क्या बात है? मित्र नायकोंने



याल्टा सम्मेलन—चर्चिलको सिगार निकालते देख स्टालिन मुस्कुरा रहे हैं।



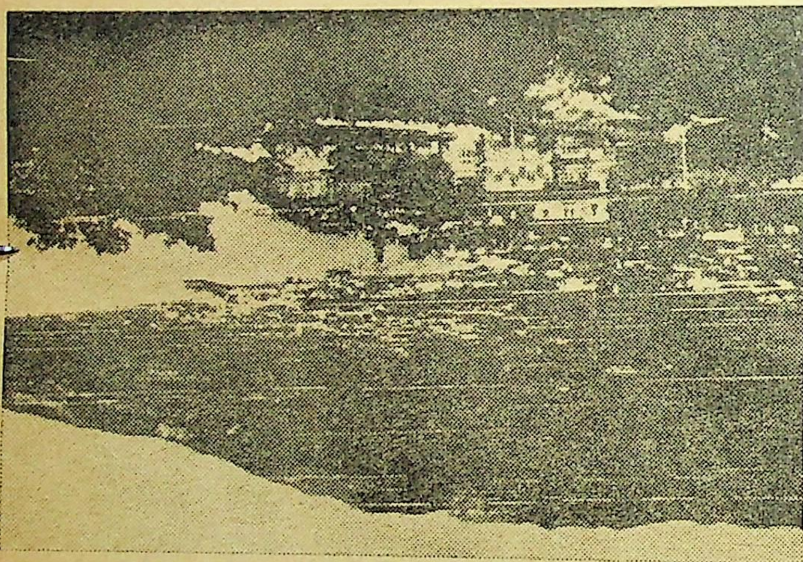
याल्टा सम्मेलन—याल्टाके समीप लिबादिया स्थित राजभवनका, जहां सम्मेलन हुआ, बाहरी दृश्य। १९११ में ग्रीष्म निवासके लिये रूसके जारनिकोलसने इसे बनवाया था

जर्मनीके सम्बन्धमें जो निर्णय किया है वह विश्व शान्तिको दूर ले जानेवाला हैं। बदलाकी नीतिको त्यागना पड़ेगा। राजनीतिको छोड़ कर मानवताका दृष्टिकोण बनाना होगा। अन्यथा वही होगा जिसका संकेत प्रो० आल्डस हक्सलीके शब्दोंमें ऊपर किया गया है। हिंसाके आधार पर खड़ी की गयी सभ्यता अधिकार और शासनकी तीव्र और प्रचण्ड भावना पैदा करती है और जहां राजनीतिक अधिकार-लोलुपताका बोलबाला होता है वहां समानता और स्वतन्त्रताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जर्मनीके संबंधमें मित्रराष्ट्रोंकी नीति कुछ ऐसी ही है। जर्मन राष्ट्रको स्वतन्त्रताकी गद्दीसे उतार कर गुलामी और असमानताकी शृंखलामें बांधा जा रहा है। किसका दोष किसके सर मढ़ा जा रहा है? जर्मन नेताओंके अपराधका बदला जनतासे लेनेका अर्थ तो यही है कि अपराध करनेवाले व्यक्तिके साथ उसके परिवारवालोंको भी दण्ड मिलना चाहिये, उन्होंने अपराध किया हो या न किया हो। और यही तो आज संसारमें हो रहा है। किन्तु हम इसे न्याय नहीं मान सकते।

अवश्य ही यह स्टालिनकी बिजय है, बहुतबड़ी विजय है। यूरोपके मामलेमें चर्चिल और रूजवेल्टको स्टालिनके सामने नतमस्तक होना पड़ा। युगोस्लाविया, पोलैंड, रूमानिया, फिनलैंड एवं अन्य बालकन तथा बाल्टिक राष्ट्रोंके सम्बन्धमें सिर्फ यूनानको छोड़, याल्टा कान्फ्रेंसमें स्टालिनकी विजय रही। मि० चर्चिल और रूजवेल्टको उनके निर्णय पर स्वीकृतिकी छाप बैठाते ही बन पड़ा। और न बैठाते तो करते भी क्या? जिस राष्ट्रने अपनी और अपने साथ यूरोपकी रक्षामें अपने ५३ लाख नौनिहालोंको कुरबान कर दिया हो उसके सामने, आपाततः, नतमस्तक होनेके सिवा दूसरा मार्ग नहीं था। हम स्टालिनकी इस विजयको राष्ट्रीयवादकी विजय मानते हैं। हम यह भी मानते हैं कि इस विजयके फलस्वरूप संसारके पीड़ित और शोषित भागको अन्याय और अनीतिके विरुद्ध खड़े होनेकी प्रेरणा मिलेगी। किन्तु हम याल्टा निर्णयको शान्तिका अग्रदूत नहीं मानते। हम इसे न्याय और नीतिकी विजय भी नही मानते। रूसके बलिदानने इतना काम तो अवश्य किया है कि जहां तक पूर्वाञ्चलका सम्बन्ध है वहां तक अब पूंजीवादियोंकी, फिल हाल, न चलेगी। लेकिन साम्राज्यवादीको उसी तरह अछूता छोड़ दिया गया है। ब्रिटेनकी साम्राज्यवाद सत्ता पर जरा भी चोट नहीं आयी। स्टालिन और रूजवेल्ट मिल कर भी चर्चिलका ढर्रा बदल नहीं सके। नीतिको अनीतिके साथ समझौता करना पड़ा है। इस समझौतेका भावी परिणाम क्या होगा, यह तो इतिहास ही बतायेगा। लेकिन हम इतना कह सकते हैं कि युद्धके वाद चर्चिलका ब्रिटेन, हारे हुए जुआरीकी तरह, अपने तमाम निहित स्वार्थों सहित साम्राज्यकी रक्षाके लिये, अपने तमाम दमनकारी और प्रतिक्रियाशील दावोंको फेंकेगा। याल्टा निर्णयने एक भयानक विस्फोटका सारा सामान और साधन जुटा दिया है। इस विस्फोटके पहले संसारमें शान्ति नहीं हो सकती। संसारमें डिक्टेटरशाही हुकूमत करेगी, वह चाहे समाजवादी

हो, साम्राज्यवादी हो या विशुद्ध पूंजीवादी हो और इतिहास हमें प्रो० जोडके शब्दोंमें यह बताता है:—"डिक्टेटरशाहियां, अपने स्वभावसे ही, उम्रकी वृद्धिके साथ साथ कम नहीं, अधिक उग्र होने लगती हैं। अपनी समालोचना पर कम नहीं अधिक अधीर हो उठती हैं, तिलमिला उठती हैं। संसारकी सम-सामयिक घटनाएं इस तथ्यका समर्थन करती हैं।"

डमबर्टन ओक्स सम्मेलनमें विश्वशान्ति-सुरक्षाके लिये समस्त विश्वको कतिपय प्रभाव क्षेत्रोंमें बांट कर एक केन्द्रीयकरणकी व्यवस्थाका सिद्धान्त ग्रहण किया गया है। याल्टा सम्मेलनने इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्धमें हम गत नवम्बरके अङ्कमें 'सङ्घर्षका बीज रोपा जा रहा है' शीर्षक लेखमें प्रकाश डाल चुके हैं। संसारकी ये



क्रीमियाके तटस्थ शहर याल्टाका दृश्य

तीनों महाशक्तियां आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे विश्वका बटवारा करने पर तुली हुई हैं। अन्य देशोंके प्रतिनिधियोंकी नहीं चलती। दुर्बल और शक्तिहीनकी सुनता भी कौन है? अतः इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि हिंसाके बल और आधार पर ये शक्तियां संसारमें अपनी आर्थिक और राजनीतिक तानाशाहियां कायम करेंगी। 'समाजके मनोविज्ञान' (Psychology of Society) नामक अपनी पुस्तकमें प्रो० जिन्सबर्गने कहा है:—"केन्द्रीयकरणकी व्यवस्थाके आधार पर स्थापित किसी सरकारका झुकाव कतिपय-जन-सञ्चालित शासन-तन्त्रकी ओर होना अनिवार्य है। यह कहा जाता है कि स्टेट आपसे आप सिकुड़ता सिकुड़ता अन्तमें निश्चिह्न हो जायेगा।.........किन्तु उस अवस्थामें एक नयी प्रबल और प्राधान्य रखनेवाली माइनारिटी (अल्प-जन समाज) का उद्भव निश्चित है।.........पुनर्सङ्गठनकी वही नीति सफल और सार्थक हो सकती है जिसका लक्ष्य विकेन्द्रीयकरण होगा।" अतः इस दृष्टिसे जब हम संसारमें शान्ति स्थापनके लिये बननेवाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाके स्वरूप और कार्योंकी कल्पना करते हैं तो कांप उठते हैं। इसका कारण है केन्द्रीयकरणके आधार पर संसारमें शान्ति स्थापनाका भार अपने कन्धोंपर, बतौर ट्रस्टी, उठानेवाले लोगोंका स्वरूप। तीनोंके भीतरी स्वरूपपर लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता और समानताका बाहरी आवरण है। भीतरसे तीनों एक दूसरेसे भिन्न हैं। एक संसारमें समष्टिवाद देखना चाहता है। दूसरा साम्राज्यवाद एवं पूंजीवादको पनपाये रखना चाहता है। इन दोनोंका जोड़ फासिस्टवाद निकलता है। तीसरा संसारमें अपना औद्योगिक साम्राज्यवाद रखना चाहता है। साधन तीनोंके एक हैं—हिंसा। इसीसे महात्मा गांधीने अभी उस दिन भावी विश्वकी गतिविधिका संकेत करते हुए कहा है:—

यदि भारतकी जैसी स्थिति आज है वैसी ही बनी रही तो जो विजय मित्रराष्ट्रोंको प्राप्त होगी वह नामके लिये ही विजय होगी। क्योंकि उस हालतमें उनको इस विजयके साथ साथ भारत और उसीकी जैसी दयनीय स्थितिमें पड़े हुए अन्य राष्ट्र भी अपने परोंके नीचे खूनसे लथपथ पड़े मिलेंगे। इस तरहकी विजय, वर्तमान युद्धके बन्द होनेके बाद, निकट भविष्यमें ही, सम्भवतः उससे भी अधिक रक्त बहानेवाले युद्धकी ओर विश्वको ले जायेगी। क्योंकि, जैसा कि अन्यत्र मैं कह चुका हूं, हिन्दुस्तानके मूल्य पर प्राप्त की गयी विजयका अर्थ होगा फासिस्टवाद, नाजीवाद और जापानी सैनिकवादके चितावशेषपर एक नये राक्षसका जन्म, जो प्रत्येक वस्तुको देखते ही खाने दौड़ेगा और इस प्रयत्नमें उसे ही दूसरे निगल जायेंगे। जो बच जायेगा वह क्या होगा, मैं नहीं जानता।

गांधीजीका सङ्केत स्पष्ट है। टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं है। उक्त वक्तव्य समाप्त करते हुए उन्होंने कहा है कि यह वक्तव्य लिखते हुए मुझे आनन्द नहीं हुआ। कहनेको बहुत कुछ है, किन्तु फिल हाल इससे अधिक न कहूंगा।

भावीशान्तिके स्वरूपके सम्बन्धमें गांधीजीके वक्तव्यके बाद कुछ कहने और लिखनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। याल्टा सम्मेलनमें एटलाण्टिक चार्टर,—धोखेकी टट्टी,—जिसके डूबने उतरानेकी कितनी ही खबरें, कितनी ही बार, कितने ही प्रकारसे सामने आ चुकी हैं,—फिर सामने लाकर खड़ा किया गया है। इसके सम्बन्धमें कुछ न कहना ही अच्छा है। धोखेकी टट्टी, हमारी रायमें, इसका उपयुक्त विशेषण है। संसारके सामने सर्व प्रथम यह स्वतन्त्रताके घोषणा-पत्रके रूपमें आया। इसकी स्याही सूखने भी न पायी थी कि मि० चर्चिलने इसका रूप बदल दिया। उन्होंने कहा, भारतपर यह घोषणा लागू नहीं होती। बादमें एशिया और अफ्रीका भी इसके बाहर आ गये। यूरोपके केवल आक्रान्त देशों तक ही इसकी गति रह गयी। बीचमें सुननेमें आया कि इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। अब मि० चर्चिलके कथनानुसार अटलाण्टिक चार्टर न कोई घोषणा है, न कोई सिद्धान्त है और न कोई नियम या विधान है। वह तो पथ-प्रदर्शक (गाइड) मात्र है। जिसे गाइडकी जरूरत हो वह उसकी सहायता ले सकता है। ब्रिटिश सरकार और उसके स्वयम्भू विधाता मि० चर्चिलको गाइडकी क्या आवश्यकता? उनका ज्ञान इतना सीमित नहीं है कि संसार-चक्र चलानेके लिये उनको किसीके पथप्रदर्शनकी आवश्यकता हो।

तो, याल्टा सम्मेलनके सम्बन्धमें हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि घृणा और प्रतिहिंसा तथा निज स्वार्थकी भावना से प्रेरित होकर जो निर्णय किये गये हैं वे स्थायी नहीं रह सकते। संसार, आजका संसार, जिसके नेता चर्चिल, स्टालिन और रूजवेल्ट हैं, शान्तिके मार्गपर नहीं चल रहा। शान्तिका मार्ग याल्टा-विधानसे भिन्न है। यदि संसार सचमुच शान्ति चाहता है, यदि वस्तुतः लोकतन्त्रके आधार पर समष्टिवादकी स्थापना देखना चाहता है तो घृणा और हिंसाके मार्गको छोड़ना पड़ेगा। भारतीय ऋषियोंने जो शान्तिका मार्ग बताया है और आज गांधीजी जिस मार्गपर चलनेको संसारसे कह रहे हैं उसी सत्य, अहिंसा और प्रेमके मार्गपर चलकर दुनिया शांतिका दर्शन कर सकती है। गांधीजी कहते हैं कि हिंसा, उसका स्वरूप कुछ भी हो, स्थायी शांति और सुदृढ़ सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रताके आधार पर समाजका पुनर्निर्माण कर सकनेमें असफल होगी हिंसासे प्राप्त की गयी वस्तुकी रक्षाके लिये ततोधिक हिंसा से काम लेना पड़ेगा। प्रो० लास्कीके शब्दोंमें "घृणा हमको वही बनाती है जिसके लिये हम दूसरोंकी निन्दा करते हैं। शक्ति, इस आधुनिक संसारमें, यदि अपना स्थायित्व चाहती है तो उसे सत्य, न्याय और नीतिका परिधान धारण करना पड़ेगा। यूरोपका आध्यात्मिक जीवन, सीजर और नेपोलियनका नहीं ईसाका है। पूर्वकी सभ्यता चङ्गेज खां और अकबरसे अधिक बुद्ध द्वारा प्रभावित है। हमें इस सत्यको हृदयङ्गम करना चाहिये, यदि हम जीवित रहना चाहते हैं। घृणाको प्रेम द्वारा, बुराईको भलाई द्वारा जीतना चाहिये। नीचता और असाधुता अपने समान सन्तान ही पैदा कर सकती है।"

संसारको आज यदि कोई देश सच्ची शान्तिकी ओर ले जा सकता है तो वह भारत ही है। किन्तु उसके द्वारा यह कार्य साधन तभी हो सकता है जब भारत स्वतन्त्र हो। अतः संसारमें शान्ति स्थापनाकी कसौटी भारत है जब तक भारत स्वतन्त्र न होगा तब तक संसारमें याल्टा सम्मेलन होते रहेंगे।



कवि और काव्य

प्रोफेसर सद्गुरु शरण अवस्थी एम० ए०

कवि स्रष्टाकी सबसे कोमल सृष्टि है। अपनी होड़ा-होड़ीमें विधाताने उसे बनाया है। उसके मस्तेपर सृजनकी रेखाएं पड़ी हैं। ब्रह्माका विस्तार ब्रह्माण्ड है, माया उसकी कला है। कविकी कला उसकी माया है। ब्रह्माकी माया समझना दार्शनिकों का काम है और कविकी कलाको परखना आलोचकों का। साहित्यके आरम्भसे कलाको परखने वाले हुए हैं। उन्होंने कलाको परखा है और अपना-अपना निर्णय दिया है, पर बहुतसे प्रश्न अभी तक ज्यों-के-त्यों (?) प्रश्न-विरामकी भांति तने खड़े हैं। सुलझे हुए प्रश्नोंके हल मिले, पर उलझाव अधिक हो गया। साहित्य मर्मज्ञोंको यह प्रश्न आरम्भसे क्षुब्ध किये हैं। परिभाषायें टीका करती हैं, व्याख्यायें अनुवाद, पर उत्तरका सूत्र सुरसाके मुखकी भांति बढ़ता ही जाता है।

साधारण प्रकारसे केवल यह कहा जा सकता है कि संसारकी जितनी महान् कृतियां हैं उनमें बड़ा भारी साम्य है। सब कृतियोंमें अधिक-से-अधिक संख्या पर प्रभाव डालनेकी क्षमता है। उनकी सार्वभौमिकता उनका बड़प्पन है। उनके श्रद्धालुओंकी गणना उनकी सफलता है। पर यह गुण उन कलाकारोंको कैसे मिला? संसारमें बुद्धियों में चढ़ाव-उतार है, हृदयके स्वरूपोंमें हलका और गहरापन है, कलाकारोंके अनुभवोंमें आकाश पातालका अन्तर है, फिर भी कलाकी ऊंची कृति सबको एक तरहसे रुचे, यह बड़ी विचित्र बात है। जन साधारण और वर्ग विशिष्टकी रुचियोंमें बहुधा इतना अन्तर होता है कि जिस कृतिको पढ़े-लिखे अधिक पसन्द करते हैं वह जनसाधारणकी पहुंचसे परे होती है और जिसे जनसाधारण अपनाते हैं उसे शिक्षित समाज छोटी, नगण्य, अश्लील, योंही सी, अति प्राकृत और न जाने क्या-क्या कहता है।

सफल कृतिकार एक पैनी दृष्टि रखता है। वर्ग रुचि और जन रुचि एक रेखा पर मिलती हैं। उस रेखाको वह ताड़ लेता है। अपना समस्त कला-भवन उसी पतली मेंड़पर बनाता है। वह न जाने कैसे जान लेता है कि वहां जन-साधारण और शिक्षित समाज मिलते हैं। संसारमें बहुतसे कलाकार एक वर्गीय बन कर रह रहे हैं। यदि 'आल्हा' अथवा 'राधेश्यामकी रामायण' को जनसाधारण पसन्द करता है तो शिक्षितोंका उनसे परितोष नहीं और यदि शिक्षितोंकी महीन रुचि और बुद्धिकी रङ्गीनियोंको 'कामायनी' और 'रामचन्द्रिका' में विश्राम मिलता है तो जन-साधारण उनसे बिलकुल ही लाभ नहीं उठा सकते। कारण स्पष्ट है। एकवर्गीय कलाकार सार्वभौमिक सांस्कृतिक-महत्व से ओत-प्रोत नहीं होता। किसी देश या किसी राष्ट्रका एक सांस्कृतिक इतिहास होता है, एक अक्षुण्ण परम्परा होती है, एक धार्मिक, राजनीतिक और न जाने किस-किस प्रकारका वातावरण होता है। उस वातावरणमें जनसाधारण और शिक्षित सभी सांस लेते हैं। अपने आस-पासकी समस्तता और संकुलताके बीच ही प्राणीका अस्तित्व है। बुद्धिमें धनिक, धनमें धनिक और बुद्धिमें दरिद्र और धनमें दरिद्र, सब, देशका पानी पीते हैं, देशका अन्न खाते हैं, देशके समस्त प्राकृतिक वैभवसे लाभ उठाते हैं। निसर्गकी उन्मुक्त बिखेरको जी भर कर पीते हैं, अतएव व्यक्तियोंके इस वातावरण मण्डलके साथ रमण करनेकी और तन्मय होनेकी जिस कलाकारमें क्षमता है, उसीके भीतर ऐसे चित्र, ऐसी मूर्तियां, ऐसे स्वरूप, ऐसे भाव, ऐसे घात-प्रतिघात और ऐसे अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट हो सकते हैं, जिनमें सार्वभौमिकता और जन-सत्तात्मकता है।

कविकी कृतिके उपादान शब्द हुआ करते हैं। शब्दोंमें भी एक राष्ट्रीयता और जातीयता होती है। प्रत्येक देशके शब्द अपना कुछ केवलत्व रखते हैं। उनमें एक इतिहास होता है, सांस्कृतिक विकासकी परम्परा होती है। दैनिक प्रयोगके इस घिसे हुए शब्द 'स्वर्ग' पर कितना बोझिल दार्शनिकताका भार है। अपढ़ 'रेडियो अनाउन्सर' का यह वाक्य 'वह सुरगवासी हो गया है' भारतीय धर्मकी कितनी बड़ी व्याख्या करता है। इतर लोकमें इह लोकसे जानेके बाद के रूप और श्वांसोंके उतार-चढ़ाव जैसे आवागमनकी व्यञ्जनाका भार समेटनेके साथ साथ ही भारतीय सांस्कृतिक विकास पर भी प्रकाश-निक्षेप होता है। 'कुशल' शब्दका अर्थ घिसते-घिसते विस्तृत भले ही हो गया हो, परन्तु यह उस सुनहले युगका इतिहास अपने तीन अक्षरोंकी लघु सीमामें बांधे हैं, जब चार आश्रमोंमें जीवन विभक्त था, और

(शेष ८९ वें पृष्ठ पर देखिये)

अर्थ-व्यर्थ

श्री हंसराज 'रहबर'

प्यारे शिशु! तुम्हारा पत्र मिला। चार सालके बाद पत्र पाकर उस वक्तकी स्मृति सजीव हो उठी जब हम कालेजमें एक साथ पढ़ते थे। सामाजिक बुराइयों, गुलामी की लानतों और समाजवाद पर गम्भीरतासे मनन करते थे और सोचा करते थे दुनियाको नये सांचेमें ढालनेकी तजबीजें। लेकिन कालेजसे निकलते ही हम जीवनके ऐसे भिन्न-भिन्न मार्गों पर चल खड़े हुए जो प्रति क्षण एक दूसरेसे दूर-दूर बहुत दूर रहते चले गये। तुमने भाग निकलनेका मार्ग पकड़ा, जीवन सङ्घर्षसे मुंह मोड़ लिया और एक कोनेमें सिकुड़ कर बैठ गये। अब तुम लिखते हो कि तुम्हें शान्ति प्राप्त है और तुम दूसरोंको भी आनन्द बांटते हो। मुझे तुम्हारे कहने पर विश्वास करना पड़ता है। शायद यह शिशुपालसे ब्रह्मचारी रामानन्द बन जानेका चमत्कार हो। मगर तुमने यह कैसे कयास कर लिया कि मुझे भी शान्ति :प्राप्त होगी, मेरा जीवन इत्मीनानसे गुजरता होगा। मेरा शरीर-मेरी आत्मा और मेरे विचार जिस संसारके तनिक भी अनुकूल नहीं उस संसारमें रहकर मुझे शांति कैसे प्राप्त हो सकती है। मैं किस प्रकार सन्तुष्ट रह सकता हूं? अभी जेलसे आये चार महीने भी नहीं बीते, जी चाहता है कि फिर जेल चला जाऊं। वहां अच्छी या बुरी जैसे भी गुजरती है, यह एहसास तो रहता है कि मैं किसी उच्च आदर्शके लिये जी रहा हूँ। अब जेलसे बाहर आकर इसमें सन्देह नहीं कि मैं अधिक खुले वातावरणमें चल फिर सकता हूं। लेकिन मनमें स्वतन्त्रताका भाव तनिक भी सजग नहीं होता, बल्कि मस्तिष्क पर एक ऐसे अनुशासनका दबाव महसूस करता हूं जो मुझे पीस डालना चाहता है और मेरी जीवन-शक्तियोंको कुचल देना चाहता है। मुझे भोजन मात्रके लिये वह काम करना पड़ता है जिससे मुझे अत्यन्त घृणा है, और फिर मेरे परिश्रमका दसवां हिस्सा भी मुआवजा नहीं मिलता। मैं तुम्हें अपने काम और स्थितिकी एक झलक दिखा दूं फिर तुम आप समझ जाओगे कि मुझे कितनी शान्ति प्राप्त है।

चार पांच दिनकी बात है, महाशय रामलाल सेठी सड़क पर मिल गये। वे जानते थे कि मैं अभी-अभी जेलसे आया हूं, बेकार हूं और मुझे पैसेकी सख्त जरूरत है। वे ऐसे मौकों पर मेरे जैसे लोगोंकी सहायता करनेमें गर्व अनुभव करते हैं। अगर कोई सीधे ढङ्गसे सहायता लेना पसन्द नहीं करता तो वे एक पंथ दो काजवाला मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। अर्थात वे खुद लाभ भी उठावें, दूसरेको अपनी उदारताके लिये कृतज्ञ भी बना लें और उसके स्वाभिमानको सुरक्षित भी रहने दें। मेरे मामलेमें भी उन्होंने इसी मार्गका अनुसरण किया और वे मुस्करा कर बोले :—

"सुनाइये क्या हाल है? कभी मिलते ही नहीं, मैं तो चाहता था कि आपसे कुछ काम लिया जाय।"

"महाशयजी, आपकी दयासे जी रहा हूं। कौन-सा काम आ पड़ा मुझ गरीबसे, मैं तो हर वक्त सेवा के लिये तैयार हूं।"

"मुझे कुछ पुस्तकोंका अनुवाद कराना है। मैं समझता हूं कि आप कर सकेंगे।"

"क्यों नहीं, बड़े शौक से।"

"तो फिर जिस समय आपको फुर्सत हो गरीबखानापर पधारें।"

मैं महाशयजीका मतलब खूब समझता था। लेकिन सोचा कि जब मजदूरी ही करनी है तो फिर असमंजस किस बात का। वे इसे सहायता समझते हैं तो समझते रहें। मैं सैरसे लौटा और दो एक घण्टे बाद उनके मकान पर गया। महाशयजी एक ऊंचे-चौड़े तख्तपर, जिसकी सजावट सुरुचिकी साक्षी दे रहीथी, मसनद लगाये बिराजमान थे। उनके सामने एक तकिये पर कुहनी रखे और सर हाथके सहारे ऊपर उठाये सेठ शिवगोपाल लेटे हुए थे। तुम जानते हो कि वे लोहेके बहुत बड़े सौदागर हैं और युद्धके कारण लोहा सोना बन गया है। इस समय उन्होंने सरकारी ठीकोंमें इतना कमाया है कि अगर धनका शुमार करने लगें तो हिसाब करते उम्र गुजर जाये और धनका ओर-छोर न मिले। वे जेलमें हमारे साथ थे और युद्धमें गवर्नमेंटकी सहायताके विरुद्ध। हम दो महीनेमें केवल एक पत्र लिख सकते थे, लेकिन सेठजी को कारोबारके लिये जब चाहें हिदायतें भेजनेकी इजाजत मिली हुई थी—लाखों रुपये सालाना टैक्स जो देते हैं सरकार को। वहां हम काफी समय तक एक ही कैम्पमें इकट्ठे रहते रहे पर अब उन्होंने

मेरी ओर देखा तक नहीं। सिर्फ महाशयजीने धीरेसे सर हिला कर मेरे अभिवादनका उत्तर दिया और एक कुर्सीपर बैठनेका संकेत कर सेठजीसे बातें करनेमें लगे रहे। महाशय जी के सामने चांदीकी एक सुन्दर प्लेट धरी थी जिसमें गर्मागर्म कचोरियां रखी थीं। वे बातें करते करते बीच-बीच में कचोरीका ग्रास तोड़ते थे तो उनकी साधु प्रकृतिका बोध होता था और इसी साधुताके कारण तो वे देवता समझे जाते हैं। सेठजी एक नया बैङ्क खोलनेकी सोच रहे थे। इसी तजबीज पर परामर्श हो रहा था, न जाने यह बार्तालाप कितनी देरसे चल रहा था लेकिन जब योजना पर सलाह मशविरा समाप्त हुआ तो मुझे इन्तजार करते एक घण्टेसे अधिक समय बीत चुका था। मैंने उस समय स्वास्ति की सांस ली जब सेठजीने करवट बदलते हुए कहा—'अच्छा अब मैं चलता हूं।' वे उठ खड़े हुए और तनिक चौंक कर बोले—"हां, एक बात तो मैं भूल ही गया और शायद इसकी जरूरत भी न थी। डायरेक्टरेटमें आपका नाम तो जायेगा ही।"

"आप जैसा मुनासिब समझें, मुझे तो कोई एतराज नहीं।" महाशयजी ने उदासीनता प्रकट की और व्यंग्यपूर्ण स्वरमें बोले-"आप लोग देते दिलाते तो कुछ हैं नहीं।' महाशयजीने मेरी ओर जिस दृष्टिसे देखा वह उनके त्यागमूर्ति होनेका अचूक प्रमाण थी। लेकिन सेठजी कह रहे थे—'वाह महाशय जी चांदी किसकी और गहना किसका।' वे अपनी इस वाक्पटुता पर आप ही आप हंस पड़े और महाशयजी की ओर हाथ बढ़ाया तो उन्होंने गर्मजोशीसे थाम लिया। अब वे दोनों हंस रहे थे और मैं सेठजीके वे दांत देख रहा था जो सबके सब बनावटी थे।

सेठजी बाहर गये और कुछेक मिनटके बाद उनकी मोटर ने स्टार्ट लिया और हार्न बजा, जिसे सुन महाशयजी आत्मविस्मृति की उस दशासे चौंके जो हंसीके बाद उनपर आप ही आप आ गयी थी। अब वे मेरी तरफ मुखातिब हुए—"फरमाइये साहेब, क्या हुक्म है?"

यह नम्रता और विनय देख मेरा जी जल सा गया, और मुझे अपने आप पर क्रोध आया। पर जब्त करके जवाब दिया—"महाशयजी हुक्म क्या है, आपने किताबें देनेको कहा था।"

"किताबें!" महाशय जीने सर खुजलाया, "कैसी किताबें! मुझे तो कुछ याद नहीं पड़ता।"

"आपने कहा था, कुछ किताबोंका अनुवाद कराना है।"

"अनुवाद?"

"जी हां।"

"अच्छा! तो आप अनुवादके लिये काम चाहते हैं?" महाशयजी ने ठुड्डी पकड़ गम्भीर मुद्रा धारण कर ली, "ठीक, ठीक—बहुत ठीक।" उन्होंने आप ही आप कहा।

"क्या मैं भीतर आ सकती हूं?" किसीने दहलीजसे कोमल और मधुर स्वरमें पूछा। ये महिलाश्रमकी मुख्याध्यापिका रमावती थीं। उसे देखते ही महाशयजी आदरके लिये अपनी जगहसे उठते हुएसे बोले "क्यों नहीं, बड़े शौकसे।"

महाशयजी की जुबानसे ये शब्द निकलनेसे पहले ही वे भीतर दाखिल हो चुकी थीं। उनके भरे हुए सुन्दर चेहरेको बड़ी-बड़ी सियाह आंखें गौरवान्वित कर रही थीं। उनको देख यों लगता था कि प्रत्येक अङ्गमें जीवन मचल रहा है। वे महाशयजी की मसनदके निकट आ खड़ी हुईं और बिना किसी भूमिकाके बोलीं:—"इस महीनेकी १७ तारीखको हमारे आश्रमका वार्षिकोत्सव है। जिसमें लड़कियोंके हाथकी बनी हुई वस्तुओंका प्रदर्शन होगा और सफल शिल्पिनियोंको पुरस्कार बटेंगे। मैं चाहती हूं कि आप भी पधारें।"

"आप जानती तो हैं कि सरकारने मेरी जुबानबन्दी कर रखी है और मैं किसी मीटिंग और जलसे आदिमें शामिल नहीं हो सकता।"

"लेकिन उस दिन रेवेन्यू मिनिस्टरको जो चाय पार्टी दी गयी थी उसमें तो आप शामिल हुए थे।"

"वह तो एक सोशल फंकशन था।" महावशजा मुस्कराये।

"और यह भी सोशल फंकशन है।" उन्होंने तुरन्त कहा, "आपको आना पड़ेगा, मैं कहे देती हूं।" उनकी जुबान कह रही थी और नेत्र सहमत करा रहेथे। महाशयजी पराजित हुएसे दीख पड़े और बोले—"बहुत अच्छा हुजूर, और फरमाइये।" "धन्यवाद, और कुछ नहीं, अब मैं जाती हूं।" और वे चल पड़ीं।

"सुनिये तो सही।" महाशयजी की आवाजने उनका पीछा किया और वह ठहर गयी, "दो चार मिनट बैठिये और बताइये आपका आश्रम कैसा चल रहा है।"

"क्षमा कीजिये, मुझे जरा जल्दी है।" उन्होंने बड़ी

खड़ी खड़ी कलाईसे बंधी घड़ी पर दृष्टि डालते और चलते हुए कहा—"आप जलसामें पधार रहे हैं। आश्रमकी हालत आप अपनी आंखोंसे देख लेंगे।"

अन्तिम वाक्य दरवाजेसे बाहर जाकर समाप्त हुआ। महाशयजी को उसके इस प्रकार चले जानेसे कुछ दुख हुआ। क्योंकि वे कुछेक मिनट सूनी-सूनी आंखों उधर ही देखते रहे और फिर मेरी ओर देख कर बोले—"कोई टैकनीकल—मेरा मतलब है विज्ञानकी पुस्तक दे दूं।"

"जैसा आप चाहें।"

"तो आप कल किसी समय पधारें, मैं पुस्तक निकाल रखूंगा।"

जब मैं लौट कर घर आया तो १० बज चुके थे। अब अखबार पढ़ने जाना व्यर्थ था क्योंकि पुस्तकालय बन्द हो जानेका समय हो चला था। छबड़ हाकरके हाथमें अखबार देखा था। प्रथम पृष्ठपर यूनानके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें दिया गया चर्चिलका भाषण छपा था। जो लोग नाजी दरिन्दोंके विरुद्ध वीरतासे लड़ते रहे थे और अब पुरानी सामन्तशाही सरकारको स्वीकार करनेसे इनकार करते थे, चर्चिलने उन्हीं देशभक्त गुरिल्लोंको नाजी, विद्रोहीऔर डाकू बताया था और सगर्व कहा था कि हम उन्हें कुचल कर रख देंगे। क्योंकि निहत्थे नगरवासियों और मासूम बच्चोंको लुटेरोंके रहम पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह शब्द मुझे अत्यन्त खटक रहे थे क्योंकि मुझे भी तो बागी कह कर ही तीन साल जेलमें नजर बन्द रखा गया था।

जब मैं बहुत उदास और अकेला-अकेला महसूस करता हूं तो अपने दो मञ्जिले कमरेके सामने ऊंची मुंडेरसे लगकर खड़ा हो जाता हूं। नीचे चौक है जहां तीन तरफसे सड़कें आकर मिलती हैं। इन पर हर समय टांगें, मुसाफिर और मवेशी गुजरते रहते हैं। मैं न जाने क्यों अपने विचारोंमें व्यस्त इन्हें देखता हूं। वैसे सामने वृक्ष भी काफी हैं—पीपलके वृक्ष जिनपर न कभी पतझड़ आती है और न बसंत। जब देखो इसी प्रकार खड़े दीख पड़ते हैं, मेरे अपने निरानन्द जीवनकी तरह बेरस और बेरङ्ग। इसलिये मै नीचेके चल-चित्र देखना अधिक पसन्द करता हूं। उनमें और कुछ नहीं हरकत तो रहती है और इस समय तो असाधारण चहल पहल थी। आज बाबा फरीदका मेला था। मेरे मकानसे चार-पांच गजके फासले पर एक बड़ा चबूतरा बना हुआ है जिसे बाबा फरीदका टिब्बा कहते हैं। इस पर अकसर कुत्ते पड़े धूप सेका करते हैं। पर आज उसे खूब सजाया गया था। सब्ज रङ्गका एक साफ सुथरा कपड़ा बिछा था और इधर-उधर फूल बिखरे थे। श्रद्धालु जन चढ़ावे चढ़ा रहे थे और एक लम्बी दाढ़ी वाले पीर मुरशद वहांसे मिट्टीकी एक चुटकी उठा-उठा कर उन्हें देते जाते थे और वे इसे बड़ी सावधानीसे पल्ले बांध लेते थे। चौकसे लेकर कड़े तकका छोटा-सा रास्ता यात्रियोंसे खचाखच भरा था। दीवारके साथ दोनों ओर खोमचा वाले बैठे थे। उनके तरह तरहके बोल भिखारियोंकी तोता-रटन्तसे मिल कर एक अजीब समा बांध रहे थे। मुहल्ले भरके बच्चे इन खोमचोंके इर्द गिर्द जमा थे और उनके लालसायुक्त नेत्रोंसे भिखारियोंसे भी अधिक भूख बरस रही थी। एक आदमीने फल वालेसे केला खरीदा और छिल्का उतारकर सड़क पर फेंक दिया। एक खुले और रूखे बालों वाली लड़कीने लपक कर उसे उठा लिया। वह बेसब्रीसे उसे चबाने लगी और बाकी सब बच्चे हसरत भरी निगाहोंसे उसकी ओर देखते रह गये। उनके पास ही एक आवारा कुत्ता किसीका फेंका हुआ दोना चाट रहा था।

जेलमें रहते हुए मैं सोचा करता था कि इस अर्सामें दुनिया काफी बदल गयी होगी, युद्धकालका विनाश और रक्तपात जहां जिन्दगीसे सुन्दरता और कला छीन लेता है वहां इसे बदलने पर भी मजबूर करता है। लेकिन मैं देख रहा था कि विडम्बना, अज्ञान और दारिद्र्य तनिक भी कम नहीं हुए, बल्कि बढ़ गये हों तो आश्चर्य नहीं। जो लोग इस संसारको बदलनेकी इच्छा रखते हैं उन्हें बागी बताया जाता है और बहुतोंमें तो बदलनेकी इच्छा ही नहीं क्योंकि उनकी मनोकामनायें तो मिट्टीकी एक चुटकीसे पूर्ण हो जाती हैं। फिर इस युद्धसे लाभ क्या? यही न कि जीवनकी आवश्यक वस्तुएं इतनी महंगी हो गयीं कि निर्धन वर्गके लिये उनका खरीदना असम्भव हो गया। इसके सिवा संसार में कोई परिवर्तन नहीं आया। सब कुछ उसी तरह चल रहा है, बल्कि इस भयानक मंहगाईने मनुष्यको और भी कमीना बना दिया है।

मैं दूसरे दिन फिर महाशयजीके पास गया। वे एक आदमीसे बातें कर रहे थे जो अभी अभी जेलसे रिहा होकर आया था। उन्होंने उससे जेलके हालात दरियाफ्त किये। उन लोगोंकी एक लिस्ट बनायी जो अभी तक जेलमें मौजूद थे। फिर इस लिस्ट पर स्नेह-सिक्त दृष्टि डाली और उसे अलग रखते हुए कहा—"यह लोग तो अभी जेलसे नहीं आयेंगे, मुझे ही उनके पास जाना पड़ेगा। मैंने गवर्नमेंट-

को लिख दिया है कि मुझपरसे सब पाबन्दियां उठा ली जायें वरना मुझे उन्हें तोड़ देनेका अधिकार होगा।"

चार महीने पहले जब मैं रिहा होकर आया था तब भी मैंने उनसे यही शब्द सुने थे और दो महीने पहले मेरे एक साथीसे भी यही शब्द कहे गये थे। शायद हरेक रिहा होने वालेसे महाशयजीको ये शब्द कहनेकी जरूरत महसूस होती थी। क्योंकि जब दूसरे लोग जेलमें हों तो वे, उनके नेता, किस तरह बाहर रह सकते थे। बात वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी कि जो बार बार उन्हें ये शब्द कहनेको मजबूर करती थी। वैसे वे हमारे साथ ही गिरफ्तार हुए थे। लेकिन एक साल बाद ही समाचार पत्रोंमें उनकी बीमारीकी चर्चा इतने जोर शोरसे हुई कि हुकूमतने उन्हें पैरोल पर रिहा कर दिया। पैरोल मिलने के छः महीने पश्चात् उन्होंने आपरेशन कराया तो भीतरसे खतरनाक पथरी निकली। उसकी लम्बाई चौड़ाई उस समय अखबारोंमें छपी थी, लेकिन मुझे अब याद नहीं। खैर कहनेका मतलब यह है कि आपरेशन इतना जबर्दस्त था कि निर्बलता अब तक चली आती थी और हुकूमत उनका पैरोल बढ़ाती जा रही थी और अब तो उन्हें यहां तक छूट मिल गयी थी कि वे जब चाहें जेल जा सकते हैं और जितना समय चाहें बाहर रहें। अब महाशयजी इसी असमञ्जसमें पड़े हुए थे कि वे जेल:जायें या बाहर रहें। वैसे तो जेल जानेसे वे घबराते नहीं थे क्योंकि उपर्लिखित वाक्य कहनेके पश्चात उन्होंने हमें जो घटनायें सुनायीं उनसे सिद्ध होता था कि सन् १९२१ और ३०।३२ में कैद काटना बहुत ही कठिन था। उन्होंने उस समय भी लम्बी लम्बी सजाएं हंसते हंसते शानसे काटी थीं और उसके मुकाबिले में आज कलकी जेल तो मामूली बात है।

यह घटनाएं सुनाते सुनाते डेढ़ घण्टा बीत गया तब महाशयजीको ख्याल आया कि उन्हें कहीं जाना है, इसलिये जेल से आनेवाले सज्जनको विदा किया और शोफरको बुला कर मोटर तैयार करनेका आदेश दिया। मेरा कलेजा धक-धक करने लगा। सोचा कि आज फिर असफल लौटना पड़ेगा। लेकिन अतीतकी प्रतिभाशाली घटनाएं सुनानेके पश्चात् महाशयजीका हृदय गौरवसे भर गया था और गौरवसे मनुष्यकी आत्मामें महानता आ जाती है। उन्होंने जल्दीके बावजूद अल्मारी खोली और इधर-उधर देखकर एक भारी पुस्तक "विटामिन" मेरे सामने रख दी।

"कुछ पैसे ?" मैंने पुस्तक उठाते हुए कहा।

महानताके क्षण बीत चुके थे। महाशयजीने मेरी ओर इस प्रकार देखा कि मुझे अपनी झुकी हुई निगाहें और झुका लेनी पड़ीं। इसके बाद चन्द मिनटका लम्बा समय चन्द सालकी तरह बीता। महाशयजीके सेक्रेटरीने मुझे १०) दिये और मैं बोझल दिल लेकर वहांसे चला आया।

अब जब मैं इस पुस्तकका अनुवाद करने बैठा हूं तो मन पर एक असह्य बोझ महसूस करता हूं। शायद इसलिये कि महाशयजीकी वे निगाहें याद आ जाती हैं अथवा इसलिये कि कठिन परिभाषाओंके लिये बराबर डिक्शनरी देखनी पड़ती है। पहले-पहल चावलका वर्णन है। लेखकने चावलको तीन भागोंमें—(१) आवरण (२) अंकुर और (३) स्टार्च में रखा है और विस्तार पूर्वक बताया है कि किस भागमें कितना विटामिन रहता है। इसके बाद यह भी बताया है कि यदि चावलको हाथकी अपेक्षा मशीनसे छड़ा जाय तो विटामिन 'बी' नष्ट हो जाते हैं और पचास प्रतिशत भोजनतत्व भी नष्ट हो जाता है।

मैं लिखते लिखते थक जाता हूं और सोचने लगता हूं कि महाशयजीको पुस्तकोंकी फर्म है। कितना बड़ा व्यापार है। जेल जानेसे पहले मैंने टालस्टायकी एक पुस्तकका अनुवाद कर दिया था। उसका अब तीसरा संस्करण छपा है और मुझे सिर्फ बीस रुपये मिले थे। लेकिन मुनाफा?—मसनद, कचौरी और मोटर--दिमागमें न जाने क्या कुछ घूमने लगता है,—फिर यह क्या बकवास है ? हाथसे कुटा चावल मशीनसे छड़े चावलसे कहीं अच्छा होता है। क्या बङ्गालमें लाखों मनुष्य इसलिये मर गये कि उन्होंने चावलको हाथसे कूटनेकी अपेक्षा मशीनसे छड़कर खाया था और उनका जीवनतत्व नष्ट हो गया था, अथवा उन्हें चावल सिरेसे मिला ही नहीं—और क्यों ?—मेरे लिये अनुवाद करना कठिन हो जाता है और मैं कोई ऐसी चीज लिखना चाहता हूं जिसे पढ़कर लोग चावल खानेका गुण सीखनेके बजाय चावल प्राप्त करना सीख जायें। इस व्यवस्थाको, जो ब्लैक मार्केटको जन्म देती है, समाप्त कर दें।

यह विचार, वह केलेका छिलका और दो तीन अन्य घटनाओंकी कड़ियां मिलकर मस्तिष्कमें एक कहानीकी रूप-रेखा अङ्कित हो गयी। मैं चाहता था कि इसे लिख दूं। पर उसी समय पोस्टमैन आया और एक पत्र देकर चला गया। यह पत्र एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाकी ओरसे था। जिसके ताजा अङ्कमें मेरी एक कहानी छपी थी। सम्पादकने लिखा था—"मुझे आपकी यह कहानी इतनी प्रसन्द है कि मैं इसे प्रथम श्रेणीकी कहानियोंमें शुमार करता हूं। आपने

समाजके पाखण्डपर अच्छी चोट की है। लेकिन पारिश्रमिक की हमारे यहां व्यवस्था नहीं। आप जानते हैं कि हमारे देशमें मासिक पत्रोंका हाल पतला है। प्रत्येक मास घाटा रहता है। साहित्यकी सेवा समझकर सहन कर रहे हैं। हम पाखण्ड पर चोट होते देख प्रसन्न भी होते हैं और पाखण्डका पोषण भी किये जाते हैं। दुनियामें लूट खसोटके अतिरिक्त कुछ भी देख नहीं पड़ता। किसीको कुछ प्रयोजन नहीं कि मैं क्या बनना चाहता हूं। सब यह देखते हैं कि मुझसे कितना लाभ उठाया जा सकता है। तुम मेरे इन शब्दोंको समझ भी नहीं सकते। क्योंकि तुम दुनिया त्याग चुके हो,पैसेको हाथ लगाना भी पाप समझते हो और उपनिषदोंकी इस फिलासफी पर विश्वास रखते हो कि यदि तुम आगे आगे भागो तो माया तुम्हारे पीछे-पीछे भागेगी। तुम्हारे पीछे शायद वह भाग भी रही है। लेकिन हम दुनिया वाले ऐसा नहीं कर सकते। हम इसके पीछे भाग रहे हैं और भागते रहेंगे। मैं जानता हूं कि इस पर तुम व्यङ्ग भावसे मुस्कराओगे और कहोगे कि हमें इस दौड़से ही आनन्द प्राप्त होता है।

आनन्द या विवशतामें कहानीका विचार छोड़ फिर अनुवाद करनेमें लग जाता हूं। क्योंकि इस कामके मुझे दस रुपये मिल चुके हैं और मांग लेने पर दस, पन्द्रह और भी मिल जानेकी आशा है। कुछेक दिन खर्च तो चलेगा। साहित्यकी मुफ्त सेवा करते रहनेसे तो अच्छा ही है। लेकिन लाख समझाने पर भी जी काममें नहीं लगता था। एक विचार था जो मोटरकी तीव्र गतिके समान घरर-घरर करता हुआ दिमागमें उथल-पुथल मचा रहा था और मनको कुरेद सा रहा था कि अकस्मात किशोरी लाल आ गया।

किशोरीलाल समकालीन कहानी लेखक है और इतना सुन्दर कि एक मित्रके कथनानुसार उससे बगलगीर होनेको जी चाहता है। जब देखो प्रसन्न चित्त और मुस्कराता हुआ दीख पड़ता है। मुख पर दुख, शोक और विषादका नाम तक नहीं और उसकी बाक् पटुताका यह विशेष गुण है कि बातें करते न आप थकता है और न सुननेवालेको थकने देता है। एक आनन्द है उससे मिल बैठनेमें। इस वक्त उसका आना मुझे अच्छा लगा। मेरा परेशान दिमाग उसका स्वागत करनेको तैयार था।

"ले देख तुझे क्या भेंट करने आया हूं।" उसने एक नई पुस्तक मेरे सामने रखते हुए कहा।

यह उसकी कहानियोंका प्रथम और ताजा संग्रह था। मैंने उठानेके लिये हाथ सहर्ष आगे बढ़ाया पर वह मुझे रोक कर फिर बोलाः—

"एक शर्त पर"

"वह क्या ?"

"यह भेंट स्वीकार करनेसे पहले कहानीके इस युगमें मेरा नेतृत्व स्वीकार करना होगा।" वह खिलखिला कर हंस पड़ा। इस हंसीमें मैंने भी उसका साथ दिया और खूब हंस लेनेके बाद मैंने फिर पुस्तक उठाना चाहा लेकिन उसने फिर रोक कर कहाः—"पहले इस बातका इकरार करो।"

"हजरत, यह तो मैं पहले ही कर चुका हूं।"

"तब ठीक, जरा ठहरो।" उसने जेबसे फाउण्टेन पेन निकाली और पुस्तक खोल कर एक खाली पृष्ठ पर लिख दियाः—सतीशको भेंट, जो कहानीके इस युगमें मेरा नेतृत्व स्वीकार करता है। किशोरी लाल—१७। १०। ४४

मैंने पुस्तक उठायी। उसके गेट-अप, कहानियोंकी तरतीब और छपाईकी प्रशंसा की। जिसे सुन कर वह प्रसन्न तो हुआ, लेकिन अपनी उत्तम रुचिका प्रमाण देनेके लिये बोला :—

"पर मुझे स्वयं इसकी छपाई और गेटअपसे सन्तोष नहीं है।"

"निस्सन्देह, जितने उच्च कोटिकी कहानियां है उसके मुकाबलेमें तो छपाईका स्टैण्डर्ड खाक भी नहीं।"

इस पर वह मुस्कराया और उसका चेहरा नव-विकसित पुष्पकी भांति खिल गया। लेकिन विषय बदलनेके लिये उसने मेरी मेज परसे वह पत्र उठा लिया और पत्रिका का नाम देखकर पूछा :—

"क्या मैं पढ़ सकता हूँ ?"

"जरूर।" मेरी आज्ञाकी आवश्यकता ही न थी। उसने पत्र पढ़ना पहले ही आरम्भ कर दिया था। चार-पांच पंक्तियां तो थीं ही। समाप्त करके उसने कहा—"हूं।"

"देखा तूने, यह लोग भी खूब हैं। वैसे प्रशंसाके पुल बांध देते हैं। पारिश्रमिक मांगो तो साफ इनकार।"

"पर हमें मांगनेकी जरूरत ही क्या है ?" उसने गर्वयुक्त भावसे उत्तर दिया।

"जरूरत क्यों नहीं। न मांगे तो आदमी खाये क्या ?"

"खाने कमानेके और बहुतसे धन्धे हैं। जब तुम कहानी लिखनेको पेशा बना लोगे तो तुम कलाके लिये नहीं पैसे के लिये लिखोगे और मैं समझता हूँ कि यह ऐसी बात है जो कहानीको कलाके पदसे गिरा देती है।"

"लेकिन हमें……"

"मैं लेकिन वेकिन कुछ नहीं जानता, जब तू एक बार मेरा नेतृत्व स्वीकार कर चुका है तो मेरी सम्मतिको भी प्रमाण समझना होगा।"

वह फिर हंसा और पुस्तकका एक पृष्ठ खोल कर मेरे सामने रखते हुए कहा—तूने समर्पण तो देखा ही नहीं।

मोटे-मोटे शब्दोंमें लिखा था—"सलमा के नाम।" मैंने यह पहले ही देख लिया था। पर अब उसका मतलब समझ कर पूछा—"यह सलमा कौन है?"

उसने उत्तरमें प्रेमकी एक तवील दास्तां कह सुनायी। सलमा एक सुन्दर लड़की है जो कुछ दिन पहले उसपर जान छिड़कती थी। लेकिन आज कल ऐसी रूठ गयी है कि बात तक नहीं करती। कल वह बुर्का डाले बाजारसे गुजर रही थी। किशोरीलालने एक लड़केको दुवन्नी देकर कहा कि यह पुस्तक उसे दे आओ। लेकिन सलमाने उस गरीबको बुरी तरह फटकारा और किताब लौटा दी। किशोरीलाल ने घर जाते ही उसे पत्र लिखा :—

"अपने युगका महान कहानी लेखक, संसार जिसके चरण चूमता है, तुम्हारे दरका भिखारी है। लेकिन सलमा तुम्हें उसकी तनिक भी फिक्र नहीं। आह! कितनी हृदय-हीन हो तुम।"

मैंने यह बात सुनी और पुस्तककी ओर देखा। ये कहानियां पहले ही मेरी दृष्टिसे गुजर चुकी थीं। इनमें कुछ ऐसी ही हृदय-हीनताकी घटनाएं और कुछ दूसरे लेखकोंकी सर्व-श्रेष्ठ कहानियोंके विकृत रूप थे। प्रकाशक, प्रसन्न था कि उसे पुस्तक मुफ्त छापनेको मिल गयी और किशोरीलाल प्रसन्न था कि उसका संग्रह छप गया। तब, और हवा के एक झोंकेसे पृष्ठ उलटे तो मेरे सामने खुला पड़ा था :—

जो कहानीके इस युगमें मेरा नेतृत्व स्वीकार करता है।

पहले मैंने इस बातको महज मजाक समझा था पर अब कुछ वास्तविकता भी दीख पड़ी। समाजमें, राजनीति और साहित्यमें प्रत्येक स्थान पर ऐसे ही स्वयम्भू नेताओंकी तूती बोलती है।

किशोरीलालका प्रेम सलमा तक ही सीमित न था। उसने और भी कई दिलचस्प कहानियां सुनायीं जिन्हें यहां लिखनेकी जरूरत नहीं। मात्र इतना लिख देना यथेष्ठ है कि जब मैं उन्हें सुनकर फारग हुआ तो दिन ढल चुका था।

मैं समझता हूँ कि तुम जो धार्मिक पुस्तकोंसे शान्ति प्राप्त करते हो इस वार्तालापको बेमेल और व्यर्थ समझते होगे। लेकिन दोस्त! ऐसी बात नहीं। मैं जो कुछ भी लिख रहा हूँ, इस सबका मतलब एक भावकी व्याख्या करना है। हमारी दुनिया, हमारा समाज और हमारे जीवनके प्रतिनिधि हैं यह लोग। इन्हें समझ कर ही तुम मुझे समझ सकोगे। वर्ना, मनुष्यका व्यक्तिगत जीवन तो कुछ भी नहीं, हम अपनी परिस्थिति और दैनिक घटनाओंसे जो प्रभाव ग्रहण करते हैं वही वास्तविक जीवन है। तुम इस वातावरण और इन घटनाओंसे दूर रहना चाहते हो। ठीक है। रहो। लेकिन कभी कभी इस जीवनका दिग्दर्शन कर लेनेमें क्या हर्ज है।

हां, तो मैं कह रहा था कि जब किशोरीलाल गया तो दिन ढल चुका था। उसके जाते ही बलदेव आ गया। तुम उसे नहीं जानते। वह भी मेरा एक मित्र है, इन दिनों हम इकट्ठे रहते हैं। वह आकर मेरे निकट बैठ गया और एक फीकी सी मुस्कान होठों पर लाकर बोला—"सतीशजी, तुम कहते तो होगे कि मैंने यह सारा दिन नष्ट कर दिया। एक शब्द भी नहीं पढ़ा। पर क्या करूं? यहां बैठनेको जी नहीं चाहता। जगह काटनेको आती है।"

वह रात दो बजे तक गायब रहा था। उसके बाद किसी वक्त आकर सोया तो ग्यारह बजे उठा और फिर खाना खाने ऐसा गया कि अब पांच बजे घर लौटा। मैं उसके जी न लगनेका कारण खूब समझता था। इसलिये पूछनेकी जरूरत न थी। बल्कि उसके यह शब्द सुन कर एक वाक्य और स्मरण हो आया। एक दिन इसी प्रकार उसने कहा था—"तुमने मेरे जीवनका वह पहलू देखा है जिससे मैं खुद नफरत करता हूं।"

नहीं, मैंने उसके जीवनका एक और पहलू भी देख रखा है। साल भर पहले यही बलदेव बहुत भिन्न था। वह होस्टल यूनियन का सेक्रेटरी चुना गया था और समझता था कि जीवनकी पराकाष्ठाको पहुंच गया है, सफलताका मार्ग सामने खुला पड़ा है, उसके मस्तिष्कमें महत्वाकांक्षाएं करवटें लिया करती थीं। कुछ-न-कुछ चमत्कार कर गुजरने की अभिलाषा मनमें रहती थी, उसे बुराईसे घृणा थी।

लेकिन जब वह बी० ए० में फेल हो गया तो जिन्दगीका यह दूसरा दौर शुरू हुआ। उसे पहली बार असफलताका सामना हुआ और वह घबरा गया। वह समझता है कि प्रत्येक मनुष्य उससे नफरत करता है। क्योंकि उसे अपने आपसे खुद नफरत है। यह नफरत किसी प्रकार भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। केवल कुछ समय अपने आपको भुला

देनेके लिये, कौन सी बुराई है जो वह नहीं करता। लाहौर के बड़े बड़े होटलोंमें जाता है। शराब पीता है और कहता है—"मैं उस जगह जाता हूं जहां जाते शराफतके पांव कांपते हैं।" मानों वह पापसे घृणा करते हुए भी पाप करता है, और महत्वाकांक्षाएं अब भी उसके मस्तिष्कमें करवटें लेती हैं और कुछ-न-कुछ चमत्कार पूर्ण कार्य कर गुजरनेकी अभिलाषा मनमें रहती है। उसे देख रूसी प्रमुख लेखक दोस्तोवस्कीका वह हीरो जीता जागता सामने खड़ा दीख पड़ता है, जिसे जीवनमें असफलताओंका सामना करना पड़ा है, जो पापसे घृणा करते हुए भी उसमें आनन्द महसूस करता है और जिसका व्यक्तित्व दो या दो से भी अधिक टुकड़ोंमें विभाजित होकर रहता है। मैंने बलदेवको कई बार कहते सुना है—"जो लोग आदमीके कामसे आदमीकी परख करते हैं, वे गलती पर हैं। उन्हें उसकी स्थितिको समझना चाहिये और समझना चाहिये कि वह चाहता क्या है, कौन बात उससे एक विशेष क्रिया कराती है?" क्या बलदेवके यह शब्द उस हीरोके उन शब्दोंसे नहीं मिलते जब वह कहता है—"यह कहना गलत है कि लोग इसलिये पाप करते हैं कि उन्हें अपने लाभ-हानिका ज्ञान नहीं होता। क्या मात्र लाभ-हानि समझा देनेसे ही समस्त संसार पुण्य मार्ग पर चल पड़ेगा?" बलदेव इसका उत्तर देता है—"नहीं, कदापि नहीं, प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्थितिके अनुसार आचरण करने पर मजबूर है।" और मैं सोचता हूं कि जिस परिस्थितिमें आज कल मैं रह रहा हूं अगर मेरे पास पैसे हों तो क्या मैं भी बलदेवकी तरह पापसे घृणा करते हुए भी पाप न करने लगूं?

मैं इन दिनों दोस्तोवस्की पढ़ रहा हूं। उसके तमाम पात्र इसी प्रकार असन्तुष्ट और विभाजित जीवन व्यतीत करते हैं। वे विचार बनाते नहीं विचारोंमें रहते हैं। वे न देवता हैं न महात्मा, विवश मजबूर इन्सान हैं, बिलकुल हमारी तरह। इसीलिये दोस्तोवस्की मुझे अधिक पसन्द है।

अब एक बात इस पसन्दके विषयमें भी सुन लीजिये। लोगोंको अपनी पसन्द पर चोट होते देख बहुत अफसोस होता है।

कुछेक दिन हुए बलदेव और मैं दोनों एक मित्रसे मिलने गये। वहां उस मित्रका मित्र लेखराम मौजूद था। बलदेवके पास पुस्तकोंकी कमी नहीं। पर जिस प्रकार वह नयी नयी दिलचस्पियां ढूंढ़ता रहता है उसी प्रकार उसे नयी नयी पुस्तकोंकी तलाश रहती है। वहां उसने विक्टर ह्यूगोका प्रसिद्ध उपन्यास Les Miserables (दुखी जीवन) देखा और पढ़नेके लिये मांग लिया। तुम जानते हो कि कालेजके जमानेमें मुझे यह उपन्यास बहुत पसन्द था और तुम्हारी ही तरह कई बार पढ़ा था। लेकिन अब वह बात नहीं रह गयी। उसके पात्र नपा तुला एक सीधा मार्ग ग्रहण करते हैं और उसी तरफ चलते रहते हैं। पर जीवन नाककी सीध तो कभी नहीं चलता। निश्चय ही जीवनसे दूर और पृथक मार्ग, जिस प्रकार तुमने ग्रहण कर लिया है, उसी प्रकार इन पात्रों पर ठोंस दिया गया है। वे जीवनकी प्रतिछाया नहीं, लेखकके दिमागसे नकली हुई कठपुतलियां हैं। मेरी इस सम्मतिसे लेखराम सहमत न हो सका और वह तुनक कर बोला :—

'लो साहब। यह लिट्रेचरकी नयी व्याख्या निकली है।'

"जब संसारमें हरेक वस्तु नयी आ रही है तो आपको लिट्रेचरकी नयी व्याख्या निकल आनेपर क्या एतराज है?"

"तो आपके नजदीक आर्ट क्या है।"

'मेरे नजदीक वह आर्ट है जिसमें जीवनका सत्य रूप देखनेको मिलता हो।"

"जीवनके सत्य रूपको तो आर्ट नहीं Statastics (सूचीपत्र) कह सकते हैं।"

वह कुर्सीके बाजू पर बैठा था। इतना कहा और मसखरे ऐक्टरोंकी तरह उसने शरीरको विचित्र गति दी जिससे कुर्सी एक तरफ लुढ़कने लगी और वह चिल्लाया—"It has lost its balance।" वह उचक कर चारपाई पर आ बैठा और ऐसी मुद्रा धारण की जिसे देख सब लोग हंसने लगे।

मैं जीवन और कलाको अपने दृष्टिकोणसे देखता हूं। जिसे मुझसे विरोध है, मैं उसके विचार सुनने और उन पर विचार करनेको तैयार हूं लेकिन उसका मजाक उड़ाना मुझे पसन्द नहीं। लेकिन लेखरामको जो बात अच्छी न लगे वह उसका इसी तरह मजाक उड़ा देता है। एक दिन बलदेवने उसे बातों ही बातोंमें 'कामरेड' कह दिया तो वह झट बोला—

"क्या मतलब?"

"साथी"

"तो फिर साथी कहो।"

'यह भी साथीके लिये एक नया शब्द है।"

"नया क्या क्या है—कामरेड" और मुंह बना कर घृणा प्रकट की।

अगर बलदेव कामरेडके बजाय, मिस्टर कह देता या तुम्हें ब्रह्मचारीके बजाय कामरेड कह देता तो उसे यह घृणित

मुद्रा देखनी न पड़ती। मिस्टर लेखराम डबल ब्रेस्टका कोट पहनता है, टाई लगाता है और नये फैशनमें जमानेके साथ चलनेकी कोशिश करता है। लेकिन उसे हर नये विचारसे नफरत है। वह इस साल अर्थशास्त्रमें एम० ए० करने चला है। लेकिन इस युगकी सब बुराइयोंका हेतु मशीनको समझता है। इसके पहलेका मध्य युग, जब मशीन नहीं थी, उसके निकट आदर्श युग था। क्या यह इस बातका प्रमाण नहीं कि हम भौतिक विकास तो ग्रहण कर लेते हैं लेकिन आत्म-विकाससे बञ्चित रहते हैं। यही जीवनकी सबसे बड़ी ट्रेजड़ी है। इसी कारण हम सभ्यतामें संसारके साथ चलते हुए भी संस्कृतिमें पिछड़ जाते हैं और ऐसा पिछड़ते हैं कि हम दूसरोंको भी आगे बढ़ते देखना पसन्द नहीं करते।

जब बलदेव आया तो मैं बैठे बैठे थक गया था और चाहता था कि सैरको जाऊं। मैंने बलदेवको भी साथ चलने को कहा। लेकिन वह फिरते फिरते थक चुका था। इसलिये उसने तो वहीं रहना पसन्द किया और मैं अकेला घरसे चला। अभी जिला कचहरीके करीब ही आया था कि सामनेसे सरला आ गयी और मुझे देख कर ठहर गयी। तुम जानते हो कि उसने स्टूडेण्ट यूनियनमें काम करना शुरू किया था और अब तक कर रही है। वह जलसे जलूसोंमें हमेशा हमारे साथ रही और राष्ट्रीय सप्ताह मनाते समय खद्दर बेचनेमें आगे आगे। इस बार वह हमारे साथ ही गिरफ्तार हुई और मुझसे चन्द महीने पहले रिहा होकर आयी है। उसने रेशमी जम्फर और टिशुकी साड़ी पहन रखी थी और उसके कोमल शरीर पर यह लिबास फबता भी खूब था। लेकिन मेरे खुरदरे और मोटे वस्त्रों पर नजर डाल कर वह बोली:—"मैंने यह कपड़े बहुत दिनोंके बाद पहने हैं। मैं समझती हूं कि इससे भी देशके कारीगरोंको प्रोत्साहन मिलता है। देखा, हाथसे कितना महीन रेशम बुना है। मशीन क्या मुकाबला करेगी।"

वह जबानसे कह रही थी लेकिन आंखोंमें घबराहट थी और इसी घबराहटमें उसने जम्फरका एक भाग ऊपर उठा कर मेरे हाथमें देखनेके लिये थमा दिया। मैंने वह देखा और मुस्करा कर आगे चल दिया। लेकिन सरला कुछ लज्जित थी। शायद वह समझती थी कि यह लिबास पहननेका उसने जो कारण बताया है वह उचित नहीं। लेकिन मेरे लिये तो उसके हजार प्रोटैस्टसे जम्फरका एक भाग छू लेना कहीं अधिक यथेष्ट था और मैं अपनी आत्मामें उल्लास-युक्त भावना भरे आगे बढ़ा।

"सुनाइये सतीश महाशय, बहुत प्रसन्न दीख पड़ते हो। क्या बात है?"

यह आवाज इन्द्रमोहनकी थी। वह पीछेसे लम्बे लम्बे डग भरता मेरे बराबर आ गया था और अपनी तेज तेज निगाहोंसे मुस्कराता हुआ मेरी ओर देख रहा था। नाम सुनते ही लम्बा, पतला शरीर और विचित्र आकृति तुम्हारे मस्तिष्कमें आ गयी होगी। इन दिनों उसके नामके आगे प्रोफेसर लगा हुआ है। लेकिन उसके स्वभावमें कोई फर्क नहीं आया बल्कि और भी मंज गया। वह हमारे समाजपर जीवित व्यङ्ग है और प्रत्येक घटनाको अपने रङ्गमें ढाल कर दुनिया भरको आड़े हाथों लेता है।

जब मैंने उसे सही बात बतायी तो आलोचना सुननेके लिये तैयार रहना भी आवश्यक था। इन्द्रमोहनने कहा:—"देखा जम्फर छू लेनेका जादू, आ गयी न जन्नत नजर। दोस्त, मैंने तो तुम्हें कितनी बार कहा है कि एक सुन्दर सी दुल्हन ब्याह लाओ और आरामसे जीवन बिताओ। यह राजनीति-वाजनीति सब बकवास है, धनी लोगोंका शगल है या दुकानदारी। तुम्हारे महाशय रामलाल या शिवगोपाल को ही लो। अगर वे साल दो साल जेलमें भी रह आये तो क्या बिगड़ गया उनका। कारोबार ठाठसे चल रहे हैं। कोठियां, मोटरें और ऐशके सब सामान प्राप्त हैं। तुम कहोगे उनके लिये थोड़े कर रहे हैं जनताके लिये करते हैं। जनसाधारणको क्या सम्बन्ध है तुम्हारी राजनीतिसे? जनता रहती है देहातमें। तुमने कभी जाकर उनकी शक्ल भी देखी है? इस प्रकार तुम सौ बार जेल जाओ, उन्हें कानों कान खबर न होगी। वे जहां खड़े हैं उससे एक इञ्च भी आगे न बढ़ेंगें। अब तुम चार साल जेलमें रह आये हो। बताओ इससे क्या फर्क पड़ गया है दुनियामें? क्या संवर गया है इससे जनताका? अगर दुकान चमकेगी तो महाशय रामलालकी। तुम्हें कोई पूछेगा भी नहीं। राजनीतिमें भी भले मानसोंका कुछ नहीं बनता। अगर कुछ बनना चाहते हो तो लीडरी कायम करो। और वह हो नहीं सकती, जब तक तुम्हारे पास रुपये न हों मोटर न हो।"

मैं इस प्रकारके व्याख्यान उससे हमेशा सुनता हूं और यह समझकर ध्यान नहीं देता कि वह भी हमारी तरह समाजसे दुखित है, लेकिन उसमें विद्रोह करनेका साहस नहीं, वह सङ्घर्ष चाहता है पर उसकी कठिनाइयोंसे घबड़ा जाता है। लेकिन इस समय सरलाकी सुन्दर आकृति, जम्पर

(शेष ८४ वें पृष्ठ पर)

सजीव बंधन

श्री नारायणलाल कटरियार

देव ! बन गये बंधते-बंधते स्वयं सजीव एक बंधन तुम !

मां के बंधनकी गांठें युग-युगसे तुझमें बोल रही है,
दृढ़ कड़ियां धीरे-धीरे नित घूंघटके पट खोल रही है,
तेरे हाथों खुलीं आज तक फौलादी "पछहत्तर" गांठें,
कल जो ग्रन्थि खुलेंगी तेरी उंगली उन्हें टटोल रही है।
वे कहते हैं, करते रहते हो नित झनन्-झनन्-झन्-झन् तुम !

उनके हाथ और मन दोनों हार गये हैं कसते-कसते,
बढ़ते ही जा रहे निरंतर कंटक-पथपर हंसते-हंसते।
रचे गये षड़यंत्र, भयङ्कर चालें, भीषण-भीषण फन्दे,
तेरे लिये जा रहे डाले, नगर, ग्राम, वन, रस्ते-रस्ते।
बदल गयी धरतीकी सूरत रक्खे अपने जहां चरण तुम !

"जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन तुम रूप दिखाये।"
धूल देशकी फंका-फंका कर असुरोंको तुम नाच नचाये।
प्रतिबन्धों को दुलरा-दुलरा फेरा आशाओं पर पानी,
अगणित बार तुम्हारे ऊपर जादू-टोना गये चलाये।
जुल्मीके जुल्मोंको देते हो नित सादर आमन्त्रण तुम !

उठ घन-घोर गरजते बादल आये नभमें लेकर पानी,
आया शिथिल बुढ़ापा, आया बचपन अपनी ले नादानी,
सुन आह्वान तुम्हारा इस विस्तृत जगके कोने-कोनेसे,
दौड़ी दौड़ी आयी तेरे पास नदी सी भरी जवानी।
रिक्त हाथ ही चले छीनने देवराज से सिंहासन तुम !

योगी, त्यागी, यती, तपस्वी, कोई कहते हैं अवतारी,
कहते कोई आग धधकती, ज्वाला, आंच और चिनगारी।
अपना परिचय एक तुच्छ सेवक स्वदेशका कह कर देते,
'जन्म-सिद्ध अधिकार हमारा-मैं अपने घरका अधिकारी।'
अपनी मुट्ठीमें मूंदे हो लङ्काके उनचास पवन तुम !

कात कात कर कच्चा सूता अपनी दुनिया माप रहे हो।
पशुके आगे बजा बजा कर बीन, राग आलाप रहे हैं।
'सोने दो, सोये हैं सुखसे', कहते तुमसे दस्यु लुटेरे।
जागृति का प्रकाश फैला, कर हाय! यही कर पाप रहे हो।
करते ही जा रहे तस्करों की इच्छा का सदा दलन तुम !

ले निरस्त्र सेना, निज रिपुको ललकारा तुमने सेनानी !
कांप उठा भूतल का भूतल, हुंकारा तुमने सेनानी !
'भारत जिंदाबाद' और 'वंदे-मातरम्' कोटि नर-नारी-
बोले तेरे बाद, लगाया जब नारा तुमने सेनानी !
करते रहते दलित प्रपीड़ित, दुखियों के अर्चन-पूजन तुम !

एक ओरसे उठा बवंडर, एक ओरसे आंधी बाबा !
उठा तिरङ्गा झण्डा तुमने उनकी गतिको बांधी बाबा !
जेलोंकी दीवारोंके निर्मम पत्थर भी पुलकाकुल हो,
मन ही मन रटते रहते हैं गांधी बाबा---गांधी बाबा !
वर्तमान, भावी, अतीतके मूर्त्तिमान साकार लगन तुम !

देव ! बन गये बंधते-बंधते स्वयं सजीव एक बंधन तुम !

———

विचारोंकी लीला

पण्डित उदित मिश्र

यह बात साफ साफ दिखायी देती है कि संसारमें एक दूसरेमें अन्तर है। कोई लम्बा चौड़ा और मोटा है किसीका कद ठिगना नाक चपटी आवाज कर्ण कटु है। इसी तरह कोई काला, कुरूप दूसरा गोरा सुन्दर है। किसीसे मिल कर सुख और आनन्द मिलता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनसे बात करनेमें दुःख ही दुःख मिलता है। इस प्रकारकी अवस्था रोज दिखायी देती है। यदि ऐसा न होता तो संसारमें मङ्गल ही मङ्गल दिखायी देता। अमङ्गलका अशुभ दर्शन कभी न होता। पिता-पुत्रमें झगड़ा। पुरुष-स्त्रीमें मनोमालिन्य। पास-पड़ोसी में खटपट। गुरु-चेलामें तू तू मैं मैं—मतलब चारों ओर कोलाहल मचा हुआ है। शांति कहीं नहीं। इस विषयमें किसीका कहना है कि आर्थिक सङ्कट ही सबका कारण है—कुछ लोगोंकी राय है कि पराधीनता ही सब रोगोंकी जड़ है। कुछ भले लोग शिक्षाका अभाव सम्पूर्ण अशान्तिका कारण बतलाते हैं। रोग है, सब लोग इस विषयमें सहमत हैं। किन किन कारणोंसे रोगकी उत्पत्ति हुई इस विषयमें मत विभिन्नता है। इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त कारण जो बतलाये गये हैं सब सही हैं। गलतीके लिये स्थान नहीं पर एक बात जो सबकी तहमें है—वह, 'विचार' है। सभी कारणोंमें इसीका प्राधान्य है। घरमें सभी सामग्री मौजूद है। किसी बातकी कमी नहीं। भोजनाच्छादनके अतिरिक्त अन्य आवश्यकताएं भी अच्छी तरह पूरी हो जाती हैं पर तो भी कलह होती है। गाली गलौजकी नौबत आ जाती है। अनहोनी बात तक हो जाती है। ऐसा क्यों होता है—इस लिये न कि विचारोंमें अन्तर आ जाता है। मोहन सबेरेसे बैठा गप लड़ा रहा है। मोहनका बाप पेंसन लेकर घर बैठा है। उसको सबेरे ४ बजे उठनेकी आदत है। वह प्रातः-कृत्यसे निवृत्त हो कर पढ़ने लिखनेमें लगा हुआ है। मोहनकी व्यर्थ बातोंसे ऊब कर वह बार बार कहता है कि "सबेरेका समय सत्यानाश मत करो—कुछ काम करो, न हो तो कुछ पढ़ा ही करो।" मोहन अपने साथियोंसे मुंह बना कर कहता है कि "यह समझमें नहीं आता कि इनको क्या हो गया है—मैं पढ़ूं या भाड़में जाऊं, इनसे क्या वास्ता?" मोहनका पिता ऐसी बातें सुन कर दुःखी होता है और जब कहते कहते थक जाता है तब चुप्पी साध लेता है और समय आने पर अपने पुत्रसे यही बातें मोहन भी कहता है। सृष्टिका क्रम ऐसे ही चला जा रहा है। विचारोंका सङ्घर्ष सबसे बढ़कर है। दरिद्रतामें सुख और धनाढ्यतामें दुःख—विचारोंकी लीलाका परिणाम है। दूसरोंके पुत्रको गोद ले कर पुत्रवाला और अपने पुत्रको त्याग कर पुत्र हीन—दोनों अपने विचारोंके बल पर सुख अनुभव करते हैं। पिताके केवल एक पुत्र है, उसकी सम्पत्तिका वही उत्तराधिकारी है। पर दोनोंमें बिगड़ती है और यहां तक बिगड़ती है कि जन्म भर मुकदमें बाजी होती है। पुत्रके मरनेपर पिता उसकी लाशके पास भी नहीं जाता। हालांकि पिताने सोचा था कि मेरे मरने पर बच्चा भोगेगा और बच्चाने भी कइयोंसे कहा था कि बुड्ढा खूबट जल्दी दुनियासे जाता तो अच्छा होता। दोनोंके विचार दोनोंके साथ चले जाते हैं। दूसरी ओर पिताके एक, दो नहीं चार लड़के हैं। पुत्र करोड़ोंकी सम्पत्ति कमाते हैं। संसारमें अपना बहुत उच्च स्थान रखते हैं। पर पिताकी आज्ञा सर्व प्रधान है। अपने जीवनसे पिताका जीवन पवित्र और पिताकी विभूतिसे अपना हृदय निर्मल करनेमें पिता पुत्र दोनों एक दूसरेके सहायक होते हैं। विचारोंकी ही कृपाका यह फल है।

"अनन्दायैव भूतानि यतन्ते यानि कानि चित्।"

आनन्दके लिये ही प्राणी मात्र सर्व प्रकारका उद्योग करते हैं पर आनन्द क्यों नहीं मिलता? एक मुकदमें हार जाता है, दूसरा जीतता है। जीतनेवाला आनन्दित और हारनेवाला दुःखी होता है—विचार रखनेवाला सम्भल जाता है, अविचारी गिर जाता है। मनके हारनेसे हार और जीतनेसे जीत यह बात पक्की है। इसमें कहींसे भी खराबी नहीं है। विचार पक्के हैं, कहींसे कोई गड़बड़ी नहीं हैं तो हारने जीतने की क्या बात? दिन रात यही सोचते रहना कि मुझे जीत मिलेगी तभी जिन्दा रहूँगा नहीं तो मर जाऊंगा—बुरी बात है। ऐसे विचारोंको सदा दुःख देखना पड़ता है। उद्योग करना—युक्तिपूर्वक काममें लगना यह दूसरी बात है। इससे दुःख नहीं होता बल्कि हारने पर भी सुख ही मिलता है। "कोऽत्र दोषः"—यही भाव आता है। "नैराश्यं परमं सुखम्" इच्छोदयो यथा दुःखमिच्छा शांतिर्यथा सुखम्—इत्यादि महापुरुषोंके अनुभव विचारणीय हैं। निराश

रहना, इच्छा रहित रहना, इनका रहस्य सोचना चाहिये। परीक्षार्थी दिन रात इसी आशामें रहता है कि मैं पास हो जाऊं—मुझे अमुक पद मिले इत्यादि—ऐसे विद्यार्थीके दुःखका कोई ठिकाना नहीं रहता जब वह फेल हो जाता है। फेल होने पर कई विद्यार्थियोंने आत्महत्या कर ली। ऐसा क्यों हुआ? इसीलिये न कि दिन-रात ऐसे विचारोंका पोषण करना जो अपने वशकी चीज नहीं। पढ़ना, ध्यान देना, खूब परिश्रम करना अपने हाथकी बात है। उसमें त्रुटि हो तो उसके लिये सुधार करना चाहिये। पर जो अपने काबूकी चीज नहीं उसके लिये हाथ पैर पटकनेसे क्या लाभ? दिन भर परिश्रम किया, थकावट आने पर पैर फैला कर सो गये। दुनिया भरकी खुराफातमें अमूल्य जीवनको नष्ट करना यह कहां की बुद्धिमत्ता है। अमुक हमारा बैरी है। उसको पराजित करनेके लिये हम अनेक उपाय करते हैं। बहुत सी तरकीबें सोचते हैं। अनेक षड़यन्त्र रचते हैं। अपने कीमती दिमागको इसी काममें खर्च करते हैं। दुश्मनका अनभल होता है या नहीं यह तो भगवान जाने पर हमारा तो बड़ा नुकसान होता है, हमारे दिल दिमाग दोनों बिगड़ते हैं। इसका प्रभाव चेहरे और शरीर पर भी पड़ता है। कुछ लोगोंको देखा गया है कि इस मर्जमें इतना फंस जाते हैं कि मस्तिष्कमें विकार आने लगता है और अपने आप बातें करते और सिर हिलाते रहते हैं। कलकत्तेके शेयर बाजारमें और प्रायः कचहरियोंमें ऐसे लोगोंका दयनीय दृश्य देखनेमें आता है। ऐसे लोग संयमसे हाथ धो बैठते हैं। असंयमके शिकार हो जाते हैं और जिन विचारोंकी कृपासे इनका भला होता वे दूर चले जाते हैं। सती स्त्री अपने विचारोंमें मग्न रहती है और बाजारू औरत अपने विचारोंके कारण दिलमें कुढ़ती रहती है। जीवनके लिये खान, पान, आहार, विहार की जितनी जरूरत है उससे बहुत अधिक आवश्यकता विमल विचारोंकी है। राजा हरिश्चन्द्रसे विचारोंने ही श्वपचकी सेवा करायी वरनः उनको क्या कमी थी। विचारोंकी विभवताका आनन्द उस समय मिलता है जब उसका विकास शनैः शनैः होने लगता है। पतनोन्मुख विचारोंसे अपनी रक्षा करनेवाले ही इस सुखका अनुभव कर सकते हैं। एक आदमी अपने छल कपटमें सुखी है। अपनी दगाबाजी और अपने कमीनेपनकी वृद्धिमें सुख मानता है। लोगोंको अंधा बनानेमें वह अपनेको चतुर-चालाकसमझदार मानता है। क्या वह समझदार है? मैं समझता हूं उससे बढ़ कर करोड़ों मूर्ख भी नहीं हो सकते। ऐसे बेचारेको महामूर्ख कहना चाहिये। इस अमूल्य जीवनकी ऐसी दुर्गति जो लोग करते हैं उनसे बढ़ कर अभागा दूसरा नहीं।

सबेरा हुआ। बिस्तर पर पड़े हैं—आलस्यके शिकार हो रहे हैं। शौच लघुशङ्काकी प्रेरणा होनेपर भी उठनेकी इच्छा नहीं होती, कुछ देरके बाद वही काम करते हैं—जिसको समय पर करते तो अच्छा होता। परिणाम यह होता है कि कई रोग आ घेरते हैं। चेहरे पर सुफेदी आने लगती है। बदनमें खूनका दौरा रुक गया है। पेट बिचारेकी दशा शोचनीय हो गयी है। पाचन शक्ति गायब हो गयी है, पेचिश जारी है। संग्रहणीकी बारी है। दो ही चार सालमें सबको रुलाकर यहांसे चले जाते हैं। विचारोंको अगर ठीक रखते तो इन सब कष्टोंसे छुटकारा मिल जाता। एक साठ सालका आदमी मुझे मिला। हट्टा-कट्टा मजबूत-दांत मजबूत—हाथकी ताकतकी थाह नहीं। चेहरे पर सुर्खी आवाज नौजवानोंकी सी। हंसमुख, उदासीका काम नहीं। मैने पूछा करुणानिधान! ऐसा सुन्दर स्वास्थ्य कैसे बना। उत्तर मिला 'विचारों' के कारण।

बात समझमें कम आयी। बातचीत चली। कहा, बिस्तरसे उठनेका समय आंख खुलते ही है। शौचादिसे निवृत्त होकर चक्कर लगता है। जिस चीजको देखता हूं—अनुभव करता हूं कि सब हंस रहे हैं सब प्रसन्न हैं। चारों ओर खुशी है। जहां दिल भारी हुआ कि विचारोंके तराजू पर रख कर उसे हलका किया। ऐसा करते करते इतना अच्छा अभ्यास हो गया कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार जो पञ्च विकार हैं इनसे अब प्रेम रोज रोज कम हो रहा है। इनका आना जाना तो बन्द नहीं हुआ पर मैं इनकी खातिर अब नहीं करता। इनको न कुर्सी देता हूं न आसन—उपाय ऐसा करता हूं कि ये बैठ भी न सकें। क्योंकि मैं तो सुविचारोंसे सङ्ग रखता हूं। उन्हीं सुन्दर विचारोंके साथ घूमा करता हूँ। समय बहुत कम मिलता है कभी कभी विचारों और संस्कारोंके झगड़ेमें पड़ जाता हूँ तो इन विकारोंके चक्करमें आजाता हूं। ईश्वरसे प्रार्थना करता रहता हूं कि इन विकारोंसे सदाके लिये सङ्ग छूट जाय पर इस जन्ममें ऐसा होगा? इसकी सम्भावना कम दिखलायी देती है। पर सुविचारोंकी दोस्तीसे सम्भवतः इनकी पकड़में मैं कम आऊंगा। यही कारण है कि मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूं। महज मोटा ताजा होना ही तन्दुरुस्तीका चिह्न नहीं। दिमाग ठीक रास्ते पर जाता हो तब बेशक तन्दुरुस्ती ठीक कही जायगी। खान, पान, शुद्ध वायु इत्यादि बाह्य कारणों-

से शरीर-सत्सङ्ग,और सुन्दर विचारोंके कारण मस्तिष्क व्यवस्थित रहता है। जब दोनों ठीक रहते हैं तब मनुष्य स्वस्थ कहलाता है।

एक जगह कुछ मित्रोंने फोटो खिंचवाया। उनमें एक आदमी मान अपमानके चक्करमें बहुत था। फोटो खिंचवाने वालोंमें स्त्रियां भी थीं। स्त्रियोंके लिये कुर्सियां रखी गयीं और लोगोंमेंसे दो एक सज्जन और कुर्सी पर बैठे। बाकी लोग पीछे खड़े हुए। जिन सज्जनको मानापमानका व्यर्थ रोग लगा था, उन्होंने इसमें अपना अपमान अनुभव किया और वे इतना क्रोधित हो गये थे कि फोटोमें उनका सुन्दर, सुकोमल चेहरा टेढ़ा-मेढ़ा कुरूप आया। बहुत दिनोंके बाद उन्होंने स्वीकार किया था कि तुच्छ विचारोंने ही उन्हें फोटोमें भी तुच्छ बना दिया। इस तरहकी बातें देहातोंमें तो रोज ही होती हैं। ऐसे लोग ताजिरात हिन्द की दफा ३२३ व ३२४ के बिला किसी वजह शिकार हो जाते हैं। अयोध्यामें एक बार सरजूके तटपर बड़ा मेला लगा था। वहां पांच चार हमउम्र लोग अपने विचारोंमें मग्न थे। एक दूसरे नौजवान अपनी धर्मपत्नीके साथ वहीं स्नान करने आये थे। इन पंच मूर्तियोंने उस युगल जोड़ीके लिये स्थान छोड़कर कुछ दूर पर नहानेका विचार किया। ये थे हंसने हंसानेवाले। वहांसे हटने पर कहकहा मचाने लगे। नारीके पतिने समझा कि मेरी स्त्रीको देखकर ये लोग ऐसा करते हैं। वे बहुत बिगड़े—किन्तु बादमें उन्होंने समझा कि वे खुद महज गलत विचारके शिकार थे—उन पांचोंके दर्मियान कुछ और बातें हो रही थीं। मजा यह कि उसी स्त्रीने उनके गरम माथेको ठण्डा किया। अपने मनको समझानेसे इस प्रकार के रोग जल्दी दूर हो जाते हैं। गलतफहमी यहां तक होती है कि हम लोग इन दुर्विचारोंको कभी कभी गलतीसे अच्छी बात समझ लेते हैं। बात बातमें झगड़ा करना, जरा-जरा सी भूल चूकको तूल दे देना और सारे जीवनको ऐसी बातोंके लिये मिट्टीमें मिलाना ठीक नहीं, पर यह साधारण बात नहीं है। जब तक अपने एकान्त हृदयमें अच्छे विचारोंको हम स्थान नहीं देंगे ऐसी विपत्तिसे छुटकारा पाना असम्भव हो जायगा।

ध्यान दीजिये। लाखों रुपये हमारे पास हैं। मोटरगाड़ी नौकर चाकर सभी मौजूद हैं। अच्छे-अच्छे लोगोंमें आदर है, पर अवसर पाते ही हम घूस भी लेते हैं चोरी भी करते हैं और ऐसे ऐसे कुकर्म कर बैठते हैं जिनकी आशङ्का भी कभी नहीं होती।

अखबारोंमें खबरें आती हैं कि अमुक आदमीने बैङ्कसे इतना रुपया गबन किया—वह बैङ्कका डाइरेक्टर था उसको सात सालकी सजा हुई—अमुक आदमीने जजके पदपर होते हुए रिश्वत ली। अमुक व्यापारीने अमुक आदमीसे इतना ठगा। अमुक पण्डितने यह दुराचार किया। अमुक दोस्तने अपने मित्रको अमुक प्रकारसे धोखा दिया—इत्यादि। ये सारी बातें विचारोंकी लीलासे दिखलायी देती हैं। यदि विचार अच्छे किये जायें, बाहरी तड़क भड़क चाहे कुछ भी न हो, तो हम सदा सुखी रह और दुनियाकी बहुतसी बुराइयोंसे बच सकते हैं। नहीं तो बाहरसे हजार अच्छे होते हुए भी हम एक न एक दिन बुरे विचारोंका शिकार होंगे और अवश्य होंगे—और तब दुनिया कहेगी इस आदमीसे तो ऐसी आशा नहीं थी।

कौन मेरा, कौन तेरा

कौन मेरा, कौन तेरा!
बीच मेरे और तेरे
क्यों रहे व्यवहार छलका,
देख पाया कौन अपनी
आंख से संसार कल का,
यह नहीं निश्चित कि कल को बन सकेगा—
कौन मेरा, कौन तेरा!
मत मुझे दे प्यार अपना
मै नहीं लौटा सकूंगा,
मत समझ, भोली, सदा मैं
गीत ऐसे गा सकूंगा,
यह नहीं निश्चित कि कलको रह सकेगा—
साथ मेरा और तेरा!
आ विदा ले लें, अलग हैं
आज से राहें हमारी,
तम, तड़ित, तूफान में हो
पहुंचना उस पार, प्यारी,
यह नहीं निश्चित की कल को हो सकेगा—
मिलन मेरा और तेरा!

श्री महाराज कृष्ण रसगोत्रा बी० ए०, अमृतसर

सुलेखा

श्री कृष्णाचार्य एम० ए०

रामगुप्तने यह जान कर आश्चर्य किया कि पांच वर्ष मनुष्य जीवनको उलट-पुलटनेके लिये कम नहीं होते। वह पदातीसे अश्वारोही और फिर क्रमशः गुल्मपति तक हो गया। सेनामें पदोन्नतिके लिये वीरता, पुष्ट शरीर और प्रत्युत्पन्न मति इन सबकी आवश्यकता है। रामगुप्त भी आदर्श क्षत्रियकी भांति इन सब गुणोंका कमसे कम आंशिक अधिकारी अवश्य था। उसके सुन्दर मुख, नम्र स्वभाव तथा शीलने एक वृद्ध राज्य-सभासदका मन भी आकर्षित किया। सुन्दर रामगुप्तको वृद्ध सामन्तकी सुन्दर कन्या भी मिल गयी।

रामगुप्तकी इस वैवाहिक घटनासे सुलेखाके जीवनमें प्रथम बार विस्फोट हुआ, भूका प्रथम कंप होता भी है हाहाकार करने वाला। शनैः शनैः उसका जीवन असुन्दर हो गया और अन्तमें स्वप्नवत्। रामगुप्तने सुलेखासे कभी प्रेम किया था, सुलेखाने भी यौवन पेय पी-पीकर रामगुप्तके साथ विभावरीके दुग्धमय रूपके दर्शन और अमाकी असूझ रात्रिका स्वागत भविष्य की हीरक रश्मियोंको पा जानेके लिये समान भावसे किया। लेकिन अपने मरते हुए पिताकी अन्तिम बाणीकी रक्षाके लिये रामगुप्तको सामन्त कन्याका पाणिग्रहण करना पड़ा।

सुलेखाके पास रामगुप्तके विरुद्ध कहनेको बहुत कुछ था। समय समय पर उसने रामगुप्तसे कहा भी था कि उसने धोखा दिया है, उसने एक नारीका जीवन समाप्त कर दिया, जीवित ही! सुलेखाकी समझमें धन और सौन्दर्यके पीछे रामगुप्तने उसे त्याग दिया था। और ऐसी बहुत सी बातें थीं, रामगुप्तने भी अपनी परिस्थितियोंकी जटिलता, अपनी विवशताकी करुण कहानी कई बार सुनायी। सुलेखा समझती कि यह आंसू पोंछनेका उपक्रम मात्र है, उसके लिये मनुष्य स्वार्थोंका भण्डार था। रामगुप्तने सुलेखासे भी विवाह-बन्धनमें बंधनेका प्रस्ताव किया, क्षत्रियोंके अनेक पत्नियां होती हैं। किन्तु चाहने वाली सुलेखाकी एकांत भावना कैसे सह सकती थी उस उन्मुक्त उदारताको।

इन पांच वर्षों में सुलेखाका छोटा भाई धीरे धीरे किशोरावस्था पार कर चुका था। सुलेखा सुधन्वाको रामगुप्तके साथ देखना पसन्द नहीं करती; वह कहती—क्या दिवा-रात्रि उसके साथ रहते हो? पढ़ने-लिखने, शस्त्र-विद्या आदिमें भी मन लगाया करो। सुलेखा अधिक विरोध कर भी नहीं सकती थी, वह उच्छृ-ङ्खल भाईके 'क्यों' का क्या उत्तर देती! वह कैसे बतलाये कि रामगुप्त ने उसके साथ विश्वासघात किया है।


लेखक

रामगुप्तके तूणीप, कवच, वर्म, शिरत्राण अज्ञात रूप से ही सुधन्वा धीरे-धीरे पक्का स्थान बना रहे थे। आज पांच वर्ष बाद वह सोचता है कि क्या मैं रामगुप्त नहीं हो सकता। मेरे शरीरमें भी तो शक्ति है। और यह ऊपरी टीमटाम! वह अचानक हंस पड़ा—अरे, नाम लिखाया नहीं कि सब सैनिक सज्जा मिली।

'बहिन, बहिन, मैं कल सेनामें नाम लिखाऊंगा।'

क्यों?

वर्म, तूणीप, कवच, माला और बहुत सी चीजें मिल जायंगी।

इनको लेकर क्या करेगा?

मैं योद्धा हो जाऊंगा।

नहीं, योद्धा कर्म भला नहीं है, सुलेखाकी दृष्टि आकाश में थी।

यह तो हमारा पैतृक अधिकार है। हम क्षत्रिय हैं!

बड़ा कठोर धर्म है। सैनिक मनुष्यता भूल जाता है। क्रूर कर्मोंमें तुझे क्या आनन्द आयेगा। अब बहिनकी आंखें पसीज आयीं! सुधन्वा कारण न समझ सका; फिर भी वह कुछ बोलना ही चाहता था कि पीछेसे रामगुप्तने आकर सुधन्वाके कन्धों पर हाथ रख दिया।

अरे! आर्य! आप उचित समय पर आये।

क्यों? रामगुप्तने क्रोध और उदासीनताके युद्धको सुलेखाके नेत्रों और भ्रूभङ्गिमा पर पढ़ते हुए कहा।

बहिनका कहना है कि क्षात्रधर्म क्रूर है। मैं कहता हूं कि 'विगतज्वर' होकर युद्ध करना, और वह भी प्रजा पालन और रक्षाके लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण सेवा-कार्य है।

छलेखा दीपकके लिये बत्ती बना रही थी! रामगुप्तके आगमनने उसकी चर्चामें घृतकी आहुति जैसा काम किया। रामगुप्तको भी समस्त वातावरण समझनेमें देर न लगी! उसके मस्तिष्कमें ये शब्द गूंज रहे थे कि 'क्षात्र कर्म क्रूर है।'

'लेकिन इन झगड़ोंमें तुम क्या लोगे? तुम्हारा कर्तव्य है कि अपनी बहनकी आज्ञा मानों! अब तुम बड़े हो गये हो, उद्दंडता छोड़ो।' रामगुप्तने छधन्वामें एक होनहार वीरकी आत्मा देखी, उसकी महत्वाकांक्षाको झांका। लेकिन छलेखाके लिये उसका प्रतिकार करना ही पड़ा!

छधन्वा बने बनाये खेलको बिगड़ते देख कर सोच रहा था कि क्या करूं, और क्या कहूँ—आर्यने भी उत्साहित न किया।

तो क्या योद्धा बनना ही निश्चित कर बैठे हो! छधन्वा पर बहिनको अधिकार तो था ही, किन्तु उसी अधिकारका विराट प्रदर्शन करती हुई बोली—'मैं आज्ञा देती हूँ कि कल अपना नाम लिखा लो।' इतना कहनेके बाद वह कुछ हलकी सी दीख पड़ी।

रामगुप्त बिना कुछ कहे छने हारे तथा घायल सैनिककी तरह उद्यानसे चल पड़ा। वह सोच रहा था कि उदासीनतासे नारीमें फिर विद्रोह या प्रतिहिंसाका जागरण क्यों? सोचा था कि अभिमान और दर्पसे भरी पहाड़ी नदी समतलमें आकर धीर-गम्भीर और प्रशान्त हो जाती है। मुझे विरुद्ध करनेके लिये यह अकल्पित आयोजन!

छलेखाने रामगुप्तको देखा—ग्रीवा लटका कर धीरे-धीरे लौटते हुए! प्रहार अधिक घातक था? था तो वह क्या करे? वह उसके बीचमें क्यों आता है। लेकिन वह तो मेरा पक्ष ले रहा था। उलझी तो मैं! छलझनेके फेरमें इतनी उलझन! रामगुप्तको दूसरे दिन प्रथम बार छलेखाने अपने उद्यानमें नहीं देखा! उसकी शङ्काको प्रश्रय मिला। तीसरे दिन भी नहीं, पुष्टि हुई। अनवरत दो सप्ताहकी अनुपस्थितिसे उसके मनमें यह बात जम गयी कि उसने रामगुप्तको निरर्थक छेड़ा। इतनेमें ही छधन्वा आया, उसे देख कर बोली—

बड़ी देरसे आता है छन्धू! कई दिनसे देख रही हूँ।

'सौराष्ट्र मंडलाधीशने शत्रुसे लड़नेके लिये अतिरिक्त सेनाकी मांग की है। १५ सहस्र सेना नगरसे जाने वाली है; आज कल व्यूह रचनाका अभ्यास नियमित समयसे भी अधिक कराया जाता है। अधिक परिश्रमसे रामगुप्त ज्वर पीड़ित हो पड़े हैं!'

क्या तू उनके घर गया था?

नहीं। कल प्रतिपदा है, कल ही समय मिलेगा। भेजी जानेवाली चमूके सेनापति रामगुप्त ही बनाये जाने वाले हैं। पौर सभाने उनके नामकी घोषणा की है। उनके मिलने जुलने वालोंसे इतना पता लगा है कि उन्हें मानसिक चिन्ता भी है।

दूसरे दिन जिस समय छधन्वा रामगुप्तके यहां जानेको प्रस्तुत हो रहे थे उसी समय उद्यानमें रथचक्रोंकी घरघराहट सुनायी पड़ी। पास आनेपर रामगुप्त स्पष्ट दीख पड़े।

अभिवादन होनेके बाद छधन्वाने बगलमें होकर कहा—मैं आज ही आपके पास आ रहा था। सेनानायकने छधन्वाकी बात पर ध्यान न देते हुए कहा—प्रस्तुत हो न!

कैसा प्रस्तुत?

'पन्द्रह दिन बाद युद्ध क्षेत्रमें जाना है न! तुम्हारा नाम भी सूचीमें है।

'आपके सेनापतित्वमें लड़नेका मुझे गौरव मिलेगा, अवश्य चलूंगा।' इतनी बात करते हुए दोनों उद्यान कुटीरके सम्मुख आ गये। जहां छलेखा द्विपहरमें धूप दिखानेके लिये धान फैला रही थी। उसने देखा कि रामगुप्त सदैव जैसे सैनिक वेशमें नहीं हैं, दण्डके सहारे धीरे धीरे चले आ रहे हैं, दांया हाथ छधन्वाके पुष्ट कन्धेपर है। मुखपर कांति, क्षान्ति और दुर्बलताके प्रतीक प्रतियोगितामें एक दूसरेसे आगे निकल जाना चाहते हैं।

सेनाध्यक्षने छलेखाको देख कर भी अनदेखा बन कर कहा,—मैं चाहता हूं कि तुम यहीं रहो, नगरमें भी तो विश्वासपात्र रक्षकोंकी आवश्यकता है। महाराजको तुम जानते ही हो विलास भवनसे बाहर पैर नहीं रखते। तुम्हारा नाम सूचीमेंसे निकलवा दिया जायगा।

छलेखा अपने भाईको वीरतामें कम क्यों समझे! छधन्वा भी साम्राज्य-सेवाके लिये अपने प्राणोंका विसर्जन कर सकता है! बोली—क्या है छन्धू!

मेरा नाम भी रणक्षेत्रमें जाने वालोंके साथ है, किन्तु आर्य नगर-रक्षार्थ रह जानेको कहते हैं। छलेखा नहीं चाहती थी कि ज्वरसे उठे रामगुप्तको उत्तेजित करे। अतः बीचका

मार्ग ग्रहण करती सी बोली—तेरी क्या इच्छा है, तू क्या अभी बालक ही है जो मैं यह कहती हूं और वह यह कहते हैं किया करता है।

मेरी इच्छा! युवक खिलखिला उठा। अरे युद्ध ही जीवन है जीवन! उससे बचना संसारके वास्तविक आनन्दों से हाथ धोनेके समान है।

अच्छा जा, युद्धमें जाकर अपनी खुजलाहट मिटा आ, तेरे जैसे रक्षकोंकी नगरको आवश्यकता नहीं, न जाने किसको उमंगमें आकर लूट खसोट डाले! रामगुप्त सुलेखा के इस गुप्तास्त्रको भलीभांति समझ रहे थे।

सुधन्वामें बैठे हुए वीरने अत्याचारी और आततायी-को दण्ड देनेके लिये आवश्यक समझ व्याख्या करनेको जिह्वा खोली—

तो बहिन मुझे पागल समझ रखा है या प्रमादी! शत्रु-ओंको दण्ड देनेके लिये इन दण्डोंका रक्त उबलता है, दीन-दुःखी इन्हीं भुजाओं पर बैठकर अपना दुःख भूल जाते हैं।

अच्छा, अच्छा, युद्धमें जाना! मुझे अपना उपदेश मत दे! सैनिक बड़े दयालु होते हैं, दूसरोंके हितमें ही उनका जीवन बीतता है। यह कहती हुई वह कुटीरमें घुस गयी।

पन्द्रह दिन बाद—

आज सन्ध्याको सेना नगरसे बिदा लेने आयेगी। स्थान स्थान पर वाद्य बज रहे हैं। घरों, वीथियों और गृहस्थोंके प्रांगणमें बन्दनवार और तोरणोंकी सज्जासे पाटलिपुत्र उल्लसित हो उठा है। जिस घरसे सैनिक विदा होता है उस घरमें मिलने-जुलने वालोंके आवागमनसे दिन गतिवान् प्रतीत होता था। तृतीय प्रहरके प्रारम्भमें सारी सेना राज-प्रासादकी विशालकाय सेना-भूमिमें एकत्रित हो गयी। ठीक गोधूलिके समय परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्त सैनिक वेशमें श्वेत अश्वपर विदा सम्मान देनेके लिये आये। उनके आते ही तूर्यकी ध्वनिके साथ पन्द्रह सहस्र सैनिकोंने पंक्तिबद्ध खड़े होकर अभिवादन किया।

सम्राटके विदा-संभाषणके बाद सैनिकोंने नगरके मुख्य भागोंमें फेरी दी। भवनोंके झरोखों, राजप्रासादके कंगूरोंपर और द्वार द्वार पर नर-नारियोंकी भीड़ पसीजी आंखोंसे, गर्वसे फूली छातीसे और कांपते हुए पुष्पांकित हाथोंसे उमड़ पड़ी। चौराहों पर नगर-वधुएं सैनिकोंकी आरती करतीं। कोकिल कण्ठियोंके मङ्गल गानसे शून्य भर गया, नगरकी प्राचीर गूंज उठी, सिंहद्वारकी चूलिकाएं गरमा उठीं।

सैनिकोंने जैसे ही नगर-सीमा पार की वैसे ही एक उद्यानके सम्मुख सेनापतिने सेनाको कुछ क्षणोंके लिये रुकने-का आदेश दिया। समस्त सेनाने देखा कि हाथमें दीप-आरती लिये, द्वारपर एक ऐसी यौवन प्राप्त युवती खड़ी है, जिसके अभ्यस्त संयमने यौवनको बन्दी बना रखा है। राम-गुप्तने देखा कि उसकी सौभाग्य-रेखा सिंदूरकी भीखकी झोली छिपाए हुए है। बहिनने सजला होकर रोली कुंकुमका टीका किया, खील और पुष्पोंकी वर्षा की और खड़ी हो गयी।

सुधन्वाने चौंक कर कहा—तुमने सेनापतिकी आरती नहीं की? सुलेखाको जैसे काठ मार गया, उसका मन विशाल जनारण्यके सम्मुख अपनी क्षुद्रता पर खीज उठा। किन्तु तत्काल सम्भल कर सेनापतिकी आरती की। सुधन्वा से बोली—युद्ध समाप्त कर घर शीघ्र आना बन्धु और नयन-सीपीसे मोतियोंकी लड़ियां टूट टूट कर गिरने लगीं।

चिन्ता न करें, मैं उसकी रक्षा करूंगा। इन शब्दोंको सुन कर नारीकी सारी कोमलता नष्ट हो गयी। 'क्षत्रिय दूसरोंकी रक्षा अवश्य करता है किन्तु वह किसीसे रक्षादान नहीं चाहता।' रामगुप्त चोट खाए हुए पक्षीकी भांति उलट पड़ा, प्रस्थानका तूर्य फिर बजा।

छैः महीनोंके पश्चात सौराष्ट्रसे शत्रुओंका नाश कर सुधन्वा बची खुची सेनाके साथ लौटा।

बहिन उसी प्रकार आरती लिये हुए मिली। भाई-बहिनके छलछलाए हुए नेत्र फिर एक दूसरेसे मिले। सुलेखाने आरती उठा कर इधर-उधर देखा; सुधन्वा गम्भीर था, चुप था। उसने देखा कि बहिन पुरानी भूल सुधारना चाहती है।

बहिन! मेरी आरती करो न! हम युद्ध जीत कर आए हैं न! और—

और हम बड़ी वीरतासे लड़े। हूण बड़े निर्दयी होते हैं। स्त्री, बालक, बच्चे किसीको नहीं छोड़ते! फिर भी गुप्त साम्राज्यकी शिक्षित सेना अत्यन्त साहससे लड़ी!

फिर!

फिर क्या? तीन तीन बार हार कर भी हूण हमारा सामना कर रहे थे, किन्तु साम्राज्यकी शिक्षित सेनासे कैसे जीतते? सुधन्वाकी छाती गर्वसे फूल उठी!

उसके उपरान्त!

और आर्य रामगुप्तका रण कौशल तो देखते ही बनता था! हूणोंकी तीसरी चढ़ाईमें सफलता उन्हींके कारण मिली। सारी सेना छिन्न भिन्न हो गयी थी। दाएं पार्श्वके चमूकी

बुरी दशा थी। मैं वाम पार्श्वका निरीक्षण कर रहा था, किन्तु मेरा मन, मेरे हाथ मुझीको निरुत्तर कर रहे थे।

हूं!

केवल आर्य ही मध्य भागमें अतुलित उत्साह लिये खड़े थे। गरुड़ध्वज चारों ओरसे घिर गया था। उनको देख मेरे भीतर बिजली सी दौड़ गयी। अटूट साहस न जाने कहांसे आ गया। अपनी टुकड़ीको पीछेसे हूणों पर आक्रमण करनेका आदेश देकर मैं स्वयं उनके पास दौड़ा। हूण सेना पीछेके अचानक आक्रमणसे घबड़ा गयी। मुझे पास देख आर्य बहुत प्रसन्न हुए। आगे पीछेसे उमड़ते हुए जनारण्यको देख हूण भाग खड़े हुए। अब हम दोनोंने घोड़ों पर बैठ कुछ दूर तक शत्रुओंको खदेड़नेकी मन्त्रणा की।

तुम लोग कितनी दूर तक गए—

हम दोनों ५०० सवारोंके साथ चल पड़े। हम दो कोस भी न बढ़े होंगे कि एक तीर शत्रु पक्षसे आया। सुलेखाने व्यग्रतासे पूछा, फिर—

फिर क्या? सुधन्वा ढीला पड़ गया, गला भर आया।

हां, हां, बोलो, फिर क्या?

आर्यने वह तीर आते देखा, मैंने नहीं। मेरी दृष्टि सम्मुख थी, तीर दांएं से आया, जिधरसे आर्य मेरे साथ बढ़ रहे थे। उन्होंने और भी आगे बढ़ कर उस तीरको रोकना चाहा— सुधन्वा फिर रुक गया।

फिर!

किन्तु तीर रुक न स...का, और उनको लग गया।

सुलेखाने गम्भीर निश्वासके साथ 'हूं' कहा—आंखोंमें समुद्र काली लहरोंके साथ अट्टहास कर रहा था। दीप आरती सम्भाली—बहिन सुन्धूकी आरती कर रही थी; अन्य नारियां मङ्गल गान गा रहीं थीं।

उजड़ गया वह मेरा उपवन

उजड़ गया वह मेरा उपवन!
झुलस गयीं फूलों की कलियां;
बिखर गयीं मञ्जुल पंखुरियां;
लुप्त हो गयीं लोलुप अलियां;
हृदय-रक्त से क्यारी जिसकी,
अनुरञ्जित रहती थी निशि-दिन।
उजड़ गया वह मेरा उपवन!
माया की भी थी वह माया;
विश्व वृक्ष था उसका काया;
योग क्षेम थी उसकी छाया;
जल-थल-नभ संजीवन था;
उन फूलोंके परदे में साजन!
उजड़ गया वह मेरा उपवन!
वह बसन्त वह कोकिल-कूजन;
गुन-गुन-गुन भ्रमरों का गुञ्जन;
विस्मय का नयनों में अञ्जन;
टूट गयी आंसू की डोरी,
छूट गयी आशा की उलझन!
उजड़ गया वह मेरा उपवन!!
नहीं आज सुन्दर अलिबेली;
मुग्धा गन्धा मृदुल चमेली;
बुलबुल की मादक अठखेली;
किस पर भूलूं किससे खेलूं;
कैसे अब बहलाऊं यह मन!
उजड़ गया वह मेरा उपवन!
आज कहां वह मधु की प्याली,
हरी भरी जीवन की डाली;
सौरभ की कोयल मतवाली;
तेरी इच्छा की वेदी पर
अर्पित यह पतझड़मय दुर्दिन!
उजड़ गया वह मेरा उपवन!

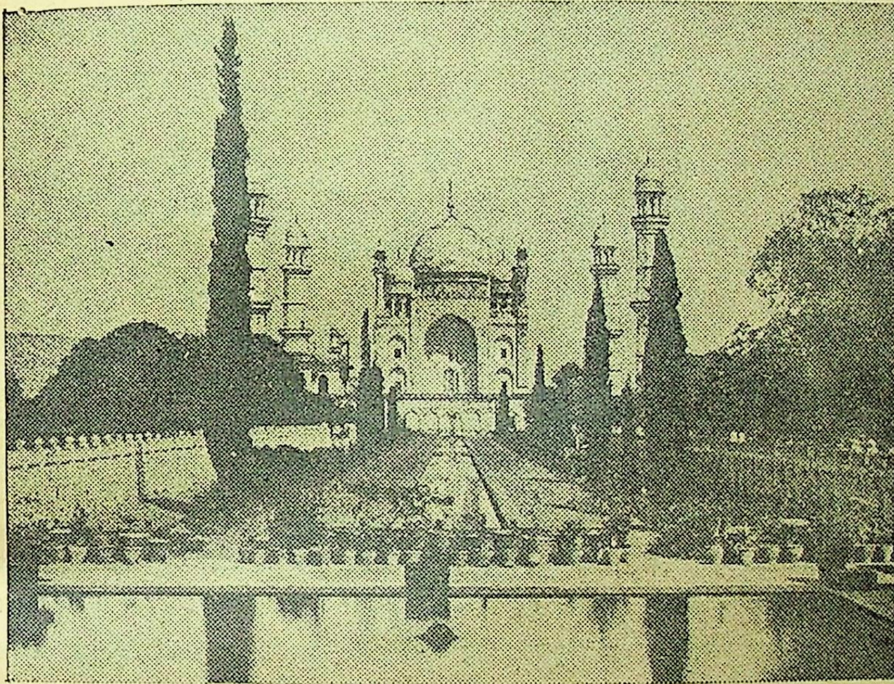
—श्री ब्रजराज शर्मा



वास्तु-कलाका विकास

प्रो० शिवनन्दन प्रसाद, एम० ए० साहित्यरत्न

कलाके दो स्थूल भेद किये जाते हैं—(१) ललित कला, और (२) उपयोगी कला। कहा जाता है कि प्रथममें सौन्दर्यकी प्रधानता होती है और दूसरीमें उपयोगिताकी। ललित कलाके अन्तर्गत संगीत, काव्य, चित्र और मूर्ति-कलाएं मानी गयी हैं और इसी क्रमसे भौतिक आधार के अभावके अनुपातमें पहले आनेवाली कलाओंको अधिक उत्कृष्ट भी माना गया है। उपयोगी कलाओंकी गिनती



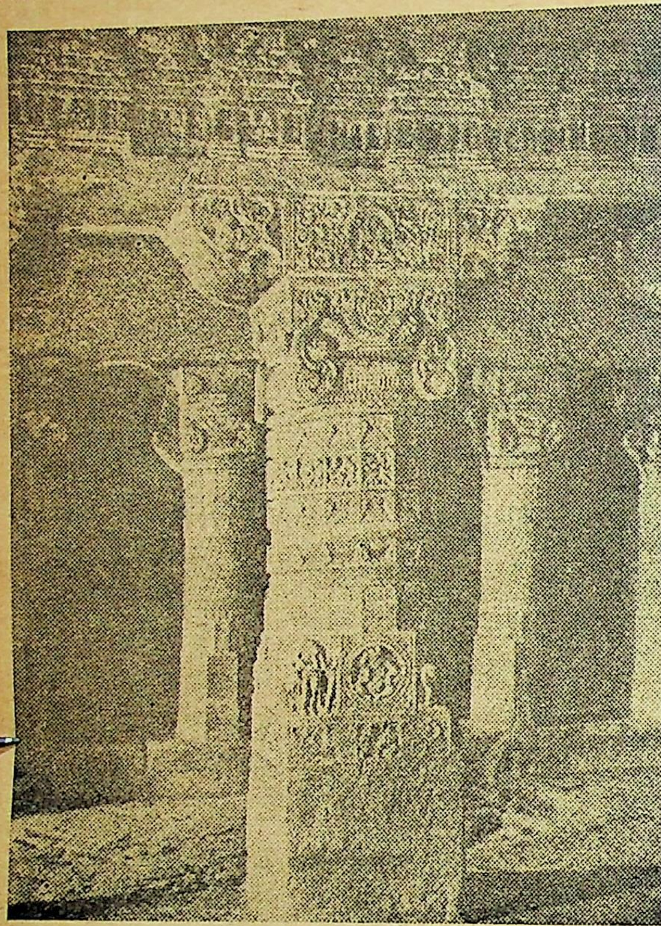
बीबीका मकबरा—औरंगाबाद

नहीं। मानवकी दैनिक आवश्यकताओंके विविध स्वरूपोंके अनुसार इनकी अनेक कोटियां हैं और सभीमें उपयोगिताका पहलू प्रधान रहता है। पर एक ही कला है जो अत्यन्त प्राचीन कालसे, मानव सभ्यताके आदि कालसे ही अपनी परिधिके अन्तर्गत सौन्दर्य और उपयोगिताके तत्वोंका समन्वय करती हुई वर्ग-विभाजनको परास्त करती आयी है—वह है वास्तु-कला!

वास्तु-कलाका उद्देश्य न केवल मानवको शीत-वर्षासे रक्षित कर उसे एक आश्रयस्थल प्रदान कर देना भर है, वरन् मनुष्यकी सौन्दर्य-वृत्तिकी तृप्तिका प्रयास और मानवात्मा-की अभिव्यक्तिका उद्योग भी इसमें आरम्भसे ही निहित मिलता है। नहीं तो धरित्रीके अंचल पर हम आज ताज-महलकी शोभा नहीं देखते। आगे हम संक्षेपमें संसारकी वास्तु-विद्याके विकासकी कहानीका उल्लेख करेंगे।

पाश्चात्य वास्तु-कला :—

वास्तु-विद्याकी प्राचीनताका सबसे असंदिग्ध प्रमाण हमें मिस्र देशकी पुरानी इमारतोंके रूपमें मिलता है। वे पृथ्वीपर सबसेपुरानी वास्तु कलाके अवशेष हैं जो आज भी बहुत कुछ अपने असली रूपमें हैं। ईसाके तीन चार हजार वर्ष पूर्व बनी ये इमारतें आज भी मानवके निर्माणात्मक कौशल-के प्रतीक रूपमें कालको चुनौती दे रही हैं। पिरामिडों का निर्माण ३९०८ ई० पू० के लगभग हुआ माना जाता है। ये पत्थर की बनी विशाल स्तूपाकार मीनारें हैं जिनके अन्दर मिस्रके प्राचीन सम्राटोंकी समाधियां हैं। गिजेह नामक स्थानपर बना पिरामिड सबसे बड़ा है। इसमें ढाई ढाई टनकी बड़ी बड़ी तेइस लाख चट्टानें लगी हैं। सिफ्रन ra—Cephren) का समय ३८४९ ई० पू० और मेनकोरा का समय ३७८४ ई० पू० है। स्फिंक्सका मन्दिर भी इसके कुछ ही काल बाद निर्मित हुआ होगा। कहा जाता है, इसके अन्दर स्फिंक्स नामकी एक दानवीकी मूर्त्ति है, जिसका सिर, स्त्रीका और शेष शरीर पंखदार सिंहका है। गिजेहमें भी ऐसा ही है। मूर्त्ति १८७ फीट लम्बी और ६६ फीट ऊंची है। केवल सिरकी लम्बाई ३० फीट और मुंहकी चौड़ाई १४ फीट है। सखारामें सेरापयम (Serapeum) की कब्र भी वास्तु-कला



अजन्ता गुफाके स्तम्भ

का उत्कृष्ट नमूना है। इन सब इमारतोंकी मुख्य विशेषता यह है कि इनकी दीवारें एक विशेष रूपसे ढालुआं होती हैं जिससे इनका ऊपरी भाग उत्तरोत्तर अधिक संकुचित होता जाता है। नीचेका आधार वृहद् अर्द्धवृत्ताकार होता है और शीर्ष पर विशिष्ट कार्निसकी योजना होती है।

इनके पश्चात् पश्चिम एशियाकी वे इमारतें आती हैं जो असीरिया आदिमें ई०पू० ८००में बनी थी। जैसे बैबेलकी मीनार, जिसका जिक्र बाइबिलमें भी आया है। इनकी वास्तु-कलाकी विशेषता यही है किउसमें मेहराब,गुम्बज और मेहराबदार छतोंको स्थान मिला पर खम्भोंका साधारण-तया अभाव ही रहा।

ग्रीसकी वास्तु-कलाका उदाहरण एथेन्सका पार्थिनन कहा जा सकता है जो अपने कला-उत्कर्षकी दृष्टिसे तत्का-लीन संसारमें एक अलग स्थान रखता है। इसका उत्कर्ष वास्तु-रेखाओंकी प्रयत्नसाध्य सूक्ष्मता और परिमार्जन, आकार अथवा सजावटमें छिछली शृङ्गारिकताका अभाव, आदिमें है। भवन-निर्माण-कौशल, मूर्तिकला और चित्रकारीका सुन्दर समन्वय आश्चर्य-जनक हुआ है। स्तम्भों और द्वारके ऊपर सीधी पटरी आदि-का उपयोग हुआ है।

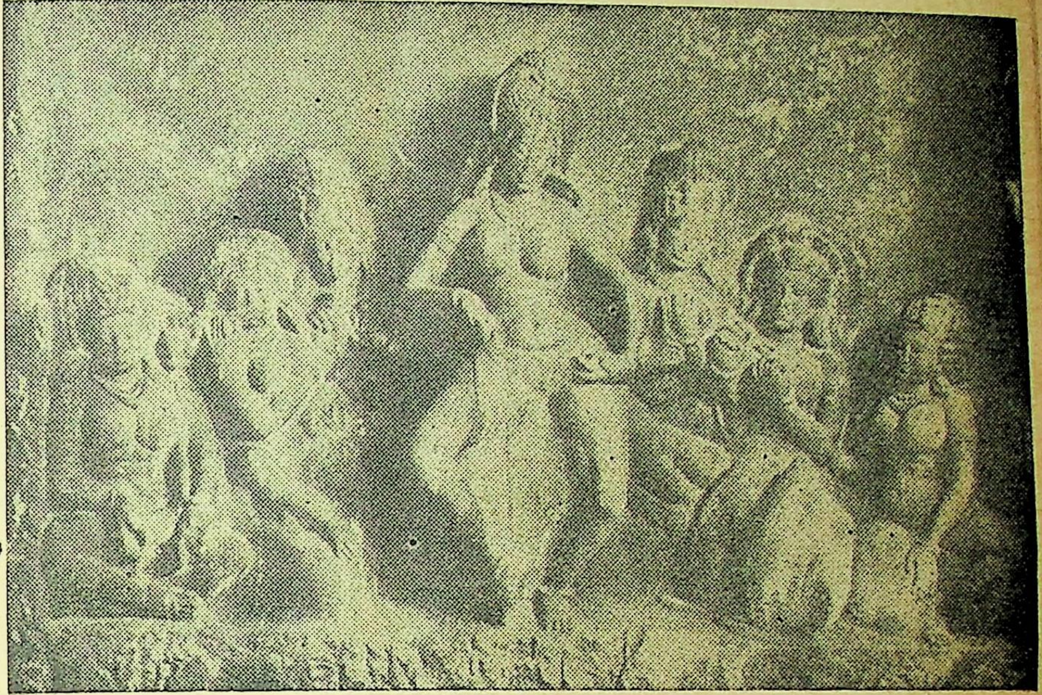
रोमकी वास्तु विद्याका सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन-तम स्मारक पान्थियन है जिसका निर्माण हैड्रि-यन द्वारा १२०-१२४ ई० में हुआ। कोलोसियम भी अपने समयकी उच्चतम इमारतोंमें था। रोम-की वास्तु कलाकी विशेषता मेहराबदार छतों, समृद्ध आकार और शृंगारिक भव्यतामें निहित है। बाइजेण्टाइन वास्तु-कला रोमन-साम्राज्य की नयी राजधानी कुस्तुनतुनियामें विकसित हुई जिसका चरम उत्कर्ष सेण्ट सोफियाके रूपमें दृष्टिगत हुआ। मेहराब और छतोंके निर्माणमें अधिक भव्यता और कलात्मकता आयी। पिसा गिरजाघर रामसे एबी (हैम्पशायर) आदिके निर्माण-कौशलमें ईसाई मतका बहुत अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। मोटे; मजबूत परन्तु सुन्दर खम्भोंपर आधारित छतें इनकी रचनागत विशेष-ताओंमें से हैं। गाथिक वास्तु कलाका सर्वोत्कृष्ट नमूना है चार्ट्सका गिरजाघर। नुकीले मेह-राब, सीधी दीवारें और भारी-भरकम बेकारकी सजावटोंका अभाव इसकी विशेष-ताएं हैं।

इसके बाद नवजागरण (Renaissance) का युग आया। १४ वीं शताब्दीमें इसके प्रभावसे वास्तुकलाका रूप भी कुछ विशेष परिवर्तित हुआ। क्योंकि मनुष्यके भवन निर्माण पर भी उसकी आत्माका, विचारों और संस्कारोंका प्रतिबिम्ब पड़ना अनिवार्य है। सीधेपनकी ओर प्रवृत्ति अब नहीं रही। स्तम्भोंका उपयोग अब स्वच्छन्दतापूर्वक दीवारों के धरातलको सुसज्जित करने और द्वारोंको अलंकृत करनेके लिये होने लगा। दीवारके ऊपरी हिस्सेके आधारके रूपमें स्तम्भों पर निर्भर अर्द्धवृत्ताकार मेहराबोंका उपयोग होता था, सीधी आधार-पीठिकाका नहीं। इस वास्तु कलाका उदाहरण है सेण्ट क्लेमेंट डेन्सका गिरजाघर(लन्दन) जिसका निर्माण काल १६८४-१७१९ ई० है। इसका निर्माण कर्त्ता क्रिस्टोफर रेन है। इसके अलावा १५४६-१८८० में निर्मित The Louvre (पेरिस); १५५०में Giacomo Barxozzo da Vignola द्वारा परिकल्पित Vi la di Pope

Giulio (रोम) तथा मिडिल सेक्सका हैम्प-डेन कोर्ट आदि का नाम भी उल्लेखनीय है।

भारतीय वास्तु-कला—

भारत ने वास्तु-कला का विकास स्वतन्त्र रूपसे किया था और अतीत के उस धुंधले युगमें, जब विश्वकी सभ्यता तिमिरगर्भमें सोई थी। पर उन प्रागैतिहासिक युगोंके अवशेष अबबहुत अधिक नहीं हैं। और न उनके सम्बन्धमें बहुत दूर तक इतिहासका ही साक्षी प्राप्त है। कौन जाने भारतकी अतीत संस्कृतिके कितने पुनीत चिह्नोंको बर्बर आक्रमणकारियोंकी हिंस्र अराजकताने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। फिर भी, जो कुछ भी प्रमाण आज उपलब्ध हैं और काल-कवलित होनेसे अभी तक किसी तरह बचे हुए हैं उन्हींके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारतीय वास्तु-कला आर्योंके भारतमें आनेके पहले ही से विकसित हो रही थी। द्रविड़ आदि जातियां, आज कलके अर्थमें भी असभ्य नहीं थीं, यह प्रमाणित हो चुका है। सबसे प्राचीन अवशेष द्रविड़ सभ्यताके ही मिलते हैं जब इमारतें लकड़ी आदिकी बनायी जाती होंगी। लकड़ी का स्थान जब ईंट-चूनेने लिया होगा, तो भी इमारतके आकारमें कोई आमूल परिवर्तन तत्काल नहीं हुआ होगा।



अजन्ता गुफामें अंकित एक नृत्य-चित्र

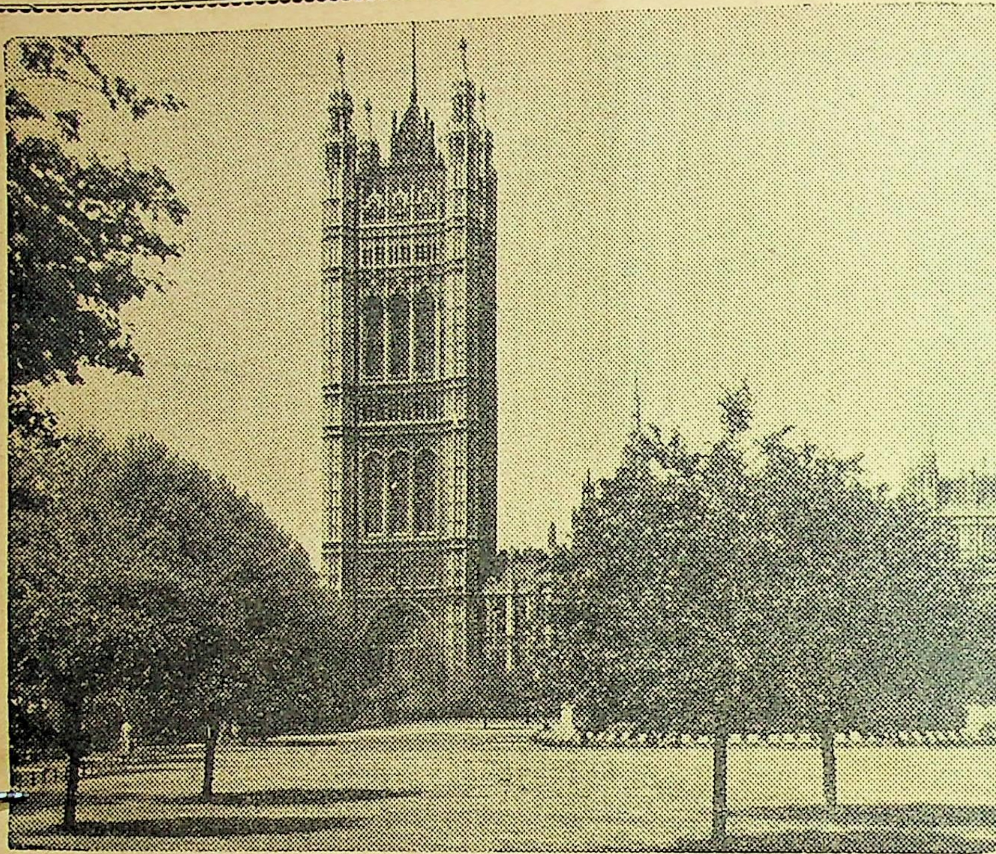
प्राचीन भारतकी वास्तु-कला चार प्रकारोंमें अभिव्यक्त हुई—गुफा, मन्दिर, स्तम्भ और स्तूपोंके रूपमें। बड़े बड़े चट्टानोंको काट कर और खोद कर चैत्य और बिहारके रूपमें बनायी गयीगुफाएं कहींकहीं आज भी वर्त्तमान हैं। "चैत्यके भीतर एक स्तूप होता है और जन समाजके एकत्र होनेके लिये विशाल भवन होता है।...... बिहार अथवा मठमें साधु, भिक्षुओंके रहनेके लिये अलग अलग कमरे बने होते हैं।" *

आज बहुत अंशोंमें सुरक्षित रूपमें जो प्राचीनतम अवशेष प्राप्त हैं वे हैं बौद्ध वास्तु-कलाके। बौद्ध वास्तु-निर्माण-कौशल यह था कि एक ही बृहदाकार पत्थरसे खोदकर सम्पूर्ण मन्दिर अथवा स्तूपका निर्माण कर लिया जाता था। इसके भी दो प्रकार हैं—प्रथममें बृहत् प्रस्तर-खण्डको भीतरसे खोदकर, खोखला बना कर मन्दिरके कमरे आदि की रचना होती थी, और द्वितीयमें बाहरसे ही पत्थरको काट-छांटकर ठोस स्तूपाकार आकृतियां बना ली जाती थीं। प्रथम प्रकारके नमूने एलिफैन्टा (नासिक) और अजन्ता की गुफाएं हैं और द्वितीय प्रकारके उदाहरणमें इलोराकी गुफाएं और सप्त-स्तूपोंका उल्लेख हो सकता है। स्तूप बौद्ध और जैन वास्तु-कलाके विशिष्ट अवयव हैं जो सम्भवतः प्राचीन समाधियोंके परिष्कृत रूप हैं। बौद्ध वास्तु-कलाके अवशेष रूपमें अगणित बिहार और मन्दिर आज भी अपनी प्राचीनताके साक्षी हैं। इसका समय लगभग २५० ई० पू० से ७५० ई० तक है।

जैन वास्तु-कलाका काल १०००--१३०० ई० तक माना

---

१ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति-गौ० ही० ओझा।



ब्रिटिश पार्लमेंटकी लार्ड सभाका भवन

सहायक हैं। भारत में प्राचीनतम खंड़हर महेञ्जोदारो और हरप्पा (पश्चिमी पञ्जाब) के हैं जिनका समय ईसाके पूर्व चतुर्थ सहस्राब्दितक प्राचीन है। इनके सम्बन्धमें सर जान मार्शल, जिनके निरीक्षणमें महेञ्जोदारोंकी खुदाई हुई थी, कहते हैं-"महेञ्जोदारो और हरप्पा दोनों स्थानोंमें एक बात स्पष्ट है कि जो सभ्यता इन दो स्थलोंपर मिलती है वह शैशव-कालकी सभ्यता नहीं है बल्कि भारतवर्ष में

जाता है। आबू पर्वत, खजुराहो, नागदा, मुक्त गिरि और पालीताना आदि स्थानोंके इस कालमें निर्मित जैन-मन्दिर आज भी वर्तमान हैं। आबू पर्वतका जैन-मन्दिर वास्तु-कलाकी दृष्टिसे इतना:महत्वपूर्ण है कि श्री फर्गुसन जैसे लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् उसके सम्बन्धमें लिखते हैं :—

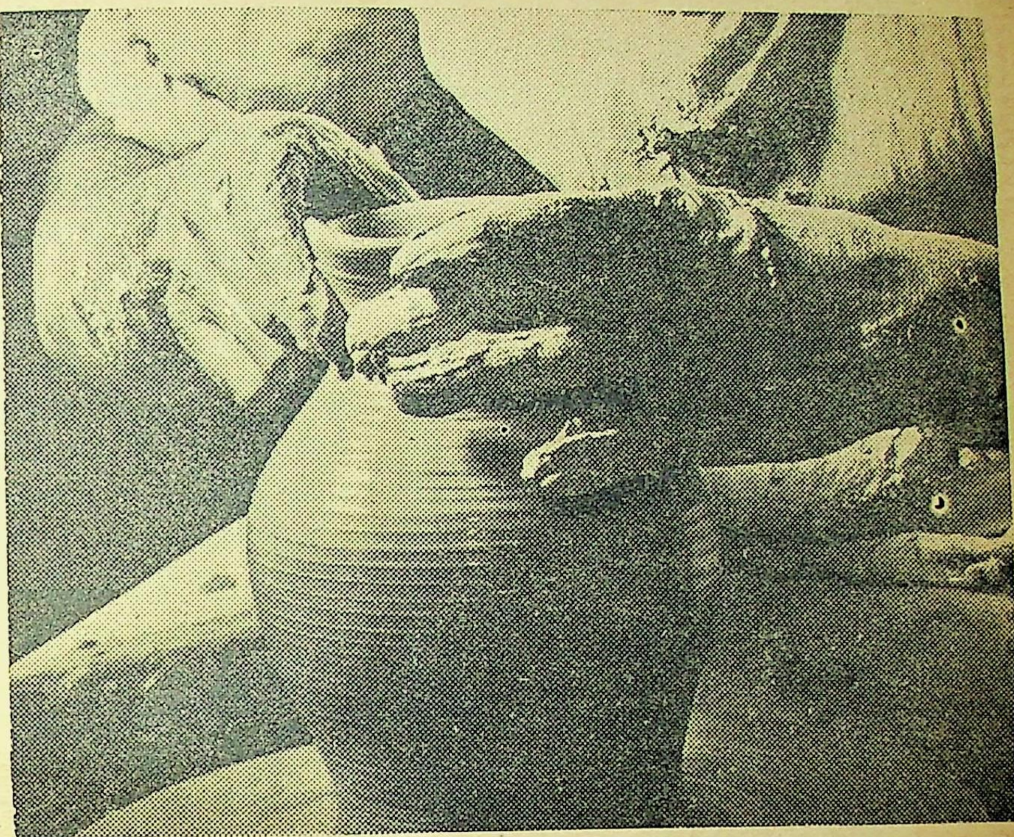
"संगमरमरके बने आबूके मन्दिरोंमें हिन्दुओंके अत्यन्त प्रयासपूर्ण ढङ्गसे फीतेके समान बारीकीके साथ ऐसी रमणीय आकृतियां बनायी गयी हैं कि मैं बहुत अधिक समय तथा परिश्रम देकर भी पत्रपर उनकी प्रतिच्छवि उतारनेमें सफल न हो सका।" *

इसके बहुत अधिक पहलेकी वास्तु-कला (और सभ्यता) के प्रमाण रूपमें जो खंड़हर मिले हैं वे सुरक्षित अथवा सम्पूर्ण अवशेष न होते हुए भी अतीत वास्तु-विद्याकी गतिविधियोंको बहुत कुछ आलोकित करनेमें समर्थ हैं। सिन्धु घाटीकी सभ्यतासे लेकर गुप्त काल तककी वास्तु-विद्याकी विभिन्न स्थितियोंमें तारतम्य जोड़नेमें ये अवश्य

प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त अत्यन्त प्राचीन सभ्यता है जिसके पीछे लाखों मनुष्योंका प्रयत्न छिपा है।......प्रागैतिहासिक कालमें मिस्र, ईराक अथवा पश्चिमी एशियाके किसी हिस्से में भी हमें ऐसी कोई वस्तु नहीं मिलती जो महेञ्जोदारोंके नागरिकोंके रहनेके बड़े बड़े मकानों और सुन्दर स्नान-घरोंकी बराबरी कर सकें। उन देशोंमें देवताओंके विशाल मन्दिरों तथा राजाओंके महलों और समाधियोंके बनाने में धन और बुद्धिका अपरिमित व्यय होता था, पर शेष जनताको मिट्टीकी साधारण कुटियों पर ही सन्तोष करना पड़ता था। परन्तु सिन्धुघाटीकी सभ्यतामें हमें इसके विपरीत यह देखनेको मिलता है कि यहां पर सबसे अच्छे मकान वे होते थे जो नगरवासियोंके लिये बनाये जाते थे।" वैदिक सभ्यताके एकमात्र प्राचीनतम अवशेष नन्दनगढ़की समाधिसे हमें उस समयके निर्माण-कौशलका थोड़ा बहुत आभास तो मिलता ही है।

मौर्य कालकी वास्तु-कलाका उदाहरण हमें गया जिले के बराबर पहाड़ वाले मन्दिरोंमें मिलता है जो पत्थर खोद कर बनाये गये हैं और जिनकी दीवारोंकी चिकनाहट

* Picturous Illustrations of Ancient Architecture in Hindustan,



आज भी बनी हुई है। सम्भवतः ये अशोक कालके हैं। अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र (आधुनिक पटने के पास) की खुदाई (कुम्हड़ार) से वास्तु-कलाकी जो प्रमाण-सामग्री प्राप्त हुई है उसमें तत्कालीन फारसी प्रभाव परिलक्षित होता है। शुङ्ग, कुशन और आंध्र वास्तु विद्याकी झलक चैत्यों, विहारों और वजयन्त प्रासादोंमें दृष्टिगत है। कुछ उदाहरण भरहुत, मथुरा आदिके वृक्ष-मन्दिर, भज, काली नासिक, उदयगिरि, खण्डगिरि (उत्कल) की गुफाएं और तक्षशिला तथा कनिष्कके बनाये स्तूप हैं जो पेशावरके निकट हैं। गुप्त-कालके वास्तु-निर्माण-कौशलके उदाहरण सांचीके स्तम्भयुक्त मन्दिरों और उदयगिरि (ग्वालियर) एलूरा बाग,अजन्ता,और शोलापुरके मन्दिरोंमें द्रष्टव्यहैं गुप्तकालका विस्तार ३२०-६००ई०तक है। नागर शैलीका भूमरा मन्दिर, जिसका पता श्री राखालदास बनर्जी ने लगाया था और जो भरहुतके पास ही है, सम्भवतः ५ वीं सदं में निर्मित हुआ था। इसके खम्भे ताड़के वृक्षके रूपमें गढ़े हुए हैं। * मध्यकालीन वास्तु कलाका परिचय एलिफैन्टाके शैव मन्दिरों, बदामीका दुर्गा-मन्दिर, कोनारकका सूर्य-मन्दिर, पुरीका जगन्नाथ मन्दिर, कन्दर्प महादेव मन्दिर और सिद्धेश्वर मन्दिर (इन्दौर) कांगड़ा जिलेका बैद्यनाथ मन्दिर आदिसे मिल सकता है। आधुनिक नागर शैलीके मन्दिरोंमें बनारसका विश्वेश्वर, वृन्दावनका जुगल-किशोर और मदन-मोहन मन्दिरोंका नाम उल्लेखनीय है। इनकी विशेषता है इनकी चापाकार आकृति जिसमें कार-

कुम्भकार घट बना रहा है

निसोंकी भरमार रहती है और अनेक मंजिलें और छतोंकी समृद्ध योजना होती है। * वेसर, होयसला और सोलङ्की वास्तु-कलामें इससे यह अन्तर है कि उसमें (वेसर आदिमें) द्वार और छतका नीचा पर आन्तरिक विस्तारका बहुल होना, मध्यमें कमरेके साथ तीन मन्दिरों की योजना और कम ऊंची,ढालआं मीनारें औरबहुतनक्काशी और सजावट इनकी विशेषताएं हैं। इस कलाके उदाहरण धारवार और मैसूरके कुछ विशिष्ट मन्दिर हैं। श्रावल बेलगोलामें जैन बस्तियां भी उल्लेखनीय हैं और सोमनाथका मन्दिर, चित्तौड़का किला आदि इसीके अन्दर आते हैं। आबू पर्वतके जैन मन्दिर पर भी इसका गहरा प्रभाव है। समय १०००-१३०० ई०के अन्तर्गत है, जो जैन वास्तु-कलाका काल है।

तेरहवीं सदीसे अठारहवीं सदी तक द्रविड़ वास्तु-कला का उत्कर्ष-युग माना जा सकता है। सारे भारतके मन्दिरों का यदि विस्तृत रूपसे स्थूल वर्गीकरण किया जाय तो कृष्णा

* अंधकार युगीन भारत : डा० काशीप्रसाद जायसवाल पृ० १२६।

* इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये देखिये। गोपीनाथ रायकृत "Iconography."

नदीके उत्तरसे लेकर समस्त उत्तर भारतके मन्दिरोंको हम आर्य-शैलीके और उसके दक्षिण पड़नेवाले प्रदेशोंके लगभग समस्त मन्दिरोंको द्रविड़-शैलीके मन्दिर कह सकते हैं। आर्य शैलीके जैन और ब्राह्मण, दोनों प्रकारके मन्दिरोंमें बहुत कुछ साम्य है। जैसे स्तम्भों, छतों आदिके आकार इत्यादिमें। पर द्रविड़ मन्दिरसे उनकी समानता कम रहती हैं। ब्राह्मण मन्दिरोंमें एक गर्भ-गृह होता है। जहां मूर्त्ति स्थापित होती है और उसके आगे जनसमुदायके बैठनेका मंडप होता है। "आर्य मन्दिरोंमें गर्भ-गृहके ऊपर शिखर और उसके सर्वोच्च भागपर आमलक नामका बड़ा चक्र होता है। आमलकके ऊपर कलश रहता है, और वहीं ध्वज दंड भी होता है।" पर द्रविड़ मन्दिरोंकी बनावट भिन्न होती है। गर्भगृहके ऊपर गोल आकृतिके विमान (= ऊंची मंजिलें) जिनका फैलाव ऊंचाई के साथ क्रमशः कमता जाता है। और इन विमानों द्वारा आच्छादित मंडप इस शैलीकी मुख्य विशेषताएं हैं। प्रत्येक मंजिल (विमान) को लघु स्तम्भों अथवा गवाक्षों द्वारा सजाया जाता है। गर्भ गृहके सामनेका मंडप भी अनेक स्तम्भों पर आधारित रहता है जिसके किसी द्वार पर 'अनेक देवी-देवताओंकी मूर्तिवाला गोपुर रहता है जिसे कोयल कहते हैं।' यह मंडप जनसमूहके बैठनेके लिये होता है। मामल्लपुर (विङ्गलीपट्ट) का पल्लव मन्दिर, श्रीरङ्गम् (त्रिचिना पल्ली) इलोरा, तंजोर, वेलूर, (मैसूर) तथा बदामी (बीजापुर) एवं काञ्जीवरम्के मन्दिर इसके साक्षी हैं। उत्तर भारतमें भी कुछ मन्दिर इस शैलीके हैं जैसे पुष्कर, वृन्दावन आदिमें रङ्गजी आदिके नये मन्दिर। पर ये नियमके अपवाद हैं।

भारतीय वास्तु-कलाके कुछ अन्य उदाहरण :—कोल वास्तु-कला—जिसके अन्तर्गत केन्द्र-मन्दिरका अत्यधिक विकसित रूप, जिसका साधन कार्निसोंकी बहुलता है, जैसा तंजोरके विमानोंमें देखनेमें आता है,---सम्भवतः इसके बाद ही विकसित हुई। पाण्ड्य वास्तु-कला इससे केवल एकबातमें भिन्न है कि इसमें बड़े सिंहद्वारोंका विकास हुआ। विजयनगर और मदुराके मन्दिर, तड़पात्री और मीनाक्षीमें बड़े-बड़े मंडप हैं जो स्तम्भोंकी बहुलतापर निर्भर हैं। जम्मूके पाण्डु और मार्त्तण्ड मन्दिरमें दोहरे नुकीले पिरामिडोंसे युक्त छतोंकी योजना है। नेपालके कुछ मन्दिर चीनी शैलीके छज्जेदार और कई मंजिलोंसे युक्त हैं।

इन सबसे कुछ विशिष्टता रखने वाले हैं राजपूत वास्तुकलाके उदाहरण, चित्तौड़, ग्वालियर, जोधपुर आदिके किले। इनमें कृत्रिम शृङ्गारिकता नहीं, गाम्भीर्य है, नक्काशी और बारीकी नहीं, भव्यता और सुन्दरता है। राजपूत जीवन की ही तरह ये किले वीरता और सादगीके प्रतीक हैं। अन्त में बीजापुरके गोल गुम्बजका नाम भी उल्लेखनीय है, सारी दुनियांमें जिसकी बराबरी विस्तारकी दृष्टिसे कोई एक अकेला गुम्बज नहीं कर सकता।

पाश्चात्य और भारतीय वास्तुकलाका तुलनात्मक अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि भारतकी वास्तुकला वस्तुतः विश्वमें सर्वाधिक प्राचीन, सबसे उत्कृष्ट और अमर है। यह सत्य पश्चिमी विद्वानोंको भी मानना पड़ा है। श्री हैवेल कहते हैं—"भारतीय शिल्पकलाका स्थान यूरोप और एशियाकी सब शैलियोंमें सर्वोच्च है।···भारतवर्षने जितना बाहरवालों से सीखा है उससे सौगुना अधिक उन्हें सिखलाया भी है।" * श्री हैवेल, एक स्थल पर पुनः कहते हैं। "भारतीय शिल्पकी मूर्तिमें प्रदर्शित जो गहरायी तथा आन्तरिक भाव दीखते हैं, वे ग्रीसमें नहीं पाये जाते।" × प्रोफेसर हीरन भारतके स्तम्भों परकी खुदाईको और स्त्रीकी आकृति वाले स्तम्भोंको ग्रीसकी वास्तुकलाके किसी भी उदाहरणसे श्रेष्ठ मानते है। और भी अनेकों विद्वानों के मत उद्धृत किये जा सकते हैं, पर विस्तार-भयसे इतना ही पर्याप्त समझा गया।

प्राचीन भारतमें वास्तु-कलाकी उन्नतिकी परिचायिका एक पुस्तक प्रकाशित हुई है—"समरांङ्गण सूत्रधार।" इसके लेखक राजा भोज हैं। "इस ग्रन्थमें नगर, दुर्ग आदिके लिये उचित भूमिका वर्णन, शहर बसाने उसके चारों ओर खाईं बनाने, राजाओंके भिन्न भिन्न प्रकारके महल, उद्यान तथा मूर्त्तियां आदि बनानेका विस्तृत और महत्वपूर्ण वर्णन है।" (गौ० ही० ओझा) पुस्तकके ३१ वें अध्यायमें (यंत्राध्यायमें) अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओंके बनानेकी युक्तियां वर्णित है, जैसे लिफ्ट, विमान, यंत्र द्वारा परिचालित स्त्री, हाथी, फौआरा आदि।

आज इस बौद्धिक जागरणके युगमें भी उन अतीत कलाकारोंके प्रयासकी स्मृति हमें वांछित आलोक प्रदान कर सकती है।

---

* Indian Sculpture and Painting, Page 169

× Indian Sculpture and Painting, Page 144

हिन्दी साहित्यमें प्रगतिवाद

प्रो० जनार्दन मिश्र 'पंकज' शांति निकेतन

प्रगति साहित्यका धर्म है, इसलिये साहित्यमें प्रगतिवादका साधारणतया कोई अर्थ नहीं होता। मन्दाकिनीके निर्मल स्रोतकी तरह साहित्य सर्वदा गतिशील है—पोखरेके पानीकी तरह गन्दा और बद्ध नहीं। साहित्यका आधार मानव जीवन है, मानव समाज है, अनन्त प्रकृति है। इन तीनोंमें से जड़ या स्थिर कोई भी नहीं है, सब निरन्तर गतिशील और परिवर्तनशील है। अतएव परिवर्तनीय अथवा गतिशील आधारोंपर पलनेवाला साहित्य कभी बद्ध हो ही नहीं सकता। जीवन और जगत्की गतिके अनुसार वह स्वयं अग्रगामी होता रहेगा। मानव-जीवन और समाजके आज तकके इतिहासमें साहित्यकी गतिशीलताका धर्म स्वतः स्पष्ट है। स्पष्टतया हम यह कह सकते हैं कि पथिकके जीवन-संबलकी गांठकी तरह साहित्य उसके साथ ही साथ बढ़ता चला जाता है। पथिकका पाथेय सदा उसके साथ है और उसी आधारसे उसे आगे बढ़नेकी गति मिलती रहती है। इसलिये साहित्य सदा गतिशील है, साहित्यमें प्रगतिवाद कोई चीज नहीं। किन्तु हिन्दी संसारमें प्रगतिवादकी आज धूम है। इस प्रगतिवादसे एक विशेष तात्पर्य यह है कि समाजद्वारा शोषितोंके प्रति हमदर्दी' सामन्तशाहीसे लड़नेके लिये विद्रोहकी भावना और समाजमें असमानतासे फैली हुई बुराइयोंके विरुद्ध आत्म विश्वासको जगाना। आजके युगकी पिसी हुई मानवताके उद्धारके लिये इन्हीं भावोंके विकासका प्रयोजन है। प्रगतिवाद इसी पीड़ित पददलित मानवताको मुक्त और विकसित करनेका शंखनाद है। किन्तु यहां प्रगतिवादसे क्रान्तिवादका अर्थ न लेना चाहिये। प्रगतिवादी कुचले हुए लोगोंको जगाते हैं, पीड़ित-पददलित मानवताको समवेदना देते हैं, पर क्रान्ति नहीं करते।

साहित्यकी दुनियामें आज जिस प्रगतिवादके नाम पर सिर पर आसमान उठाया जा रहा है, वह विदेशी हवाके साथ यहां आया। फ्रांसकी राज्यक्रांति और रूसकी जारशाहीके अन्तके मूलमें जो भावना विजय पा चुकी थी, उसने संसारकी आंखोंको ही चकित नहीं किया, उसके हृदयका भी मोह लिया। सदियोंसे परतन्त्रताके यूपकाष्ठमें बलिदानके बकरेकी तरह तिलमिलाते भारतको रूसकी विजयने विचलित कर दिया। इसकी पीड़ित आत्माने रूसके आदर्शोंमें अपने कल्याणकी आशा-किरण देखी। पूंजीवादने छल और सुविधाके मानवी हकको एक वर्ग विशेषकी मुट्ठीके अन्दर कर दिया। खूनको पानी करनेवाले मजदूर, एड़ी-चोटीका पसीना एक करनेवाले किसान कुछ सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके बेगार हो गये। जीवनमें त्याग और तपस्याका धर्म उनका रहा और उसके फलस्वरूप वे सामन्तशाहीके विशाल स्वार्थके शिकार हो गये। विद्या, बल और अर्थ सामाजिक श्रृंखलाको ठीक रखनेवाले तीन स्तम्भ वर्गविशेष के कब्जेमें चले गये। फलस्वरूप विश्वकी जन संख्याका बहुत बड़ा हिस्सा कुछ ही लोगोंके हाथकी कठपुतली हो गया। संसारको छातीके खूनसे सींचकर हरा-भरा करनेवाले किसान और मजदूरोंका विपुल समुदाय मुट्ठीभर पूंजीपतियों द्वारा शोषित होने लगा। लक्ष्मी, सरस्वती और बल-तीनों एक ही दलकी सम्पत्ति हो गये। प्रगतिवाद इसी विश्रृंखलताका विरोध और समानताका दावा लेकर आया। प्रगतिवादी साहित्यका भाव-ईंधन भारतमें प्रस्तुत था, चिनगारी विदेशसे आ कर लगी।

किन्तु इसका यह अभिप्राय तो हर्गिज नहीं है कि प्रगतिवाद, समाजवाद या यथार्थवादका दूसरारूप है। उन दोनोंसे इसका बहुत कुछ सादृश्य हो सकता है। पर ये एक नहीं हैं। समाजवादी व्यवस्थाका जलता उदाहरण रूस है। रूसमें जारशाहीके पतनके बाद समाजवादका व्यवस्था ही न्याय्य और उपयोगी थी। भारतके लिये इस 'वाद'में आग्रह और आकर्षण होना स्वाभाविक था। क्योंकि इस वाद द्वारा उसने पीड़ितोंके कल्याणका मन्त्र पानेकी आशा देखी और यह देखा कि इसके द्वारा पूंजीवादी वृत्तिकी चिता सजायी जा सकती है और उसकी राख पर समान मानवताकी नयी मूर्ति तैयार की जा सकती है। किन्तु सच्चे अर्थमें यदि एकमात्र प्रगतिवादका यही उद्देश्य होजाय, तो साहित्यके विराट व्यापकत्वकी हत्या हो कर उसे एकाङ्गी हो जाना पड़ता है। फलतः प्रगतिवादका अर्थ समाजवाद तो हो ही नहीं सकता। इसी तरह यथार्थवाद भी नहीं। क्योंकि साहित्य केवल वह दर्पण नहीं, जो वर्तमानका यथार्थ प्रतिबिम्ब उतार कर दिखा दे। दुनियाको अपने वर्तमान स्वरूप पर ही आस्था नहीं। निर्वीज फोटोग्राफकी कीमत भी क्या हो सकती है?

साहित्य तो वह आईना है जिस पर वर्तमानके साथ भविष्यके आदर्श रूपका खाका भी उतर आये। हम क्या हैं, साहित्य केवल यही नहीं दिखाये—साहित्यका यह भी बड़ा धर्म है कि वह हमें बतला दे कि हम क्या हो सकते हैं? कविवर मैथिली शरणजीकी नीचेकी ये चन्द पंक्तियां उक्त कथनको भली भांति स्पष्ट कर देती हैं—

हो रहा है जो जहां सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिये कब, क्या, कहां,
व्यक्त करती है कला ही यह यहां,।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।

युगकी सृष्टि और श्रष्टा साहित्यकारोंके लिये कला एकाङ्गिनी नहीं—बल्कि जीवनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको कलित-ललित करनेका मूल साधन है। वह अभिप्रेत ही नहीं, अभिव्यक्ति भी है, साध्य नहीं, साधन है। इसी तरह साहित्यके आधार स्वरूप सिर्फ किसान और मजदूर ही नहीं, अमार-उमराव भी उसके आधार हैं। जीवन प्रकृतिसे अपना संबंध विच्छेद नहीं कर सकता, जैसा कि "ये" प्रगतिवादी करना चाह रहे हैं। साहित्यमें प्रकृति चाहिये, कल्पना चाहिये, अमीर-गरीब, रूपवान् और कुरूप सबका समावेश होना आवश्यक है। इसका क्षेत्र विस्तृत, इसका उद्देश्य व्यापक है। और इसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' लानेके लिये कलाको बहु-मुखी होना ही पड़ेगा।

हिन्दीमें चाहे आज प्रगतिवादकी धूम मची हो, पर हिन्दीमें यह वाद बहुत पहले ही जन्म ले चुका है। जिस दिन भारतेन्दुने 'भारत-दुर्दशा'में "आवहु सब मिलि रोवहु भारत भाई। अहह! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।" कह कर समग्र भारतवासियोंको जागरण-मन्त्रसे उद्बुद्ध किया था, तभी साहित्यकी फुलवाड़ीमें तथाकथित प्रगतिवादकी सांस आ चुकी थी। उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द तथा अन्य लोगोंने भी किसान और मजदूरोंकी पीड़ा, गरीबोंकी आह-कराह तथा वेदना यन्त्रणाको साहित्यमें स्थान दे कर दीन-दलितों की वकालत की थी। क्या वह प्रगतिवादी साहित्यका रूप नहीं था? गुप्तजीकी 'भारत-भारती' तो आज भी गीताकी तरह आदृत है—नवयुवकोंके गलेका हार है, क्या वह इनका सन्देश नहीं सुना गयी थी? कहते हैं, राष्ट्रीयताका उद्बोधन भी प्रगतिवादका अनन्य अङ्ग है। क्या उपर्युक्त ग्रन्थोंमें प्रसुप्त राष्ट्रीयताको जगानेका शंखनाद नहीं था? 'भारत-भारती'ने महात्मा गांधीकी आंधीमें तूफानका बल दिया और उस समय बाइबिलकी तरह उसका आदर भी हुआ। बादको 'एक भारतीय आत्मा' सनेही, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर, पन्त, निराला आदिने इस वादकी वेदीपर बहुत फूल चढ़ाये और आज भी इस वादकी उपासना धड़ल्ले से हो रही है।

इस वादकी उपयोगितासे किसीको इन्कार नहीं हो सकता। मानवताका विकास, पीड़ितोंको सुख-सुविधा, समान हक मिलना, राष्ट्रीयताका जागरण भला किसे प्रिय नहीं? किन्तु इस वादकी सङ्कीर्ण परिधि ही आपत्तिका एकमात्र और सबसे बड़ा कारण है। प्रगतिवादियोंका एक निश्चल उद्देश्य है यानी यही कि किसान और मजदूरों पर लिखा जानेवाला साहित्य ही साहित्य है—बाकी कूड़ा। साहित्य इतना सीमित नहीं हो सकता। वाद और वृत्तियां धाराएं हैं और उनका सङ्गम-सागर साहित्य है। साहित्य-को एक वृत्ति-उपजीवी नहीं बनाया जा सकता। संसारमें रोटीका राग जितना सत्य है, प्रेमका आनन्द भी उतना ही सत्य है। दुखियोंके आंसूका जो मूल्य है, साहित्यमें अमीरों-के उल्लासका भी वही महत्व है। साहित्यकी सीमाको बांध-बांध कर परिमित नहीं किया जा सकता। वह अन्याय तो है ही, असम्भव भी है। आप किसी वादके उपासक हो सकते हैं, किन्तु साहित्यका आदि-अन्त उसीमें न मानिये। उसकी दुनियां दो गोलार्द्धोंकी तरह मापी हुई नहीं है, आकाश-पाताल भी उसमें शामिल हैं।

"सत्य सदा शिव होने पर भी विरूपाक्ष ही होता है।"



आपका मिजाज कैसा है ?

श्री सरयू पण्डा गौड़

अब चाहे आप क्या सारी दुनिया कहे मानना ही पड़ेगा। हम तो जानते हैं, यह दुनिया जीते हुए गोलकी बजनियां है। "बेटा हुआ तो मेरा और बेटी हुई तो तेरी।" संसारकी यह परम्परा आजकी ही नहीं मनु, शतरूपाके ही समय से है। हार जानेपर घरका कुत्ता तक हंसता है, और जीत जानेपर घोर शत्रु भी सम्मुख शीश झुकाता है। हमारे मित्र पं० रामछबीले आज प्रेमके जुएमें बुरी तरह हार गये तो आप या सारा संसार अथवा स्वयं उनकी प्राणाधिका प्रेयसी "आपका मिजाज कैसा है" पूछ-पूछ कर इस गरीब निश्छल-नेहीके घोर सुकोमल सुहृदय को चाहे शिवाजी का 'बघनखा' पहन कर चुकौटियां काटे या महाराणा प्रतापका भाला फेंक कर मारे सब स्वीकार सब सह्य। किन्तु मैं तो जानता हूं, सचाई क्या है ? उधरसे मुहब्बतका कैसा उमड़ा हुआ दरिया गरजता, गूंजता, लहरें मारता भाई छबीले जी का पादारविन्द छूनेको मचला आ रहा था। आप सबूत लीजिये, और एक एक बातका एक एक स्नेह-चेष्टाके वाकयातकी सारी राई-रत्ती तो मैं भाई छबीलेजीके घोरःतिघोर घनिष्ट मित्र होनेके कारण जानता हूं।

आप मेहरबानी करके माथा धोकर मुलाहिजा व कान साफ कर गौर फरमाइये। एक युवक बसन्तकी शामको एक परम पुष्पित, पुलकित पार्कके एकान्त कोनमें अवस्थित बेंचपर गुपचुप विराजमान है। उसकी तरुण भावनाएं ताड़के बराबर ऊंची होकर संसारकी नाना रङ्गीनियां पर्यवेक्षणमें मशगूल हैं। कभी वह नन्दन-काननकी किन्नरियों से किल्लोल करता है, कभी गुलशनकी गुलजारीमें गर्क हो आपा खो बैठता है। दिलकी उड़ानमें वह कैसी-कैसी चौकड़ियां भरता है ! उस बी०ए० विद्यार्थीके महा-मस्तिष्क में महाकवि कालीदासकी महा-महिम सुन्दरी सुललना शकुन्तला सिसक रही है, या कवि पुङ्गव शेक्सपियरके प्रेमातुर रोमियो-जुलियेटकी भावनाओं और भावोंकी इस भारी भीड़में, उस एकाकी नीड़में नीली बूटेदार बनारसी साड़ीकी सिकुड़नमें सिमट कर मिस खातूनको उस तरुणके पाससे एक बार, दो बार नहीं, कुल चार बार गुजरने यानी आने जानेकी आवश्यकता क्या थी ? एक उमंगकी चङ्गपर चढ़े जवानको खासा स्नेह-जङ्गमें जूझ मरनेको जोर देनेकी क्या जरूरत थी ? मानना होगा, व्यर्थ, फिजूल, निरर्थक।

भाई छबीलेजी अपने भावोंके तुरङ्ग पर अपनी तरुणाई को चढ़ाये किस त्वरित-गतिसे किस तल-तलातल या आसमान पर उड़े चले जा रहे थे, इस क्यादशामें मिस खातून के खामखा उन्हें छेड़ने, उसकाने, उभाड़नेके ये अर्थ नहीं लगाये जा सकते कि मिस खातून छबीलेकी ओर अवश्य आकर्षित हुई है ?

भाई छबीलेजी उस शाम घबरायेसे होस्टल पहुंचे और पहुंचते ही उन्होंने मेरी खोज शुरू की। इस व्यग्रता व बेचैनीसे उन्होंने मेरी तलाशीके लिये होस्टलका कोना-कोना तो क्या पैखाना व पेशाबखाना तक हाथोंमें छ बैटरीवाला बड़ा 'टार्च' लिये छान मारा कि जितनी मुस्तैदीसे खुफिया वाले भी किसी बम्बबाज क्रान्तिकारी की खोज न करेंगे। कुछ देर बाद लौटा तो देखा, भाई छबीलेजी और अपने ही रूमके निवासी, सहपाठी आचारी रामदेनीजीमें घोर वाग्युद्धके साथ ही साथ मल्ल-युद्धका भी विराटायोजन हो रहा है। दोनों ओरसे धोतियां कमरमें लंगोटकी मानिन्द कसी जा चुकी हैं और जल्दी जल्दी आस्तीन चढ़ाया जा रहा है। कमरेके चार पढ़े लिखे भलेमानस लोग अपनी अपनी भलमन्सीका भयानक दृश्य दिखला रहे हैं। मैं भी घबराया, पूछा-'बात क्या है, जो यों कमरेमें' 'चीन जापान' का नज्जारा उपस्थित है ?" तो हमारे कमरेके सबसे बड़े बुजुर्ग भलेमानस, एम० ए० स्टूडेण्ट रामदेव बाबू घोर-गम्भीरतासे विषयको महत्व देते हुए बोले---'भई एक तरह समझो तो बात कुछ नहीं, नहीं तो बड़ी, बहुत बड़ी है। मैंने कहा—यह मल्लायोजन बड़ी बात बना देनेके कारण हो रहा है, या छोटी।

रामदेव—"भई वाह ! खूब पूछने वाले आये। दुनियां में कहीं छोटी बातके लिये झगड़ा हुआ है ? जब हुआ है बड़ी बातके लिये।

मैंने कहा—झगड़ा तो बरवख्त दुनियामें हो ही रहा है, मगर वह झगड़ा हमारे कमरेमें, आप जैसे धीमान-सत्पुरुषोंके रहते, चला आवे, यह संसारके झगड़ेसे अधिक

अनर्थ की बात है। आप जैसे विद्वान पुरुष बड़ीसे बड़ी बातको छोटी कर इस महायुद्धको स्थगित कर सकते थे।

रामदेव—लो, भइया, इनका कहना सुन लो! जाने हम किस कैंचीसे कतर कर बड़ी बातको छोटी कर देते? वाह! मैं—जबानकी जिस मशीनसे आपसे सुयोग्य पुरुष छोटी बातको बड़ी कर देते हैं। उसीसे!

रामदेव पहले बात भी सुनोगेकि यह भीम व जरासन्ध-का संग्राम क्यों हो रहा है? तुम जानते हो, बेचारे आचारी हमारे कालेज भरमें एक नैष्ठिक, नियमित, नेमी ब्राह्मण-रत्न हैं, जिस पर हम सब ब्राह्मणोंको घोर गर्व होना चाहिये। बोलो इसे स्वीकार करते हो या नहीं।

मैं—अच्छा, और आगे फरमाइये।

रामदेव—पहले इसे स्पष्ट करो, ताकि यह भी निश्चय हो जाये कि जिस आचारीके प्रति सारे कालेजका परमपूज्य भाव है, तुम्हारा क्या है?

मैं समझ गया, आज इन भलेमानसोंका कहीं मनोरञ्जन न हुआ, न आज ये सिनेमा गये, न क्लब। सामान यह मुहय्या कर लिया या खुद-ब-खुद हो गया। अब जो मैं कहूं और सच्ची बात, और सारा कालेज ही क्यों,स्वयं राम-देव बाबूका भी आचारीके प्रति सिवा इसके कि "आचारी इस बीसवींशदीके सभ्य युगके पुराने टाइपके जाङ्गलू है।" और कुछ नहीं। तो छबीलेको छोड़कर आचारी महाराज हमींसे मल्ल-युद्धकी सारी कलाबाजी दिखाने लग जायें और रामदेव बाबू हमें भी मनोरञ्जनका मसाला बनानेके लिये आचारीको यों आसमानपर चढ़ाकर हमारी स्वीकृति चाह रहे थे। लाचार हमें भी 'हां' कहना ही पड़ा। अब रामदेव बाबू: जरा मुस्कुराते होठकी बगलमें तर्जनी रगड़ते बोले—'सुनो बात यह है कि आचारी बेचारे शौचा-लयमें शौच कर रहे थे, इसी समय हड़बड़ायेसे जाने क्या ढूंढ़ते, तुम्हारे छबीलेजी पाखानेमें घुसे और "टार्च" इनके मुंहपर दे मारा, और अचानक आचारी बेचारे घबड़ा कर बोल उठे, अब इनका कहना है, जनेऊ हमारा अपवित्र हो गया। तुमने ऐसा क्यों किया? हम—तो समझो कि बीच बचाव कर ही रहे हैं पर भई बात बड़ी हो गयी जरूर।

मैंने कहा—क्या बड़ी हो गयी। जनेऊ दूसरा ले लें। और क्या? मान लीजिये, जान या अजानमें, अब तो गलती हो गयी।

आचारी तमक कर बोले—चलो, चलो बड़े आये दूसरा जनेऊ देने। मात्र जनेऊ बदल देनेसे हो गयी शुद्धि।

मैं-- तब फिर क्या! हम लोग भी तो यही करते हैं।

आचारी---तुम्हारा और हमारा जनेऊ बराबर! तुम लोग तो साबुनसे जनेऊ धोते हो, देखा है कभी मुझे ऐसा करते?

मैं---तो फिर आप ही कहिये ना, आपके जनेऊकी शुद्धि किस प्रकार होगी।

आचारी---संस्कारसे। सर्वप्रथम जिस विधि और संस्कारसे यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, वैसा ही होना चाहिये।

मैं---ओफ हो! तब तो कम-से-कम ५००) रु० चाहिये।

रामदेव बाबू बोले---हां, तो इसमें क्या शक। भई नाराज न होना, शास्त्राज्ञा तो यही है, कि यज्ञोपवीतकी अशुद्धिपर संस्कार होना चाहिये।

मैंने कहा---यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि हमारे कक्ष-वासी शास्त्र व शास्त्राज्ञा पालन भी जानते, मानते हैं, पर मेरा निवेदन है कि अभी भोजन हो। ११ बज रहा है, फिर शास्त्र-चर्चाके निमित्त सारी रात अपनी है, खूब होगी शास्त्र चर्चा।

पर रातको शास्त्र-चर्चा क्या होगी। छबीलेलालकी प्रेम-अर्चा प्रारम्भ हो गयी। छबीलेजीने कहा---भई शामको मैं तुम्हारे लिये काफी बेजार हो गया तभी इस मूरखसे भिड़न्त हो गयी। मिस खातूनको तो तुम जानते हो, जो अपने होस्टलके फाटकके सामनेवाले मकानमें रहती हैं। अपने कालेजमें पढ़ती हैं।

मैं चुप छबीलेका मुंह ताकता रहा, और छबीले खातून का हुलिया मुझे बताते रहे---अरे वह-वह, पतली-पतली-सी, जो लम्बी-लम्बी दो लटें कानोंके गिर्द लटकाये, हरे रेशमकी "बो" लगाये आती है। नाक पतली सुग्गे-सी। आंखें बड़ी आमके फांक-सी, पतला-सा होठ, पान जैसा पाछे बटनवाला ब्लाउज पहनती है,जरा कुछ मचल कर चलती हैं।

"बस, बस, बन्द करो।" मैं बीचमें ही अनखा कर बोला---हमारे कान जले जा रहे हैं। मैं इन सब वाहियात बातोंको नहीं सुनता जो खामखा ईमान व दिमाग दोनों खराब करते हैं।

छबीले---तो भई इसमें मेरा क्या कुसूर। मैं तो आज समझो कि गुपचुप पार्कमें बैठा था, अपनी एक नयी कविता गुनगुना रहा था कि इतनेमें मिस खातून आयी और

चली गयीं। बाद फिर आयीं और चली गयी। फिर आयीं और चली गयीं, समझो कि इसी तरह चार बार वे हमारे सामनेसे आयीं गयीं। पांचवीं बार उन्होंने अपना 'सेन्टेड' रूमाल हमारे ठीक मुंह पर झाड़ा और मुस्काती हुई एक ओर निकल गयी। तुम बताओ इसके क्या अर्थ हुए ?

मैंने कहा--अर्थ चाहे जो हो श्रीमान, पर आप इस अनर्थसे सदा दूर ही रहिये और इसका प्रचार कार्य तो कृपया कदापि मत करिये।

पर इश्क़ दबा रह जाये, गैर मुमकिन ! जब सतयुगके नारद बाबा जैसे निराले महर्षि न दबा सके तो कलियुगके छबीले जैसा छैला कैसे दबा सके ? और इस दशामें जब प्रणय-निमंत्रण नायिकाकी ओरसे हो। इसे कौन भकुवा न चाहेगा कि हम हसरत-जदा दिखें, हम सबको रुचें और जो मुझे देखे फरेफ्ता हो गश खा जाये। तितली की तरह सुन्दरियां हमारे गिर्द मड़राया करें, और इस प्रकार यारोंकी जमातमें, बाजारों बारातमें हमारे रूप और सौंदर्यकी धूम मच जाये। छबीलेजीके स्नेहका भी सुपरिणाम वही हुआ। सुबह दस बजते न बजते मिस खातूनके आकर्षणके समाचारसे सारा कालेज अवगत हो गया। अब जिसे सुनिये छबीलेजीको दाद पर दाद, बाढ़ पर बाढ़ दे रहा है। और छबीलेजी फूल कर गुब्बारा हुए जा रहे हैं।

रूप बदल गया। श्रृङ्गारका शौक बढ़ गया। जबान पर औरत इश्क तथा आशिकीके अशायर नक्श हो गये और सुबह शाम "यारकी गली"की परिक्रमा प्रारम्भ हो गयी। पढ़ाई बन्द। किताबें बक्सके हवाले और छबीलेजी, मजनूके मजमेंके मेम्बर।

एक रोज छबीलेजी एक दोनेमें कुछ किस्म-किस्मकी मिठाइयां भरे बड़े उछाहसे लिये हमारे पास आये और बड़े गदगद कंठसे बोले—लो भाई, यह स्नेहोपहार ! उधरसे आया है। एक लड़का दे गया है।

मिठाइयोंसे भरे दोनेको देख हमें भी कुछ अचरज सा हुआ, क्या वाकई खातून इसकी ओर आकर्षित हुई है। और यह अचरज शीघ्र ही विश्वासमें परिणत हो गया है, जब दोनेसे एक खत भी निकला जिसमें इश्ककी बेजारी और बेइख्तियारीके बड़े दिल भोंकनेवाले मजामीन नक्स थे। पत्र पाठोपरान्त वस्तुतः मैं भी काफी प्रभावित, हुआ और जाने क्यों रोज रोज ही नहीं, प्रत्युत प्रति पलके देखे छबीलेको, एक बार खुल कर हसरत भरी निगाहोंसे देख लेनेकी बड़ी प्रबलेच्छा हुई। देखा भी। छबीलेकी सूरत पर एक मुखड़ा गर्वसे दही-बड़े-सा फूल गया है। आंखें बिजली बत्ती-सी चमक रही हैं और छबीले, छबीले न रहकर कोई और ही हो गये हैं, जिसे अजीब शान-बान व आन आ गयी है। बता सकनेको हमारे पास शब्द नहीं हैं। छबीलेजी समझ गये अब हमारा लोहा ये (हम) हजरत भी मान गये, अतः बड़े गरूरसे बोले--अरे भइया, यह कहो कि हम बहुत किनारे-किनारे रहते हैं, न तो कालेजकी कुमारियां, वाकई खासा "जुलेखा" बन कर मर मिटें। मैंने कहा—हां, भाई, अब आजके संसारमें एक "युसुफ" तो तुम्हीं बच भी गये हो।

इसी दिन दो बजे रातमें मैं सोया सोया स्वप्न देख रहा था 'हमारे होस्टलपर दुश्मनका बम्बार्डमेंट' हो रहा है और धड़ाधड़ छतें गिर रही हैं। एक बड़ा टुकड़ा मुझपर भी गिरा और मैं "आह" कह कर अपनी सीटसे उठ भागा, तो मजेदार कहकहा हमें सुन पड़ा। अब हमें मालूम हुआ, छतें सही सलामत हैं। यह "धांय-धांय"की आवाज छत टूटनेकी नहीं वरन् भले मानस महानुभावोंके बेतहाशा चौकी पीटने की है। जाने कहांका राज, कहांकी सम्पदा इन शरीफोंके हाथ लग गयी थी, जो यों तख़त तोड़ चौकियां पीट पीट कर तालियां बजा बजा कर अपनी खुशी जाहिर कर रहे थे। फिर देखा कोई आदमी एक विचित्र वेशमें कमर पकड़े खड़ा है, और ये सज्जनगण एकके बाद दीगर बेहद मुस्तैदी, आजिजी व अखलाकसे पूछ रहे हैं—"आपका मिजाज कैसा है—?" आपका मिजाज कैसा ?"

जिन साहबकी मिजाजपुर्सीके लिये इस दो बजे रातको हो हल्लामा-सा मचा हुआ है, वे साहब कौन-से बड़े आदमी तथा आदरणीय हमारे लिये हैं यह जानना उतना ही फर्ज हो गया है, जितना हर "लीगी" मिनिष्टरको जनाब जिन्ना साहबका ख्याल जानना। क्योंकि एक होस्टलवासीके नाते अपने सहपाठियोंके किसी आदरणीय व्यक्तिका समादर करना हमारा भी तो धर्म तथा कर्त्तव्य था। लिहाजा मैं भी उन महानुभावके सन्निकट गया तो जैसे हमारे पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक गयी--" अरे यह तो बन्धुवर छबीले लालजी हैं। पर इनका मुंह यों क्यों फूल आया है, मानो ततैये ने काट खाया हो। कमर पकड़े यों क्यों खड़े हैं मानो कमर टूट गयी हो। मैं इन्हें पकड़ कर अपने पास लिवा लाया। इनकी ज्यारत करने व मिजाज पूछने वाले सज्जनोंको बहुत समझाया-बुझाया। सारी रात छबीलेसे दुर्घटनाका कारण पूछता रहा, पर छबीले सिवा कराहने व लम्बी-लम्बी सांसें छोड़नेके कुछ न बोले।

सुबह देखा, सारा कालेजही "आपका मिज़ाज कैसा है," पूछनेको फटा आ रहा है। इसी समय देखा एक १५। १६ सालका लड़का बड़े अदबसे छबीलेजीको फर्शी आदाब बजा कर बोला—हुजूर खातून साहिबाने लाखों सलाम कहा है और कहा है पूछ लेना-आपका मिज़ाज कैसा है?

छबीलेजी इस छोकड़े पर भूखे भेड़ियेकी भांति दौड़े। हजारों गालियां दीं। लड़का सर पर पैर रख कर भागा। यही लड़का था जो भाई छबीलेजीको मिस खातूनका विशुद्ध प्रेमोपहार एक दोना स्वादिष्ट मिष्ठानके साथ प्रेम-पत्र भेंट कर गया था।

"आपका मिज़ाज कैसा है?" छबीलेसे पूछनेकी यह रफ्तार माहों जारी रही। प्रोफेसर तकने पूछा, मुंहसे पूछा गया, पत्रसे पूछा गया। टेलीफोनसे पूछा गया। रोज सैंकड़ों नामी बेनामी खत और "टेलीफोन काल" आते रहे। खुद हमने कई बार पूछा पर छबीलेने बताया किसीको कुछ नहीं। हां, हमारे बहुत दिक करने पर छबीलेने इतना ही कहा—भइया! प्रेममें मार खानेकी बात हमने सुनी, व पढ़ी थी, पर प्रेममें "हड्डी" व "बिर्नी"का खोता मुंहपर फेंकवा दिया जाता है, यह हमने न कहीं पढ़ा, न देखा, हां खुद भोगा अलबत्ता।

फिर छबीले पूर्णास्थाके साथ दृढ़ विश्वाससे बोला---अब चाहे दुनिया जो कहे भइया! खातून हम पर आसक्त थी अवश्य और हृदयसे---!

मैं छबीलेको देखता हुआ बोला, वह मुझे आज बिलकुल पागल सा लग रहा था। "आपका मिज़ाज कैसा है।"

छबीले इस पर कट गया जरूर मगर आज जब उसका दिमाग बेठिकाने है तो मुझे एक मित्रके नाते विवश हो पूछना ही पड़ा---"आपका मिज़ाज कैसा है-----।"

गीत

मांग मत वरदान सखि,
अभिशाप ले तू लौट घर!

भूलना मत मार्ग अपना,
प्राण में मृदु साध ले।
देखना मुड़ कर न पीछे,
मधुर स्नेह अगाध ले।
बुझ न जाये क्षीण दीपक
जीर्ण अंचल ओट धर!

फूल कब पथ में बिछे?
कब शूल से भयभीत मन?
आज क्यों इच्छा जगी
जग दे तुझे सुख का वचन?
मोह मत कर सजनि, तू
चंचल बना है व्यथित उर!

जो मिला लेले उसे
अभिशाप या वरदान हो,
है समान तुझे सखी,
वह रुदन हो या गान हो!
सजल तू करुणा जलद-सी
आंसुओं सी बन अमर!

—सुश्री तारा पांडे



युद्धोत्तर योजनाएं—एक जाल है

डा० कैलाश नाथ काटजू

दुनियामें आज जिधर देखो उधर ही युद्धोत्तर-कालीन योजनाओंकी चर्चा चल रही है। मित्रराज्योंके निवासियों के सामने सर्वत्र, सुख-स्वप्नोंका चित्र रखा जा रहा है। युद्ध समाप्तिके बाद यह भूलोक स्वर्ग बन जायेगा। इस दुनियाका रूप बदल जायेगा। इसी तरहकी लुभावनी बातें की जा रही हैं। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने हमारे सामने चार. स्वतन्त्रताओंका आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। अटलांटिक चार्टरको पिछले तीन सालसे, मेरी समझमें सिर्फ इसलिये जिला रखा गया है कि लोगोंके अन्दर युद्धकी थकानका भाव न घर करने पाये और जो लोग बिलकुल क्लान्त हो गये हैं उनमें भी साहस और सजीवता बनी रहे।

कांग्रेसको हालमें प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट द्वारा भेजे गये तथा निकट भविष्यमें जो सन्देश भेजे जायेंगे उनके द्वारा अमेरिकनोंको इस बातका आश्वासन दिया जा रहा है कि पश्चिमी गोलार्द्धमें ऐसी योजनाओंसे काम लिया जायेगा जिससे बेकारीका चिन्ह तक न रह जायेगा तथा रहन-सहन का स्तर ऊंचेसे ऊंचा हो जायेगा। इन प्रशंसनीय प्रस्तावनाओं और योजनाओंकी सफलताके लिये संसारके विराट बाजार चाहिये, जहां अमेरिकन मालकी खपत हो सके। ये बाजार, यदि अमेरिका स्वयं अपना साम्राज्यवादी स्वरूप नहीं बनाता तो कहांसे आयेंगे, यह भगवान ही बता सकते हैं।

इंग्लैण्डमें सामाजिक सुरक्षा तथा बेकारी, अभाव और रोगसे बचानेके लिये बीमेके रूपमें बीवरीज योजनाकी बड़ी शोहरत है, धूम मची हुई है। इस योजनाके कार्यान्वित होनेसे ब्रिटिश श्रमजीवीको वे सब अच्छी वस्तुएं प्राप्त हो जायेंगी जिनके लिये वह इतने दिनोंसे लड़ रहा है।

किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका और इङ्गलैण्ड स्वतन्त्र, स्वराज्य-प्राप्त देश हैं। वे जिस तरह चाहें अपने इच्छानुसार अपने भाग्यका निर्माण कर सकते हैं। किन्तु, मैं देखता हूं कि युद्धोत्तर कालीन पुनर्सङ्गठनकी योजनाकी हरारतसे हिन्दुस्तान भी नहीं बच सका और वह भी उसके फन्देमें आ गया है। भारतीय राष्ट्रीय महासभाने राष्ट्रीय योजना कमीशन नियुक्त करके इस दिशामें श्री—गणेश किया था किन्तु, कांग्रेस बिलकुल भिन्न वातावरण में अपना काम कर रही थी। कमीशनकी नियुक्ति कांग्रेस प्रेसिडेण्टने उस समय की थी जब सात प्रान्तोंमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे। प्रान्तीय स्वतन्त्रताकी सीमाके अन्तर्गत ये प्रान्तीय सरकारें इस स्थितिमें थीं कि वे अपनी योजनाओंको कार्यरूपमें परिणत करके औद्योगिक विकासका काम करें। इन प्रान्तीय सरकारोंने कमीशनको उसके आरम्भिक खोजके कामोंमें अपने सम्पूर्ण समर्थन और सहयोगका आश्वासन दिया था।

बचे हुए दो बड़े प्रान्त बङ्गाल और पञ्जाबने भी, जहां कांग्रेस विरोधी पक्षमें थी, कमीशनके साथ सहयोग करनेका वादा किया था। भारत सरकार भी इस बातकी बहुत सम्भावना थी कि, कमीशनको उसके खोज और अनुसन्धानके कामोंमें आवश्यक ज्ञातव्य आंकड़े तथा आवश्यक बातें बता कर उसकी मदद करती।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू उस कमीशनके चेयरमैन थे। उनके प्रभावोत्पादक एवं प्रेरणात्मक नेतृत्वमें कमीशनने बड़ी अनुकूल स्थिति और वातावरणमें अपना काम आरम्भ किया था। देश भरके तमाम प्रतिभाशाली व्यक्तियोंने सहर्ष और स्वेच्छासे आकर कमीशनको अपनी सेवाएं और सहयोग प्रदान किया और जितने स्वल्प काल तक कमीशन अपना काम कर सका उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वल्प कालमें ही कमीशन अपने काममें बहुत आगे बढ़ चुका था। किन्तु उसी समय युद्ध आरम्भ हो गया। दूसरी अधिक महत्व की समस्याएं उठ खड़ी हुईं और कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने इस्तीफा दे दिया। इसके साथ-साथ नेता जेल चले गये और कमीशनको अपना कार्य स्थगित कर देना पड़ा।

पिछले चार वर्षोंके दौरानकी घटनाओंका सिंहावलोकन करना आवश्यक है। सम्पूर्ण देशकी स्वतन्त्रताके लिये अपने चिरपोषित स्वतन्त्रताके अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंचनेके लिये कांग्रेसने वीरतापूर्ण सङ्घर्ष किया। प्रत्यक्ष असफलता और प्रत्यावर्तनके बावजूद भी कांग्रेस न तो पथ-भ्रष्ट हुई, न

डिगी और न अपने झण्डेको झुकने दिया। अपनी स्वतन्त्रताकी मांगमें वह अटल है। जहां तक कांग्रेसका सम्बन्ध है स्वतन्त्रता उसका प्रथम और सर्वोपरि ध्येय है। मैं समझता हूं कि मुस्लिम लीग का भी यही ध्येय है। "भारत छोड़ो" कांग्रेसका नारा है। 'बंटवारा करके भारत छोड़ो' मि० जिन्नाकी यह उक्ति उसी नारेका संशोधित स्वरूप है। मि० जिन्नाके कथनानुसार स्वतन्त्रताकी मांग और हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश साम्राज्यवादको मिटानेमें मुस्लिम लीग, कांग्रेससे पीछे नहीं है। ये दोनों बड़ी राजनीतिक पार्टियां, इन दिनों इस वाक्यका बड़ा प्रयोग हो रहा है, तदनुसार मैं भी यहां उसी नामसे इनका उल्लेख कर रहा हूं—स्वतन्त्रता और मुक्ति पर ही अपनी सारी शक्ति लगा रही हैं। ये जनसाधारणका ध्यान इसी ध्येयकी ओर ले जाती हैं कि पहले स्वतन्त्रता फिर दूसरी बात।

ब्रिटिश सरकार, जब तक उसके लिये सम्भव है, अधिकार हस्तान्तरित करना नहीं चाहती। हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश प्रभुत्वको मिटाकर अपने घरके वास्तविक मालिक बननेके उद्देश्यसे भारतीय राजनीतिक पार्टियों द्वारा की जानेवाली तमाम चेष्टाओं और प्रयासोंका प्रतिरोध करनेको वह कृतसङ्कल्प है। भारतकी स्वतन्त्रताका प्रश्न अब सिर्फ घरेलू प्रश्न नहीं रह गया। अब अन्य देशोंमें भी, अमेरिका, रूस और चीनमें, यह महसूस किया जाने लगा है कि हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद संसारकी शान्तिके लिये बने रहनेवाले खतरेका एक साधन है। अतः यह एक विश्व समस्या है और तमाम मित्र राष्ट्रोंके राजनेताओंको इस गुत्थीको सुलझानेमें अपना दिमाग लगाना ही पड़ेगा। इस ओरसे संसारकाध्यान अन्यत्र हटा ले जाने और भारतीय स्वतन्त्रताके इस महत्वपूर्ण प्रश्नको एक पार्श्वमें रख अन्य दिशाभिगामी बनानेके उद्देश्यसे वर्तमान सरकारके प्रचारकोंने एक नया रास्ता पकड़नेका इरादा कर लिया है। राजनीतिक अञ्चलोंमें यह बात समय असमय बराबर कही जा रही है कि ब्रिटिश उत्तरदायित्व किसी भारतीय सरकारको सौंपनेके लिये प्रस्तुत है, नहीं सहर्ष प्रस्तुत है, बशर्ते कि अपनी भावी सरकारके विधानके सम्बन्धमें सब भारतीय एकमत हो जायें।

ब्रिटिश सरकार मर्माहत साधुता और भलमनसाहतका स्वांग भर रही है। क्या करें बेचारे, वे तो ट्रस्टीसे अधिक कुछ हैं नहीं। इस भारको वहन करते-करते वे थककर बेदम हो गये हैं, किन्तु नैतिक कर्त्तव्य-ज्ञानसे वे बंधे हुए हैं। जिनकी रक्षाका भार उनपर पड़ा है उनको ध्वंस और सर्वनाशसे बचाना उनका पुनीत कर्त्तव्य है। अगर ये "नाबालिग" आपसमें सलटलें तो ट्रस्टियोंको इस 'गुनाह बेलज्जत' कार्यसे मुक्ति पाकर बड़ी प्रसन्नता होगी। यह चित्र है जो आज अमेरिकनों और रूसियों तथा मध्यपूर्वके लोगोंके सामने पेश किया जा रहा है। किन्तु इतना ही नहीं।

हिन्दुस्तानमें आज हमसे यह कहा जा रहा है कि यह समस्या राजनीतिक नहीं है। समस्या तो आर्थिक है, समस्या है रहन-सहनके स्तरको ऊपर उठानेकी, खरीदनेकी ताकत बढ़ानेकी, देशको रोगों और बीमारियोंसे मुक्त करनेकी, सार्वजनिक स्वास्थ्यको समुन्नत करने, अशिक्षाको मिटाने एवं सब प्रकारके उद्योग-धन्धोंको समुन्नत करनेकी समस्या है। ये बातें हैं, जो आज लार्ड वावेलसे लेकर अधिकारी मण्डलमें सबको यही कहते सुनते हैं और वस्तुतः इसमें तथ्य भी है। हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश शासनकी पूर्ण अयोग्यता और अक्षमताका यह ज्वलन्त उदाहरण है। उसे दोषी प्रमाणित करनेके लिये ये सब बातें उसके खिलाफ एक जबर्दस्त अभियोग पत्र उपस्थित करती हैं।

इस शोक परितापपूर्ण देशमें प्रायः १९० वर्ष तक ब्रिटिश सरकारके हाथमें अभूतपूर्व निरंकुश अधिकार रहे हैं और उनके परोपकारी शासनकालके अन्तर्गत देशवासियोंकी यह दुर्दशा है। किन्तु ये प्रचारक अपना काम इस सिद्धान्तके आधारपर करते हैं कि जनसाधारणकी याददाश्त अत्यन्त क्षीण और दुर्बल है और सहजहीमें उनको प्रतारित किया जा सकता है। यही कारण है कि आज हमलोगोंको युद्धोत्तरकालीन पुनर्गठनकी योजनाओंसे पाटा जा रहा है। इन योजनाओंकी बाढ़-सी आ गयी है। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से हिन्दुस्तानके प्रधान उद्योगपतियोंने देशको पुनर्सङ्गठित करके नवीन जीवनदान देनेके इरादेसे अपनी १५ वर्षीय योजनाके साथ आगे आनेको यही समय उपयुक्त समझा। १० हजार करोड़ रुपये इस योजनाके अनुसार खर्च होंगे और हमारी आंखोंको लुभानेवाले इस दिव्य परिणामोंका चित्र उपस्थित किया गया है। यह सत्य है कि यहएक विस्तृत रूपरेखा मात्र है और कोई विषय अछूता नहीं छोड़ा गया है। लन्दनमें स्टर्लिङ्ग पावनाके रूपमें रुपया प्राप्य है ही, शेष ऋण और टैक्ससे आ जायेगा। इन मित्रोंने अपने महान प्रस्तावोंकी भूमिकामें यह आग्रह भी किया है कि यह भगीरथ प्रयत्न राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही कार्यमें परिणत हो सकता है और इस विराट आर्थिक भारको उठानेके लिये आवश्यक उत्साह राष्ट्रीय सरकार ही पैदा कर सकती है।

सरकार मौकेकी ताकमें थी ही। यह आभास मिलते ही उसने राष्ट्रीय सरकारकी आवश्यकता और आग्रहको बाद देकर आनन-फानन अपनी निजी भारी भरकम योजनाओंसे देशको पाट दिया। भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार के जितने विभाग हैं सबके सब एक साथ अपनी अपनी योजनाएं तैयार करने और उनको प्रकाशित करनेमें लग गये किन्तु जितनी योजनाएं सामने आयी हैं व्यापकता, अस्पष्टता, अनिश्चितता और फिजूल खर्चीमें ये एक दूसरेसे बढ़ चढ़ कर हैं। ऐसा जान पड़ता है कि रुपयेका कोई मूल्य ही नहीं रह गया। अनाप-शनाप आंकड़े हमारे सामने हैं। करोड़ोंकी बातचीत इस तरह होती है मानों वे कौड़ियां हों। यह सब रुपया कहांसे आयेगा, कोई नहीं जानता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार सोचती है कि जनताका ध्यान स्वतन्त्रताके लक्ष्यसे हटा कर अन्यत्र ले जानेको यह अकसीर, लाजवाब नुस्खा है। अरबों खरबोंकी कौन कहे, पद्मों और शङ्खोंकी रकम खर्च की जायेगी और भूखे शिक्षित मध्यम वर्गको काममें लगाया जायेगा। शायद यह समझा जाता है कि एक राजनीतिक आन्दोलन का मुंह बन्द करनेका सबसे सीधा और सरल उपाय यह है कि भोजनसे उसका मुंह भर दो, उसे किसी कामसे लगा दो और वह खामोश हो जायेगा। यदि इन योजनाओंका एक अंश भी कार्यान्वित किया गया तो शिक्षित भारतमें बेकारी न रह जायेगी।

सरकारी नौकरोंका रेकार्ड (काम) अतीतमें, ब्रिटिश सरकारके दृष्टिकोणसे, बहुत ही उत्साहवर्द्धक रहा है। ब्रिटिश शासनके प्रति उनकी भक्ति-श्रद्धा और दृढ़ विश्वास अचल रहा है। सरकारी नौकरोंकी तादाद बेशुमार बढ़ा दो, राजभक्तिका कोष भी उसी अनुपातसे बढ़ जायेगा। ब्रिटिश सरकार यही सोचती है, ऐसा ही मालूम होता है।

मैं इन सब योजनाओंको जनसाधारणके लिये स्पष्ट और निश्चित खतरा समझता हूं। जनतासे सहर्ष और स्वेच्छापूर्वक प्राप्त विराट सहयोगके आधार पर राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना किये बिना ही यदि उक्त योजनाओंको कार्यान्वित किया जायेगा तो जो जमाना आयेगा उसे संयत भाषा और स्थिर चित्तसे अनाचार और दुर्व्यवहारका युग ही कहा जा सकता है।

युद्ध-व्ययके पिछले चार वर्षोंने यह साफ साफ बता दिया है कि कण्ट्राक्टर और बेईमान सरकारी नौकर अधःपतनकी किस गहराई तक जा सकते हैं। इन योजनाओंके सामने आनेपर और भी अधिक लम्बी रकमें खर्चकेलिये सरकारी हाथोंमें आयेंगी। वर्तमान नौकरशाही केवल नालायक ही नहीं है बल्कि बज्र मूर्ख भी है और मुझे यह कहते खेद होता है कि वह अंशतः अनाचारी भी है। अबतक सरकारी नौकरोंके सम्बन्धमें लोकमत और सरकारी प्रशंसाके पुलोंके बीचमें एक जबर्दस्त विरोध था, किन्तु अब तो सरकारको भी बाध्य होकर देश भरमें फैले हुए अभूतपूर्व अनाचार और घूसखोरीको स्वीकार करना पड़ा है। इस बुराईको रोकने और बन्द करनेके लिये कठोर उपाय काममें लाये जा रहे हैं, किन्तु सब व्यर्थ हो रहे हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान निरंकुश सरकार पर राष्ट्रीय पुनर्सङ्गठनकी किसी बड़ी योजनाको कार्यान्वित करनेका उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जा सकता। इन तमाम राष्ट्रीय योजनाओंके अनुसार काम करनेके लिये प्रतिभा, योग्यता, सञ्चालन, उत्सर्गकी भावना, एकाग्र चिन्तना, देशके प्रति निस्वार्थ भक्ति और सर्वोपरि मनकी नैतिक उत्कृष्टता तथा पवित्र भावना चाहिये, तब इन योजनाओंको पूर्ण किया जा सकता है। वर्तमान नौकरशाहीमें इन सब सद्गुणोंका अभाव है। जनहितके लिये काम करनेकी न तो उनको ट्रेनिङ्ग है, न अनुभव है, न उत्साह है और न निस्वार्थ भावसे काम करनेकी भावना ही उनमें है।

आजके हमारे अधिकांश सरकारी नौकर देखते हैं रुतबे और तरक्की, पेंशन और छुट्टियां तथासब तरहके भत्ते। सार्वजनिक सेवाकी भावनासे पूर्ण परम्परा और परिपाटीसे वे दूर हैं। जीवन विदेशी शासकोंको खुश रखनेकी कलामें बिताने वाले ये जीव बदलेमें अपने देशवासियोंको मालिकाना नजरसे देखते हैं। हकीकत यह है कि ये अपनेको जनताका सेवक नहीं जनताका मालिक समझते हैं।

स्पष्ट बात तो यह है कि इन युद्धोत्तर कालीन योजनाओंमें अधिकांशको मैं तो मात्र मिथ्याप्रचार और संसारको बुत्ता देनेकी एक चालमात्र समझता हूं। मुझे इस बातसे बहुत खेद है कि हमारे कुछ प्रतिष्ठित देशवासी भी इसके शिकार हो गये हैं और आर्थिक विकास और उन्नतिकी बात इस तरह किया करते हैं मानो राष्ट्रीय पुनर्सङ्गठनको राष्ट्रीय स्वतन्त्रतासे अलग रखा जा सकता है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि देशको सुसङ्गठित विकास और उन्नतिकी विराट आवश्यकताको मैं मानता हूं। यदि युद्धोत्तर कालीन संसारमें हमें अपना उचित स्थान

काम-शास्त्रकी आचार्या—श्रीमती डा० स्टोप्स

श्री सन्तराम बी० ए०

इङ्गलैण्डकी परम प्रख्यात स्त्रीनेता और वहांके अत्यन्त क्रान्तिकारी परिवर्तनकी नायिका, श्रीमती डा०मेरी स्टोप्स, अभी तक भी अपनी जनताके लिये कुछ-कुछ पहेली ही बनी हुई हैं, यद्यपि गत २८ वर्षसे प्रसिद्धिकी किरण उनके काम-पर पड़ रही है।

उनके मित्र इस छोटी-सी गतिशील नेत्रीको मनुष्योत्तर प्राणी, इङ्गलैंडकी अतीव पवित्र प्रथाकी नींवको हिला सकने-वाला सम्भव व्यक्ति—एक ऐसा आदर्शवादी जिसने जगतको गलीके कोनेपर ठहराकर उससे अपने आदर्श मनवाए—समझते हैं। स्टोप्सके विपक्षी कहते हैं कि वह एक हठीली स्त्री हैं, वह घायल सिंहिनीके समान साहसके साथ अपनी लड़ाइयां लड़ती है; उसकी प्रखर वैज्ञानिक बुद्धि, जिसने विपक्षी लोकमतको ललकारा है और इङ्गलिश गवर्नमेंटपर विजय प्राप्त की है, अंगरेज प्रजापर जादूका प्रभाव रखती है। परन्तु अंगरेज जातिके अधिकांश लोगोंके लिये, उन स्त्रियों और पुरुषोंके लिये जो फैक्टरियों और साधारण घरोंमें रहते हैं, जिनको मध्यम श्रेणी कहा जाता है, डाक्टर मेरी कार्माईकल स्टोप्स दरिद्रोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

डा० स्टोप्स अपने कामके सम्बन्धमें आप ही कहती हैं—"गर्भ-निरोध और यौनशिक्षा (Sex-ducation) में मेरा विश्वास था, परन्तु इसके लिये मैं कभी न लड़ती यदि मुझे मालूम न होता कि लाखों स्त्रियां और पुरुष इस जानकारीके लिये तरस रहे हैं। यह जानकारी उनके सुखके लिये आवश्यक थी। यह काम मेरा जीवनोद्देश्य था, ईश्वरीय प्रेरणा थी। मैं स्पष्ट रूपसे विश्वास रखती हूं कि मैं ईश्वर-की सन्देश-वाहिका हूं।"

उसकी कथा बड़ी मनोरञ्जक है। उसका जन्म एक धनाढ्य परिवारमें हुआ था। उसके माता-पिताने उसे प्रत्येक प्रकारका लाभ पहुंचाया। उसका पिता एक शिल्पशास्त्री था और माता एक स्काच प्रेसबीटेरियन। उसे १२ वर्षकी आयु तक घरपर ही शिक्षा दिलायी गयी थी। उसके बाद वह एक प्राईवेट स्कूलमें भरती हुई।

अपने शिक्षा-कालमें उसने अपने लिये वह काम चुना जो तब तक केवल पुरुष ही किया करते थे। इससे उसके शिक्षक चकित रह गये। वह पहली स्त्री थी जिसने मान-चेष्टर विश्वविद्यालयमें विज्ञानपर व्याख्यान दिया। इसके बाद उसने ब्रिटिश म्यूजियम और यूनिवर्सिटी कालेजमें प्राचीन जीव-जन्तु शास्त्रपर व्याख्यान देना आरम्भ किया। वहांसे उसने कोयलेकी खानोंके विषयपर व्याख्यान देनेके लिये दुनियाके विभिन्न देशोंका दौरा किया।

यद्यपि उसका मन वैज्ञानिक एवं बौद्धिक कार्योंमें खूब लगता था, तो भी उसमें एक ऐसी चारुता थी जो इङ्गलैंडके बड़ेसे बड़े पुरुषोंको भी आकर्षित करती थी। इस विषयका स्मरण करते हुए डा० स्टोप्स कहती हैं--"वे पहले तो उस स्त्रीको जो आमोद-प्रमोदको छोड़कर शोधको पसन्द करती थी, कौतुकके साथ देखने आते थे। फिर वे मेरे घनिष्ट मित्र बन जाते थे।"

उनमेंसे एक दक्षिण ध्रुवकी यात्रा करनेवाला प्रसिद्ध डाक्टर स्काट था। वह विश्वास न कर सकता था कि यह सुन्दर लड़की, उसके शब्दोंमें, "स्मरणातीत युगोंके जन्तुओं-की निर्जीव गुफाओं" में अपना जीवन बिता सकती है। बादको वह स्टोप्सके पास अतीव गम्भीर प्रश्न लाया और उन दोनोंने मिलकर उनको हल किया। दक्षिण ध्रुवकी अपनी अन्तिम लोमहर्षण यात्राके समय उसने स्टोप्सको भी साथ चलनेको कहा। परन्तु स्टोप्सको म्यूजियममें काम था। इसलिये उसने इन्कार कर दिया और उसे लौटते समय कुछ "फासिल" (प्रस्तरीभूत जीव-जन्तु) लानेको कहा। जब

प्राप्त करना और अपना उचित हिस्सा अदा करना है तो प्रत्येक दिशामें हमें भगीरथ प्रयत्न करना होगा। किन्तु वह प्रयत्न स्वतन्त्र भारत ही कर सकता है। अपने उन नेताओंकी देख-रेखमें-,जिनकी योग्यताकी कसौटी सेवा और त्याग है जो हमारे रक्त मांस और हड्डियां हैं, जो हमारे बीचमें रहते, डोलते और फिरते हैं,--स्वतन्त्र भारत इस तरहका भागीरथ प्रयत्न कर सकता है। उड़ती हुई चिड़िया की सुरीली आवाज सुननेमें वह कानोंको चाहे जितनी मधुर और सङ्गीतमय क्यों न लगे, किसीको न अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है और न प्रतारित कर सकती है।

कई मास उपरान्त डा० स्काटकी हिमसे जमी हुई देह मिली, तो उसके हाथमें वही "फासिल" थे जो स्टोप्सने उससे मंगाए थे।

जिन दिनों डा० स्टोप्स अमेरिकामें व्याख्यान देती फिर रही थीं, एण्ड्र्यू कारनेगीने उसे अपने यहां चाय-पानके लिये बुलाया। स्टोप्सने उससे प्राचीन जीव-जन्तु-शास्त्र-सम्बन्धी खोजके लिये दान मांगा। परन्तु उसने देनेसे इनकार कर दिया। इसके बजाय उसने स्टोप्सको उपदेश दिया—"निर्जीव पदार्थोंमें काम करते हुए अपना जीवन मत बिताओ। सजीव पदार्थोंकी कोई कमी नहीं।" अमेरिकामें एक और मनुष्यने डा० स्टोप्सको निश्चित रूपसे "सजीवके लिये काम करने" पर लगा दिया और उसने गर्भ-निरोध एवं काम-विज्ञानकी शिक्षाका प्रचार आरम्भ कर दिया। उसने सिनसिनाटीके एक वनस्पति शास्त्रीसे विवाह कर लिया और वे दोनों रहनेके लिये इङ्गलैंड चले गये। दो वर्षके उपरान्त यह विवाह सम्बन्ध टूट गया।

"मैं दुःखी अभागी थी। मैंने अनुभव किया कि मेरे विवाहमें कोई बात अयोग्य एवं अनुचित थी। मैंने अपने सारे वैज्ञानिक जीवनमें मानव देहके जटिल व्यापारोंपर कभी ध्यान नहीं दिया था। मुझे उस समय तीव्र संत्रास हुआ जब मैंने देखा कि यद्यपि मेरा विवाह हुए दो वर्ष हो चुके हैं तो भी मेरा विवाह पूर्णताको प्राप्त नहीं हुआ।"

उसका विवाह-सम्बन्ध तो भङ्ग हो गया परन्तु उसका दुःख दूर न हुआ। इसलिये वह स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके विषय-पर खोज करने लगी। उसने मालूम किया कि वैज्ञानिक रीतिसे सुरक्षित स्त्रीको भी काम-विज्ञानसे वञ्चित रक्खा जाता है। दो वर्षमें उसे उस विषयपर जो भी पुस्तक मिल सकी उसने पढ़ डाली। इसके बाद उसने स्वयं एक पुस्तक लिखनेका निश्चय किया। फलतः सन् १९२१ में उसने तरुण-विवाहित जोड़ोंके लिये "मैरिड लव" नामकी पुस्तक छापी। इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद भी "विवाहित प्रेम" के नामसे छप चुका है। "मैं इस आशामें थी कि इस पुस्तकके कारण मुझे गालियां मिलेंगी। मुझे उन सहस्रों चिट्ठियोंके पानेकी कदापि आशा न थी जो प्रत्येक नमूने और श्रेणीकी स्त्रियोंने, मिडवाइफों और चिकित्सकोंने अधिक जानकारीके लिये मुझे लिखी हैं। उन्होंने मु[...] प्रार्थना की कि मैं उन्हें मानव-देहके सम्बन्धमें भलाई[...] बताऊं, गर्भ-निरोधका ज्ञान दूं और वह ज्ञान दूं जो अ[...] सुखी-जीवन पानेमें उनकी सहायता दे। तब मेरे मन[...]

विचार उत्पन्न हुआ कि अगले कुछ वर्ष तक मैं अपने कामको अलग रखकर उन लोगोंको इसकी जानकारी करादूं जिसको इसकी आवश्यकता है।"

यह वह समय था जब डाक्टर स्टोप्सका अपने पति हेरी बर्नाडन रोसे मिलना हुआ। श्रीयुत रो इङ्गलैंडके अगुआ उड़ाकुओंमेंसे हैं। उसे पहले ही गर्भ-निरोधमें दिलचस्पी थी और क्लिनिक खोलनेके लिये वह कई संस्थाओंको दानका वचन दे चुका था। परन्तु उन संस्थाओंने यह कहकर दान लेनेसे इनकार कर दिया था कि लोकमत इसके बहुत अधिक विरुद्ध है।

डा० स्टोप्सने अपने पतिके साथ मिलकर सबसे पहला गर्भ-निरोध अस्पताल (बर्थ कन्ट्रोल क्लिनिक) खोला। परन्तु एक क्लिनिकसे सवाल हल न हुआ। इस[...]लिये आवश्यक था कि सारी अंगरेज प्रजा इस विषयका[...] करे। समझा जाता था कि प्रधान मन्त्री लायड जा[...] विषयपर अनुकूल मत रखते हैं। परन्तु स्पष्ट घोषणा[...] स्थितिको जोखिममें डालना उचित न था। [...] स्टोप्सने उनसे इस विषयकी चर्चा क[...] "लोगोंको अपने मतका बनाओ[...] और वाद-विवाद खड़ा [...]

डाक्टर स्टोप[...] प्रभावशाली [...]ओंको इङ्गलैंडमें [...] देशकी- वे कहती[...] इस [...] अमरिक[...] था जो गर्भ[...] हो परन्तु[...] है। अत[...] विपक्ष[...] पत्रोंमें[...] के लिये[...] जाता[...] विश्वा[...]

मनीलामें प्रवेश करनेवाली अमेरिकनसेनाका कमाण्डर मेजर जेनरल राबर्ट वाइटलर।

महती घटनाओंसे यह सबक लेना चाहिये कि विश्वासघात, अत्याचार और अनाचार एवं दासताकी उनकी दुनिया स्वतन्त्रता और शान्तिके हमारे संसारके मुकाबले सङ्घर्षमें ठहर नहीं सकती।"

मनीलाके पतन पर जेनरल मैकार्थरने ठीक ही कहा है कि "इस तरह प्रशान्त युद्धका एक महान अध्याय समाप्त हुआ। यह समाप्ति दूसरे अध्यायमें प्रवेश करनेकी सीढ़ी तैयार करती है। अन्तिम लक्ष्य हमारा खास जा-

[...]त लिंगायन खाड़ीके तटकी ओर बढ़ने[...]क भाग।

और नर्सोंके लिये उसके व्याख्यानोंका प्रबन्ध कर दिया। आज इङ्गलैंडमें अनेक गर्भ-निरोध क्लिनिक है। उनमेंसे कुछ तो लोगोंके निजी दानसे चलते हैं। परन्तु वे सबके सब सरकारी स्वास्थ्य विभागके निरीक्षणमें हैं। इङ्गलैंडके सभी भागोंसे स्त्रियां इन क्लिनिकोंमें अपने लिये परामर्श लेने आती हैं। डा० स्टोप्स कहती है—"अधिकांश लोग जिनको हमारे कामका पूरा ज्ञान नहीं,यहसमझे बैठे हैं कि हम संतानोत्पत्तिको रोकते हैं। यह भारी भूल है। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक स्त्रीको माता बनना चाहिये। परन्तु हम अच्छे बच्चे लानेका प्रयत्न करती हैं। स्वास्थ्य-विहीन उत्पन्न हुए बालकके लिये जीवन बहुत कठिन हो जाता है।"

यद्यपि डा० स्टोप्स आंशिक विजय प्राप्त कर चुकी हैं फिर भी वह बड़े जोरसे काम कर रही हैं। इङ्गलैंडमें यह बात कही जाती है कि आप उसके घरके बगीचेमें खड़े हो जाइये। आपको इङ्गलैंडके बड़े बड़े व्यक्ति उसके घरमें आते और निकलते देख पड़ेंगे। न केवल चिकित्सक और सर्जन ही वरन् बड़े बड़े कलाकोविन्द और विद्वान भी।

परन्तु वह अपना अधिक समय अपने नौ वर्षके पुत्रको देती है। जब वह बोल भी नहीं सकता था तब भी वह घास पातको फूलसे पहचान सकता था। चलना सीखनेसे बहुत दिन पहले वह तैर सकता था। छः वर्षकी आयुमें उसने अपनी माताके साथ मिल कर एक नाटक लिखा था जो लन्दनकी एक नाट्यशालामें बच्चोंके लिये खेला गया था।

यद्यपि इस महिला के अनेक स्वप्न पूरे हो गये हैं तोभी उसकी एक आकांक्षा ऐसी है जो अभी तक पूरी नहीं हुई वह कहती है, "किसी दिन जब मेरे सभी काम जो मैंने हाथमें ले रखे हैं पूरे हो जायेंगे तो मैं किसी हरे भरे स्थानमें चली जाऊंगी और बच्चोंके लिये परियोंकी कहानियां लिखूंगी तथा शायद उस कविताको भी समाप्त करूंगी जो मैंने पचास वर्ष पहले आरम्भ की थी।"

विप[illegible]
विज[illegible]
है। परन्तु अंगरेज जा[illegible] स्त्रियों और पुरुषोंके लिये ज[illegible] घरोंमें रहते हैं, जिनको मध्यम श्रेणी [illegible] मेरी कार्माईकल स्टोप्स दरिद्रोंकी अधिष्ठात्री[illegible]

डा० स्टोप्स अपने कामके सम्बन्धमें आप ही [illegible] "गर्भ-निरोध और यौनशिक्षा (Sex-ducation) [illegible] विश्वास था, परन्तु इसके लिये मैं कभी न लड़ती यदि [illegible] मालूम न होता कि लाखों स्त्रियां और पुरुष इस जानका[री] के लिये तरस रहे हैं। यह जानकारी उनके स्वत्व [illegible]

प्राप्त करना और अपना उचित हिस्सा अदा करना [illegible] प्रत्येक दिशामें हमें भगीरथ प्रयत्न करना होगा। [illegible] वह प्रयत्न स्वतन्त्र भारत ही कर सकता है। अपने [illegible] नेताओंकी देख-रेखमें-,जिनकी योग्यताकी कसौटी सेवा औ[र] त्याग है जो हमारे रक्त मांस और हड्डियां हैं, जो हम[ारे] बीचमें रहते, डोलते और फिरते हैं,--स्वतन्त्र भारत [illegible] तरहका भागीरथ प्रयत्न कर सकता है। उड़ती हुई चिड़ि[या] की सुरीली आवाज सुननेमें वह कानोंको चाहे जितनी मधुर और सङ्गीतमय क्यों न लगे, किसीको न अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है और न प्रतारित कर सकती है।

अन्तर्वासिनी

मैं तुम्हारे रूपका उच्छ्वास बन कर छा गया
[illegible] केशोंमें तुम्हारे मलय बन आ गया

मैं तुम्हारे मुग्ध मन की चांदनी बन कर खिला
[तुम्]हारे नूपुरों से शिंजिनी बन कर मिला

काल सागर में विसर्जित हो चुकी मेरी क्षुधा
चाहिये मुझको तुम्हारी निकटता की अब सुधा

[illegible] तुम झांकतीं
[illegible]सी ताकतीं

अनिल लहरों में गुंथी है किन्तु मेरी चाहना
बन गयी है आज रस की सृष्टि जीवन साधना

मैं तुम्हारे कंकणों में रणित होता गीत-सा
मधुर अधरों में तुम्हारे ध्वनित होता प्रीत-सा

[illegible] भारती
[illegible]म्हारती

मैं तुम्हारे साथ चुम्बन की प्रथम स्मृति-सा चला
मैं तुम्हारी भ्रान्ति के नीहार-सा जाता गला

कमल पत्रों से तुम्हारे अंग जिसमें झौंरते
किन्तु तत्क्षण सिक्त हो नव मंजरी से बौरते

साथ [illegible] विद्युत शिखा
इसलिए [illegible] आभा दिखा

"फिर तुमको कभी था भा गया
[illegible]वास बन कर छा गया

---'अंचल'

फिलिपाइन्स विजय

प्रो० मयङ्क

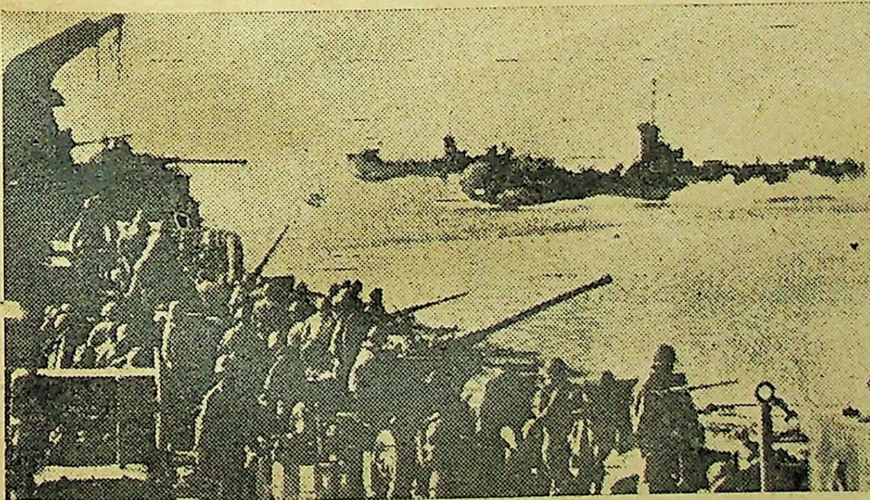
गत ३० दिसम्बरको फिलिपाइन्स स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया था। यह समारोह 'रिजाल दिवस' के नामसे प्रसिद्ध है। फिलिपाइन्सके रेजिडेण्ट कमिश्नर ब्रिगेडियर जेनरल कारलोस पी० रोमुलोने उक्त दिवसपर कहा था :—रिजाल दिवस इस वर्ष एक नया अर्थ रखता है। नवीन फिलिपाइनका जन्म हो रहा है। युद्धकी विभीषिका और भयङ्करताके मध्यसे राष्ट्रीय एकताकी भावना एक स्पष्ट स्वरूप धारण करती जा रही है। फिलिप्पिनोको अपनी जातीयताका अधिक गर्व आजसे अधिक शायद ही पहले कभी हुआ हो। विनाश-यज्ञसे बचकर वह आज सगर्व जीवित खड़ा है और वह जानता है कि साहस और सहिष्णुतामें, देशभक्ति और दृढ़तामें वह कभी किसीसे पीछे नहीं है। आतङ्कवाद उसकी आत्माको दबा नहीं सकी, अत्याचार उसकी इच्छाको भङ्ग नहीं कर सका।" इस सन्देशके ठीक ३६ दिन बाद अर्थात् ५ फरवरीको यह समाचार आता है कि फिलिपाइनकी राजधानी मनीला पर अमेरिकनोंका अधिकार हो गया। लुजोन द्वीप पर अमेरिकन सेनाके उतरनेके २६ दिन बाद मनीला पर अधिकार हुआ। निस्सन्देह जेनरल मैकार्थरके फिलिपाइन संग्रामके इतिहासमें ४ फरवरी १९४५ सर्वाधिक महान दिवस है। तीन वर्षके बाद अमेरिकन फिर मनीलामें गर्व और गौरवके साथ वापस पहुंचे।

मनीला पर अधिकार होने के साथ ही साथ प्रेसिडेण्ड रूजवेल्टने फिलिपाइन राष्ट्रपति सरजियो उसमेनाको बधाई देते हुए एक वक्तव्य दिया था, उसमें प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट कहते हैं कि "जापानियों एवं शान्तिपूर्ण राष्ट्रों के अन्य शत्रुओंको आपके देशकी महती घटनाओंसे यह सबक लेना चाहिये कि विश्वासघात, अत्याचार और अनाचार एवं दासताकी उनकी दुनिया स्वतन्त्रता और शान्तिके हमारे संसारके मुकाबले सङ्घर्षमें ठहर नहीं सकती।"



मनीलामें प्रवेश करनेवाली अमेरिकनसेनाका कमाण्डर मेजर जेनरल राबर्ट वाइटलर।

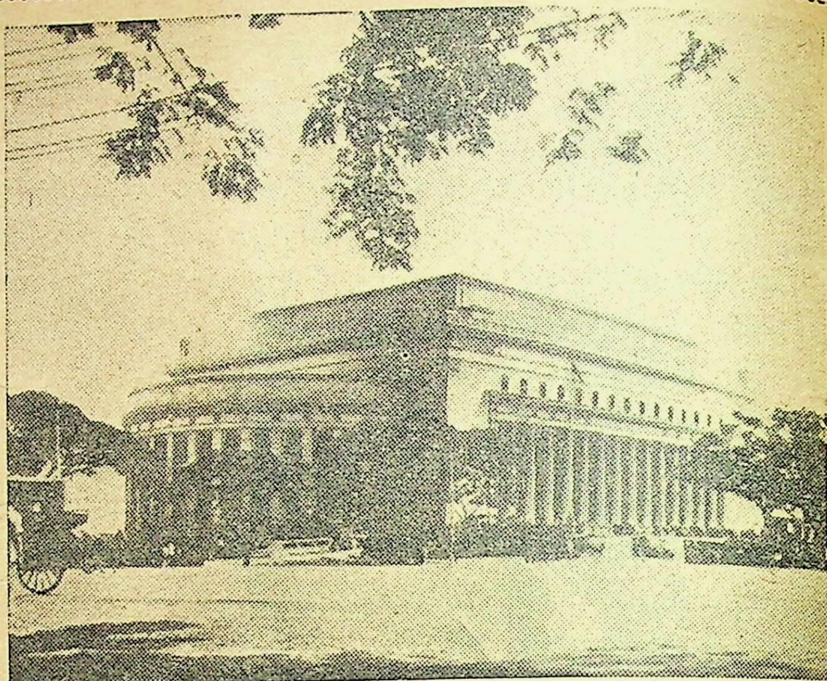
मनीलाके पतन पर जेनरल मैकार्थरने ठीक ही कहा है कि "इस तरह प्रशान्त युद्धका एक महान अध्याय समाप्त हुआ। यह समाप्ति दूसरे अध्यायमें प्रवेश करनेकी सीढ़ी तैयार करती है। अन्तिम लक्ष्य हमारा खास जा-



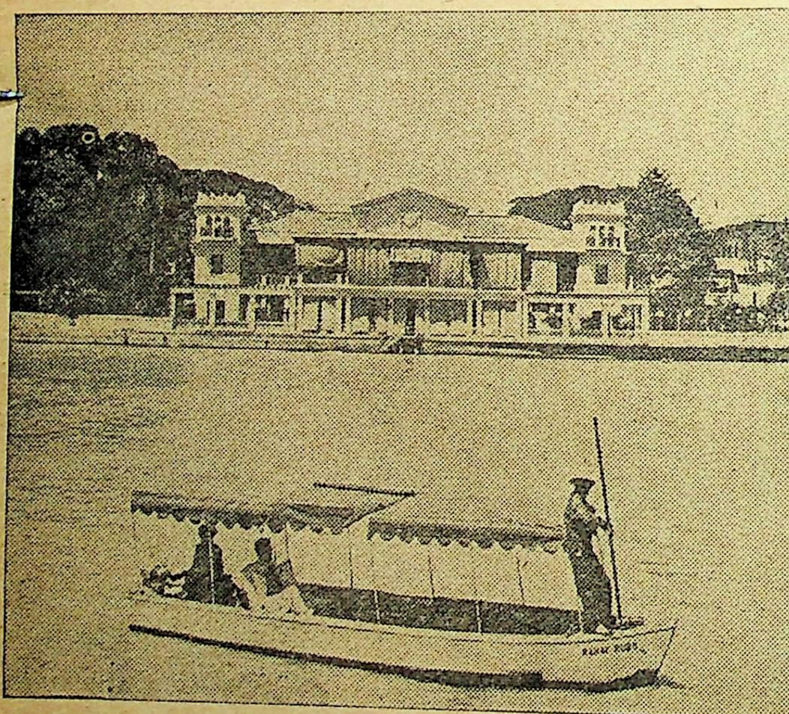
मनीला पर अधिकार करनेके लिये लुजोन अन्तर्गत लिंगायन खाड़ीके तटकी ओर बढ़ने वाली अमेरिकन सेनाका एक भाग।

पान है। टोकियोकी ओर अग्रसर हो, यही हमारा आजका नारा है।"

फिलिपाइन द्वीपपुञ्जपर जापानी आक्रमण आरम्भ होनेके समय ही, आजसे तीन वर्ष पूर्व, राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने १९४६ में फिलिपाइन्सको पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर देनेकी घोषणा की थी। मनीलाके पतनके बाद ही वाशिंगटनमें एक अधिकारी सैनिक राजनेताने कहा कि मनीला के जापानी अधिकारियोंके आत्म समर्पण कर देते ही फिलिपाइन संग्रामका शेष भाग फिलिपाइन वासियोंके जिम्मेकर दिया जायेगा और इस तरह मित्र सेनाएं जापानियोंके खिलाफ तत्काल युद्धका



मेनीलाका पोस्ट आफिस



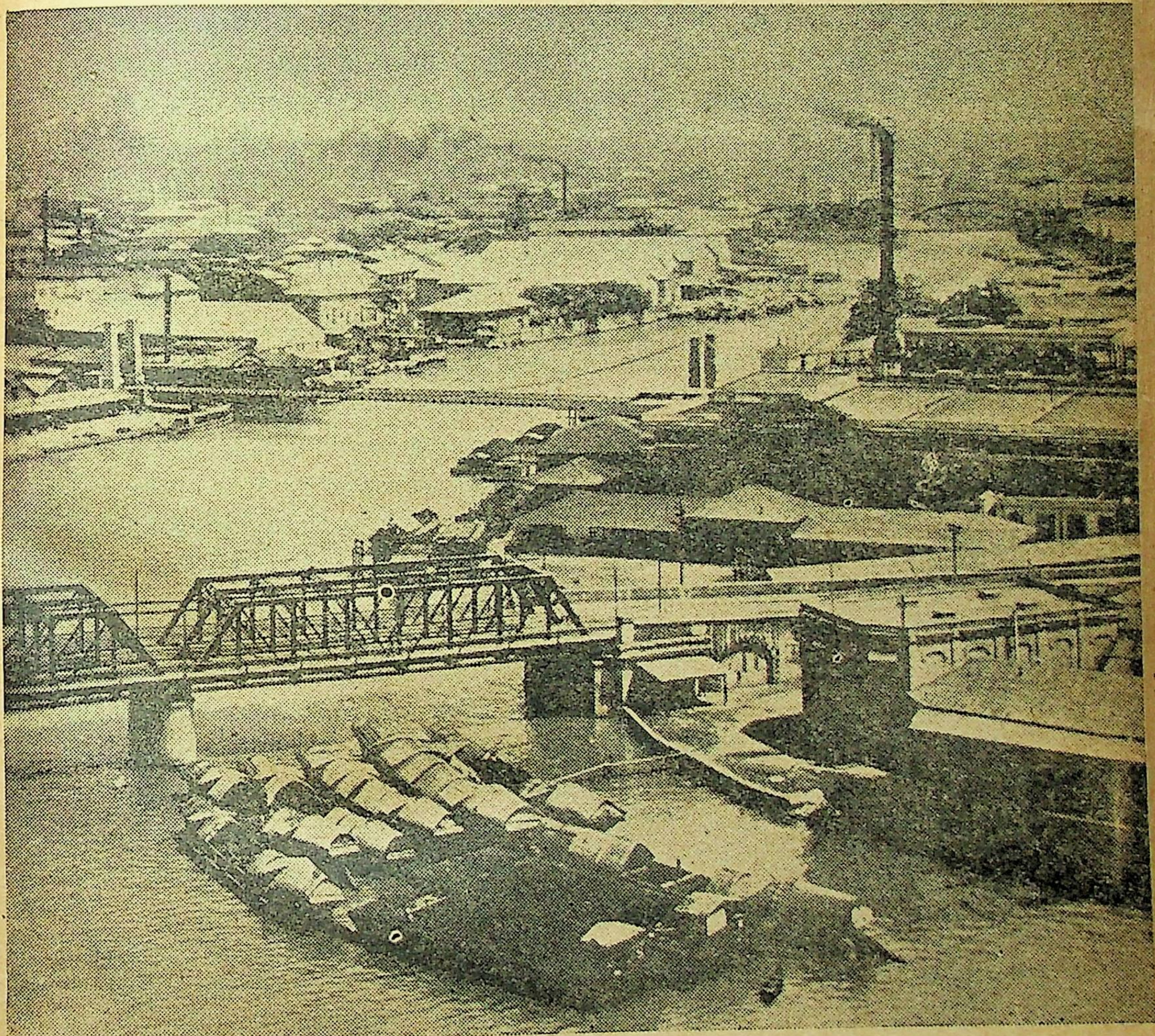
स्वर्गीय प्रेसिडेण्ट क्यूजोनका मेनीला स्थित निवास भवन

दूसरा मोर्चा संभालनेको स्वतन्त्र हो जायेंगी।

इस तरह यह देखा जा रहा है कि जापानके साम्राज्यका नकशा क्रमशः छोटा होने लगा है। फिलिपाइन छोड़नेके समय जेनरल मैक्कार्थर जापानियोंको चेतावनी और फिलिपिनों को आश्वासन देकर आये थे कि 'हम फिर वापस आयगे।' अपने इस बचनको पूर्ण करनेके लिये जब जेनरल मैक्कार्थरने पहला कदम आगे बढ़ाया और लेइटीमें अपनी सेना उतारी तो जापानियोंने मैक्कार्थरकी प्रगतिको रोकनेमें अपनी प्रचण्ड शक्तिसे काम लिया किन्तु सैनिकों, जहाजों और सामग्रियोंकी क्षतिके सिवा उन्हें अन्य कुछ न हाथ लगा। अमेरिकनों की रफ्तारको जापानी न रोक सके और धन-जनकी हानिके साथ साथ पराजय का टीका लेकर उनको लेइटी, सामर और मिण्डोरो द्वीपोंको खाली कर देना पड़ा। इन द्वीपोंको जापानियोंसे मुक्त करके जेनरल मैक्कार्थरने लूज़ोन द्वीपके पूर्वी किनारेपर लिंगायन खाड़ीमें अपनी फौज उतार दी। लूज़ोन फिलिपाइन द्वीप है और यहीं उसकी राजधानी मनीला है। इस तरह देखा जाता है कि जापानकी वह प्रवण्ड शक्ति जिसने १९४२ में संसारपर अपनी धाक जमा दी थी आज इस तरह मन्द

पड़ गयी है कि लुज़ोन द्वीपमें अमेरिकन सेनाके उतरनेके २६ दिन बाद ही मनीलाका पतन हो गया।

मनीला, जो फिलिपाइन द्वीपपुञ्जका सबसे बड़ा शहर है और युद्धके पूर्व जिसकी आबादी ६७३००० थी एवं जो चीनके प्रशान्त दक्षिण भागमें ११९ वर्ग मीलमें फैला हुआ है, तथा केविटे जो एक जहाजी अड्डा है दोनों २ जनवरी १९४२ को जापानियोंके अधिकारमें चले गये थे। लुज़ोन द्वीप पर जापानियोंके आक्रमण करनेके २९ दिन बाद तथा मनीलाको खुला शहर घोषित करनेके एक सप्ताह पश्चात् ये दोनों स्थान जापानी अधिकारमें आये थे। ६ मई १९४२ को मनीला उपसागरके प्रवेश द्वार स्थित कोरेगीडोर द्वीपमें जापानी सैन्यके संख्याधिक्यसे पराभूत होकर अमेरिकन और फिलिपिनो सेनाओंने आत्म-समर्पण किया था तभी जेनरल मैकार्थरने फिर लौटनेकी प्रतिज्ञा की थी। इतने दिन बाद जेनरल मैकार्थर उस प्रतिज्ञाको गर्व और गौरवके साथ पूरा कर सके, अतः आज उनके हर्षका क्या ठिकाना? मनीलाके पतनसे मित्रोंकी सैनिक स्थितिको कितनी सहायता पहुंचेगी, यह बात फिलिपाइन्सकी भौगोलिक, सामरिक, आर्थिक और औद्योगिक स्थितिपर दृष्टि डालनेसे पता चल सकता है। शहरका सबसे



मनीला नगरके भीतर बहनेवाली इहरया नदी पासिग।

बड़ा हवाई अड्डा निकोलस फील्ड है। यह एयरपोर्ट शहरसे दक्षिण तीन मीलपर है। ठीक उत्तरमें, शहरकी चौहद्दीके बाहर असामरिक एयरपोर्ट था जिसे जापानियोंने सम्भवतः सैनिक व्यवहारके लायक बना दिया है। शहरके पूर्व और दक्षिणमें हवाई जहाजोंके उतरनेका एक मैदान है और एक विशाल तेल डीपो है। ६० मील उत्तर पश्चिम महत्वपूर्ण फौजी एयर पोर्ट ईबाफील्ड और क्लार्क फील्ड हैं। शहरको घेरे हुए प्रायः एक दर्जन उतरनेके मैदान हैं, उपसागर है, तथा झीलके दक्षिणी और पूर्वी किनारे हैं।

युद्धके पहले संसारके सब भागोंके बन्दरगाहोंसे मनीला का सम्पर्क जलमार्गसे उसके मालवाही तथा मुसाफिरी जहाजों द्वारा जुड़ा हुआ था। हवाई मार्ग द्वारा संयुक्त राज्यअमेरिका तथा एशिया और यूरोपके शहरोंसे सिङ्गापुर और हांगकांगके रास्ते सम्पर्क जुड़ा हुआ था। पुराना शहर, असली मलीना, मध्ययुग कालीन है। यह चारों ओर दीवालसे घिरा हुआ है। पहले इसका नाम इण्ट्राम्यूरोस था। यह पुराना शहर पासिग नदीके दक्षिणी किनारे अथवा वाम तटपर है। यहां पुरानी दीवालोंके भीतर तङ्ग रास्ते हैं और पुराने स्पेनिश ढङ्गके मकान हैं, पुराने गिरजाघर और धर्म मन्दिर हैं। सैण्टो टोमस विश्वविद्यालय है। यह विद्या प्रतिष्ठान १६०९ में डोमिनिकन मिशनरियों द्वारा स्थापित हुआ था और १६४५ में धर्म विश्वविद्यालयइसका नाम पड़ा। नदीके उत्तरमें बिनोन्डो सेकपान है। पुलके निकट ही थोड़ी दूर पर प्लाजा मोरागा है। जहांसे एक एसकोल्टा सड़क निकलती है। यह शहरका व्यवसाय केन्द्र है। इसके समीप काले रोजारियो है, जहां चीनियोंके बाजार लगते हैं। ऊपरी भागमें बड़े-बड़े आदमियोंके रहने लायक मकान और मेलकनान हैं जहां अब कामनवेल्थके प्रेसिडेंटका निवास स्थान है और पहले गवर्नर जेनरलका था।

फिलिपाइन्स द्वीप जिस अंचलमें है वह समुद्री तूफान और वानके लिये मशहूर है। मनीला हारबरमें तूफान और बवण्डर आनेके सिगनल आते ही रहते हैं। मनीलाके निकट बवण्डर आनेसे बांस और ताड़के पेड़ोंसे बने घर धराशायी हो जाते हैं। शहरके बाहर ईख और धानकी फसलको क्षति पहुंचती है।

मनीलाके प्रमुख उद्योग धन्धोंमें चीनी, रस्सी सूत, सिगरेट और सिगारके कारखाने, नारियलसे तेल निकालना और उनकी मिलें आदि हैं। शहरके अन्य कारखाने जूते, साबुन, चटाइयां लकड़ीके सामान और टोप बनाते हैं। जापानियोंसे सम्पूर्णतया खाली हो जाने पर फिलिपाइन जङ्गलोंसे पैदा होनेवाली वस्तुएं तथा लोहा, क्रोमियम, कापर, मैगानीज और सोना पुनः मित्रोंको प्राप्त होंगे। इनके सिवा फिलिपाइन्समें अबाका (मेनीला हेम्प) तैयार होता है। रस्सीके लिये इससे बढ़कर संसारमें अन्य रेशा नहीं होता है।

१९०१ से फिलिपाइन्समें शिक्षाका अत्यधिक प्रचार और वृद्धि हुई है। अमेरिकनोंने सार्वजनिक स्कूल प्रणाली द्वारा शिक्षा संस्थाओंका संगठन किया था। अब वे सब संस्थाएं फिलिप्पिनोंके नियन्त्रणमें हैं। प्राथमिक स्कूलोंमें बहुत बड़ी तादादमें लड़के भर्ती होते हैं। बहुत लड़के और लड़कियां हाई स्कूल तक जाती हैं। विभिन्न हुनर और पेशेवर शिक्षा की भी व्यवस्था है जिससे लोग काफी फायदा उठाते हैं। बालिग शिक्षा और अध्यापकोंकी ट्रेनिंगकी भी व्यवस्था है। १९३६ में बालिग शिक्षाका एक कार्यालय खुला था। उच्च शिक्षाके लिये मनीलामें फिलिपाइन महिला विश्वविद्यालय, सुदूर पूर्व विश्वविद्यालय, मनीला विश्वविद्यालय, सरकार द्वारा संचालित विश्वविद्यालय और सैण्टो टामस विश्वविद्यालय है। मनीलामें कई सुन्दर पुस्तकालय और संग्रहालय भी हैं।

मामनीलाके राजाके साथ सन्धिके फल स्वरूप १५७१ में सर्वप्रथम स्पेनिश शासन सत्ता स्थापित हुई। उस समय शहरको मामनीला कहा जाता था। १७ वीं शताब्दीके आरम्भ तक शहर कटे हुए पत्थरोंकी एक दीवालसे घिरा हुआ था जिसका व्यास तीन मील था।

अक्तूबर १७६२ में मनीला अङ्गरेजोंके हाथोंमें चला गया। अङ्गरेज आगामी वर्षके फरवरी मास तक शासन करते रहे। उसके बाद फिर अगस्त १८९८ तक लगातार स्पेनका शासन रहा। इसी महीने स्पेनिश—अमेरिकन युद्धमें मनीला उपसागरके संग्रामके बाद यह संयुक्त राज्य अमेरिकाके शासनमें आया। मलीकानान सरकारी राजप्रासाद जो पहले स्पेनिश और अमेरिकन गवर्नर जेनरलोंका निवास स्थान था अब फिलिपाइन कामनवेल्थके प्रेसिडेण्टका स्थान है।

संसारके सर्वोत्तम स्वास्थ्य-प्रद शहरोंमें मनीलाकी भी गिनती की जाती है। शहरमें सुन्दर जल व्यवस्था और मलमूत्रको नल द्वारा नीचे ही नीचे अन्यत्र ले जानेकी बड़ी सुन्दर प्रणाली है। शहरको पानी अंगट और मरीकीना

नदियोंसे; जल संग्रहालय (रिजरवायर) और फिल्टर प्रणाली द्वारा मिलता है।

मनीलाकी विजयने इसमें सन्देह नहीं कि मित्र शक्तियों का मार्ग, जापानपर आक्रमण करनेके लिये, अधिक प्रशस्त कर दिया है किन्तु इसका यह अर्थ न समझना चाहिये कि जापान को आसानीके साथ वशमें कर लिया जा सकता है। अकस्मात जापान घुटने टेक देगा और उसकी शक्ति कुचल दी जायेगी, इस तरहकी कल्पना कर लेना मित्रोंके लिये हानिप्रद सिद्ध होगा। जापान देश इतनी जटिलताओं और विचित्रताओंसे पूर्ण है कि वह कब क्या कर बैठेगा, यह समझना कठिन है। जापान देश, ग्रेट ब्रिटेनकी तरह, विभिन्न और दुर्गम टापुओंका समूह है और सामरिक दृष्टिसे जापानकी भौगोलिक स्थिति ब्रिटेनकी अपेक्षा कहीं अधिक उसके अनुकूल है। १९४० और ४१ में सैनिक स्थिति जर्मनीके कितना अनुकूल थी और प्रायः सारा यूरोप उसके अधिकारमें था तथा समस्त संसार आश्चर्यचकित हो गया था, फिर भी ब्रिटेन पर आक्रमण करनेका साहस जर्मनी न कर सका, इसका एकमात्र कारण ब्रिटेनकी विकट भौगोलिक स्थिति थी। जापानियोंने इस तथ्यको भली प्रकार समझा है और इस अनुभवसे उनको लाभ पहुंचा है। उनकी यह धारणा है कि अंगरेजों और अमेरिकनोंके लिये जापानी टापुओंपर आक्रमण करना बहुत कठिन काम है। वर्षोंसे इन टापुओंकी जबर्दस्त किलेबन्दी की जा रही है। और इस सुदृढ़ स्थितिको अधिक मजबूत बनाने वाली उनकी यह मनोभावना है कि युद्धमें अभी उनका कुछ भी बिगड़ा नहीं है। इस मनोभावको पुष्ट करनेकी तहमें जापानियोंका राष्ट्रीय दम्भ, जातीय श्रेष्ठता और ईश्वरके वर पुत्र होनेकी भावना उतनी अधिक नहीं है जितना बादकी घटनाओंसे प्राप्त व्यवहारिक ज्ञान है।

जापानियोंका यह दृढ़ विश्वास है कि हवाई ताकत द्वारा उनको अपंग और असमर्थ नहीं बनाया जा सकता। यदि टोकियोको हवाई आक्रमण द्वारा बिलकुल ध्वस्त कर दिया जाये तब भी उनके साहस और मनोबलमें जरा भी कमी नहीं आ सकती। यदि टोकियोका सम्पूर्ण विनाश गगन-आक्रमण द्वारा सम्भव भी हो जाये तब भी वे इस प्रहारको हड्डीके डङ्क मारनेसे अधिक कुछ न समझेंगे।

जापानियोंके मनोभावके सम्बन्धमें उक्त बातें एक स्पेनिश मिशनरी की हैं जो १९४१ से जापान फोरमोसा और मानचुकुओमें था और अभी कुछ दिन हुए यूरोप वापस गया है। उक्त मिशनरीकी ये बातें 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता जार्ज एक्सेलसनसे हुई थीं।

वस्तुतः स्थिति इस प्रकारकी है कि टोकियोका सम्पूर्ण विनाश करना सहज काम नहीं है। ब्रिटेन और अमेरिकाकी सम्मिलित हवाई ताकतके बाहरकी यह बात है। यह इस बातको दृष्टिमें रख कर ही कहा जाता है कि टोकियो लकड़ीके बने मकानोंसे बसा है और कभी कभी वहां इतनी तीव्र हवा चलती है कि उससे बातकी बातमें टोकियोके काष्ठ निर्मित मकानोंपर सहजमें आग फैल जा सकती है। यह बात कहते समय ध्यान इस बातपर जाता है कि जापानका युद्ध-क्रम और युद्ध-व्यवस्था टोकियोपर ही निर्भर नहीं है। जापानके युद्ध-प्रयासका विस्तार खूब सोच-समझ कर और दूरदर्शिताके साथ किया गया है। जापानको भूखा भी नहीं मारा जा सकता है। उक्त मिशनरीका कहना है कि जापानका इस दिशामें सबसे बड़ा मित्र आलू है। जापान भरमें आलूकी तरफ लोगोंका इतना झुकाव है और देश भरमें सहज और सरल उपायों द्वारा, व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे, आलू इस तरह पैदा किया जाता है कि यदि कभी चावलकी सप्लाई कम पड़ जाये तो देश भरमें चावलका स्थान आलू ले लेगा। इस समय वहांकी व्यवस्था इस प्रकार है कि जापानियोंको इतना पर्याप्त चावल मिलता है कि महीनेमें तीन सप्ताह वे बड़े मजेसे चावल खा सकते हैं और चौथा सप्ताह चावलकी जगह आलूसे कटता है। यह बात नहीं है कि जापानमें चावलकी कमी है। चावलकी फसल अब भी पहलेके समान ही अच्छी और जबर्दस्त होती है और जो बचत होती है उसे सङ्कटके दिनोंके लिये, जापान पर आक्रमण और बाहरसे आनेवाली सप्लाईका मार्ग बन्द हो जानेके दिनोंके लिये जमा रखते हैं। बाहरसे वर्षों एक दाना अन्न न आनेपर भी जापानको खाद्य संकटका सामना न करना पड़ेगा।

जापानकी जनशक्ति

मिशनरीने बताया कि जापानको जनशक्तिका अभाव कभी महसूस न होगा। उसकी गणनाके अनुसार जापानकी आबादी सालाना २० लाख बढ़ती है। इसका अर्थ है कि सालाना १० लाख नये सैनिक पैदा होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि १९४१ से अब तक कमसे कम ३० लाख रंगरूट जापानकी सेनाको मिले हैं। नये रङ्गरूटोंकी तालीम और ट्रेनिङ्ग ऐसी होती है कि वे पुराने खुर्राट जापानी सैनिकोंके समकक्ष पाये जाते हैं। जर्मनोंकी तरह ही जापानी

संख्या बाहुल्यके साथ साथ सजग और समझदार भी हैं और युद्ध स्थिति की दृष्टिसे जर्मनोंकी अपेक्षा वे अधिक अनुकूल स्थितिमें हैं। इन सब बातोंके साथ-साथ उनका साहस इस बातसे और अधिक प्रबल पड़ रहा है कि ब्रिटन, अमेरिका और रूसकी जबर्दस्त शक्तिको तीन सालसे अधिक हो गये और फिर भी वे जर्मनीको अबतक पछाड़ नहीं सके।

ये सब बातें जापानके अनुकूल हैं, जिनका उल्लेख मिशनरीने किया है। उसने यह भी बताया कि जापानकी दुर्बलताएं क्या हैं? जापानको जहाजोंकी भयङ्कर क्षति उठानी पड़ी है। जापानी और जापानियों द्वारा नियन्त्रित तटपंक्तिमें एक भी खाड़ी, झील और नदी सुरक्षित नहीं है। उदाहरणार्थ फोरमोसासे जहाजोंका यातायात अमेरिकन सबमेरिनोंके आतङ्कसे बन्द हो गया। इसके सिवा, यह बात भी है कि जापान स्वयं स्वदेश निर्मित सप्लाई तथा युद्ध सामग्रियों पर ही अधिकतः अवलम्बित है। मानचुको तथा अन्यत्रसे अधिक सप्लाई लानेके लिये पर्याप्त जहाजरानीका अभाव है। जो हैं, उनकी यात्रा भी अमेरिकन सबमेरिनोंके भयसे सुरक्षित नहीं है। जापानी जहाजोंकी बढ़ती हुई क्षति जापानको दुर्बल बना रही है, किन्तु मिशनरीका मत है कि इसे ही जापानके भाग्यका निर्णायक नहीं समझा जा सकता। धातुओंका अभाव भी जापानके सामने एक जटिल प्रश्न है। तारोंके खम्भे, नवीन मकानोंमें लगे लोहेके बीम तथा अन्य लोहेके सामान अधिकांश घरों, होटलों और इमारतोंसे युद्ध विभागमें काम आने वाले लोहाके लिये हटा लिये गये हैं तथापि जापानियोंके पास अभी लोहेका बहुत बड़ा सुरक्षित स्टाक है और उसे नितान्त आवश्यकताके लिये रख छोड़ा गया है। जापानी इतने चतुर और सिद्धहस्त संगठनकर्त्ता हैं कि मिशनरीका कहना है कि मैं नहीं समझता कि जहाजों और शस्त्रास्त्रोंके लिये लौहाभाव से जापान-साम्राज्य धम्म हो जायेगा।

ये विचार हैं कि एक तटस्थ देशीय मिशनरीके। जापानमें अधिक दिन रहने और फ्रैङ्कोंके स्पेनके निवासी एक मिशनरीकी तटस्थता और जापानकी स्थितिको निष्पक्ष भावसे समझ सकनेमें उसकी क्षमता पर कहांतक विश्वास करना चाहिये, यह भी एक प्रश्न है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि जापानको हरानेमें ब्रिटेन और अमेरिकाको रूसकी सहायता की आवश्यकता है। पूर्व और प्रशान्तके युद्धको यदि शीघ्र समाप्त करना है तो रूसको युद्धमें लाना पड़ेगा। कृष्णसागरमें जो त्रिराष्ट्र सम्मेलन हुआ है उसमें निस्सन्देह चर्चिल और रूजवेल्टने स्टालिनको जापानके खिलाफ खड़ा करनेमें कोई कसर न उठा रखी होगी। स्टालिनने क्या कहा और क्या नहीं, यह तो अभी नहीं मालूम हुआ लेकिन इतना तो समझा ही जा सकता है कि इस सहायताके लिये स्टालिन बड़ीसे बड़ी कीमत लिये बिना कभी वचनबद्ध न हुए होंगे। इस सम्भावनाको जापान भी समझता है। यही कारण है कि वह अपनी बन्दिश पहले ही से कर रहा है। इसी वजहसे जापान पार्लमेण्टने १९४५-४६ वर्षके लिये जो अतिरिक्त सैनिक बजट पास किया है वह रेकार्ड तोड़ने वाला है, ८५ अरब येन, जो प्रायः ६९ अरब रुपयेके बराबर हैं। इस बार मंजूर किये गये हैं। १९३७ में चीन युद्ध आरम्भ होनेके बाद आज तक कभी इतना लम्बा खर्चका बजट जापानमें पास नहीं हुआ था। जापानके अर्थ सचिव इशिवाटाने बजट पेश करते हुए यह संकेत किया है कि आगामी वर्षकी सम्पूर्ण राष्ट्रीय आमदनी ९० अरब येन अर्थात् फौजी बजटसे ५ अरब येन अधिक होगी। इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्रीय शक्ति लगा कर जापान अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिये तत्पर हो रहा है। भावी संकटका सामना करनेमें सेना और सैनिक सामग्रियोंसे नैतिकसाहस कम आवश्यक नहीं होता। यही वजह है कि टोकियो रेडियो बराबर देशवासियोंसे धैर्यके साथ संकटका सामना करने और साहसके साथ शत्रुसे मोर्चा लेनेकी नसीहत बराबर देता रहता है। सैनिक स्थिति खराब हो जाने पर भी संकटके सबसे बड़े मित्र धैर्य और साहस यदि साथ न छोड़े तो शत्रुका सामना हंसते हंसते किया जा सकता है, यह मंत्र रेडियो और प्रचारके अन्य साधनों द्वारा प्रतिदिन जापानियोंको हृदयङ्गम कराया जा रहा है।

फिलिपाइन्समें जापानियों पर अमेरिकनोंकी गौरवपूर्ण विजयसे जापानको आशाओंपर फिर एक जबर्दस्त विस्फोट हुआ है और इस विस्फोटसे उसके सैनिक, शस्त्रास्त्रों, सामग्रियों और साधनोंके साथ साथ धैर्य और साहस पर भी जबर्दस्त चोट लगी है, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

प्रतीक

श्री कृष्णनन्दन सिनहा

निराश्रय विधवाका जवान बेटा मर गया और अत्यन्त संयत आवाज से, चेहरेपर जान-बूझ कर निश्चेष्टता आंकें, वह कफनके लिये पैसे मांग रही है। बुझते हुए दोपहरके घनेपनके बाहर वह प्रतीत होती है। कौन-सी करुणा, कितना दुःख और कितने आंसू रक्षणीय हैं अब? इसलिये उफन उफन कर वह उत्तेजनाके खेल नहीं चाहती। चेतनाको लगा कि टूटे और छले हुए दिलके साथ संश्लिष्ट अंश होकर वह रह जाना चाहती है···उसे आकांक्षा है कि वह इस बेरहम अवस्थाकी यादगारी रखे, अपनी उमर बिता ले···!

चेतनाके लिये वह एक विस्मय बन जाना चाहती है। किन्तु वह छोटी-सी बात सिर्फ रहम उकसाने तक सीमित नहीं है। तब वह सहसा पा रही है कि बीते हुए दिनका रक्त-सना रूप प्रकट हो आया है······

केवल एक आकस्मिक जर्द आभा,व्यथाके रक्तिम आवर्तनसे जन्मा, उपजा विद्रोह, जिसके मध्य अवश सतायी दुनियाका बोध नष्ट होता आ रहा है। उजली, शुष्क और पीड़ाके अनुपातसे पीली धूपकी अपनी संगति होती है, स्वीकार की निष्क्रिय चेतना, और एक मन्त्र, एक सूत्र-कि अन्यायकी अन्तिम सहन-सीमाके बाद व्यापक विद्रोहका जन्म होता है, जन्म होता है। इस भिखारिनके अन्दर कुछ है, उसके वस्त्रोंकी निचोड़के भीतर, उसकी यथार्थताकी पकड़से परे—ऐसा कुछ भस्म होने योग्य, निर्धूम, जो एक सम्मिलित जीवन-क्रियाको आरम्भ कर सकता है।···मैं भी उस अतीतकी बेदर्द यादगार हूं, सशक्त गूंजकी ध्वनियां प्रतीक-भावना में भवितव्यकी आकांक्षा लिये सहज ज्वालामुखकी प्रारम्भिक अवस्थासे बीत रही हूं······।

उस ओर मटमैली परछांई गाढ़ी पड़ती जा रही है। मसजिदके इर्द-गिर्द वीभत्स कलाकी नींव थोड़ेसे प्रकाशमें, मिटते संस्कारका खोखलापन व्यक्त कर रही है। पूंजीवाद के माध्यमसे देखा गया मजहब नक्शोंकी बेतरतीब बेढङ्गी कतार, और कुछ ऊपर काले भद्दे गुम्बज, जिससे प्रत्येक बार शक्तिके लिये पुकार व्यर्थ जाती है, ईंटों और पत्थरों में लय होनेके लिये, एक शताब्दीसे दूसरी शताब्दी तक।

पीपल और बबूलकी ऊंची टहनियां जैसे उस अशरीरी मसजिदकी कमाचियां है या छाया है जो केवल ऊंचाई पर पड़ती हैं। नीचे रक्तसे लथपथ जिन्दगीके लिये लड़नेवाले अस्थिपंजर शेष भिखमंगे, उनकी निर्लज्ज औरतें, उनकी सन्तान छायासे बाहर हैं। मसजिदकी अशरीरी कमाचियां झुकती हैं और किसी आह-तड़पके बिना उनकी संख्या घटती जाती है। एक, दो, तीन, और क्रमसे। पल भरको मसजिद का अस्तित्व कांपता सा लग रहा है। यह स्थिति नहीं रह सकती क्योंकि यह बेनाम मनहूस कल्पना सी झूठी है। किन्तु इस मा की सत्यता उसे स्वीकार करना होगा जो कफनके लिये पैसे मांग रही है, साहस से, सामर्थ्य से, विश्वास से।

दो चार नर्म उसांसोके अतिरिक और कुछ नहीं है उस खाली ढांचेमें। एक हारी सी मुद्रा जिसे छिपानेका प्रयास तीखा लगता है। यह औरत भीख नहीं मांगती, दाताके सम्मुख अधिक मर्यादा भी नहीं रखती। सिर्फ कुछ भाव भरे सरल शब्द, "बीबी जी, कफनके लिये पैसे दीजिए, मेरा रहमत अब नहीं रहा···" और जैसे कुछ कमी रह गयी हो, सो जोड़ देती है, 'खुदा तुम्हें सलामत रखें'।"

और चेतना गल कर किसी कलामय ऊंचाई पर आ रही है। उजड़े हुए सुखका दामन पकड़े, यह पीड़ित मा जैसे चेतनाका व्यक्तित्व और मसजिदके ध्वंसको समेट रही है अपने अन्दर। निर्माणकी सारी आशा खोकर अपनी जिन्दगी की राखपर स्थित सलामत रहनेकी बात वह कैसे कह सकती है?

"बांहोंका सहारा लेकर मेरे पास चली आओ···मैं ऊपर नहीं हूं तुमसे, तुमसे ऊपर नहीं—और तुम तो मेरी मां की तरह हो।" वह क्षणिक उत्तेजना व्यक्त करती रही, "मैं तुम्हें पैसे नहीं दूंगी; कफन दूंगी, सुनती हो···।"

वह अन्दर आयी उस पवित्र संकल्पका ख्याल रखे, खादीकी अपनी सफेद चादर लाकर, उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो मैं अपनी चादर तुम्हें दे रही हूं···।"

सफेद चादर···जहां रंगोंका अभाव है, सादापन है, कालिमाका नाश, रक्तका विनाश—यह चादर है सफेदी, रिक्तता···हार······।

"नहीं मैं यह नहीं लूंगी बीबीजी, बेटी···मैं काल

कफन लूंगी। मेरा बेटा जवान था···उसकी नसोंमें लाल लहू दौड़ता था न ?" वह मुड़कर जानेका लक्ष्य कर रही है। उसके संकेतकी तीव्रता निर्भय पदाघातसे व्यक्त हो रहा है।

रहमत जिस घड़ी दम तोड़ रहा होगा, वह ऐसा ही उजला रहा होगा जैसी यह चादर। पानी हो गया होगा उसका लहू। दिन रात भीख मांगनेकी क्रिया और जीनेकी चिन्तासे घुला-घुला वह जर्द सफेदीसे भर आया होगा—इसीलिये उसकी मा उजले रंगोंसे नफरत करती है।

चेतनाको इस ईमानदारीसे वितृष्णा हुई। ध्यान पति की ओर चला गया। अभी कालेजमें होंगे, अङ्गरेजी किताबों के बीच—उनकी गहराईकी थाह लेते। अब उनकी विचार-धारा स्वतन्त्र सूत्रों पर पड़ती है न केवल! कि अङ्गरेजीकी अति-आधुनिक कविता (स्पेण्डर और 'ओडेन') (Spender and Auden) में 'मार्कसिस्ट फिलासफी (Marxist Philosophy) व्यक्त होती है। वस्तुकी उत्पादन प्रणाली और Class Consciousness (वर्ग संघर्ष) के आधार पर साहित्यकी नींव पड़ती आ रही है··· (Auden) (ओडेन) की (New year Letter) या (Spender) (स्पेण्डर) की (Pavents) कवितामें यही 'थीम' (Theme) है न ? जाने क्या क्या बताते हैं दिन रात··· महात्मा गांधी एक बार, अन्तिम बार, आमरण अनशन करनेको सोच रहे हैं। उनकी यह मनोवृत्ति राष्ट्रके लिये कैसी होगी ? शायद देशकी जनताकी Static (गति-रोधकी) अवस्था देखकर, निराशासे उत्पन्न विपन्नता है यह। कैसे नीच हैं देशके लोग, पतित, राष्ट्रीय भावनासे दूर,अनेक व्यक्तिगत सामाजिक भावनाओंमें उलझें। आजकी सभ्यता और संस्कृति लड़ाई, द्वेष, झूठेपन और गैर ईमान-दारीपर आश्रित है और आज युनिवर्सीटीमें म्युजिक कान-फ्रेंस है···फैय्याज खां, ओंकार नाथ पटवर्धन आदि आदि।

···मैं यह कैसा सङ्गीत सुन रही हूं जो निरन्तर मेरे कानोंमें मेरी धमनियोंसे प्रवाहित होकर मेरी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर रहा है?मेरी शिराओंको उन्मुख करता है रक्तकी गतिमें ?...जो मेरी आकृतिको, मेरी स्थिति-वर्षोंके सञ्चित मानको चुनौती दे रहा है----विद्रोहके लिये जाग उठनेके लिये······

"क्या सोच रही हो बेटी···मैं जा रही हूं···खुदा तुम्हें सलामत रक्खें।" फिर वही बात···। मैं सलामत नहीं रहना चाहती। सलामत रहना पतनका लक्षण है---उसी तरह जैसे किसीकी जीवन-शक्ति छीन कर कायामात्र छोड़ दी जाये।

चेतनाके मनमें थोड़ा सा संशय उपजा! वह पतिका गुलाबी शाल ला कर उसे कफन मान कर दे रही थी। उसके लिये अनुमति या सहमतिकी जरूरत है किन्तु उत्तेजनाके वशमें आकर वह ज्ञानकी दृष्टि खोने चली थी।

भिखारिनने उसे दुआएं दी माथे पर हाथ रख कर, हल्केसे चूम कर, "बेटी तुम्हारा सुहाग बना रहे।"

गुलाबी शालको अंग अंगमें लपेटे वह विधवापन त्याग रही है--उसकी गोदमें उसका पुत्र जी उठा है। अपनी कहानी वह स्वयं अंकित करती है, "रहमतको दर दर भीख मांगना मन्जूर न था। वह लड़ाई लड़नेवाला शख्स था बेटी! मस-जिदके नीचे पीपल और बबूलकी छांहमें उसकी उम्र बीती है। वह हरेक दिन और हरेक रात अपनी भद्दी किस्मतको बदल डालनेकी कसम लेता था। वह सोचता था मुट्ठे रुपयोंसे ढक देगा-इन्सान बननेकी ख्वाहिश उसे पागल बनाए रहती थी। केवल माड़ पी पी कर वह जी रहा था और उसका शरीर कुम्हला कर सूखता था, बेटी! तब मनहूस घड़ीमें, और पागलपनके शुमारमें नमाज पढ़नेवाले मौलवीकी लड़की तहमीनासे उसकी आशनाई हो गयी और वह निकाह करनेका सपना देखता था। इसीलिये उसे कब्रमें जाना है बेटी। जानती हो मेरे लालको उस शैतान मौलवीने जादू पढ़ कर मार डाला···मैं कितना रोई, चिल्लायी···चीखी। शायद अब नयी दुनियामें उसका इन्साफ होगा······,

सांझका मटमैला गर्द वातावरण पर छाया जा रहा है। विस्फोटकी तीव्रताकी आशा देनेवाली गहरी निराश वेदना सामूहिक दुनिया पर अंधियारी-सी फैलती आ रही है! चेतना प्रतीक्षा कर रही है···अब यह औरत जा रही है जिंदगीके सुख और सपनोंको मिट्टीके अन्दर डाल आनेके लिये······एक अप्रत्याशित खालीपन, एक भयङ्कर सहनशीलता उसे जकड़ रही है जिससे कभी निस्तार नहीं होगा।

"तुम किस ओर जाओगी अभी ?" उसने शृंखलाके स्वरोंको तोड़ कर नमित हो कर कहा, "मैं तुम्हारी क्या मदद करूं ?"

"कुछ नहीं, तुमसे मैंने बहुत कुछ पाया है बेटी!" और वह चली गयी। एक बार धूमिल पड़ती हुई सांझमें चेतनाने देखा---आंसू सा कुछ तरल किन्तु विद्रोहमय भिखारिनके सम्पूर्ण अस्तित्वको बांध रहा है।

एक सप्ताह पहले अनाथालयका एक छोटा लड़का उसके घर आया था। चन्दा मांगनेके लिये, चेचकके दागोंसे काला, और एक अस्वभाविक भद्दी गरीबी लिये। वह घृणा उपजाते

के लिये काफी था । उस विरक्तिको चेतना कभी जीत नहीं सकती । मौतकी बांहोंमें रहमत, प्रेमी रहमत, जवान भिखारी, क्या वैसा ही घृणास्पद नहीं रहा होगा ? किन्तु रहमतसे वह विरक्त नहीं है जिसे किसी शैतानके जादूने मृत्यु दी है। अपनी इस कमजोरीका अर्थ वह नहीं समझ सकी। वह नहीं जानती थी कि अन्तर केवल भाव विभाव या background (पृष्ठभूमि) का है। कलाकी दृष्टिसे और जिन्दगीकी अभिव्यक्तिसे भी, अनाथालयका व्यक्तित्व एक क्षणकी तीव्रतामें महान विधवा मांसे कहीं अधिक नीची सतह पर खड़ा है ।

वह देहरी पर खड़ी थी कि उसकी नौकरानी आयी और फिर बर्तन मांजनेकी कर्कश आवाज, धुंआ...धुंआ जो अपनी अधिकतासे आंखोंसे पानी ला रही है। नौकरानीने जैसे अनावृत्त सी मालकिनकी व्यथाको पहिचाना, "क्या मा जी, आज चाय नहीं बनेगी ?" चेतना को चुप पाकर वह कहती है,"आये नहीं मालिक शायद,बहुत देर हो जाती है न ?' और साहस कर कहती है, "मैं सबेरे जाऊंगी आज, परदेशसे आनेवाले हैं।" वह शरमा कर मुंह छिपा लेती है ।

स्वीकृति की 'हूं' के अतिरिक्त चेतना कुछ नहीं कहती। सोचती है कि एक समय सहस्त्र अनुभूतियोंके मध्य वह आने वाली है। प्रेम करना, परवा करना, आसरा देखना सब व्यर्थ है। रहमत और नौकरानी, नौकरानी और रहमत...कहीं किसीमें अन्तर नहीं है।

तब साइकिलकी परिचित आहटसे वह समझती है कि पति आ रहे हैं। वह अनमनी-सी होकर जान-बूझ कर उपेक्षा कर जाती है,"आप वैसे ही बहुत प्रतीक्षा कराते हैं।"

"चलो ऊपर।" उन्होंने कहा। सीढ़िया चढ़नेके मद्धिम उतार-चढ़ावसे वह जानती है क्लान्ति और थकान से यह धीमी चाल है। ऊपर चढ़ते चढ़ते उसने पाया एक अभेद्य दीवार बीचमें खड़ी हो आयी है, अपने आरम्भमें हल्की खिंची, अपनी थकानमें सहज विरक्त और चेतना समवेदनाका भाव लानेमें असमर्थता पाती है। 'क्यों देर हो गयी ?' यह प्रश्न अभी असङ्गत है, यह सवाल करना अविश्वास कहा जायगा। कहनेके लिये कुछ नहीं है और समय काटनेके लिये वह अस्त-व्यस्त कमरेको संवारने लगती है।

पतिने कहा, "तुम्हारी यह कैसी खराब आदत है, चीजोंको रखनेका क्या दूसरा समय नहीं होता। जाने किस निराशामें पड़ी रहती हो मुंह बनाये...।"

चेतना एक बार ही रुक कर सुनती है, "दिनभरका थका मांदा घर आता हूँ---तुम्हारे चेहरे पर स्वागतकी हंसी नहीं होती। सिर्फ मेरी जान खानेके लिये आयी हो।"

चेतना सहन-शील हंसी लाकर कहती है, "लीजिये हंस तो रही हूँ। अभी वैसी कुछ बात हो गयी थी एक पहर पहले..." दुर्भेद्य दीवारका हलका तना अपनी जकड़में कठिन होता जा रहा है।

"चुप रहो, कैफियत देनेकी जरूरत नहीं।"उन्होंने नौकरानीको पुकारा, "चाय बनी महरी।"

"जी अभी थोड़ी देर है, आग जला रही हूँ।" सहमी-सी नौकरानी उत्तर देती है और एक अनावश्यक खिंचावको नम करनेके ख्यालसे सफाई देती है, 'लकड़ी सूखी नहीं थी।'

चेतनाने देखा आस पासके घरोंके चिमनियोंसे एक साथ सहस्र बिन्दुओंसे बना धुंआ ऊपर उठ रहा है। सांझके झुटपुटेमें एक उदास किन्तु कड़वी आशा—प्रत्याशा नजर आती थी। वह सोचती थी दूर रेतीली नदीपर कब्र अपना मुख खोले, जवान रहमतकी शवको बन्द कर रहा होगा अपनी कोटरमें, अपने पंजोंके भीतर, सदाके लिये...

छज्जेके पास वह देखती है कि तमतमाया हुआ पतिका चेहरा झुका-झुका काले अक्षरोंमें लीन ! चेतना सोचती है ये मान क्यों कराते हैं ? इतने दिनोंमें भी नहीं समझे, यह कैसा व्यंग है ! उनके विचारों और भावनाओंको मैं किस तरह स्वीकार करती। स्वतन्त्रता या आजादीका अर्थ नहीं समझते, घृणा करते हैं मजदूर और किसानोंसे। एकमात्र आकांक्षा है सरकारी नौकरी, शान-शौकतकी जिन्दगी काटनेकी मनोवृत्ति, अपने हृदयमें बुर्जुआ, संस्कारोंके मध्यवर्गका आदमी......और मेरी लाख लाख प्रेरणायें उन्हें बदल नहीं सकीं, नहीं बदल सकीं।

नौकरानी आकर कहती है, "जयन्त बाबू खोजने आये हैं मालिक को।" "क्या होगा खाक। चाय तक बनी नहीं।' कहते कहते वे नीचे जाकर जयन्त नामके व्यक्तिको ऊपर लाते हैं। सीढ़ियों पर खुली स्वच्छन्द हंसीकी इकहरी-दोहरी गूंज व्याप जाती है।

चेतना घृणासे देखती है उस कमीने आदमीको जो शहर के नामी बैरिस्टरका उधार लिया हुआ बेटा है, पतिका मित्र है। वह अपने कमरेसे सुनती है उनकी बातें कुछ अस्पष्ट, समझनेका प्रयत्न भी गलत लगता है। एक पहर बीत जानेका बोध उसे आता है तब वह देखती है पति सामने खड़े हैं, गम्भीर बन कर कहते हैं, "चलती हो 'म्युजिक

कानफ्रेंस'? रात भर समय बीत जायगा अच्छी तरह। टिकटका भार जयन्त जी ले रहे हैं—हम लोग ऊंचे ही क्लास में चलेंगे—एक सौ वाले में।"

"मैं भीख लेकर जाना नहीं चाहती···"अपने व्यक्तित्व को ऊपर लाकर वह निर्भय सी कहती है।

"अच्छी बात है, तुम्हारी समझको मैं क्या करूं? जी में आये, चलो, या नहीं चलो।" बराबरके कमरेमें वही भद्दी गूंज। चायके प्यालेकी आवाज और उसके बाद जानेका उपक्रम।

पति रुष्ट होकर मांगते हैं,"कहां है मेरी गुलाबी चादर, शाल···समय पर चीज नहीं मिलती, लाओ तो जरा···"

···शाल अब सिर्फ रहमत है,भिखारिका जवान बेटा··· शालके अन्दर उसका लहू है, जो अमिट रंग है···सरकारी नौकरीके उम्मीदवार, मनोरंजनके लिये सहस्रों खर्च करनेवाले इन्सानके लिये नहीं···। वह कह देती है, "एक विधवा भिखारिनके मरे हुए जवान बेटाके कफनके लिये मैंने दे दी है।"

फिर एक विस्फोट, "खुद क्यों न चली गयी बेटी बनकर दूसरेके टुकड़ेपर पलने वाली, बेहया, कमीनी···"

क्रोधके आवेशमें शब्द नहीं पा रहे हैं। अभेद्य दीवारकी जकड़ मजबूत होती जा रही है। सांझके अन्तिम प्रयाणमें अधिक गर्द उड़ता आ रहा है······

सांझकी रक्ताभ कान्तिको कालिमा आकर गाढी बना गयी···ज्वालामुखियोंकी धधक चेतनाको व्याकुल कर रही थी। फूट पड़नेके लिये शीघ्र अनुरक्त······

नौकरानीने आकर कहा,"बीबी जी, जाऊं न मैं अब?"

"हां, चली जाओ अपने प्रतिसे पीसे जानेके लिये बेशरम।" उसी आवेशके क्रममें तीव्रतर आवाजसे कहा।

देहरीका सहारा लिये वह प्रत्येक पहर रातकी राह देखती रही। जो कुछ आनेवाला है वह स्वागतका अभिलाषी है अवश्य!

···मैं सदासे सतायी, किसी शक्तिके सहारासे हीन, सिर्फ तरल चीज हूं एक, मेरा अपना कोई आधार नहीं। कुछ नहीं···मुझे शक्ति दो, शक्ति दो···।

रात बीत रही है। कालेपनकी बेदर्दी बढ़ती जा रही है, एक शून्य, हतचेत सी वास्तविकता जिसकी पकड़में आक्रान्त आदमीकी हड्डियोंके ढांचे टूट रहे हैं······

चेतनाने गहरी चीख, आत्माको बेधने वाली रोनेकी ध्वनि सुनी—किसी रहमतके नाशका सन्देश, किसी नौकरानीपर बलात्कारकी सूचना या म्यूजिक कान्फ्रेंसमें हंसीकी पराकाष्ठा···

वह साहस करके सड़ककी दूसरी छोरपर बढ़ी। मसजिदकी कमाचियोंसे जकड़ी वह विधवा लड़कियोंको जलाये, गर्मीके लिये प्रतीक्षारत—बैठी चीख रही थी—अपने बीते दुखकी यादगारके लिये···। पीले आलोकमें चेतनाको पहिचान कर वह और चीखी, "रहमतको मैंने कब्रमें डाल दिया है बेटी, अब मेरी बारी है···।"

चेतना सुन्न-सी खड़ी थी—कांपती और सिहरती··· उधरसे एक रिक्शावाला गीत गाता आ रहा था। एक राहीने पूछा, "किधरसे आ रहे हो। युनिवर्सिटीसे क्या?"

"हां भाई,कुछ आवारोंने फाटकपर आग लगा दी है पूरा पण्डाल जल रहा है—मैं खुशीमें गा रहा हूं। वहां भी गीत होता था न। अब मिलिटरी आनेवाली है बन्दूक लेकर···"

चेतनाने एक आकस्मिक जर्द आभाके चिन्ह व्यक्त करके, असाधारण संयत होकर कहा, "सुनो रहमतकी मां, मैं उन आवारों और गरीबोंके लिये लड़ूंगी, जहां शासनका अत्याचार और अन्याय होनेवाला है, और मैं तुम्हारे लिये लड़ूंगी और तुम्हारे रहमतके लिये···।



मनुष्य जातिकी भोजन सम्बन्धी प्रगति

श्री भगवानदास केला

जहां तक मालूम हो सका है, और साधारणतः समझमें आता है, शुरूमें आदमीके खानेकी चीजें या तो जङ्गली तौर पर पैदा होनेवाले पेड़ पौधोंके फल मूल कन्द थीं, या जानवरोंका मांस ओर मछलियां। उस समय वह अघोरी यानी सब तरहकी चीजें खानेवाला था। उसे जो कुछ मिल जाता उसे ही खा लेता। वह जानबूझकर न फलाहारी था और न मांसाहारी ही। उसका भोजन इस बात पर निर्भर था कि जिस जगह वह रहता, वहां क्या मिल सकता था। सम्भव है, कुछ जगह ऐसी उपजाऊ हो कि वहां कुदरती तौरसे बहुत समय तक काफी फल, शाक, मूल, कन्द आदि मिलते रहें। वहां आदमीका मांस न खाना या बहुत ही कम खाना स्वाभाविक था। दूसरी जगहोंमें जहां कुदरती फल आदिकी कमी रही, वहां आदमीके लिये मांस, मछली खानेके सिवाय कोई चारा ही न था। शुरूमें उसे किसी भी पशु-पक्षी आदिके मांससे परहेज न था। यह तो खानेकी चीजोंके भेदकी बात हुई। आदमीकी खुराकके परिमाणके बारेमें बात यह थी कि अगर उसे मिल सकता तो वह अपनी मामूली खुराकसे बहुत ज्यादा खा जाता था। लेकिन अकसर ऐसा अवसर आता था कि उसे खानेको काफी नहीं मिलता था और कभी कभी तो कुछ भी नहीं मिल पाता था। ऐसी हालतमें आदमी कई कई दिन तक भूख सहता और उपवास या अनाहार करता था। उस जमानेमें आदमीके खानेका कोई समय नियत न था; बिलकुल सबेरा हो, कुछ दिन चढ़ा हो, दोपहर हो, तीसरा पहर हो या शाम या रात हो जब भी कुछ मिल जाता, वह खानेको तैयार रहता था।

आगका आविष्कार होनेके पहले आदमी हर चीज—मांस हो या जङ्गली फल या अनाज—कच्ची ही खाता था। जब उसे आगका उपयोग करना आ गया, तो वह चीजोंको भून कर खाने लगा। इसके भी बहुत समय बाद उसने खाना पकाना सीखा। शुरूमें उसके पास मिट्टी या धातुओंके बर्तन तो थे ही नहीं; वह चमड़ेके बर्तनोंसे ही काम चलाता था। वह उनमें पानी डाल कर रख लेता और पास ही आग जला कर पत्थरके टुकड़े खूब गरम करता और उन गरम पत्थरोंको लकड़ी या पत्थरके सहारे चमड़ेके बर्तनोंमें डालता, और उन्हींमें मांस या अन्न आदि डाल देता। इस तरह पानी उबलने लगता और आदमीका भोजन पकता था।

आदमी धीरे धीरे तरक्की करके, पशुओंको पालने लगा और चरवाहेका जीवन बिताने लगा। चरवाहा बनकर भी आदमीने मांस खाया तो सही, पर बहुत ज्यादा नहीं। चरवाहा अपने पशुको मांसके लिये मारनेका जल्दी विचार नहीं करता; पशु उसका धन है, जिसे बढ़ानेकी तरफ उसका ध्यान रहता है। चरवाहा किसी जानवरको अकसर उसी हालतमें मारना पसन्द करता है जबकि जानवर बीमार हो, हो या कोई त्योहार या उत्सव हो अथवा किसी 'धार्मिक' कामके लिये कुर्बानी करनी हो। फिर, चरवाहोंको दूधका बहुत शौक होता है, इसलिये दुधारू पशुओंकी तो जहां तक बने वे रक्षा ही करते हैं। अस्तु, चरवाहेकी हालतमें आदमीने मांसका उपयोग पहलेसे कम किया। पीछे खेतीका काम चल निकलने पर तो पशुओंका, खासकर पाले हुए पशुओंका मांस खाया जाना और भी कम हो गया। खेती करनेवालोंका ध्यान खेतीकी तरफ ही ज्यादा रहता है, वे उन्हीं पशुओंको पालते हैं, जो खेतीके काम आते हैं।

यह जाहिर ही है कि शुरूमें आदमी ऐसी चीज खाता था जिन्हें पैदा करनेके लिये उसे कोई मेहनत करनी नहीं होती थी यानी जो कुदरती तौरसे मिल जाती थी। वह जङ्गलमें अपने आप पैदा होने वाले फल आदि खाता था या शिकार अथवा मछलियों आदि पर गुजर करता था। खेतीकी बात मालूम होने पर आदमी तरह तरहके फल, शाक या अन्न पैदा करने लगा। अब वह कुदरती तौरसे मिलनेवाली चीजोंके अलावा, अपनी मेहनतसे पैदा की हुई चीजें भी खाने लगा। ध्यान देनेकी एक खास बात यह है कि शुरूमें आदमीने अपना रहन-सहन और जीवन अपने भोजनको दृष्टि में रखकर उसके अनुसार बनाया। आवश्यकताके अनुसार वह शिकारी, चरवाहा या किसान रहा है। पहले विद्वानोंकी प्रायः यह समझ थी कि आदमी शिकारीकी अवस्था पार करके चरवाहेकी अवस्थामें आया और उसके बाद किसान बना; और जो भी समूह इस समय किसानकी अवस्थामें है, वे पहले शिकारी और चरवाहेकी दशामें रह चुके हैं। लेकिन

जांच और खोजसे मालूम हुआ कि यह जरूरी नहीं है कि खेती करनेवाले समूह पहले चरवाहे अवश्य ही रहे हैं। आम तौरसे यह कहा जा सकता है कि प्रगति या विकासका कोई एक निश्चित क्रम या सिलसिला नहीं है, बल्कि कई अलग अलग क्रम हैं; वे देश, काल या वातावरण पर निर्भर रहे हैं। इतिहासमें ऐसी भी मिसालें मौजूद हैं कि खेती करने वाले आदमी पीछे पशु पालनमें लग गये जबकि या तो उनके देशमें कोई खास परिवर्तन हो गया या वे दूसरी ऐसी जगह चले गये जहांकी हालत पशु पालनके अनुकूल थी।

खेतीने आदमीको अपने भोजनके लिये तरह तरहकी चीजें पैदा करनी सिखायी। अब उसका भोजन उन्हीं चीजों तक परिमित न रहा, जो उसे प्रकृतिसे खुद ही मिल जाय। अब उसकी आविष्कार और प्रयोग करनेकी प्रवृत्तिको प्रकट होनेका खूब मौका मिलने लगा। वह जांच करता कि कौन सी चीज खानेमें अच्छी है, कौन सी कड़वी, कसैली, चरपरी या जहरीली है और कौन सी स्वादिष्ट, मीठी, पौष्टिक आदि है। अच्छी अच्छी चीजोंको वह पैदा करता गया। आगे और प्रगतिका नतीजा यह हुआ कि कुदरती तौरसे मिलनेवाली चीजोंका भोजन और कम हो गया; ज्यादातर वे चीजें खायी जाने लगी, जो आदमीकी अपनी मेहनतसे पैदा होतीं।

ज्यों ज्यों आदमीका ज्ञान बढ़ा, उसने खायी जानेवाली चीजोंके गुणों पर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार किया। उसने मालूम किया कि किस चीजको खानेसे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, वह शरीरके किस तत्वको बनानेमें सहायक या बाधक होती है और किन किन चीजोंके मिश्रणमें क्या गुण या अवगुण हो जाते हैं। भारतवर्षका आयुर्वेद संसारका बहुत पुराना साहित्य है, इसमें मनुष्यकी आयु या स्वास्थ्यके सम्बन्धमें बहुत उत्तम ज्ञान मिलता है। यहां संस्कृतमें ऐसा बहुत सा साहित्य है जिसमें बहुत ब्योरेवार खाद्य पदार्थोंके गुण दोष बताये गये हैं। अब तो सभी देशोंमें इस तरहका थोड़ा बहुत साहित्य है और वहबढ़ता जा रहा है। आदमी इससे ज्ञान प्राप्त करके बहुत लाभ उठा सकता है।

अब कुछ वर्षोंसे विटामिन (पोषकतत्वों) की बड़ी चर्चा है। विटामिन सभी ताजे पदार्थोंमें होते हैं, पर अभी तक उन्हें अलग नहीं किया जा सका है। यह माना जाता है कि विटामिन 'ए' शरीरके बढ़नेके लिये आवश्यक है। यह मक्खन, मलाई, हरे शाक-भाजी, मांस और मछलीके तेलमें मिलता है। भोजनमें इस विटामिनकी कमी होनेसे हड्डियोंकी बीमारी होती है। चीजोंको उबालने, औटाने, तलने या छौंकनेसे यह विटामिन कम रह जाता है। विटामिन 'बी' पाचन शक्ति या हाजमेको ठीक करता है। यह फल, सब्जी अनाज, मटर और सेमकी फली आदिमें होता है। विटामिन 'सी' खून साफ करता है; यह टमाटर और रसदार फलमें, और अन्नके अंकुर निकले हुए रूपमें अधिक होता है। इसी तरह 'डी', 'ई', 'एफ' आदि विटामिन भी हैं। जिन चीजोंमें विटामिन नहीं होते या बहुत ही कम होते हैं उनमें-से कुछ ये हैं—डिब्बेमें बन्द रहनेवाली खुराक, चाय, कहवा मैदा, बेसन, शरबत आदि। विटामिनके सम्बन्धमें अभी शोध और आलोचनाएं हो रही हैं, क्रमशः इस विषयपर और प्रकाश पड़नेकी आशा है।

आम तौरसे आदमी खाद्य पदार्थोंके गुण दोषोंका विशेष विचार नहीं करते। उसे स्वभाव और परम्पराका ही ध्यान ज्यादा रहता है। खानेका मुख्य लक्ष्य (भूख-प्यासको मिटाना और शरीरकी परिवरिश करना) तो अब प्रायः गौण हो गया है, मुख्य उद्देश्य यह रहता है कि जीभको तरह तरहके पदार्थोंका स्वाद मिले। यही कारण है कि अनेक प्रकारके मीठे या नमकीन पकवान बनाये जाते हैं, चटपटे मसालेदार चीजोंकी भी संख्या कम नहीं। आदमी अपने भोजनमें कितने ही मसाले खा जाता है, जो शरीरके लिये कुछ लाभदायक नहीं, बल्कि कुछ अंशमें नुकसान ही पहुंचाते हैं।

जब आदमी एक ही समयमें तरह तरहकी चीजें खाता है, तो वह हर चीजको थोड़ी थोड़ी खाते हुए भी सब मिला कर अपनी जरूरतसे ज्यादा खा जाता है। इससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ता है और उसका रोगी होना स्वाभाविक है। जब आदमी हर रोज अधिक खाने लगता है तो पीछे उसकी यह आदत छूटनी मुश्किल हो जाती है। मध्य और ऊंची श्रेणीके बहुतसे आदमियोंकी अधिकांश बीमारियोंका कारण यही है कि वे तरह तरहकी बहुत सी चीजें खाते हैं और स्वादके कारण जरूरतसे ज्यादा खा जाते हैं। जहां तक बने, एक ही समयमें बहुत तरहकी चीजें न खानी चाहिये।

एक और दृष्टिसे भी एक समयमें अलग अलग तरहकी बहुत सी चीजें खाना अनुचित है। हर एक चीजकी अपनी अपनी विशेषता होती है। कोई चीज जल्दी हज्म होती है, कोई बहुत देरमें। पेटमें पहुंचनेपर कुछका रस जल्दी बनने लगता है, और कुछका बहुत देर बाद। इससे पाचन क्रिया में बड़ी गड़बड़ मचती है। इसके अलावा कुछ चीजें ऐसी

भी होती हैं कि उनका एक दूसरेके साथ मेल नहीं बैठता। बेमेल भोजनसे शरीरमें बहुत विष और विकार पैदा होता है। आदमी को चाहिये कि एक समयमें न तो ज्यादह चीजें खाये, और न बेमेल भोजन ही करे। जीभको वशमें रखे, जिससे शरीरके हितके लिये जो चीज जितनी आवश्यक हो उतनी ही खायी जाय।

लेकिन होता क्या है? अब तो जो अन्न, शाक, भाजी, फल आदि जमीनमें पैदा होता है, या दूध और मांस जो पशु पक्षियोंसे मिलता है, उसको भी सभ्य आदमी बहुत सी ऐसी क्रियाओंके बाद खाता है कि उनका रूप रङ्ग और स्वाद बिलकुल बदल जाता है। आधुनिक आदमी कितनी तरह की जुदा-जुदा चीजें तैयार करके खाता है, इसका हिसाब लगाना बहुत ही कठिन है। अब वह पशुओं या जङ्गली आदमीकी तरह देश कालका बन्धन नहीं मानना चाहता। वह कितनी ही चीजें ऐसी खाता है जो सैकड़ों या हजारों मील दूरसे आती हैं।

मिसालके तौरपर भारतवर्षमें बड़े बड़े शहरोंमें ही नहीं, कितने भीतरी कस्बोंमें जहां रेल आदिकी पहुंच नहीं है, कंधारी अनार, कशमीरके सेव, नागपुरके संतरे, कलकत्ते या बम्बईके केले आदि बिकते हैं। यहां हर वर्ष लाखों रुपयेकी खानेकी चीजें विदेशोंसे डिब्बोंमें बन्द की हुई आती हैं। बे-मौसमी फलों या शाक-भाजीको खानेमें अलग ही शान समझी जाती है। इसलिये कितनी ही चीजें इस अन्दाजसे पैदा की जाती हैं कि वे शौकीन लोगोंको ऐसे समयमें मिल जायें, जब कि वे आम तौरसे नहीं मिल सकतीं। फिर, खानेकी एक एक चीज कई कई तरहसे बनायी जाती हैं। रोटीको ही लीजिये—फुलका, सादी रोटी, पूरी, परांठा, पुआ, मीठी रोटी, नमकीन रोटी, डबल रोटी, बिसकुट आदि कितने ही भेद हैं। शाक, भाजी, मिठाइयां और नमकीन चीजोंकी कुछ गिनती ही नहीं। चटनी, अचार, मुरब्बे भी बहुत किस्मके होते हैं। पीनेके लिये सादे पानी या दूधसे आधुनिक आदमीको सन्तोष नहीं। हर मौसममें जुदा जुदा पेय पदार्थोंका सेवन किया जाता है; ठंडाई, शर्बत और सोडा वाटर बहुत तरहके बनाये जाते हैं। चायका प्रचार तो घर घर हो चला है। शराब पीनेवालोंके लिये कई तरहकी शराब तैयार है। इस तरह खानेकी देशी और बिदेशी चीजोंका कोई अन्त ही नहीं। पाठक जानते ही हैं कि दावतोंमें कहीं कहीं खाने-पीनेकी तीस चालीससे भी अधिक चीजें परोसी जाती हैं। अगर किसी एक देशकी भी खाने-पीनेकी सब चीजोंकी सूची बनायी जाय तो आश्चर्य ही होगा कि आदमी कितनी चीजोंका उपभोग करता है। जिनके पास काफी धन हैं उन्हें तो कहीं भी पैदा होनेवाली या तैयार की जानेवाली चीज मिल सकती है। विज्ञानके विविध साधन सेवाके लिये मौजूद हैं।

पिछले दिनोंकी बात है, करांचीमें कुछ अमरीकन सैनिक उतरे थे। उनके भोजनका प्रबन्ध एक बढ़िया होटलमें किया गया। होटलके मैनेजरको उनके आनेकी सूचना सिर्फ चौबीस घण्टे पहले मिली थी और उससे कहा गया था कि भोजनके लिये दूसरी चीजोंके अलावा एक खास किस्म की मुर्गीका मांस भी होना चाहिये। मैनेजरने कई जगह जरूरी (अर्जेण्ट) तार देकर उस मुर्गीके मिलनेकी बात पूछी। उसे मालूम हुआ कि वे मुर्गियां इलाहाबादमें मिल सकती हैं। फौरन हवाई जहाज इलाहाबाद भेजकर वे मुर्गियां मंगायी गयीं, और सैनिकोंके भोजनके साथ उनका मांस भी तैयार कर दिया गया।

क्या यह सब प्रगति हितकर है?

आदमीके भोजनका लक्ष्य यह होना चाहिये कि शरीर स्वस्थ रहे और हृष्ट-पुष्ट हो। अनुभव और प्रयोगसे यह मालूम हो गया, और मालूम होता जाता है कि खाने-पीनेकी किस-किस चीजमें क्या-क्या तत्व है, और शरीरको किन-किन तत्वोंकी जरूरत होती है। लेकिन कुछ आदमी तो अज्ञानसे और कुछ आदमी शौकीनी या स्वादके कारण उस ज्ञानका उपयोग नहीं करते। भोजनके बारेमें कुछ आवश्यक बातें संक्षेपमें नीचे दी जाती हैं:—

१—भौगोलिक या प्राकृतिक कुछ विशेष दशाओंको छोड़कर मांस नहीं खाना चाहिये। मांसकी जगह दूध, दूधसे बनी हुई चीजें, और मेवा अधिक उपयोगी हैं। २-खास कर गरम देशोंमें, शराबको केवल दवाईके तौर पर ही इस्तेमाल करना चाहिये, साधारण तौर पर नहीं। ठण्डे देशोंमें भी शराब बहुत परिमित मात्रामें ही लेनी चाहिये। शराब के बजाय ताजे फलोंके रससे शरीरको अधिक लाभ पहुंचता है। ३—चाय, काफी, तम्बाकू आदि साधारणतया शरीरके लिये आवश्यक है। इनका रोजाना सेवन नहीं करना चाहिये। किसी खास देशकालमें अस्थायी या थोड़े समयके लिये ही उपयोग होना चाहिये। ४-ताजी और बिना पकायी हुई चीजें जितनी खायी जा सके, खानी

चाहिये। मौसमी फल काफी खाने चाहिये। ५—कीमा तेलमें तली हुई चीजें न खानी चाहिये। ६—नमक बहुत कम खाना चाहिये, और मसालोंका सेवन जहां तक बने न करना चाहिये। ७—मिलके पिसे हुए आटे; धोयी हुई (छिलका उतारी हुई) दाल, छटाये हुए चावल (जो सफेद और चमकीला करनेके लिये पिसे जाते हैं) मिलके तेल, और शक्कर (चीनी) तैयार करनेमें बहुतसे आवश्यक तत्व नष्ट हो जाते हैं। इनकी जगह क्रमशः हाथ-चक्कीका पिसा आटा, 'काली' दाल, 'पूरा' चावल, कोल्हू या घानीसे निकाला हुआ तेल, और गुड़ कहीं अधिक उपयोगी है। ८—भोजन बहुत सादा होना चाहिये। एक साथ चार-पांच चीजोंसे अधिक नहीं खानी चाहिये।

पाठक अपने-अपने भोजनको ध्यानमें रख कर यह विचार कर सकते हैं, कि उन्हें उसमें कहां तक सुधार करना है। आदमीने भोजनके सम्बन्धमें समय-समय पर परिवर्तन किया है। कुछ परिवर्तन गलत दिशामें हो गये हैं। भोजन सम्बन्धी आदर्शोंको व्यवहारमें लानेके लिये आदमीको काफी मंजिलें तय करनी है। आशा है, धीरे-धीरे वह इस ओर प्रगति करेगा।

———

दो गीत

(१)

मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।

अनजाने रे, आंसू मेरे, क्यों आइ गये दृग-पथसे डर।
मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।
मेरी गागर सूनी मन की—
है व्यथा भरी, गति क्षण-क्षण की।
मैं सन्ध्या बन कर झुक न सकी, झुक आया तम का अम्बर।
मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।
प्राणों में, सागर से, पल पल,
रजनी के तारों से जल जल।
मेरे जीवन में भर कर भी, तुम, कहो गये क्यों निर्झर झर?
मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।
दुख, दुख ही तो मेरा सुख है,
सुख, सुख ही तो मेरा दुख है।
मैं क्या जानूं, क्यों पीड़ासे, उल्लास विश्व का रहा रिखर?
मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।
मैं भरी, न, भर पाया अन्तर—
मैं झरी, न, झर पाया निर्झर।
अपनी खाली वीणा पर, अब, क्या गाऊं मैं, किस स्वरका स्वर?
मैं भर न सकी, तुम गये बिखर।

(२)

दुख आंसू, बन बन ढलता है।

मैं क्या जानूं, क्यों पल पलमें, अन्तरका प्यार मचलता है।
दुख, आंसू बन बन ढलता है।
मेरे सुख के सपने बन्दी,
मेरे दुख के सपने बन्दी।
विस्मृति की कारामें सजनी--
मेरे शैशव के दिन बन्दी।
इन आकुल दृग-मन-प्राणों में, क्यों आज भरी विह्वलता है।
दुख, आंसू बन बन ढलता है।
मेरे मन में सुख पल न सका।
मेरे मगमें दुख चल न सका।
सुख-दुखकी निर्मम आंधीमें--
प्राणोंका दीपक जल न सका।
मैं सागर के कूल खड़ी, जिस पर तूफान मचलता है।
दुख, आंसू बन बन ढलता है।
मैं युग - युगसे रोती आयी—
क्षण भर भी तो मुस्का न सकी।
मन्दिरमें प्रिय तक जाकर भी--
चरणोंपर गिरकर गा न सकी।
अब देख रही अपने पन की, यह कितनी बड़ी विफलता है।
दुख, आंसू बन बन ढलता है।

—कुमारी शैल रस्तोगी

———

इंसानियत

श्री अविनाश चन्द्र

[पूर्व बङ्गालमें अकालके कारण खोले गये एक सरकारी अस्पतालका एक कमरा । सामनेकी दीवारके साथ एक आलमारी जिनमें कुछ शीशियां—बहुत खाली थोड़ी आधी भरी । बीचमें एक मेज जिसपर बहुतसे बिखरे हुए कागज पत्र । मेजके पीछे एक साधारणसी कुर्सी । बाईं ओरको एक बिना पीठका जर्जर बेंच । बाईं ओरकी दीवारकी खिड़कीसे हल्की हल्की पीली पीली धूप ऊपर आ रही है । पर्दा उठनेपर एक तीसेक वर्षीय युवक, पेंट और कमीजमें, आलमारीमें धरी शीशियोंकी जांच पड़ताल करता दिखायी देता है और फिर हाथमें एक डब्बा लिए मेजपर आ बैठता है ! देखनेमें साधारण, कुछ, चिंतित और थका हुआ । दो दिन पहलेकी बनी हुई दाढ़ी और बिना तेल छोड़े पीछेकी ओर घुमाए हुए बाल । डब्बेमेंसे एक सफेद रङ्गकी औषध अखबारके कागजपर निकालता और हाथोंमें उसके वजनका अन्दाज लगाने लगता है । फिर औषध डब्बेमें रख देता है । एक हाथ गालपर, दृष्टि शून्यमें । दाईं ओरकी दीवारमें जो दरवाजा है उसमेंसे एक बाइस वर्षकी युवती प्रवेश करती है । वह देखनेमें बेशक साधारणसे अधिक सुन्दर पर पकी हुई । सफेद साड़ी और एप्रान पहने । एप्रान शहरके अस्पतालोंकी नर्सोंकी तरह सफेद नहीं, उसपर काफीसे ज्यादा धब्बे हैं ।]

युवती—(सहमी हुई) हेलो डाक्टर !

डाक्टर—हेलो नीला ! (चिंताभाव छिपानेके लिये हंसनेकी चेष्टा करते हुए)

ओह ! हेलो-हेलो ! तुम आ गयी ?

नील—हां ! रात कोई खास बात तो नहीं हुई ?—एक नम्बरकी हालत…बेचारीको बार बार कै हो रही थी…?

डाक्टर—हां अच्छी है ।

युवती—आप…?

डाक्टर—मैं भी अच्छा हूं ।

नीला—मुझे तो आपकी तबीयत कुछ…

डाक्टर—(फिर मुस्करानेकी चेष्टा करते हुए) ओह नो । आई एम आलराइट--मैं बिलकुल ठीक हूँ । तो—तो लेटअस स्टार्ट । मनु वार्डमें है, उसे बुलाओ तो जरा । (युवती चली जाती है । डाक्टर उठकर आलमारीमेंसे एक डब्बा निकालता है और उसका सब सफेद पाउडर एक अखबारके कागजपर निकालता है । उसे हाथमें उठाकर तौलनेकी चेष्टा करता है फिर डब्बेमें डाल देता है और एक कोनेमेंसे एप्रान उठाकर पहनने लगता है) मनु अन्दर प्रवेश करता है । वह एक पैंतीस वर्षके दरम्यानका, कदका ठिगनासा बङ्गाली है । (धोती और कमीजमें) क्या हाल है ?

मनु—कोलेप्स !

डाक्टर—राइट । आज नहीं उसे कल मरना था । (क्षण भर चुप रहता है,उसके मुंहके भाव बड़ी तेजीसे बदलते है । मुट्ठी कसकर मेजपर मारते हुए) मनु मैं क्या कर सकता हूं ! मैं न इन्हें बचा सकता न हूं न मरते देख सकता हूँ !…

मनु—डाक्टर—

डाक्टर-डाक्टर ! अठारह-अठारह बीस-बीस वर्षकी छोकरियोंके स्टिल चाइल्ड पैदा होने लगे है, बैठे बिठाए गर्भ गिर जाते हैं—डाक्टर ! डाक्टर क्या करे मनु ? मुझे पूरी आशा थी कि पार्सल आ जायगा और मैं उसे बचा लूंगा । सिर्फ एक डोजसे वह बच जाती । पर पार्सल नहीं आया । दो दो टेलीग्राफ दिये—डिस्ट्रिक्ट कहता है एच० क्यू०को लिखो और एच० क्यू० कहता है डिस्ट्रिक्टको । इसी बीच रोगी किनाराकर जाता है—इनकी बलासे । मरने दो । बिना हथियारके खिलाड़ी हैं हम—खड़े क्यों हो ?

मनु—उसे उठानेवाला कोई नहीं । गांवमें कोई सम्बन्धी नहीं बचा और दूसरा कोई हाथ नहीं लगायेगा ।

डाक्टर—तो सबको उठानेवाला फरखू जो है । बुलाओ फरखूको । उसके चार आने और बढ़ेंगे,वह भी दुआ मांगता रहता है ।

मनु—फरखू कहता है कि तबीयत ठीक नहीं । रातसे ताप आ रहा है, वह नहीं आता ।

डाक्टर—ठीक है ।

मनु—तो फिर ?

डाक्टर—तो किसी औरको—नहीं मैं आता हूं । मिलके उठा लेते हैं ।

मनु---पर---

डाक्टर---डाक्टरके काममें परका स्थान नहीं। चलो। (चलने लगता है)

नीला---(प्रवेश करते हुए) मनु दादा मैं तो आपको खोज रही थी।

डाक्टर---पूछो, कोई है, नहीं तो मुझे डोम बननेमें भी कोई एतराज नहीं।

नीला---(आश्चर्यसे) डाक्टर!

डाक्टर---आफ कोर्स। तुम अपना काम शुरू करो नीला। डाक्टरकी जिंदगीमें सेण्टीमेंटका कोई स्थान नहीं। हाफ डोज--अब तो ऐसा ही करना पड़ेगा। चलो मनु, दूसरा कोई नहीं तो स्वयं उठाते हैं। बाकी लोगोंपर बुरा असर पड़ता है।

नीला---पर डाक्टर हाफ वो पहले ही है। एक ग्रेन तो---

डाक्टर---(खीझते हुए) मैं जानता हूं नीला! हाफ डोज प्लीज---माफ करना मैं जरा, चलो मनु---और मालूम होता है तुम खुद डोज नहीं लेतीं। मनु, तुमने कल डोज लिया था।

मनु---(नीलाकी ओर देखकर) जी।

डाक्टर---'जी नहीं!' आज फरखू पड़ा है कल---काम करनेवालोंके लिये---मालूम होता है उसे भी रेगुलरली दवाई नहीं दी गयी।

नीला---वह पीता ही नहीं था।

डाक्टर---पीता ही नहीं था। (बाहर जाता है। पीछे-पीछे मनु भी। नीला आलमारी खोलकर एक छोटा कांटा निकालती है और उस डब्बेमेंसे पाउडर निकालकर तौलने लगती है। दायीं ओरकी दीवारवाले दरवाजेमेंसे एक युवती ऊपर आती है, दरवाजा पकड़ कर कुछ देर खड़ी रहती है। दुबली-पतली काली-पीली, बढ़ा हुआ पेट, गीली साड़ी बदनसे चिपटी धूलसे भरी हुई। क्षणिक वह इसी प्रकार खड़ी रहती है।)

नीला---कौन? तुम कौन हो?

युवती---भगवान तुम्हारा भला करे मा। (बैठ जाती है।)

नीला---(उसके पास जाकर) हैं, तुम कांप रही हो, तुम्हारे वस्त्र गीले हैं, क्यों-तुम्हें?

युवती---हां मा मैं मर नहीं सकती, मैं जीना चाहती हूं। डाक्टर बाबू हैं? डाक्टर बाबू सुना है बहुत अच्छे हैं। मुझे बचाओ मा।

नीला---तुम्हें हुआ क्या?

युवती---डाक्टर---

नीला---अभी आते हैं। तुम कौन हो? किस गांव की?

युवती---जीवनपुरके हम जुलाहे होते हैं---मुसलमान।

नीला---तुम भींज क्योंकर गयी?

युवती--गयी थी नदीमें डूब मरने:पर मरा नहीं गया। यह मेरी कोखमें जो निशानी है उनकी--बस यही--मैं जीना चाहती हूं---मैं मर नहीं सकती।

नीला---तुम्हारा पति कहां है, मा-बाप, भाई-बहन,—

युवती—(आसमानकी ओर उङ्गली उठाती है) बस यही एक निशानी है,यही एक सहारा है। इसे मैं---(कराहने लगती है।)

नीला—तुम कांप रही हो, भीतर आ जाओ। यह गीली साड़ी बदल डालो। डाक्टर अभी आते हैं। ले— (सन्दूक खोलकर एक साड़ी निकाल कर उसे देती है) बदल डालो और कम्बल देती हूं (युवती साड़ी बदल डालती है और कम्बल लपेट लेती है।) तुम्हारा घर-बार है, इतनी क्या हैरानी है, जीवनपुर वापस चली जाओ।

युवती—उसे तुम जीवनपुर कहती हो मा। वह मौतपुर है। लाशें घरोंमें सड़ रही हैं। मैं न जाऊंगी। नदीमें डूब मरूंगी, वहां न जाऊंगी—न जाऊंगी, यहीं पड़ी रहूंगी, नदीमें डूब मरूंगी—(रोने लगती है)

डाक्टर—(प्रवेश करते हुए) हू इज दैट? कौन हो तुम?

युवती—(सिसकती हुई) भगवान आपका भला करे डाक्टर बाबू—मैं?

नीला—प्रेगनेंट है। छईसाइड करने नदीमें कूदी, पर मर नहीं सकी। सन्तानकी ममता।

युवती--डाक्टर बाबू भगवान आपका...

डाक्टर—नहीं, हैव नो रूम! जगह खाली नहीं है माई। दवा मिल सकती है।

नीला—शी इज प्रेगनेंट।

डाक्टर—मालूम है। जवान छोकरियां गांवोंमें जो रह गयी हैं वे सब प्रेगनेंसीके कारण ही नहीं भाग सकी हैं कलकत्तेके बाजारोंकी ओर—नहीं माई जगह नहीं है, दवा मिल सकती है।

युवती—तेरा पुत्र जीता रहेगा, डाक्टर बाबू।

डाक्टर—नहीं बहन, हमारे पास जगह नहीं है। घर

जाओ, दवा दिये देता हूं। अस्पतालमें तिल धरनेको जगह नहीं।

युवती—एक कोनेमें पड़ी रहूंगी डाक्टर साहब! जीवनपुर न जाऊंगी, चाहे आप मारें चाहे जिलायें।

डाक्टर---(अपनी बेबसी पर हंसते हुए) अरे डाक्टर क्या करे, जब जगह नहीं, दवा नहीं, खाने तकको नहीं--डाक्टर क्या करे।

(एक पचीसेक वर्षका युवक प्रवेश करता है। यह वफादार नौकर है और गांवमें अपने आपको बड़ा अफसर समझता है। पतलून टाई कोट हैट सब लगाये हैं पर रूप लगता है किसी सर्कसके जोकर-सा। इसका नाम है फिदा हुसेन) येस प्लीज!

फिदा हुसेन---गुड मार्रनिंग। मैं मिस्टर फिदा हुसेन हूं। सेंट्रल गवर्नमेंटकी सरविसमें हूं।

डाक्टर---कहिये, मैं आपके लिये क्या कर सकता हूं?

फिदाहुसेन-उम्मीद है,आपको खबर मिल गयी होगीकि इस अस्पताली बिल्डिङ्गका चार्ज इसी पहलीको मुझेलेना है।

डाक्टर---बिल्डिङ्गकाचार्ज! तो अस्पतालका क्याहोगा।

फिदा हुसेन---अस्पताल बन्द।

डाक्टर---नहीं मुझे कुछ खबर नहीं।

फिदाहुसेन---मेरे पास सेन्ट्रलका लेटर है। देखिये (अन्दरकी जेबसे एक चिट्ठी निकालता है) साफ लिखा है। [डाक्टरको पढ़नेको देता है।]

डाक्टर---(पत्र पढ़ कर, लौटाते हुए) नहीं साहब मुझे कुछ खबर नहीं मिली।

फिदा हुसेन—लेकिन यह सेंट्रल गवर्नमेंटका लेटर काफीसे ज्यादा—

डाक्टर---आपके लिये। मुझे डिपार्टमेंटकी तरफसे कोई खबर नहीं मिली और फिर आप खुद सोच सकते हैं कि अस्पताल आठ दिनमें खाली हो ही कैसे सकता है। दो सौ मरीज पड़े है। नित नये आ रहे हैं, बीमारी बढ़ रही है, अस्पताल बन्द करनेका मतलब मैं नहीं समझ सकता।

फिदा हुसेन---तो आपका मतलब यह है कि जो लोग गवर्नमेंट चला रहे है कुछ नहीं समझते। उन्होंने चिट्ठी वैसे ही लिख दी है, वैसे ही सरकार उन्हें पांच-पांच हजार तनखाह दे रही है?

डाक्टर---दिल्ली यहांसे पन्द्रह सौ मील दूर है और उन मोटी तोंदवालोंको गेहूं, चावल, कुनाइन, दवा बिन मांगे मिल सकती है। वही लोग तो इस अकालके कारण हैं:---

फिदाहुसेन---मैं यह नहीं जानता, इस अस्पतालका चार्ज मुझे पहली तारीखको मिलना ही चाहिये।

डाक्टर---यह नामुमकिन है। इम्पासीबल!

फिदाहुसेन---इसका मतलब यह है कि मुझे गवर्नमेंटको तार देना पड़ेगा।

डाक्टर---आप जो भी चाहें कर सकते हैं और आप शायद यह भी जानते हैं कि मैं भी गवर्नमेंट सरवेंट हूं।

(एक बूढ़ा पीठपर एक बूढ़ीको लादे खांसते हुए प्रवेश करता है। उसकी उम्रका अन्दाजा लगाना कठिन है, स्वस्थ मनुष्यकी आयुका अन्दाजा लगाया जाता है, रोगीका नहीं। बूढ़ेका रङ्ग काला, खिचड़ी दाढ़ी बढ़ी हुई, मुंहपर झुर्रियां, फूली हुई नसें, फटे हुए वस्त्र। पीठ पर बूढ़ी, उसकी जन्म-मरणकी साथिन है। देखनेमें काली,पिचकी हुई, दुबली-पतली जैसे हवाके झोंकेसे उड़ जाय। चीथड़ोंमें लिपटी।)

बूढ़ा---भला हो डाक्टर साहब (खांसने लगता है) सोनापुरसे चलकर आया हूं। मेरी पत्नी है, बचाओ डाक्टर बाबू बचाओ, (खांसने लगता है)

मनु० --क्या है?

डाक्टर---क्या है?

बूढ़ा---चालीस वर्षके साथी हैं डाक्टर बाबू। बेटेवाले सब भाग गये कलकत्ते। तुम्हारा यश सुन कर आये हैं, बचा लो।

डाक्टर---देखा मिस्टर फिदा हुसेन, यह हालत है। आप तो सब आंखों देख रहे हैं फिर भी आप···

फिदा हुसेन—सरकारी हुक्म है कि यह बिल्डिङ्ग किसी जरूरी कामके लिये--

डाक्टर---यहांके लोगोंकी जान बचानेसे बढ़कर जरूरी काम और क्या होगा, मैं नहीं समझ सकता।

युवती---बचा लो मा।

[बूढ़ी कै कर देती है जो बूढ़ेके ऊपर पड़ती है। बूढ़ा चीथड़ोंसे अपना शरीर और जगह साफ करने लगता है।)

डाक्टर---देखा, देखिये---हर एकका यही हाल है, ले जाओ मनु वार्डमें एक बेड दे दो।

मनु---बेड तो और—

डाक्टर—मेरा बेड ले लो। इस हालतमें तुम कैसे उन्हें लौटा सकते हो। जाओ बाबा।

मनु—आपका बेड?

युवती—बचा लो डाक्टर बाबू···

डाक्टर—हां, ले जाओ मैं आता हूं। (मनु बूढ़े और नीलाकी सहायतासे बूढ़ीको ले जाता है)

(गांवका डाकिया प्रवेश करता है, अधेड़ उम्र, बाल सफेद, आंखोंपर पुराना मोटे शीशेका चश्मा)

डाकिया—डाक्टर साहब, राम राम।

डाक्टर—आओ भाई, राम राम। क्या लाये ? कल तुम्हारी बहुत राह देखी।

डाकिया—यह एक रजिष्ट्री है और दो खत।

डाक्टर—कोई पार्सल वार्सल......?

डाकिया—पार्सल तो कोई नहीं सरकार, होता तो रात ही दे जाता।

(डाक्टर रजिष्ट्री लेटर खोल कर पढ़ने लगता है)

फिदा हुसेन---हमारी डाक...?

डाकिया---आपके दफ्तरमें छोड़ आया हूं सरकार।

फिदा हुसेन---तो फिर मैं सेंटरको तार कर दूं।

डाक्टर---क्या-जी हां, आप खुद सोच लीजिये...मैं आठ दिनमें अस्पताल खाली नहीं कर सकता।

फिदा हुसेन---एक बार फिर सोच लीजिये।

डाक्टर---मिस्टर फिदा हुसेन, आप ही ज़रा सोचनेकी कोशिश कीजिये और मैंने जो कहा है वह मेरा आखिरी फैसला है।

फिदा हुसेन---आल राइट (चला जाता)

(नीला प्रवेश करती है)

नीला---आप उसे देखेंगे ?

डाक्टर---नीला, हेडक्वार्टरसे लेटर आया है कि अस्पताल इसी पहलीसे खालीकर देना होगा।

नीला---और फिर कहां जाना होगा ?

डाक्टर---जहन्नममें ! हम सबको...तुम्हें, मुझे मनुको और दूसरे सैकड़ोंको...

डाकिया---क्या कहा डाक्टर साहब ?

डाक्टर---अस्पताल बन्द करना होगा।

डाकिया---तो मरीज़ कहां जायेंगे ?

डाक्टर---जहन्नममें। इनको परवाह थोड़े ही है। खाते-पीते मौज करते हैं, उन्हें क्या खबर है भूख महामारी होती क्या है--कुत्तोंकी मौत किसे कहते हैं, बस आर्डर निकाल दिया अस्पताल खाली कर दो। अच्छा तुम्हीं बताओ यह कहीं हो सकता है ?

डाकिया---क्या कहूं डाक्टर साहब। हमें ही देख लो बीस रुपये मिलते हैं, गांव गांवकी धूल फांकनी पड़ती है। बीसमें आज एकका पेट नहीं भरता, फिर बाल-बच्चे हैं, बहू-बेटियां हैं...क्या करें सरकार, पेटकी खातिर।

डाक्टर---ऐसे पेटकी गुलामीसे तो......

डाकिया---अच्छा जाऊं सरकार बहुत डाक है...राम-राम (डाकिया चला जाता है)

डाक्टर---राम राम।

नीला---और दवाके लिये क्या लिखा है ?

डाक्टर---समझमें नहीं आता कि इन लोगोंको हो क्या गया है ? लिखते हैं नये मरीज लेना बन्द कर दो। पुराने आठ दिनमें अच्छे हो ही जायेंगे- बस अस्पताल खाली हो जायेगा। आठ दिनमें अच्छे हो जायेंगे। अस्पताल खाली हो जायगा। अस्पताल क्या गांव खाली हो जायगा भूत नाचेंगे ! भूत !!

नीला---और दवा...?

डाक्टर---दवा ! दवा नहीं !

युवती---मा, मुझे बचा लो !

डाक्टर---सुना नहीं अस्पताल बन्द हो रहा है। जाओ गांव---जीवनपुर या सदरके अस्पतालमें

युवती---न ! मैं जीवनपुर न जाऊंगी, वहां दोपहरमें भूत नाचते हैं। मैं कहीं न जाऊंगी नदीमें डूब मरूंगी भगवान भला करेगा मा !

डाक्टर---नीला ! बोलो फिर

नीला—जैसा आप कहें।

डाक्टर—मैं तो अस्पताल खाली नहीं करूंगा।

मनु—(प्रवेश करते हुए) उस बूढ़ीको पंद्रह नम्बर दे दिया है। आप।

युवती—डाक्टर बाबू—

डाक्टर—मनु-यह लेटर देखना (लेटर मनुको देता है)

मनु (पढ़कर) यह कैसे हो सकता है !

डाक्टर—तो फिर क्या करना होगा ?

मनु—जैसा आप मुनासिब समझें।

डाक्टर—तुम दोनों अपनी-अपनी बात बताओ। आर्डर ऐसा है कि पहलीको चार्ज दे कर हमें चौथीको एच० क्यू० में रिपोर्ट करना है। तुम्हारे लिये भी यही आर्डर है नीला, मनु तुम्हारे फरखू और मेरे लिये भी।

नीला—फिर हम लोग कहां पोस्ट होंगे ?

डाक्टर—कौन जानता है ? तुम कहीं जाओ, मनु कहीं, मैं कहीं—

नीला—तो इसका मतलब यह है कि—?

मनु---हम प्राईवेट नहीं सरकारी नौकर हैं। सरकार जहां भी चाहे भेज सकती है।

डाक्टर---मैं अपना फैसला तुम्हें बता देता हूं। तुम खुद अपने लिये सोच सकते हो मैं अस्पताल खाली नहीं करूंगा। मैं आज एक प्रतिवादका तार हेडक्वार्टरको और डिस्ट्रिक्टको दे रहा हूं।

नीला—और अगर वे नहीं माने तो ?

डाक्टर---तो उनकी राह अलग और मेरी अलग।

मनु---आप नौकरी छोड़ देंगे !

डाक्टर---और कर ही क्या सकता हूं ! मेरा तो उनपर जोर नहीं चल सकता।

नीला---सचमुच नौकरी छोड़ देंगे !

डाक्टर---इतने लोगोंको मरते देख मैं यहांसे कैसे जा सकता हूं ? मैं डाक्टर हूं नीला--डाक्टरका काम है मुसीबत में लोगोंकी सहायता करना, न कि भाग खड़े होना।

मनु---और अगर आपने नौकरी छोड़ दी तो आपको अस्पतालका चार्ज तो देना ही होगा।

डाक्टर---अस्पताल इस बिल्डिङ्गका नामही तो है मनु। दास बाबूकी हवेली खाली पड़ी है, वहां अस्पताल खुल सकता है। मुझे मालूम है, दास बाबूको बिल्डिङ्ग देनेमें कोई इन्कार नहीं होगा।

नीला---और दवा---?

डाक्टर---फिर दवा भी आ जायगी। मोबाइल यूनिट वाले भी तो दवा पैदा कर ही लेते हैं---उन्हींके साथ मिल कर काम कर लूंगा। देशके कोने कोनेसे दवा, कपड़ा इकट्ठा करके वे लोग लाते हैं। सहायताका एक सूत्र सा बना रखा है उन्होंने...बीस पचीस रुपये और रूखी-सूखी रोटीमें गुजर करते हैं, अपने तन-मनकी परवाह न कर वे जो इस काममें लगे हैं---क्या हुए जो उनके कपड़े अच्छे नहीं, या उनकी दाढ़ियां बढ़ी हुई हैं या साड़ियां खाकीमें रङ्गी हुई हैं और जानती हो वे सब पढ़े लिखे लोग हैं, बहुत पढ़े लिखे--। हम लोग जा ही कैसे सकते हैं ! मैं नहीं जाऊंगा। तुम लोग अगर चाहो तो पहलीको जा सकते हो।

नीला---आपने प्रतिवादका तार दे दिया है क्या ?

डाक्टर---अभी देता हूं।

मनु---इस पर भी उन्होंने न माना तो ?

डाक्टर---तो तुम अपने लिये खुद सोच सकती हो। मैंने अपना प्रोग्राम आप लोगोंको बता दिया है। जाओ अब वार्डमें, मैं भी आता हूं। अभी तुम्हारे पास आठ दिन हैं, सोचो अच्छी तरह।

नीला---मैंने सोच लिया। मैं आपके साथ जाऊंगी।

मनु---नौकरी छोड़ दोगी ?

डाक्टर---अच्छी तरह सोच लो। फिर पीछे न हटना।

नीला---मैंने सोच लिया। डाक्टर (हाथ बढ़ाती है, डाक्टर उसका हाथ अपने हाथमें लेता है) मैं तुम्हारे साथ हूं।

डाक्टर---फिर सोच लो। अपनी जिंदगी का---

नीला---यह मेरा अन्तिम निर्णय है। चलो मनु--

मनु---मैं भी इतना नीच नहीं हूं (डाक्टर और नीलाके हाथपर हाथ धरता है) मैं आपके साथ हूं डाक्टर, मैं आपके साथ हूं।

डाक्टर---अच्छी तरह सोचो मनु--जल्दीका काम नहीं, तुम्हारे बाल-बच्चे बीबी---

मनु---यह लोग---यह लोग जो मर रहे हैं किसीके बाल बच्चे हैं, किसीके मां-बाप हैं, किसीके बीबी खाविंद हैं--- उनके भी दिल है—उन भाइयोंकी—गरीब हूं तो क्या--- इन्सानियतसे गिरा नहीं हूं। चलो नीला चलें, डाक्टर,चलिए उस बुड्ढीको —

युवती---भगवान भला करे डाक्टर।

डाक्टर---ठहरो बहन--नीला ले जाओ इसे कहीं जगह बना दो जाओ।

नीला---चलो बहन--[डाक्टर] कहां दूं ?

डाक्टर---कहीं भी।

युवती---(जाते हुए) तुम्हारा बेटा जीता रहे, तुम्हारी-

(नीला, मनु और युवती चले जाते हैं)

डाक्टर---आठ दिनमें अस्पताल खाली कर दो, हूं। गरीब हूं तो क्या ! इन्सानियतसे गिरा नहीं हूं। जिंदगी, मौत···अमीरी···गरीबी···इन्सानियत !

ड्राप



व्यसन

श्री छविनाथ पाण्डेय

हिन्दी साहित्यमें जितना ज्यादा अत्याचार इस गरीब 'व्यसन' शब्दके साथ हुआ है और हो रहा है उतना ज्यादा अन्याय बहुत कम शब्दोंके साथ हुआ होगा। व्यसन शब्द-का नाम लेते ही लोग इस तरह नाक भौंह सिकोड़ने लगते हैं मानो किसी छूतकी बीमारीका कीड़ा उनके इर्द-गिर्द मंड़रा रहा हो और उनके शरीरमें प्रवेश कर उनके पवित्र रक्तको दूषित करनेकी धुनमें हो। व्यसनी आदमी समाजकी दृष्टिमें बहुत ही हेय समझा जाता है। उसे लोग बहुत ही बुरी दृष्टिसे देखते हैं, उसे अछूत समझते हैं और समाजके लिये उसे उतना ही हानिकर समझते हैं जितना प्लेग या महामारी। शायद प्लेग या महामारीसे भी उतना दूर नहीं भागना चाहेंगे जितना दूर किसी व्यसनीसे भागनेका लोग स्वांग रचते हैं। इसे हम स्वांग ही कहेंगे क्योंकि वास्त-विकता इसमें छू तक नहीं गयी है। मुझे तो कोई ऐसा नहीं दीखता जो किसी न किसी व्यसनका शिकार न हो, लेकिन दूसरे व्यसनीको देखकर वे अपनेको सर्वथा पाक साफ समझ कर उसका तिरस्कार करना ही उचित समझते हैं।

व्यसनसे साधारणतः लोग यही समझ बैठते हैं कि यह दोष या ऐबका द्योतक है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। यदि व्यसन शब्दकी पारिभाषिक व्याख्या की जाय तो यही अर्थ निकलता है कि किसी काममें आवश्यकतासे अधिक लगे रहना। यह आवश्यकतासे अधिक किसी काममें लगे रहना हमेशा बुरा नहीं हो सकता। उदाहरणके लिये कुछ लोगोंको पढ़नेका रोग होता है। कितने लोग ऐसे हैं जिन्हें बिना पढ़े नींद ही नहीं आती। यह भी एक प्रकारका व्यसन है लेकिन इससे किसी तरहकी हानि होती दिखायी नहीं देती। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें पढ़नेका रोग इतना ज्यादा लग जाता है कि दिन रात उसीमें गर्क रहते हैं कोई दूसरा काम नहीं करते। पढ़ना बुरी बात नहीं है। विद्या-व्यसनको कभी भी किसीने बुरा नहीं बतलाया है। लेकिन यदि सामा-जिक दृष्टिसे उसकी विवेचना की जाय तब तो यह अवश्य ही बुरा प्रतीत होगा। बात यह है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। समाजसे अलग उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जिस समाजमें वह पैदा हुआ है उसके प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य है जिस परिवारमें वह पैदा हुआ है उसके प्रति भी उसका कर्त्तव्य है। यदि इन कर्त्तव्योंसे विमुख होकर वह दिन रात पढ़नेमें ही लगा रहता है तो वह उस समाज और परिवार दोनोंकी क्षति करता है। दोनोंके प्रति उसके जो कर्त्तव्य हैं उसका ठीक ठीक वह पालन नहीं करता। अर्थात् वह कर्त्तव्य च्युत हो जाता है। यदि समाजके सभी प्राणी इसी तरह अपने कर्त्तव्योंकी अवहेलना कर विद्या-व्यसनमें ही रत रहने लगें तो उस समाजकी प्रगति रुक जायगी। वह समाज अधिक दिनों तक जिन्दा नहीं रह सकेगा। इसलिये यह विद्या-व्यसन उत्तम होते हुए भी सामाजिक दृष्टिसे बुरा है, हानिकर है।

इस उदाहरणसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जितनी मात्रामें जो काम मनुष्यको करना चाहिये उस काम को उससे अधिक मात्रामें करना, जितना समय उसमें लगाना चाहिये उससे अधिक समय उस काममें लगाना ही व्यसन है। अर्थात् उस काममें अधिक समय लगा कर वह अन्य आवश्यक कामोंको नहीं करता, यहीं इसका अनौचित्य है। लेकिन केवलमात्र इतनेके ही लिये हम उसे घृणाकी दृष्टिसे नहीं देख सकते, उसे बुरा नहीं समझ सकते और उसमें जो कीटाणु घुस गये हैं उनसे बचे रहनेके लिये इतने सचेष्ट नहीं रह सकते कि उसकी परछाईं भी हम पर नहीं पड़ने पाये।

कहनेका मतलब यह है कि हर व्यसन इसलिये बुरा नहीं है कि उसमें कोई दोष है बल्कि इसलिये बुरा है कि वह मनुष्यको अन्य आवश्यक कामोंसे विरक्त कर देता है। वह अपने कर्त्तव्यका पालन पूरी तरहसे नहीं करता और अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरहसे नहीं निबाहता। उसकी यह अक-र्मण्यशीलता ही व्यसनको कड़ुआ बना देती है और उसकी उस कड़ुआहटका सबसे ज्यादा असर उसके ही ऊपर पड़ता है, उसका कुफल उसे ही भोगना पड़ता है। सामूहिक रूपसे समाज पर उसका कोई असर नहीं पड़ता। चूंकि वह भी समाजका अंग है, उसके बिना समाज पूर्ण नहीं रह सकता इसीलिये उसका वह व्यसन समाजके लिये भी अहितकर समझा जा सकता है। और इतनेसे ही वह अपने व्यसनोंके लिये वह समाजमें बदनाम समझा जाता है। समाज उसे बुरा समझता है और उसे अनेक तरहसे भला बुरा कहता है।

समाज उसे दूषित समझता है और उसके कीटाणुसे अपनी रक्षा करनेके लिये उसे दूर रखना चाहता है। उसकी परछाईं से अपनेको बचाना चाहता है। उसे दूर रखता है।

कुछ ऐसे भी व्यसन समाजमें प्रचलित हैं जो सामाजिक दृष्टिसे बहुत ही बुरे समझे जाते हैं! उदाहरणके लिये शराब पीना, भांग पीना, गांजा पीना, अफीम खाना, बीड़ी सिगरेट, हुक्का पीना, पान, जर्दा खाना। यह तालिका बहुत ज्यादा बढ़ायी जा सकती है। लेकिन इस तालिकाको और न बढ़ाकर इसका विवेचन कर देना ही समीचीन होगा। देवत्व की दृष्टिसे हम इनकी समीक्षा नहीं करना चाहते। जो लोग इन्हें जहर और मौतका साधन समझते हैं उनके हां,में हां हमें नहीं मिलाना है। उनका दृष्टिकोण सही है या गलत इसे वे ही जाने। न तो उनसे हमें किसी तरहकी बहस है और न शिकायत। उनका अपना दृष्टिकोण है और उसी दृष्टिकोणसे वे इनकी समीक्षा कर सकते हैं और अपनी राय कायम कर सकते हैं। मुझे उनके दृष्टिकोणसे इन पर विचार नहीं करना है। वह समीक्षा इसका सूक्ष्म रूप है। हम स्थूल रूपसे ही विचार करना चाहते हैं।

ये व्यसन उचित हैं या अनुचित! भले हैं या बुरे। इसकी समीक्षा पीछे की जायगी। यहां पर हम यही दिखलाना चाहते हैं कि समाज इन्हें किस दृष्टिसे देखता है। यदि जांच पड़ताल की जाय तो समाजमें एक व्यक्ति भी नहीं मिलेगा जो उपरोक्त व्यसनोंमें से किसी न किसीमें फंसा न हो, यदि वह महात्मा नहीं है और देवत्वको प्राप्त नहीं हो गया है। ऐसे लोग समाजमें बिरले हैं और वे उदाहरण स्वरूप समाजमें पेश नहीं किये जा सकते। जैसे मेरे अपने बड़े भाई हैं। वे ब्राह्मणेत्तरका छूआ जल भी ग्रहण नहीं करते। द्विजातिसे इतर किसी अन्य जातिका अन्न नहीं ग्रहण करते। ऐसे लोग यदि किसी तरहके व्यसनमें रत न हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इन्हें हम अतिमानव कहते हैं और अतिमानव हमारी समीक्षाका विषय नहीं हो सकता। समाजमें देवत्व प्राप्त लोग अथवा अतिमानव बहुत कम होते हैं इसलिये समाजका आचरण इनके आधार पर नहीं मापा जा सकता। ऐसे लोगोंका आचरण उचित है या अनुचित यह हमें नहीं देखना है। उस पर हमारा ध्यान ही नहीं है। हम तो वास्तविकताको देखना चाहते हैं और उसी ओर हमारी दृष्टि है और वास्तविता यही है कि समाजका प्रत्येक प्राणी इनमें से एक न एक व्यसनका शिकार अवश्य है। कोई शराब पीता है तो कोई भांग, गांजा, चण्डू या मदक, कोई अफीम खाता है तो कोई जर्दा और पानका व्यसनी है, बीड़ी सिगरेट और हुक्का तो साधारण बातें हैं। सुरती और सुंघनी को यदि हम इसीमें मिलालें तो व्यसनोंका प्रयोग बहुत व्यापक हो जाता है। सुरती और सुंघनीके प्रयोगसे शायद ही कोई बचा हो। समाजमें इसका प्रचार सबसे ज्यादा है। व्यसनोंमें इतने सामूहिक रूपसे फंसे रहने पर भी समाजका प्रत्येक प्राणी एक दूसरेकी ओर अंगुली उठानेके लिये सदा तैयार रहता है। वह इस बात पर ध्यान भी नहीं देता कि वह स्वयं किसी न किसी व्यसनका शिकार है लेकिन दूसरेको उसी तरह अन्य—अपनेवाला नहीं—व्यसनमें रत देखकर वह तिलमिला उठता है और उसकी निन्दा करते नहीं अघाता। समाजके प्रत्येक प्राणीकी यही दशा और यही मनोवृत्ति है। अपना भंडार वह नहीं देखता लेकिन दूसरेका बिल देखनेके लिये वह सदा यत्नशील रहता है। जो जिस व्यसनमें रत नहीं है वह उस व्यसनको बुरा समझता है। शराबखोर शराबको व्यसन नहीं समझता उसके पीछे वह पागल रहता है लेकिन अन्य व्यसनोंमें जो लोग फंसे हैं उनकी वह निन्दा करनेमें कभी संकोच नहीं करता। मेरे एक अफीमची दोस्त थे। वे अफीमकी चुस्की भी लेते थे और चण्डूके छींटे भी। उनके ही पड़ोसमें एक दूसरे मुसलमान सज्जन रहते थे। उन्हें पान खानेका मर्ज था। वे पान जर्दा खाकर पिच पिच थूका करते थे और रह रह कर चूना चाटते रहते थे। मेरे अफीमची दोस्तको उनकी यह हरकत बहुत बुरी लगती थी। उनकी वह सदा निन्दा किया करते थे। लेकिन एक बारके लिये भी उनके मनमें यह बात नहीं आयी कि आखिर वे स्वयं अफीम और चण्डूके समान व्यसनके शिकार हैं जो पान और जर्दासे किसी भी तरह अच्छा नहीं कहा जा सकता। कहनेका मतलब यह कि वे अफीम और चण्डूको किसी भी हालतमें बुरा समझनेके लिये तैयार नहीं थे। उनको पान और जर्दाका सेवन बुरा मालूम होता था क्योंकि उससे वे विरत थे। कुछ दिन पहलेकी बात है। मेरे एक निकट सम्बन्धी मेरे पास आकर कहने लगे कि मेरे ही एक दूसरे सम्बन्धी सिगरेट और बीड़ीके आदी हो गये हैं और छिपकर पीते रहते हैं। उन्होंने चाहा कि मैं उन्हें समझा-बुझा कर उस महान् अनर्थकारी व्यसनसे विरत कर दूं क्योंकि इससे उनकी बड़ी बदनामी है और उनके कारण हम लोगोंकी भी निन्दा होती है। उनकी बातें गौरसे सुननेके बाद मैंने उनसे धीरेसे कहा :— मुझे क्या अधिकार है कि मैं उनसे कुछ कहूं क्योंकि मैं

भी पान और जर्दाका व्यसनी हूं। जब तक मैं इन्हें छोड़ न दूं मुझे कोई हक नहीं है कि मैं किसी व्यसनकी निन्दा करूं। एक गलती वे अवश्य करते हैं कि वे लुक-छिप कर पीते हैं। इससे उनकी कमजोरी प्रकट होती है और खुद समझते हैं कि वे उचित काम नहीं कर रहे हैं। उन्हें वैसा नहीं करना चाहिये। या तो उन्हें छोड़ देना चाहिये या खुल कर पीना चाहिये। जो सज्जन मेरे पास शिकायत लेकर आये थे उन्हें ये मेरी बातें पसन्द नहीं आयीं। वे उत्तेजित होकर बोले :—आपने भी खूब कहा। क्या आप पान जर्दा और बीड़ी सिगरेटको एक ही श्रेणीमें रखना चाहते हैं। मैंने कहा :---ये सभी वस्तुएं एक ही चीज सुरती से बनी है। निर्माण और प्रयोगके भेदके अतिरिक्त तो दूसरा भेद इनमें मुझे दिखायी नहीं देता। कोई इसे कोई पानमें जर्दाके रूपमें खाते हैं, कोई चूना मिला कर सुरतीके रूपमें खाते हैं, कोई इसको बीड़ी और सिगरेट बना कर धुआंके रूपमें पीते हैं और कोई छंघनी बना कर इसे नाकसे सूंघते हैं। भेद केवल प्रयोगका है। तत्व तो सबोंमें एक ही है। ऐसी हालतमें हम एकको बुरा और दूसरेको अच्छा किस तरह कहें। यदि एक बुरा है तब उसके मूलतत्व सुरतीके सभी प्रयोग बुरे हैं। इसलिये जो उसे एक रूपमें ग्रहण कर रहा है उसे कोई हक नहीं है कि उसको दूसरे रूपसे ग्रहण करने वालेकी वह निन्दा करे और उसके उस रूपको वह बुरा बतलाये। मेरा तर्क उन्हें जंचा नहीं, लेकिन उनके पास कोई पुष्ट उत्तर नहीं था। इसलिये मुझे कायल करनेके उद्देश्यसे उन्होंने शास्त्रका आश्रय लिया और कहा :--धूम्र-पान ब्राह्मणके लिये शास्त्र निषिद्ध है। उनके इस उत्तरपर मुझे हंसी आ गयी। मैंने कहा :--यदि शास्त्रीय विवेचन करने मैं बैठूं तब तो इस युगमें ब्राह्मणोंके लिये इस दुनिया में ठांव मुझे नहीं दीखता। मैं आपको कहां तक गिनती गिनाऊं लेकिन आजकल ब्राह्मणोंको अनेकों ऐसे काम करने पड़ते हैं जो शास्त्र विहित नहीं है। कुछ कामोंके करनेके लिये ब्राह्मण मजबूर हैं क्योंकि वर्ण और आश्रम-धर्मकी जो प्राचीन मर्यादा थी उसका पालन कहींसे नहीं हो रहा है। चारों ओर एक विचित्र विश्रृङ्खलताने अपना डेरा जमा दिया है। सभी वर्णके लोग प्राचीन मर्यादा और परिपाटीका त्याग करके समाजकी सामूहिक कल्याण-कामनासे विमुख होकर अपने अपने स्वार्थ साधनमें बुरी तरह फंस गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण जातिको भी मर्यादाको छोड़ कर नीचे खसक आना पड़ा है। शास्त्रीय आदेशको उसने भी ताक पर रख दिया है और समाजके पैरसे अपना पैर मिला कर चलनेके लिये बाध्य हो गयी है। लेकिन यदि आप जांच करें तो आप देखेंगे कि जहां मजबूरी नहीं है वहां भी इसने फिसल कर नीचे गिरनेसे अपनेको नहीं रोका है। यह भौतिकवाद और सङ्घर्षका युग है। नैतिकताके लिये यहां कोई स्थान नहीं है। संघर्षमें वही टिक सकेगा जो संघर्षका मुकाबला उसी अस्त्रसे करेगा जिसे लेकर समाजके सभी प्राणी भिड़े हुए हैं। इसलिये इस समय शास्त्रीय चिन्ता अरण्य रोदनेके समान है।

अन्तमें उन्होंने कहा :---तब तो आप किसी भी शासन को कुछ नहीं समझते। मैंने उन्हें वही उत्तर दिया जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर आया हूं। अर्थात् यदि मनुष्य अपने हृदयकी संकीर्णताको छोड़ दे और उधर हृदयसे समीक्षा करे तो उसे किसी भी व्यसनको बुरा कहनेका कोई हक नहीं है क्योंकि जब वह स्वयं किसी न किसी व्यसनमें रत है तब उसकी दृष्टिमें कोई भी व्यसन बुरे नहीं होने चाहिये। यदि वह एकको अच्छा और अन्य सभीको बुरा समझता है तो यह उसके हृदयकी संकीर्णता है। वह वास्तविकता से कोसों दूर है।

मेरी बातोंसे उन्हें सन्तोष तो नहीं हुआ लेकिन उनके पास कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं था, इसलिये वे चुपचाप मेरे यहांसे चले गये। वे तो चले गये लेकिन मैं उलझनमें पड़ गया। आखिर इसका कोई समाधान है या व्यक्ति विशेष की इच्छा पर ही इसे छोड़ देना होगा।

मेरी समझमें तो इसका एक ही समाधान हो सकता है और वह है लौकिक व्यवहार। अर्थात् जिस समाज या जातिमें जो व्यसन प्रचलित है उस समाज या जातिके लिये वह बुरा नहीं कहा जा सकता, जैसे पश्चिमी देशोंमें शराब और सिगरेटका प्रयोग। वहां यह इतना व्यापक है कि उसकी ओर किसीका ध्यान तक नहीं जाता। इसका प्रयोग कोई असाधारण बात नहीं समझा जाता बल्कि जो लोग इससे परहेज करते हैं। उन्हें उन देशोंमें लोग अतिमानव समझते हैं। लेकिन उसी देशमें यदि कोई पान जर्दा खाने लगे तो लोग उसे विस्मयकी दृष्टिसे देखेंगे और उसकी अनेक तरहसे आलोचना और निन्दा करेंगे। पान और जर्दा उनके समाजके लिये असाधारण और बहुत बुरी चीज है। पान खाने वालोंको वे असभ्य और जङ्गली समझते हैं और उसकी तुलना भेड़ बकरियोंसे करते हैं।

लेकिन भारतीय समाजके लोग उन्हें क्या समझते है? क्योंकि उस समाजमें पान जर्दा समाज प्रचलित है और शराब पीना गर्हित समझा जाता है। उसी तरह अन्य वस्तुओंका भी विवेचन हो सकता है। और इस विवेचनके अनुसार हम उसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि व्यसनकी समीक्षामें लौकिक व्यवहारका ही सबसे बड़ा हाथ है और उसमें प्रचलित रीतिके अनुसार ही उसकी जांच हो सकती है। यही उसकी सबसे बड़ी कसौटी है।

इस विवेचनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यसनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह सापेक्ष है। यदि वे बुरे हैं तो सभी बुरे हैं। एकको अच्छा और दूसरेको बुरा नहीं कहा जा सकता। जिस समाज या जातिमें जो व्यसन चालू है उस समाजके लिये वह अच्छा है और जिस समाजमें जिसकी चलन नहीं है उसके लिये वह बुरा है और उस समाजमें उसका प्रयोग हेय तथा गर्हित समझा जाता है। जो बात समाजके लिये कही गयी है वही जाति पर भी लागू है। जिस जातिमें बीड़ी सिगरेटका चलन नहीं है यदि उस जातिके लोगोंमें से कुछ लोग लुक छिप कर या खुले आम इसका प्रयोग आरम्भ करते हैं तो वह उस जातिकी दृष्टिसे बुरा है और उसका प्रयोग उस जातिकी दृष्टिसे घृणित तथा दूषित है। समाजमें जो लौकिक परम्परा चली आती है उसका पालन करना उस समाजके प्रत्येक प्राणीका धर्म है। सामाजिक बन्धनका यही नियम है। उस बन्धनको मानते रहने या उसे तोड़ देनेका आधार तर्क नहीं हो सकता। यह सामाजिक परम्परा है और समाजकी प्रचलित रीति ही उसका बन्धन है। समाजका कल्याण इसी पर निर्भर करता है कि समाजके प्रत्येक प्राणी इसे माने, इसपर आचरण करें और इसकी अवहेलना न करें। इसी दृष्टिकोणसे यदि काम लिया जाय तभी इस गरीब तीन अक्षरके शब्द "व्यसन" की रक्षा हो सकती है। अन्यथा इसकी जो दुर्दशा हो रही है वह अनन्त काल तक होती रहेगी और यह गरीब इसी तरह समाजकी दृष्टिमें हेय और घृणित बना रहेगा और इसकी दुर्दशा होती रहेगी।

इस विवेचनसे हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि व्यसन स्वतः कोई भला बुरा नहीं है बल्कि उसका भला बुरा होना समाजकी प्रचलित रीति नीति पर निर्भर करता है।

—मैं—

भीड़ में मैं चल रहा हूं आपमें पर खो गया हूं।
साथवाले जागते हैं मैं अकेला सो गया हूं॥

एक मस्ती थी अजब हंसना नहीं जब जानता था।
कमसे कम खुदको भला मैं जानता पहचानता था॥

क्या कहूं मैं हाल अपना, रो रहा था, गा रहा हूं।
किन्तु गानेकी सजा भी आज अच्छी पा रहा हूं॥

और अब तो आपको ही भूल बैठा आज हूं मैं।
रागिनी जिससे निकलती ही नहीं वह साज हूं मैं॥

जो कभी मैं कर न पाता था वही अब कर रहा हूं।
जी गया हूं सब समझते हैं, मगर मैं मर रहा हूं॥

ठौर दिखलायी नहीं देता चला मैं जा रहा हूं।
भूल बैठा हूं किनारा पर बहा मैं जा रहा हूं॥

वे छनहले स्वप्न मेरे वह छनहली रात मेरी।
हाय! मुझसे छिन गयी है अब पुरानी बात मेरी॥

आज चांदी की जुबां है आज चांदी की कलम है।
दोस्तों देखो लहू मेरा है ठंढा या गरम है॥

जो नहीं पहचानते थे अब मुझे वह जानते हैं।
क्या गजब है खुदको लेकिन हम नहीं पहचानते हैं॥

—श्री पद्मकान्त मालवीय



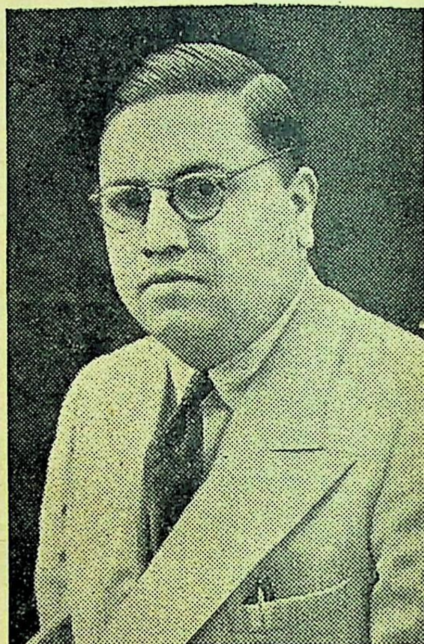
स्वर्गीय हंस मेघराज

स्वामी भवानी दयाल संन्यासी

अभी उस दिन डरबन-नेटाल-दक्षिण अफ्रीका निवासी श्री बी० ए० मेघराजका तार पाकर मेरे सन्तापकी सीमा नहीं रही। तार द्वारा यह सूचित किया गया था कि उनके प्रिय पुत्र, नेटाल इण्डियन कांग्रेसके पूर्व मन्त्री एवं प्रवासी भारतीयोंका एक होनहार नेता हंस इस लोकसे सदाके लिये विदा हो गये। यहांकी जनताको सम्यकरूपसे यह बता सकना मेरे लिये बड़ा ही दुस्तर है कि इस तरुण नेताके निधनसे नेटाल प्रवासी भारतीयोंको कितनी गहरी चोट पहुंची है और उनकी कितनी बड़ी हानि हुई है। माता-पिता ने अपना एक सपूत खोया, परिचित व्यक्तियोंने एक सहृदय, सखा और स्नेहशील साथी तथा नेटाल प्रवासी भारतीयोंने एक होनहार युवा सेवक। मेरे लिये तो यह व्यक्तिगत क्षति है।

यह सोचते हुए बड़ी वेदना होती है कि जब यह तरुण अपने अनुभव, विवेक और कर्मण्यताके प्रतापसे प्रवासी भारतीयोंके भाग्याकाशमें उज्वल नक्षत्रकी भांति प्रकाश फैलाता ठीक उसी समय उसने अचानक अन्तर्शय्याको अपनाया। हंसके यौवनकी तहमें सेवा भावकी महत्ता थी और उसके साथ ही स्नेहका सोता भी। उनके हृदयमें हास भी था और उल्लास भी। इसी वजहसे वे नेटालमें लोकप्रिय हो गये थे। संसारमें नित्य असंख्य प्राणी आते और जाते हैं—कहां कौन किसको जानता है। पर जो देश और राष्ट्रकी कुछ भी सेवा कर जाते हैं वे मर कर भी जीते रहते हैं, जनताके दिल में उनकी स्मृति बनी रहती है।

नेटालके एक रईस श्री मेघराजजीके पांच पुत्रोंमें हंस द्वितीय पुत्र थे। सन् १९०९ में उनका जन्म हुआ था। वे आर्यसमाजी परिवारमें पले। वहांके हायरग्रेड गवर्नमेंट इण्डियन स्कूलमें उनको शिक्षा मिली। शिक्षा समाप्त कर वे जमींदारी तथा महाजनीका कारबार देखने लगे और स्वल्प समयमें इस काममें ऐसे निपुण हो गये कि उन्होंने "हंस-मेघराज एण्ड कम्पनी"के नामसे निजी कार्यालय खोला। इस कार्यालयमें जमीनकी खरीद-बिक्री, पैसेका लेन-देन, बीमा आदिका काम होता था। सचाई और ईमानदारीके प्रतापसे उनका व्यवसाय चमक उठा और उन्होंने काफी धन कमाया।



स्वर्गीय हंस मेघराज

उनमें विशेषता यह थी कि वे केवल धनार्जनकी मशीन नहीं थे—उनके हृदयमें देश और कौमकी सेवा करनेकी लगन और तमन्ना भी थी। अन्यथा उनके लिये मेरी लेखनीसे ये पंक्तियां कदापि न लिखी जातीं। दो सालसे अधिक वे नेटाल इण्डियन कांग्रेसके मन्त्री रहे और अपनी जिम्मेदारी-को उन्होंने अच्छी तरह निभाया। डरबन आर्यसमाज और डरबन यङ्गमैंन आर्यसमाजके वे मुख्य मन्त्री चुने गये थे और नेटाल आर्य प्रतिनिधि सभाके सहायक मन्त्री भी। सेंट जांन अम्ब्युलेंस एसोसियेशनके प्रथम नेटाल डिवीजनके मन्त्री तथा इण्डियन अस्पताल 'एडवायजरी' बोर्डके खजाञ्ची भी बनाये गये थे। डरबन इण्डियन रेटपेयर्स एसोसियेशनके पांचवें वार्डके और इंस्टिट्यूट आफ नेटाल इण्डियन रियल-इस्टेट एजेण्ट्सके मन्त्रित्वका भार भी उन पर डाला गया था। डरबन टाउन प्लानिङ्ग एसोसियेशनके वे भारतीय सदस्य थे एवं एवोनडेल फुटबाल क्लबके उप-प्रधान। क्षय रोग अस्पतालकी सहायताके लिये उन्होंने "हंस मेघराज क्रिसमस-स्टाम्प" प्रदान किया था। नेटालके सार्वजनिक जीवनके सभी पहलुओं पर उनकी दृष्टि और प्रवृत्ति थी।

हंससे केवल एक बार मेरा मतभेद हुआ था और वह भी तब, जब कि कुछ सदस्योंसे खटपट हो जानेके कारण उन्होंने नेटाल इण्डियन कांग्रेसके मन्त्री-पदसे इस्तीफा दिया और अपने इस कार्यको सही साबित करनेके लिये वक्तव्य भी निकाला, जिसमें उन्होंने अपने सहकर्मियों पर कटुतापूर्ण आक्षेप भी किया था। मुझे उनकी यह नीति और प्रवृत्ति पसन्द नहीं आयी और मैंने उनको यहांसे एक पत्र लिखकर फटकार भी बतायी। पर इससे हमारे व्यक्तिगत स्नेह और सम्बन्धमें कोई अन्तर नहीं आया।

अभी तक हंसने विवाह भी नहीं किया था। अतएव उनके देहावसानका अचानक समाचार पाकर मुझे असह्य दुःख व्यापा। अभी यह घाव इतना ताजा है कि दर्दका ठीक-ठीक अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। पर यह कहनेमें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कि हंसके उठ जानेसे नेटालके भाइयोंने एक विचारशील राजनीतिक कार्यकर्त्ता एवं उत्साही-समाज-सुधारकसे हाथ धोया है। इसी आयुमें जिस तीव्रगतिसे उन्होंने व्यवसायमें सफलता पायी उसी वेगसे सार्वजनिक क्षेत्रमें प्रसिद्धि भी। उनकी देशभक्ति, उदार-भावना, क्रिया-शीलता, बुद्धिमत्ता और सौजन्य प्रवासी युवकोंके लिये आदर्शका काम देगा।

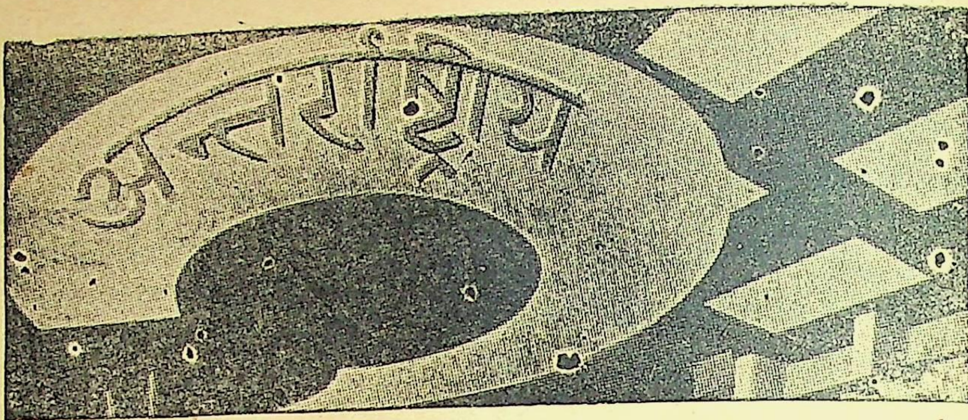
डरबनके वेकर-स्ट्रीटमें उनका सुन्दर आफिस मित्रोंके विश्रामागारका काम देता था। आलमारियोंमें भरी हुई दुर्लभ पुस्तकें, दीवारों पर टंगे हुए माननीय श्रीनिवास शास्त्री, सर राधाकृष्णन आदि महान भारतीयोंके चित्र, फर्शपर गलीचेके ऊपर स्थित शीशा जड़ित कीमती मेज और आस पास सजी हुई आराम-कुर्सियोंसे विभूषित उस आफिसमें मित्रोंके मध्यमें बैठे हुए हंस जब हास-परिहास या गम्भीर विवेचनमें मशगूल होते तो वह उनके जीवनमें सर्वोपरि सुखकी घड़ी जान पड़ती। उसी चर्चाके बीच इधर चायकी प्यालियां खटखटातीं, उधर टेलीफोनकी घंटी टन-टनाती। टेलीफोनकी बदौलत क्षण-क्षणमें हंसकी बात चीतमें बाधा पड़ती। आफिसके काममें इतना व्यस्त होते हुए भी यदि कांग्रेस या समाजका कोई काम आ पड़ता तो वे मवक्किलोंसे भरे हुए आफिसको त्याग कर फौरन चल देते, यही उनके जीवनकी खूबी थी।

हंसको मैं पुत्रकी भांति प्यार करता था और वे मुझपर अपने पितासे बढ़कर श्रद्धा रखते थे। सन् १९३९ में जब कुछ नाम धारी नेताओंने नेटाल इण्डियन कांग्रेसकी समाधिपर इण्डियन एसोसियेशनकी बुनियाद डालनेकी ठान ली और मैंने कांग्रेसको बचानेकी शपथ ली तो हंसने अपने व्यक्तिगत नफा-नुकसानकी परवाह न कर एवं अपने अनेक मित्रोंको नाराज करके भी कांग्रेसके झण्डेके नीचे आनेका सत्साहस दिखाया और विरोधकी उस प्रचण्ड आंधीमें वे अटल चट्टान-की भांति डटे रहे।

हंसने यद्यपि अत्यन्त अल्प-आयु पायी पर उनकी जिंदगी की घड़ियां बेकार नहीं गयीं। केवल पैंतीस सालकी उम्रमें जहां उन्होंने धन काफी कमाया वहां जन-सेवा करके नाम और यश भी पाया। यदि वे जीवित रहते तो नेतृत्वकी ऊंचीसे ऊंची चोटी पर पहुंच जाते। पर भगवानके दरबारसे उनकी बुलाहट आ गयी। वे कई बार असह्यरूपसे रोग-ग्रस्त हो चुके थे; कानके रोग और कण्ठके टानसिलके आपरेशन भी करा चुके थे। पर इस बारकी बीमारी मौतका पैगाम ले कर आयी और डाक्टरोंके हजार कोशिशें करने पर भी वे ४ दिसम्बर १९४४ की अर्द्ध रात्रिमें शांति पूर्वक उस लोक को कूच कर गये, जहांसे लौटकर कोई नहीं आता। उनकी शव-यात्रामें करीब दो हजार प्रवासी भाई शरीक हुए थे और नेटालके प्रसिद्ध पत्र "लीडर"के कथनानुसार इधर वर्षोंसे डरबनमें किसी शवके साथ इतना बड़ा हजूम नजर नहीं आया था।

नेटालके सभी गण्य-मान्य रईस और जन नेता उनकी स्मृतिपर सुमनांजलि चढ़ानेके लिये स्मशानमें उपस्थित थे और सभी प्रतिष्ठित सभा-समितियों एवं संस्थाओंकी ओर से उनके शव पर पुष्प-मालाएं चढ़ायी गयी थीं।





भाग्यका निपटारा—

क्रीमियाके याल्टा नामक स्थानमें रूस, ब्रिटेन अमेरिकाके तीन महान नेता स्टालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट मिले। इस त्रिराष्ट्र सम्मेलनमें नाजी जर्मनी पर बिना किसी शर्तके सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करनेकी शर्तें लादनेके सम्बन्धमें विचार हुआ। इस प्रश्नसे सम्बन्ध रखने वाली नीति और कार्यक्रम पर पूर्ण मतैक्य पाया गया। तीनों राष्ट्रोंने मिल कर आपसमें जर्मनीका बटवारा कर लिया है। अपने हिस्से के जर्मनी पर प्रत्येक राष्ट्रका अधिकार रहेगा। आपसमें सहयोग और सामञ्जस्य रखनेके लिये एक केन्द्रीय नियन्त्रण कमीशन होगा, जिसका सदर मुकाम बर्लिनमें रहेगा। बटवारेमें हिस्सा लेनेके लिये फ्रांसको भी, यदि वह चाहेगा, आमन्त्रित किया जायेगा। वह चाहेगा क्यों नहीं। उसको पूछने भरकी देर थी वह तो यह चाहता ही था।

पोलैण्डके सम्बन्धमें भी सर्व सम्मत समझौता हो गया। लन्दनस्थ पोलिश सरकारको दफनानेका नोटिस उक्त तीनों नेताओंके नामसे जारी हो गया है। लुबलिन सरकारका पुनर्सङ्गठन किया जायेगा ताकि पोलैंण्ड तथा विदेशोंमें स्थित सभी लोकतन्त्रीय दलोंके पोल इस नव-सङ्गठित सरकारमें लिये जा सकें। पोलैण्डकी पूर्वी सीमा कर्जन लाइन मान ली गयी है। पूर्वमें पोलैण्डका जो भाग रूसमें मिला दिया जायेगा: उसके बदलेमें उसे अन्यत्र भूभाग अर्थात साइलेसिया और पूर्वी प्रशाका पूर्वी हिस्सा मिलेगा। युगोस्लावियाके सम्बन्धमें तय हुआ कि टीटो-छवेसिक समझौता फौरन कार्यमें परिणत किया जाये। इन प्रश्नोंके अतिरिक्त अन्य बालकन राष्ट्रोंके प्रश्नों पर भी सरसरी तौरसे विचार हुआ। यूनानका भाग्य गुपचुप मि० चर्चिलके हाथ में दे दिया गया।

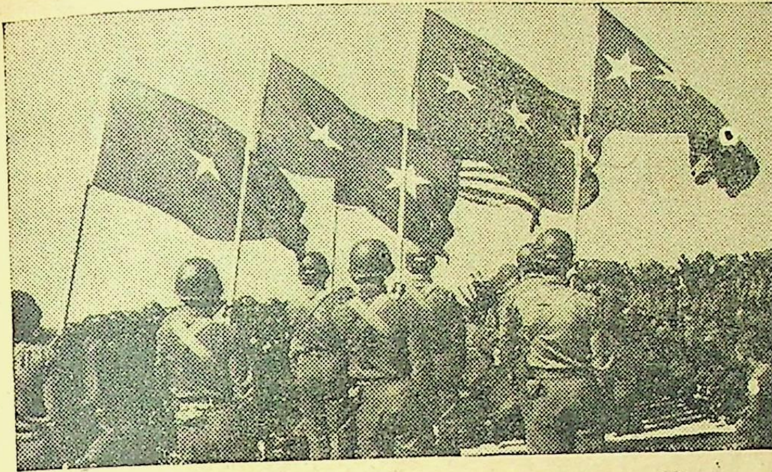
यूरोपके उन राष्ट्रोंके सम्बन्धमें, जो आततायियों द्वारा


हिटलर

जबर्दस्ती स्वाधिकार और स्वराज्यसे वञ्चित किये गये हैं, अटलाण्टिक चार्टरमें सन्निहित सिद्धान्तके अनुसार यह स्वीकार किया गया कि प्रत्येक देशके रहने वालोंको स्वतन्त्रता होगी कि वे स्वयं यह निर्णय करें कि किस तरहकी सरकारके अन्तर्गत वे रहना चाहते हैं। इस सम्बन्धमें उक्त तीनों राष्ट्रसम्मिलित रूपसे किसी भी मुक्त किये गये यूरोपियन देश अथवा जो पहले धुरी राष्ट्रोंका साथी रहा है उसके राष्ट्रको अपने देशमें स्वतन्त्रता और स्वराज्यके अधिकारका उपभोग कर सकने लायक अनुकूल स्थिति और वातावरण लानेमें वांछनीय सहायता प्रदान करेंगे। इस तरह तीनों विधाताओंने मिल कर यूरोपके अन्य सभी राष्ट्रोंके भाग्यका निपटारा कर डाला। विजेता जो ठहरे।

रूस-जापान सम्बन्ध—

त्रिराष्ट्र सम्मेलनमें निश्चय हुआ है कि शान्तिका चार्टर तथा डम्बर्टन ओक्समें स्थिर किये गये सिद्धान्तके



अमेरिकन सैनिक राष्ट्रीय पताकाके साथ मनीलामें

अनुसार एक विश्व-शान्तिरक्षा संगठन बनानेके लिये संयुक्त राष्ट्रोंका एक सम्मेलन २५ अप्रेलको सैनफ्रैंसिस्कोंमें हो। इस सम्बन्धमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या इस सम्मेलनके पहले ही रूस-जापान सम्बन्ध-विच्छेद हो जायेगा ? अभी तक प्राप्त समाचारोंसे यह ज्ञात नहीं होता कि रूसने, अपने साथी राष्ट्र ब्रिटेन और अमेरिकाको जापानके सम्बन्धमें, यदि कोई आश्वासन दिया है तो किस रूपमें ? अमेरिकामें इस आशयके अनुमान और अटकल बाजियां की जा रही हैं कि जापानके विरुद्ध, आगे चल कर, युद्धमें योगदान करनेके सम्बन्धमें मार्शल स्टालिन के साथ मि० चर्चिल और प्रेसिडेण्ड रूजवेल्टका एक समझौता हो गया है।

इस अटकलका आधार सम्भवतः सैनफ्रैंसिस्को सम्मेलनके लिये निर्धारित की गयी तारीख है। रूस और जापानके बीचमें मैत्री और तटस्थताके पैक्ट पर १३ अप्रेल १९४१ को दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर हुए थे और २४ अप्रेलको जापानी प्रिवी कौंसिल तथा सम्राटने उसे स्वीकृति प्रदान की थी। २५ अप्रेलको सुप्रीम सोवियट द्वारा उसका समर्थन हुआ था। इस पैक्टकी अवधि पांच वर्षकी है। यदि पैक्टको भङ्ग करनेकी पूर्व सूचना न दी जाये तो पैक्टकी अवधि आपसे आप और पांच वर्ष के लिये बढ़ गयी, यह समझ लिया जायेगा। भङ्ग करनेकी पूर्व सूचनाका अर्थ है अवधिकी समाप्तिके ठीक एक वर्ष पूर्व जो पार्टी पैक्ट नहीं रखना चाहती उसे दूसरेको इसकी सूचना देनी चाहिये। इस तरह देखा जाता है कि पैक्टको न बनाये रखनेकी सूचना देने और सैनफ्रैंसिस्को सम्मेलनका दिन एक ही पड़ता है। इसी वजहसे यह समझा जाता है कि उस दिन रूस पैक्ट न रखने की सूचना जापानको देकर वह ऐसे सम्मेलनमें भाग लेनेका अधिकारी हो जायेगा जिसमें जापानके विरुद्ध विचार हो।

इस सम्बन्धमें यह उल्लेखनीय है कि त्रिराष्ट्र सम्मेलनके फलस्वरूप तीनों नेताओंने जो वक्तव्य निकाला है उसमें जापानका कोई उल्लेख नहीं है। रूस-जापान पैक्टके अनुसार समझौता भङ्ग करनेकी पूर्व सूचना देनेके पहले नैतिक दृष्टिसे स्टालिन जापान विरोधी किसी निर्णयमें भाग नहीं ले सकते, सम्भवतः इसीसे उक्त वक्तव्यमें जापानका जिक्र नहीं आया। अब देखना है कि पैक्ट भङ्ग करनेकी पूर्व सूचना पहले कौन देता है रूस या जापान। लक्षणोंसे यही जान पड़ता है कि पहला कदम रूस ही आगे रखेगा।

लन्दनी पोलोंकी टेंटें—

युद्धने उन सब पर्दोंको उठा दिया, दीवालोंको तोड़ डाला जिनके भीतर वास्तविकताओंको छिपा रखा गया था। आज स्थिति इतनी सहज और सरल हो गयी है कि



यूरोपके पश्चिमीय मोर्चे पर बिछी हुई बरफ का दृश्य

लोग आसानीसे यह समझ सकते है कि पोलैंड वह नहीं है जो संसारकी आंखोंके सामने अब तक लन्दनस्थ पोलों द्वारा तथा उनके हिमायती अंगरेजों और अमेरिकनों द्वारा पेश किया जाता रहा है। युद्धने वास्तविकताको सामने ला दिया और लन्दनस्थ पोलोंके सबसे बड़े हिमायती खम्भ मि० चर्चिलको लन्दनस्थ पोलिश सरकारको दफनानेका इश्तहार अपने हाथसे लिखना पड़ा। स्टालिनकी विजय हुई। चर्चिल हारे।



युद्धक्षेत्रसे आहत सैनिकोंको हवाई जहाजोंसे अस्पतालोंमें पहुंचानेवाली सैनिक महिलाओंका दल

लन्दनस्थ पोलिश सरकार; जिसे अब पोलिश सरकार कहना सर्वथा अनुचित है, सर पटक रही है। अपने देशकी स्थिति इस तरह बदल जाते देख वे हैरान हैं। इतना ही नहीं उनकी बुद्धि भी मारी गयी है। इस सरकारके एक मिनिस्टर प्रो० ऐडन प्रेगियरकी दृष्टिमें यह पोलैण्डकी मुक्ति नहीं है बल्कि सैनिक नियन्त्रणका परिवर्तनमात्र है। अब तक मालिक जर्मन थे, अब रूसी हो गये हैं। त्रिनायक सम्मेलनकी कार्यवाही पर लन्दनस्थ पोलिश सरकारने एक विज्ञप्ति निकाली है, जिसमें कहा गया है कि याल्टा कान्फ्रेंस आरंभ होनेके पहलेही 'हमने एक मेमोरन्डम देकर ब्रिटिश और अमेरिकन सरकारको सूचित कर दिया था कि बिना पोलिश सरकारसे सलाह किये हुए यदि कोई निर्णय पोलैंडके सम्बन्ध में किया जायगातो हमें मान्य न होगा।' लेकिन हुआ वही, मान न मान मैं तेरा मेहमान वाली कहावत पोलैंडके ये भगोड़े सिद्ध कर रहे हैं। अपने मुंह मियां मिट्ठू। जो सरकार पोलैंडका आज शासन कर रही है, जनता जिसे मान रही है और जिसके सदस्योंमें प्रायः वे ही सब हैं जिन्होंने सङ्कट कालमें भी देशका साथ नहीं छोड़ा, उसके आगे भला अब आपको पूछता ही कौन है? और अब तो वह सहारा भी नहीं रह गया जिसके बल पर आप कूदते और फांदते थे। मि० चर्चिलने भी तो आपकी तरफसे मुंह मोड़ लिया।

तब, आखिर आप किसके भरोसे और किसके नाम पर बोल रहे हैं? यह भगोड़ी सरकार किसका प्रतिनिधित्व करती है? पोलिश जनसाधारणका? कदापि नहीं। पोलिश जनताने न कभी इसे चुना, न नियुक्त किया और न कोई अधिकार ही इस सरकारको कभी प्रदान किया। पोलैंडकी सितम्बरकी पराजयके बाद भाग खड़ी होनेवाली रीज-स्मिगली सरकारके ध्वंसावशेष पर यह खड़ी है। और ये हैं कौन? १९३९ में जिन लोगोंने जान-बूझकर पोलैंड पर आफत बुलायी थी, भीतरसे वे और ये एक हैं। इस कही जानेवाली पोलिश सरकारने पोलिश सरहदियोंके सौदेको अपना मुख्य कार्य बनाया किन्तु जर्मनों द्वारा जो पोलिश भू भाग अधिकृत कर लिया गया था इसने उसके लिये कभी चूं नहीं की। सोवियट बाइलोरूस, सोवियट यूक्रेन और सोवियट लिथुआनिया, जहांके निवासियोंके साथ पोलिश शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं, इसे मिलने चाहिये। क्यों? पूर्वी अञ्चलमें बसने पर भी ये भले आदमी पोलिश जनताको यह समझाते हैं कि इस अञ्चलके लोगोंसे तुम्हारा कोई संबंध नहीं। तुम्हारी सभ्यता, संस्कृति, धर्म सब कुछ इनसे भिन्न है। पूर्वमें रहते हुए भी पश्चिम वाले तुम्हारे अपने हैं। फ्रांस इटली, जर्मनी और ब्रिटेनके साथ तुम्हारा सांस्कृतिक मेल है। पूर्वके साथ सम्बन्ध करके तुम भी बाइजन्टियन, मङ्गोलियन और तातारोंकी बर्बर श्रेणीमें आ जाओगे। इन्हीं कारणोंसे रूससे इनको घृणा और जर्मनीसे इनको विशेष प्रेम था। रूसके साथ मिल कर ये नहीं रह सकते। ये पोलिश यह अपना दुर्भाग्य समझते थे कि सभ्यता और संस्कृतिमें पाश्चात्य देशोंसे सामञ्जस्य होते हुए भी पूर्वाञ्चल उनका निवास स्थान है। इस दुर्भाग्यको रूसके साथ मेलजोलसे रहकर अधिक भयानक नहीं बनाना चाहते। किन्तु पोलैंडके जनसाधारण ऐसा नहीं समझते। उनको अपने पड़ोसीपर भरोसा है। नित्यके सुख दुखमें जो साथ आये वही अपना है।

जब सोवियट-पोलिश सन्धिपत्र पर ३० जून १९४१ को हस्ताक्षर हुए तभी स्टालिनने तत्कालीन प्रधान मन्त्री स्वर्गीय सिकोर्स्कीको आश्वासन दिया था कि सोवियट सरकार शक्तिशाली और स्वतन्त्र पोलैण्ड देखना चाहती हैं। और आज इस बातको संसार जानता है कि पोलैण्डका उद्धार लालसेनाकी शक्ति और देशभक्त पोलिशोंके सहयोगसे हुआ है। इस सत्यको लन्दनस्थ पोलिश मान नहीं सकते, क्योंकि यह माननेके बाद फिर वे किस मुंहसे रूसका विरोध करेंगे। यही कारण है कि आज ये पोलैण्डकी जनता की सरकारको कठपुतली सरकार और पोलैण्डकी मुक्तिको परतन्त्रता कहते नहीं शर्माते? लेकिन अब इनकी टेंटें कौन सुनता है।

क्यूमिण्टांग और कम्यूनिस्ट----?

रायटरके संवाददाताका कहना है कि नेशनल कांग्रेस-की बैठकके पूर्व देशके सैनिक और राजनीतिक ऐक्य-सङ्गठन पर विचार करनेके लिये क्यूमिण्टांग, कम्यूनिस्ट एवं अन्य पार्टियोंकी एक कानफरेंस बुलानेके प्रस्तावको चीनकी सरकारने स्वीकार कर लिया है। निस्सन्देह यह अच्छी बात है और चीन सरकारने कम्यूनिस्ट प्रतिनिधि चो एन लाईके इस सुझावको स्वीकार करके बुद्धिमत्ताका परिचय दिया है। चीनके सैनिक और राजनीतिक सङ्गठनके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि चीनके सभी दलोंके परस्पर सहयोग और सहानुभूतिके आधार पर एक ऐसा कार्यक्रम बने जिस पर सम्पूर्ण देशको विश्वास हो, तभी वह वर्तमान संकटका सामना सफलता पूर्वक कर सकता है।

चीन सरकारने जो प्रस्ताव कम्यूनिस्ट प्रतिनिधिके सामने उपस्थित किया था और जिसे स्वीकार करनेमें चो एन लाऊने अपनी असमर्थता प्रकट की थी वह चीनके इनफारमेशन मिनिस्टरकी दृष्टिमें बहुत महत्वपूर्ण रियायत है जो सरकारकी तरफसे की गयी है। चीन सरकारका प्रस्ताव इस प्रकार है :—(१) चीनकी कम्यूनिस्ट पार्टीको वैध राजनीतिक पार्टी मान लिया जायेगा। (२) राष्ट्रीय सैनिक कौंसिलमें एक प्रमुख कम्यूनिस्ट सदस्य रहेगा। (३) शासन समितिमें कम्यूनिस्ट एवं अन्य पार्टियोंके प्रतिनिधियोंको लेकर युद्धकालीन मन्त्रिमण्डलका सङ्गठन किया जायेगा। (४) कम्यूनिस्ट सेनाके पुनर्सङ्गठन पर विचार करनेके लिये तीन सदस्योंकी एक कमेटी बनेगी। इस कमेटीमें कम्यूनिस्ट पार्टी और सरकार दोनोंका एक-एक प्रतिनिधि समानाधिकारके आधारपर रहेगा और सम्भवतः एक अमेरिकन सेनाध्यक्ष कमेटीका चेयरमैन होगा।

कम्यूनिस्ट प्रतिनिधिके इस प्रस्ताव पर असहमत होने और बदलेमें उपर्लिखित सुझाव पेश करने पर चीन सरकार ने उसे मान लिया है। अब इस सम्बन्धमें अपने सहकर्मियोंसे विचार परामर्श करने चो एन लाई येनान वापस गये हैं। आशा है कि इस सर्वदल सम्मेलनमें सब दलोंको मान्य समझौता हो सकेगा।

इधर हालमें चीनकी स्थितिको सुधारनेका प्रयास किया गया है और इसके फलस्वरूप जो काम हुआ है वह आशाप्रद है। १—चीनी युद्ध उत्पादन बोर्ड कायम किया गया है। २—पहली बार देशके तमाम प्रयत्नोंको सुसङ्गठित करने की चेष्टा हुई है। आशा है कि अस्त्र उत्पादनमें शीघ्र पर्याप्त वृद्धि होगी। ३—यातायातकी अतिरिक्त सुविधाएं बढ़ी हैं। ४—चीनी और अमेरिकन हाई कमाण्डोंके बीच पूर्वापेक्षा अधिक घनिष्ट सम्पर्क स्थापित हुआ है। ५—सिवीलियनोंकी नैतिकता और साहसको ऊपर उठानेके लिये एक सुन्दर कार्यक्रम तैयार किया गया है। इन सब कामोंके अतिरिक्त इस वर्ष सप्लाईकी दृष्टिसे एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कलकत्ता-कुनमिंग पाइपलाइन और लीडो-बर्मा रोडका फिर खुल जाना है। इन सब शुभ लक्षणोंके साथ साथ यदि चांग कैशक और कम्यूनिस्टोंका मतभेद दूर हो जाये और दोनों एक दूसरेके साथ सहयोग पूर्वक काम करने लग जायें तो इस परिवर्तनसे चीन युद्धका शीघ्र अन्त और शान्तिके आधारका स्थायी और सुदृढ़ होना अवश्यम्भावी है।

यूनानकी समस्या---

यूनानकी जन शक्तियोंको झुकना पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रचण्ड शक्तिके सामने जन नेता कब तक ठहर सकते थे। एलास सैनिकोंको हथियार देने पड़े। राजसत्ता कायम रखने वाली सरकार बन गयी। जेनरल प्लास्टिरा सरकारके प्रधान हुए और उनके साथियोंमें सभी प्रतिक्रिया शील व्यक्ति हैं। जिन लोगोंके हाथमें देशकी शासन-डोर रहनेसे यूनानके पलातक शाह जार्जका देशमें वापस आना सम्भव हो, रिजेण्ट आर्कबिशप डोमिस्कनोंने इस बातका ध्यान रखा कि, प्लास्टिरा सरकारमें वे व्यक्ति ही लिये जायं जिन लोगोंने देशको शत्रुके

हाथोंमें सौंपनेमें मदद की थी, राष्ट्रकी प्रतिरोध-शक्तियोंको दबाया था। फलतः वे ही आज राष्ट्रके भाग्य विधाता बने और देशकी आजादीके लिये प्राण तक उत्सर्ग करने वाले 'विद्रोही और गुण्डे' कह कर निकाल बाहर कर दिये गये। यह है महिमा लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताके लिये लड़ने वाले मि० चर्चिल की।

यूनानकी इन घटनाओंसे यह स्पष्ट हो गया है कि मि० चर्चिलके प्रभावसे कलके यूरोपका स्वरूप क्या होने जा रहा है। अब यह बात भली प्रकार पुष्ट और प्रमाणित हो गयी है कि चर्चिल इस यूनान नाटकके अभिनयकी तैयारी अगस्त १९४४ से कर रहे थे। यूनानकी जनशक्तियोंसे एक दिन सामना करना होगा, यह समझ कर मि० चर्चिलने पहले ही से अपनी पेशबन्दी शुरू कर दी थी। इसका खास मतलब था। मि० चर्चिलका यह विश्वास है, कमसे कम कहते वे ऐसा ही हैं, कि यूनानकी जनशक्ति, जो ई० ए० एम० पार्टीके नामसे प्रसिद्ध है, कम्यूनिस्ट संगठन है और उसके हाथमें एक बार शासन सत्ता आते ही वह सामाजिक क्रान्तिके लिये "कत्ले आम" के गुप्त हथकण्डोंसे काम लेनेमें जरा भी इस्ततत: न करेगी। उनका अपना यह विश्वास है कि यूनानके लिये वैधानिक लोकतन्त्र सर्वाधिक उपयुक्त है। और उनके वैधानिक लोकतन्त्रका क्या स्वरूप है यह किसीसे छिपा नहीं है। वैधानिक लोकतन्त्र पर विश्वास रखते हुए भी मुसोलिनी और फ्रंकों जैसे तानाशाहोंकी पीठ ठोंकनेमें उन्होंने कभी द्विधा नहीं की। अपने स्वरूपकी प्रतिछायासे किसे प्रेम न होगा। मि० चर्चिल का ऐसा करना स्वाभाविक ही है। कम्यूनिज्म (समष्ठिवाद) को उन्होंने सदा घृणाकी दृष्टिसे देखा है। समाजवाद से वे सदा भयातुर रहते हैं। राजतन्त्रसे उन्हें विशेष प्रेम है। मन ही मन अपने इस प्रेमको वे भीतर छिपाये रखते हैं फिर भी कभी कभी दबा हुआ प्रेमोच्छ्वास निकल ही पड़ता है। मनुष्य ही तो हैं। कहां तक मनोगत भावोंको छिपाये रहें।

वास्तविकता यह है कि यूनानमें कम्यूनिस्टों द्वारा प्रभावित सरकारकी स्थापना पर उन्हें इसलिये आपत्ति नहीं है कि इस तरहकी सरकार सामाजिक क्रान्ति कर बैठेगी। क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि मि० चर्चिल यह न जानते हों कि आज कम्यूनिस्ट पार्टियोंका प्रथम लक्ष्य सामाजिक क्रान्ति करना नहीं रह गया है? आपत्ति इसलिये है कि उन्हें भय है कि इस तरहकी सरकारका झुकाव रूसकी तरफ होगा। ऐसा होनेसे उनकी परिकल्पित योजना नष्ट हो जायेगी। उनके मनसूबे ढह जायेंगे। राजतन्त्र स्थापित होनेसे शाहको सदा मि० चर्चिलके समर्थन और सहयोगका मुंह जोहना पड़ेगा। ब्रिटिश सङ्गीनोंके भरोसे खड़ी की गयी प्लास्टिरा सरकारके रहते मि० चर्चिलको जो मनमानी करनेको मिलेगी, वे जानते थे कि, उनकी सदिच्छासे स्थापित लोक प्रतिनिधि मूलक सरकार होनेपर उनको वह स्वतन्त्रता न मिलेगी।

इसे हम विडम्बना ही कहेंगे कि २० वीं शताब्दीके द्वितीय चरणकी समाप्ति पर पहुंचे हुए संसारका नेतृत्व मि० चर्चिल जैसे व्यक्ति कर रहे हैं जो विचारों और संस्कारोंकी दृष्टिसे १९ वीं शताब्दीके आरम्भकालीन नेताओंसे किसी अंशमें भी अधिक प्रगतिशील नहीं हैं। मि० चर्चिल अभी तक अहमकी सीमाको तोड़ नहीं सके। अपने स्वार्थके लिये यदि दूसरेका बलिदान होता है तो वे क्या करें? वह क्यों उनके मार्गमें आया? और आ ही गया तो अब उसे मार्ग देना ही पड़ेगा। स्वेच्छासे दे नहीं तो ब्रिटिश तलवारके बलसे तो देना ही पड़ेगा। यह है मि० चर्चिलकी आजकी नीति। अवश्य ही इस नीतिपर उन्होंने बीसवीं शताब्दीका चमकता हुआ मुलम्मा चढ़ा दिया है। इस कलामें वे अपने पूर्वजोंको भी मात करते हैं।

यूनान द्वीप पुञ्ज का महत्व ब्रिटिश साम्राज्यके लिये वैसा ही है जैसा भूमध्य सागरमें स्वेजका है। डार्डेनेल्सके भीतर और बाहर जानेका प्रवेश द्वार यूनान द्वीप है। इसके सिवा आवश्यकता पड़ने पर रूसके खिलाफ यूनान ब्रिटेन के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किन्तु यह बात तभी हो सकती है जब यूनानमें ऐसी सरकार हो जो ब्रिटेनका सहज प्रेमी और रूसका सहज शत्रु हो। इसीलिये यूनानसे मि० चर्चिलको विशेष प्रेम है। यह प्रेम नया नहीं है। दादा परदादाके समयसे दोनों देशोंमें मैत्री है। जिसे आज यूनानके कुछ उद्दण्ड दुस्साहसी विद्रोही कीड़े नष्ट कर डालना चाहते हैं। मि० चर्चिल, विश्व-प्रेमकी प्रतिमूर्ति, इसे कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं? उनको अनिच्छापूर्वक वही काम करना पड़ा जो नाजी दस्यु स्वेच्छापूर्वक करते रहे हैं। इसकी जवाबदेही किसपर है? मि० चर्चिल को इस तरह नाजियोंका अनुसरण करनेको जिसने बाध्य किया। उसका फल भी उसको मिला। यूनानकी जनशक्ति के नेता यूनानके शासन और व्यवस्थासे दूर हटा दिये गये और उस जगह बैठा दिये गये वे लोग जो विचारों और

संस्कारोंमें चर्चिलसे भी अधिक अनुदार और संरक्षण शील हैं। मि० चर्चिलके ब्रिटेनको इसकी कितनी आवश्यकता थी यह बात वह समझ सकता है जो राजनीतिके दांव-पेंचों से परिचित है।

एड्रियाटिक समुद्र मार्गसे भूमध्यसागरमें प्रवेश तभी रोका जा सकता है जब आयोनियन द्वीप पुञ्जपर नियन्त्रण रखनेवाली यूनान सरकार ब्रिटेनकी मुट्ठीमें रहेगी। मि० चर्चिल दूरदर्शी हैं। उन्होंने देख लिया कि युगोस्लावियाकी सरकार कम्यूनिस्ट प्रधान और रूसकी सम्पूर्ण समर्थक बन रही है। इसका अर्थ यह होता है कि यदि यूनान भी उसी दिशामें चला गया तो फिर भूमध्यसागर पर ब्रिटेनका एक छत्र अधिकार खतरेमें पड़ सकता है। इस खतराको दूर रखनेके लिये ही मि० चर्चिलको यूनानके सम्बन्धमें निरंकुशताका परिचय देनेमें जरा भी सङ्कोच और शील नहीं हुआ। इतना ही शील और शिष्टाचार मि० चर्चिलमें होता तो क्या आज संसारके सबसे बड़े फासिस्टवाद विरोधी नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरूको जेलमें बन्द रखा जाता ?

बुडापेस्टका पतन—

लाल सेनाकी प्रचण्ड शक्तिके सामने जर्मन सेना कहीं ठहर नहीं पा रही और कहीं लड़ कर कहीं बिना लड़े ही नगरों पर लाल सेनाका अधिकार होता जा रहा है। इस तरह युद्धका मोर्चा, जो कभी जर्मनीसे हजारों मील दूर था अब क्रमशः सिमटता सिमटता बर्लिनके इतना निकट पहुंच गया है कि मार्शल जुकोवके गोलन्दाज जर्मन राजधानीके पार्श्वस्थ उपनगर अञ्चलकी खबर ले सकते हैं।

युगोस्लाविया, रूमानिया, पोलैंड, फिनलैंड, बाल्टिक राष्ट्र लालसेना द्वारा नाजी चंगुलसे मुक्त कर लिये गये। अब हंगरीकी बारी आयी है। हङ्गरीकी राजधानी बुडापेस्ट पर भी फरवरीके दूसरे सप्ताहमें लाल सेनाका पूर्ण अधिकार हो गया। ६ सप्ताह तक बुडापेस्टमें घिरी रहनेके बाद जर्मन सेना नगरकी रक्षा न कर सकी। नगरकी रक्षाके लिये प्रचण्ड युद्ध हुआ। रास्ते रास्ते और घर घरमें लड़ाई हुई। जर्मनोंको इस युद्धमें भारी क्षति उठानी पड़ी। हताहतोंकी भारी क्षतिके अतिरिक्त १ लाख १० हजार जर्मन सैनिक बन्दी हुए। इसीसे पता चल सकता है कि बुडापेस्ट की रक्षाके लिये जर्मनोंने शक्ति भर कोई बात उठा नहीं रखी और आसानीसे नगर पर कब्जा नहीं होने दिया। अन्य बालकन केन्द्रोंमें लाल सेनाकी प्रगतिको रोकनेमें इतनी प्रचण्ड शक्तिसे काम नहीं लिया गया। किंतु अन्य केन्द्रोंमें और बुडापेस्टमें बड़ा अन्तर है। बात यह है कि बालकन राष्ट्र मण्डलमें हंगरीका सैनिक दृष्टिसे बहुत बड़ा महत्व है। हंगरीपर अधिकार होनेसे दक्षिण जर्मनी पर सरलताके साथ चढ़ायी की जा सकती है। इसकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की है। कारपेथियन पर्वत-मालाकी पश्चिमीय भुजाएं ब्राटिस्लावामें आकर समाप्त हो गयी हैं। मोरावा नदी इस कारपेथियन पर्वत-मालाको ब्राटिस्लावासे पृथक करती है। ऐल्पकी पर्वत श्रेणी वियेनामें समाप्त होती है। डेन्यूब नदी उत्तर पूर्वसे इस पर्वत श्रेणीकी दिशा बदल देती है। डेन्यूब और मोरावा नदियोंके बीचमें समतल भूमि प्रदेश फैला हुआ है। ब्राटिस्लावा और वियेनाके बीचमें भीतर फैला हुआ तीस मीलका प्रदेश आस्ट्रिया प्रवेशके लिये सुगम मार्ग है। इस तरह इस मार्गसे जर्मनी खासके भीतर प्रवेश अत्यन्त सहज हो जाता है। यही कारण है कि जर्मनोंने बुडापेस्टकी आप्राण रक्षा करनेकी चेष्टा की। जहां तक उनकी शक्तिके भीतर था उन्होंने बुडापेस्टकी रक्षाके लिये सैनिक और सामग्रीकी कुमुक पर कुमुक भेजी। पर अन्तमें लाल सेनाके प्रबल प्रतापके सामने उनको नतमस्तक होना पड़ा। दक्षिण जर्मनीके भीतर प्रवेश करनेका रास्ता खुल गया है। लाल सेना शीघ्र ही ब्राटिस्लावाके सामने पड़े प्रदेशकी ओर झुकेगी। बुडापेस्टके पतनने जर्मनोंकी सामरिक शक्तिको और अधिक करारी चोट पहुंचायी है। अब शेष हंगरी पर अधिकार करनेमें विशेष जबर्दस्त प्रतिरोध मिलनेकी सम्भावना नहीं रह गयी। हङ्गरीके पूर्णतया नाजी प्रभावसे मुक्त हो जानेपर सोवियटकी स्थिति सामरिक और आर्थिक, दोनों दृष्टियोंसे अधिक मजबूत हो जायेगी। स्वभावतः जर्मनीकी स्थिति उसी अनुपातसे अधिक शोचनीय होगी। बुडापेस्टमें आइरन और स्टील तथा इञ्जीनियरिंग केमिकल्स (रसायन) और गोला गोली बनाने वाले (आर्डनेन्स) बड़े महत्वपूर्ण कारखाने हैं। यह भी कहा जाता है कि हङ्गरीकी कृषि जर्मनीकी आबादीके आठवें हिस्सेको खिलानेमें सहायक थी। अतएव सभी दृष्टियोंसे बुडापेस्टके पतनने जर्मनीकी स्थितिको नाजुक बना दिया है।

जर्मनीकी भीतरी हालत—

आज जिस विकट स्थितिमें जर्मनी है, उससे कोई चमत्कार ही उसकी रक्षा कर सकता है। जो जर्मनी एक दिन

यूरोपकी प्रायः सभी राजधानियोंको अपने पाद-प्रान्तमें झुका चुका था और लन्दन, मास्को पहुंचनेके स्वप्नके साथ साथ सम्पूर्ण विश्व पर अपना स्वस्तिक झण्डा फहरानेके मनसूबे गांठ रहा था आज वह इस चिन्तामें परेशान है, बिचलित है कि अपनी राजधानी बर्लिनकी रक्षा कैसे की जाये। स्थिति कितनी भयङ्कर और विकट हो गयी है यह इस बात से समझा जा सकता है कि आज जर्मनीमें लोग अपनी रक्षा कैसे करें, साम्राज्य और राष्ट्रकी रक्षाकी बात भूल कर, इसी चिन्तामें गले जा रहे हैं।

जर्मन तथा तटस्थ देशीय रिपोर्टों, नाजी ब्राडकास्टों और आये दिन होती ही रहने वाली नाजी लीडरोंकी दर्द-भरी, निराशा भरी अपीलोंको देखनेसे स्पष्ट ही इस बातका आभास मिलता है कि जर्मनीमें एक नवीन स्थिति पैदा हो रही है। हिटलरशाहीका पहले जैसा बोलवाला नहीं रह गया। सामरिक और असामरिक दोनों स्थितियोंपर उसका अब एक छत्र अधिकार और नियन्त्रण नहीं रह गया। घरेलू स्थिति बदसे बदतर होती जा रही है। एक तरफ कहीं अन्यत्र अधिक सुरक्षित स्थानमें आश्रय पानेकी दृष्टिसे शहरों और नगरोंसे भागने वालोंकी संख्या बेशुमार बढ़ती जा रही है, तो दूसरी तरफ यातायात (ट्रांस पोर्ट) की समस्या जटिल-तर हो उठी है। आवश्यक खाद्य पदार्थोंका जबर्दस्त अभाव, वस्त्रों और जूतों, आश्रय तथा तेल और ईंधनकी कमीने जर्मनीकी भीतरी स्थितिको दयनीय बना दिया है। ऐसी अवस्थामें यदि नाजी हाई कमाण्डपरसे जर्मन जनताका विश्वास उठता जा रहा है तो क्या कोई आश्चर्यकी बात है?

फरवरीके प्रथम सप्ताहमें 'डास रीश' पत्रमें एक लेख छपा था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है। स्थितिकी विकटता कितनी बढ़ गयी है कि इस लेखमें कहा गया है कि १५ लाख व्यक्तियोंको, अधिकांश पूर्व प्रशासे, स्थानान्तरित करनेकी व्यवस्था की गयी थी। किन्तु सोवियटके प्रचण्ड प्रहारके फलस्वरूप इतने अधिक बांध टूट गये हैं कि तीस लाख आदमी इधर उधर फिरकीकी तरह घूमते नजर आ रहे हैं। प्रतिक्षण भागने वालोंका लगा हुआ तांता ज्वारके पानी की तरह बढ़ता ही जा रहा है। लोगोंको स्थानान्तरित करनेकी योजनाको कार्यमें परिणत करना कठिन हो गया है। दलके दल शरणार्थी घूमते फिरते वापस आ रहे हैं।"

इन भागने वालोंमें अधिकांश अकारण भयसे भाग रहे हैं। प्रत्यक्ष दर्शी तटस्थ व्यक्तियोंका कथन है कि लालसेना जहां जिस स्थान और नगरमें प्रवेश और अधिकार करती है वहांके लोगोंके साथ उसके सैनिक किसी तरहकी बर्बरतासे पेश नहीं आ रहे। किन्तु आतङ्क और भय अकारण नहीं है, हिटलरी शासन नहीं चाहता कि उसके पीछे कोई भी सुख भोगनेको बचा रह जाये। 'हम नहीं तो जग नहीं' यह नीति नाजी हाई कमाण्डने अख्तियार की है। हिटलरशाहीके साथ साथ जर्मन जातिका भी अस्तित्व मिट जाये, इस नीतिको देखकर जर्मन जनता घबरा उठी है। यही कारण है कि उपयुक्त स्थानपर आश्रय पानेके लिये भागनेकी धुन उस पर सवार है। इसलिये, जनसाधारणकी घबराहट और अस्त-व्यस्तताका कारण दरअसल रूसियोंका आगमन नहीं है बल्कि शहर खाली करनेके सम्बन्धमें निकाला गया नाजी आर्डर है। नाजियोंकी 'स्वाहा-नीति'ने जर्मनोंको अति भयत्रस्त और आतङ्कग्रस्त कर दिया है।

बर्लिन शहरको छोड़कर चले जानेवालोंको पुनः वापस लाया जा रहा है। इसका यही अर्थ है कि उनको ध्वंस-यज्ञ-की आहुति बननेको बाध्य किया जा रहा है। जर्मनीको खाद्य पहुंचाने वाले जो अञ्चल थे वह एकके बाद एक करके उनके हाथसे निकलते जा रहे हैं। ऐसी हालतमें उनको फिर उस शहरमें वापस लानेका क्या अर्थ हो सकता है जहां सर्वाधिक प्रचण्ड बमवर्षा अनिवार्य है और जहांकी खाद्य स्थिति स्वयं इतना पर्याप्त नहीं है कि सबको भोजन दे सके। हम इसे हिटलरकी स्वाहा-नीतिके सिवा और क्या कह सकते हैं? मिटेंगे लेकिन सबको साथ लेकर। लोगोंके भीतर असन्तोष और विद्रोहके लक्षण दिखायी देने लगे हैं। आशेन-एरिया और सारके देहातोंमें जिन लोगोंने स्थान खाली करनेके हुक्मकी अवज्ञा की वे हिटलरशाहीसे सफलतापूर्वक बच निकले और उनको इस बातका जरा भी खेद नहीं है। इस तरह देखा जा रहा है कि अभाव और भविष्यकी अमावस्या विकरालरूपमें सामने देख जर्मनोंके भीतर नाजी शासनके विरुद्ध असन्तोष और विद्रोहकी भावना बढ़ रही है।

फिलस्तीनका मसला

आज संसारके कितने ही देशोंके भाग्यका फैसला हो रहा है। इस फैसलेमें न्याय और नीतिकी नहीं स्वार्थ और पशुबलकी प्रधानता है। न्याय और नीति-अनुमोदित निर्णयोंका युग अभीतक नहीं आया। जिस दलके हिमायती जितना जबर्दस्त और ताकतवर हैं, फैसला उतना ही उसके स्वार्थके अनुकूल होगा। भले इससे दूसरे दलके साथ

कितना ही बड़ा अन्याय क्यों न हो रहा हो। यह न्याय और नीति, सत्य और प्रेम, अहिंसा और समानताका जमाना नहीं है। अन्याय और अनीतिका बोलबाला है, असत्य और घृणाका साम्राज्य है, हिंसा और असमानताका ताण्डव हो रहा है। इसी परिस्थितिके मध्यमें फिलस्तीन भी अपने भाग्यके फैसलेकी बाट जोह रहा है। फिलस्तीनके दो दावेदार हैं। अरब और यहूदी। यदि यही दो दावेदार होते तो सम्भवतः ऐसा समझौता हो जाता जिससे दोनोंको सन्तोष होता। किन्तु इन दोके बीचमें एक तीसरा, दाल-भातमें मूसल चन्दकी तरह है और उसका स्वार्थ फिलस्तीनमें उसके असली दोनों दावेदारोंकी अपेक्षा कहीं अधिक है तो यह दाल-भातमें मूसल चन्द है ब्रिटिश साम्राज्यवाद। मि० चर्चिल—जिनको सर्वाधिक चिन्ता, साम, दाम, भय, भेद जिस किसी तरहसे भी हो, अपने उस साम्राज्यकी रक्षा करनेकी है जिसे कभी उन्होंने कूट-बल द्वारा जीता था और जिस पर आज अपनी तलवारके बलसे बतौर ट्रस्टी राज्य कर रहे हैं,—मध्यपूर्वमें अपनी प्रधानता बनाये रखनेके लिये कोई बात उठा नहीं रखेंगे। ईरान, अरेबिया, मिस्र और फिलस्तीनमें अङ्गरेजोंको अपना प्राधान्य चाहिये, इसके लिये वे दूसरोंको बलिका बकरा बनायेंगे। अपने बराबरकी ताकतका मुंह बन्द करना मि० चर्चिल जानते हैं। अपनी उपस्थितिकी आवश्यकता संसारको बतानेके लिये, देखनेमें उपयुक्त कारण और बहाना खोज निकालनेमें मि० चर्चिल पटु और प्रवीण हैं। फिलस्तीनकी समस्यामें, अरबों और यहूदियोंके बीचमें यदि अङ्गरेज न हों तो समस्या आसानीसे सुलझ सकती है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। अरब भी रहेंगे और यहूदी भी रहेंगे और उनकी एक दूसरेके खिलाफ समस्याएं भी रहेंगी। तभी तो, अङ्गरेज वहां रह सकते हैं। जेरूसलेम स्थित विश्व विद्यालयके प्रेसीडेण्ट डा० जूडालीब माग्नीसने फिलस्तीन समस्या-समाधानके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव रखा है। आपका कहना है कि यह बात बिलकुल सत्य और स्पष्ट है कि फिलस्तीन न सिर्फ अरब राज्य हो सकता है और न यहूदी राज्य। इसलिये समझौतेके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। फिलस्तीनमें मुस्लिम, यहूदी और ईसाई संसारकी दिलचस्पी है। अर्थात् सम्मिलित राष्ट्र, यूनियन आव अरब-स्टेट्स और यहूदी जातिकी यह समस्या है। हम प्रो० जूडाके साथ बिलकुल सहमत हैं। फर्क इतना ही है कि सम्मिलित राष्ट्रोंके स्थान पर ब्रिटिश राष्ट्र आ जायेगा। अपने दो बड़े हिस्सेदार रूस और अमेरिकाको वह मित्रताके नाते या मुंह बन्द करनेकी विद्या जाननेके नाते अलग कर देगा और अरबों तथा यहूदियोंके बीच स्वयं चौधरी बन बैठेंगे। तब फिर वही क्रम जारी हो जायेगा जैसा आज जारी है। इसलिये फिलस्तीनकी समस्या, हिन्दुस्तानकी तरह, तबतक बनी रहेगी जब तक इङ्गलिस्तान अरबों और यहूदियोंके बीचमें रहेगा। अतएव अरब और यहूदी यदि फिलस्तीनकी समस्या सुलझाना चाहते हैं तो पहले अङ्गरेजोंको अपने बीच से विदा करें।

स्मट्सके मुंहपर तमाचा—

क्रीमिया सम्मेलनमें बहुतोंके गाल पर तमाचा लगा है। इनमें से एक हैं ब्रिटिश साम्राज्यके भीष्म पितामह फील्ड मार्शल स्मट्स। संसारके भाग्य निर्णय पर उनसे एक बार यह तक न पूछा गया कि कहिये आपकी क्या राय है? फील्ड मार्शल स्मट्स साम्राज्यके एक संसार-प्रसिद्ध योद्धा और राजनीतिज्ञ माने जाते हैं और हैं भी। जब जब साम्राज्यकी सेवाका समय आया है उन्होंने युद्ध और राजनीति दोनों क्षेत्रोंमें आवश्यकतानुसार, बल्कि शायद कुछ अधिक ही, अपनी राज-भक्तिका परिचय दिया है। किन्तु उनके देशवासी साम्राज्यकी उनकी सेवाओंको देखकर यह समझ बैठे थे कि ब्रिटिश राजनेताओंमें उनका भी समान स्थान है। नेता और अनुयायीके प्रभेदको वे भूल ही बैठे थे। इसीसे शायद भ्रान्तिमें पड़कर यूनियन असेम्बलीमें विरोधी दलके नेता डा० मालनने याल्टा घोषणाके उल्लेखके सिलसिलेमें यह पूछा---"पोलिश सवाल पर जनरल स्मट्सकी राय क्यों नहीं ली गयी? यह उपेक्षा दक्षिण अफ्रीकाके मुंहपर तमाचा मारनेके समान है।" हम इसे फील्ड मार्शल स्मट्सके गाल पर तमाचा जड़नेके समान मानते हैं। दक्षिण अफ्रीकामें निस्सहाय भारतीयों और अन्य काली जातियों पर तमाचा लगाते लगाते शायद गोरे दक्षिणी अफ्रीकन यह भूल गये हैं कि जिनके बलके सहारे वे भारतीयों और अन्योंको तमाचा मारते हैं मौका आनेपर उनके गाल पर भी वे (ब्रिटिश) तमाचा जड़नेसे बाज न आयेंगे। भला जहां संसारके भाग्यका निर्णय हो रहा है। वहां फील्ड मार्शल को कौन पूछता है? जब भारतीयोंको दबाने अथवा साम्राज्यकी रक्षाका सवाल आयेगा तब उनको पूछा भी जायेगा, थपथपाया भी जायेगा। राज-भक्तिका आज कल ऐसा ही पुरस्कार मिलता है।



सैंसरकी कहानी—

युद्ध नयी घटनाओंका जन्मदाता है। जिस बातकी कल्पना तक कोई न करता, वह भी युद्ध देवकी कृपासे सत्य हो जाती है। होनेवाली अनेकानेक घटनाएं हमें बतला रही हैं कि युद्ध जहां एक ओर भयङ्कर और विद्रूपवत है वहीं वह दूसरी तरफ आश्चर्य और मजाकोंका भी एक बहुत बड़ा खजाना है। हिन्दीके पाठक संयुक्तप्रान्तके आदरणीय टण्डनजीके उस वक्तव्यको भूले न होंगे जो उन्होंने सेंसरके सम्बन्धमें दिया था। घटना इस प्रकार है कि एक दिन जेलमें जब वे अपने नामके आये हुए पत्रोंको ध्यानसे देख रहे थे उनके नामके लिफाफेमें एक प्रेमिकाका प्रेम पत्र निकल आया। टण्डनजी जैसे वयोवृद्ध व्यक्तिको इससे महान आश्चर्य हुआ। किन्तु वे कर ही क्या सकते थे। यह तो सेंसरवालोंकी कृपा थी। पत्र रखते समय गड़बड़ी हुई और उस प्रेमिकाकापत्र बजाय उसके प्रेमीके पास जानेके टण्डनजी के पास चला आया। इस तरहकी मजेदार घटना आये दिन अखबारोंमें पढ़नेको मिलती हैं और हम उससे हार्दिक आनन्द लाभ करते हैं। दूसरी कहानी चीनकी है। वहां सेंसरवालोंका यह कार्य इस बुरी तरह बढ़ गया है कि उससे सरकारी क्षेत्रोंमें भी कठिनाइयां पैदा होने लग गयी हैं। "शांघाई इवनिंग पोस्ट"ने सेंसरकी इस धमाचौकड़ीकी जीभर कर निन्दा की है। युद्धके आनेवाले समाचारोंको इस बुरी तरह काट कपट किया जाता है कि फिर वे समाचार कहाने लायक भी नहीं रह जाते। आप सोच सकते हैं किउस पत्रको इस कार्यसे कितनी हानि होती होगी जो काफी पैसा खर्च कर युद्ध मोर्चेपर अपना संवाददाता भेजता है और समाचारके नाम पर उसे कुछ मिल नहीं पाता। अमेरिका-वाले भी इस कार्यसे खुश नहीं हैं। एक बारकी घटना है। अमेरिकासे एक संवाददाताने चीनी पत्रको ५०० शब्दोंका एक समाचार भेजा। अमेरिकाके सेंसर विभागने उस ५०० शब्दके समाचारसे काट कपट कर ३८८ शब्द निकाल लिये और बाकी बचे हुए शब्दोंमेंसे चीनी सेंसरने १०४ शब्द निकालकर अलग कर दिये। अखबारके पास केवल ८ शब्दों का समाचार आया! अब आप ही समझ सकते हैं कि ५०० शब्दवाले समाचारसे ४९२ शब्द निकल जाने पर केवल ८ शब्दोंमें क्या समाचार बचा रह गया होगा।

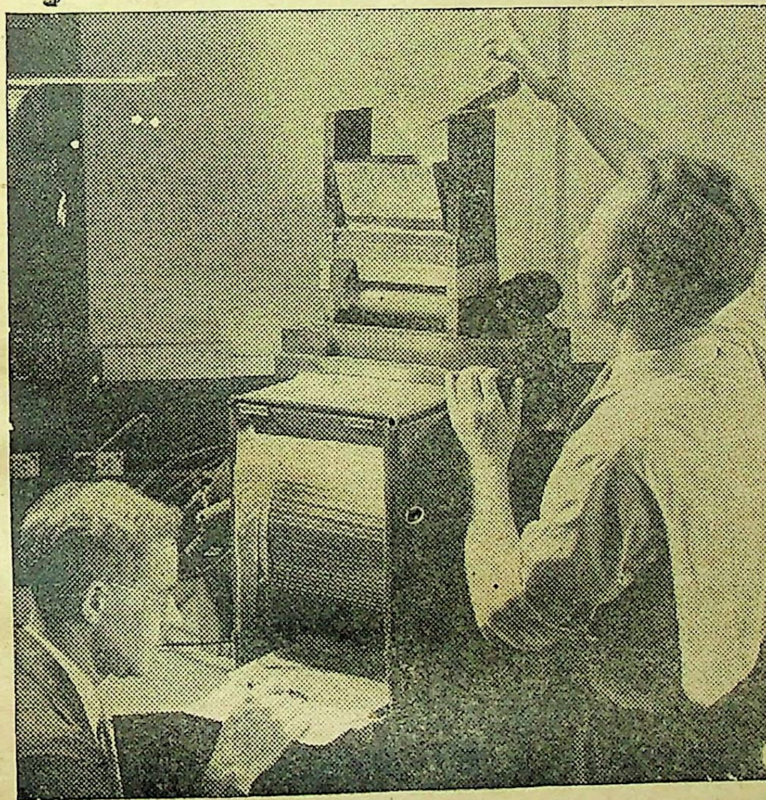
कुछ अजीब गरीब आंकड़े—

बुद्धि स्वेच्छाचारिणी होती है। यह कभी स्थिर नहीं रहती। इसका काम है कुछ न कुछ करते रहना। अच्छी बातें यदि न हो सकीं तो यह कुछ न कुछ बुरा करके ही दम लेगी। यह चुपचाप स्थिर कभी नहीं रहती। अपनी चञ्चलता के कारण यह काफी बदनाम हो चुकी है फिर इसके बिना किसीका कामभी तो नहीं चलता इसीसे यह अब तक आदर-णीया बनी हुई हैयुद्ध आरम्भ हो जानेके बाद बुद्धिकी गतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। जो जिस विषयको जानता है उसने उसी दृष्टिकोणसे भविष्यको देखना शुरू कर दिया है। अमेरिकामें प्रिंसटन यूनीवर्सिटीके "पोपुलेशन रिसर्च" आफिसके फ्रैंकनोटेस्टन नामक सज्जन भावी जनवृद्धिकी गणना कर आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। उनके मतसे २६ साल बाद जापानियोंकी जनसंख्यामें २ करोड़की वृद्धि होगी। १८७० में जापानकी आबादी ३ करोड़ ९० लाख थी जो बढ़ते-बढ़ते १९४० में ७ करोड़ ३० लाख हो गयी और इस हिसाबसे नोटेस्टन महोदयका मत है कि १९७० में वह ९ करोड़ ५० लाख हो जायगी। अमेरिकाके विषयमें आपका मत है कि १९७० में अमेरिकाकी जनसंख्या बढ़ती हुई १६ करोड़ तक पहुंच जायगी और फिर धीरे धीरे घटने लगेगी। अगली शताब्दीके प्रारम्भ तक आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंडकी जन-संख्या २ करोड़ १० लाख होगी तथा अफ्रीकाकी जनसंख्या २००० इस्वीमें बढ़कर २९ करोड़ हो जायगी। एशियाके विषयमें नोटेस्टन महोदयका मत है कि वह १ अरब ९ करोड़ हो जायगी। उत्तर पश्चिमी और मध्य यूरोपकी जनसंख्या इस समय आपके मतसे पूर्णता पर पहुंच चुकी है और उसका बढ़ाव १९५० के बाद एक तरहसे बन्द हो जायगा।

स्वचालित टारपीडो—

आजकी दुनिया पहलेकी दुनियासे बहुत बदल गयी है। पहले बुद्धि गौण थी और ज्ञान प्रधान था किन्तु आज ज्ञान गौण है और बुद्धि प्रधान है। ज्ञानने संसारको विश्व-

बन्धुत्व की भावना दी, और अहिंसा जैसा पवित्र उद्देश्य दिया। किन्तु बुद्धिने इसके ठीक विपरीत विश्व-शत्रुताकी भावना दी, असत्य और हिंसाकी प्रेरणा दी। आजकी दुनिया बुद्धिसे काम ले रही है। ज्ञान बेकारीकी जिन्दगी व्यतीत कर रहा है। ज्ञानके लिये आध्यात्मिक आधार था किन्तु बुद्धिके लिये वैज्ञानिक आधार है। विज्ञान आज चरम उन्नति पर पहुंच चुका है। मृत व्यक्ति जीवित होने लग गये हैं, चालक हीन विमान लक्ष्य तक पहुंचने लग गये हैं और उड़न बम शत्रु प्रदेशोंमें ४ सौ ९ सौ मीलकी दूरी तय कर पहुंचने लग गये हैं। यह भी सुननेमें आ रहा है कि इन उड़न बमों ही में उड़नेकी शक्ति बढ़ायी जा रही है और ये अब दो चार हजार मीलकी दूरी आनन-फानन तय करके संसारमें आश्चर्यकी सत्ता नष्ट कर डालेंगे। ऐसे समय इस स्वचालित टारपीडोकी बात उतना आश्चर्य जनक नहीं है। इस स्वचालित टारपीडोके निर्माता है डा० फ्रैंक कैरोलके



अमेरिकन वैज्ञानिक एक विद्युत आविष्कार दिखा रहे हैं। यह आविष्कार खनिज मिश्रित मिट्टीसे धातु निकालनेमें बड़ा उपादेय सिद्ध होगा। यह एक इस प्रकारका यन्त्र है कि धातुतत्व और बालू कणोंको सहज ही पृथक किया जा सकता है।

इस टारपीडोका सबसे पहली बार "हाउसो टोनिक" नामक जहाजपर प्रयोग किया गया जो तत्क्षण ही डूब गया। यह जहाज चार्ल्सटनके युद्धमें शत्रुओंकी ओरसे अवरोध के लिये रखा गया था। इसके सभी नाविक तत्काल ही काल-कवलित हो गये थे और जहाजमें भयङ्कर रूपसे आग भड़क उठी थी। डा० कैरोल इसके बनानेकी धुनमें पिछले कई वर्षोंसे लगे थे और अन्तमें अब जाकर कहीं वे अपने कार्यमें सफल हो सके हैं। यान्त्रिक युगको वैज्ञानिकोंकी समझ से डा० कैरोलकी ओरसे यह बहुत बड़ा उपहार मिला है। इस स्वचालित टारपीडोको लक्ष्यकी दिशामें सबमेरिनसे छोड़ दिया जाता है और इसकी पूंछपर लगी हुई मशीन इसे आगेकी ओर ढकेलती रहती है। अपने इस कार्यमें सफल हो जानेके बाद डा० करोल इसे और भी परिमार्जित रूप देना चाहते हैं। वे इसे सुधार कर इसका व्यवहार हवाई जहाज और सबमेरिन दोनोंमें करना चाह रहे हैं। जर्मनीके उड़न टारपीडो बननेके पहले ही इसे ये बना लेना चाह रहे हैं ताकि इसका व्यवहार सर्व प्रथम जर्मनी पर ही किया जा सके। डा० कैरोल युद्ध आरम्भ होनेके पहलेसे ही इस कार्यमें लगे हुए थे और अब जब कि युद्धके बादल यूरोपके आकाशसे मिटनेको है इनका परिश्रम सफल हुआ है।

हिटलरका शांति प्रस्ताव—

अभी कुछ दिनों पहले अखबारोंमें यह समाचार जोर पकड़ रहा था कि हिटलर तटस्थ देशों द्वारा मित्रराष्ट्रोंके सामने सन्धि-शर्त रखनेको तैयार हैं बशर्ते कि मित्रराष्ट्र उसे स्वीकार कर लें। किन्तु मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे बिना शर्त आत्मसमर्पणकी जो आवाज उठी वह फिर बैठ न सकी और नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनोंके लिये जर्मनीकी ओरसे किस तरहका शान्ति प्रस्ताव आनेवाला था वह मालूम न हो सका। अब इधर जो समाचार आ रहे हैं उनसे इस विषय पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ा है। एक समाचारके अनुसार हिटलर पोपको यह अधिकार देनेको तैयार थे कि

वे १९४४ के क्रिसमसके पहले मित्रराष्ट्रोंसे जर्मनीकी ओरसे सन्धि कर सकते हैं। सन्धिके लिये जो चार शर्तें हिटलरने पोपको दी थीं वे ये हैं—

१—जर्मनीकी स्थलसेना, जहाजरानी और हवाईजहाज निरस्त्रकर दिये जांय और राज्यकी सुव्यवस्थाको कुशलपूर्वक सञ्चालित करनेके लिये केवल मात्र पुलिसके साथ १ लाख सिपाही हों।

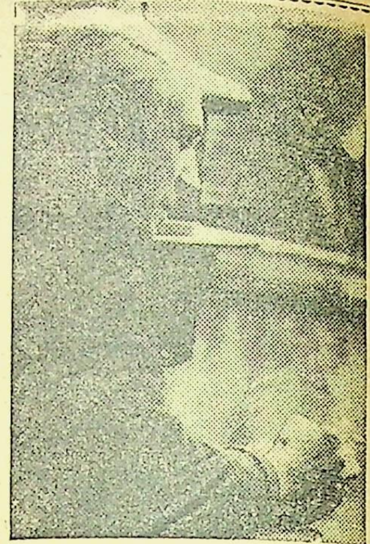
२—जर्मनी पर पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण हो ताकि वह गुप्त रूपसे सशस्त्र न हो सके।

३—आस्ट्रिया, जेकोस्लावाकिया और पोलैंड स्वतन्त्र कर दिये जाय तथा जर्मनी द्वारा अधिकृत अन्य सीमाओंसे जर्मन सिपाही तुरत हटा दिये जांय।

४—नेशनल सोशलिस्ट पार्टीका अन्त कर दिया जाय और उसके बजाय जर्मनीमें प्रजातन्त्रकी स्थापना कर दी जाय।

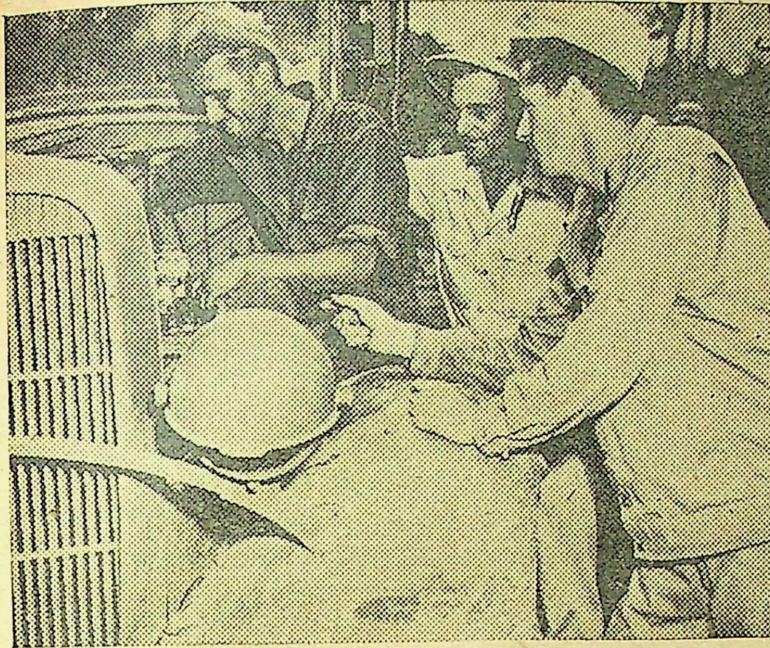
जहां सन्धि शर्तें तय होती हैं?

युद्ध मनुष्यके जीवनका एक अङ्ग बन गया है। निन्दा और शिकायतोंसे परे युद्धकी स्थिति सदैव जीवित रही है। युद्ध समाप्त होनेके बाद सदैव इस बातका प्रयत्न किया गया है कि भविष्यमें युद्ध न हो। किन्तु युद्ध-समाप्तिकी संधि शर्तोंमें ही भावी युद्धकी आशा अंकुरित होती रहती है और समय आते ही उसका विष वृक्ष फूट पड़ता है। युद्ध होता है जिसमें एक हारता है और दूसरा पक्ष विजेता की हैसियतसे अपनी ओरसे सन्धिकी शर्तें पेश करता है। हारा हुआ दल लाचारीकी अवस्थामें उन सभी शर्तोंको स्वीकार करता है जो उसके विरोधी पक्षकी ओरसे तैयार की जाती हैं। संक्षेपमें यही थोड़ी-सी बात है जो हर युद्धके अन्तमें आती है और फिर दूसरे युद्धकी तैयारी होने लगती है। यह हुई युद्ध और सन्धि की बात, पर हम जिस बातकी ओर पाठकोंका ध्यान ले जाना चाहते हैं वह है यूरोपका वह स्थान जहां यूरोपीय युद्धके प्रायः अधिकांश सन्धि पत्रों पर हस्ताक्षर हुए हैं। भौगोलिक रूपमें या प्राकृतिक रूपमें अधिकांश यूरोपीय युद्धोंकी समाप्तिके बाद फ्रांस ही वह स्थान रहा है जहां प्रायः लड़ने वाले सभी देशोंने एकत्रित होकर सन्धि पत्रपर हस्ताक्षर किया है। वर्तमान कालमें पेरिस ही वह स्थान रहा है जहां अधिकतर युद्धोंकी समाप्ति हुई है। १२९ साल पहले वाटरलू की विजयने अकस्मात दुनियाको हिला दिया था। संसार विजय की इच्छा रखने वाला और उसके अनुरूप कार्य करनेवाला संसार प्रसिद्ध वीर नेपोलियनने यहीं रूस, प्रशा और ब्रिटेनके सम्मिलित मारके सामने घुटने टेक दिये थे। उस समय पिटे हुए फ्रांस का भाग्य निर्णय पेरिस में रूस, प्रशा और ब्रिटेनके द्वारा हुआ था। हारे हुए फ्रांसके भाग्य का निर्णय विजेता राष्ट्रों द्वारा पेरिस में ही हुआ था। दुर्भाग्यका यह दिन पेरिस को देखना था और उसने वीरकी तरह उस दिनका सामना किया। दुर्भाग्यके सामने किसके सिर नत नहीं हुए? बुरे दिन किसे नहीं देखना पड़ता। यह तो भाग्यका खेल है जिसका बेबूझ भागीदार मनुष्य ही रहा है। इस सन्धि शर्तमें फ्रांसकी हिम्मत तोड़ देनेका प्रयत्न उन राष्ट्रोंकी ओरसे किया गया था जो विजेताके रूपमें उसके सम्मुख आकर अपनी विजय मुस्कानसे उसके आंसू पोंछने आये थे। सन्धि शर्तोंका इतिहास इस बातका मौन साक्षी है। यह सन्धि शर्त फ्रांसके लिये अतीव भयंकर और बर्बरतापूर्ण थी।



पेबलो पिकासो-आधुनिक कलाके संसार प्रसिद्ध प्रतिनिधि और व्याख्याता अपने १७ वीं शताब्दीवाले मकानकी खिड़कीसे, मित्रराष्ट्रीय सेना द्वारा पेरिसका उद्धार देख रहे हैं। आप स्पेनियार्ड हैं। १८८१ में मलागामें जन्म हुआ था। संसार भरमें सर्वत्र कला संग्रहालयोंमें आपकी कृतियां आदरके स्थान पर रखी मिलेंगी। जर्मन अधिकारके समय आपको अपनी कृतियोंका प्रदर्शन करनेसे रोक दिया गया था।

इस सन्धि शर्तके अनुसार फ्रांसको क्षतिपूर्तिके रूपमें २८०००००० पौंड देना पड़ा था। सन्धिकी शर्तोंके अन्य नियमोंके अनुसार वेलिंगटनके नेतृत्वमें मित्र सेनाओंको यह आदेश दिया गया था कि वे सम्पूर्ण फ्रांसको इस छोरसे उस छोर तक नाप दें और फ्रांसमें फैली हुई गुलामी प्रथाका अन्त कर दें। दूसरी बार ४९ सालके बाद नेपोलियन



लेइटी द्वीपमें भागते समय जापानियों द्वारा पीछे छोड़ दिया गया एक ट्रक। इस तरहके ९० ट्रक और ३० कार भागनेसे पहले जापानी नष्ट न कर पाये और अब वे मित्रोंके काम आ रही हैं।

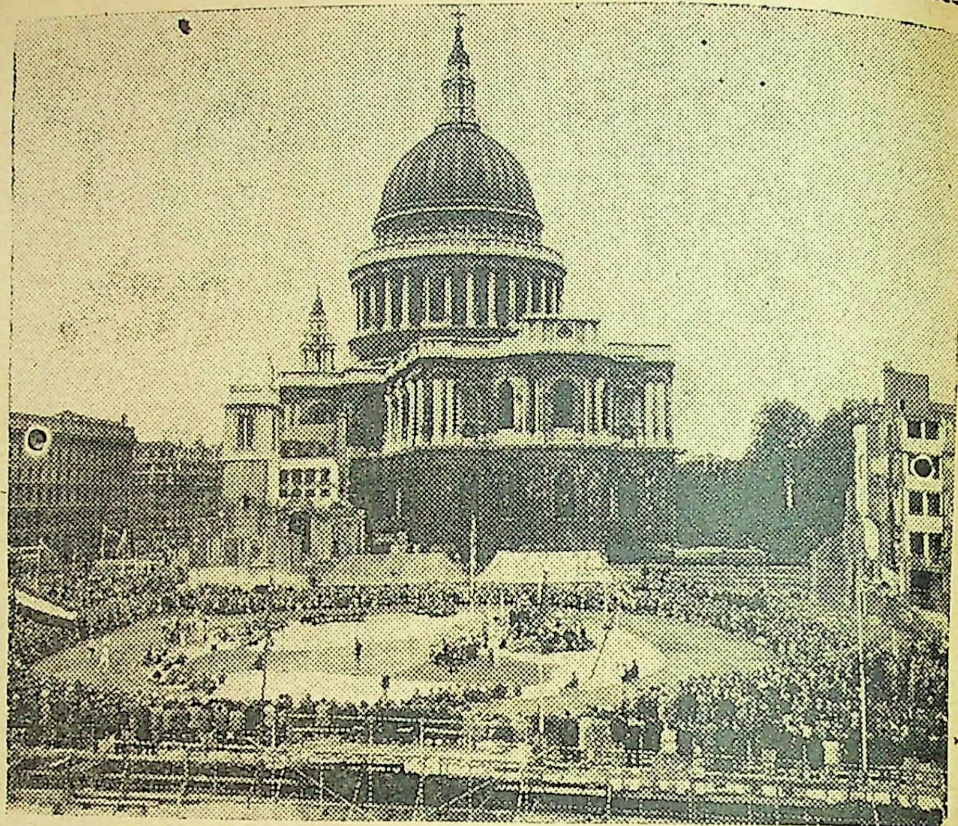
तृतीयने फ्रांको-प्रशियन युद्धके सिलसिलेमें लड़ता हुआ अपने सिपाहियोंके रक्षार्थ सेडानमें हथियार डाल दिया। इस बार फिर पेरिसमें ही सन्धि शर्तोंपर विचार किया गया और यहीं इसपर दोनों पक्षके हस्ताक्षर हुए। इस बार विजय जर्मनोंको मिली और जर्मनीने ब्रिटेनसे भी अधिक बर्बरतापूर्ण सन्धि पत्रका मसविदा फ्रांसके लिये तैयार किया। जर्मनीने ऐसे अवसरों पर सदैव अपनी सीमा बढ़ाने की बात सोची है और इसके अनुसार उसने अलसास और लारेनका उपजाऊ भाग फ्रांससे ले लिया। अलसास और लारेनको जर्मन नक्शेमें मिलाते समय जर्मनोंने वहांके नागरिकोंसे यह पूछनेकी परवाह भी न की कि तुम लोग अपने लिये कैसी शासन-व्यवस्था चाहते हो। जर्मनीने विजेताके रूपमें फ्रांससे इतना ही लेकर सन्तोष नहीं किया वरन उसने क्षतिपूर्तिके रूपमें फ्रांससे २० करोड़ पौंड लिया और साथ ही साथ इस बातका आश्वासन भी लिया कि फ्रांसकी सीमाके भीतर रहनेवाले जर्मन सिपाहियोंके पोषणका भार तब तक फ्रांस पर रहेगा जब तक क्षतिपूर्तिके २० करोड़ पौण्ड वसूल न हो जांय। इस बार जर्मनीने फ्रांसका बुरी तरह दोहन किया। तीन सालके भीतर ही भीतर क्षतिपूर्तिका पाई पाई फ्रांससे जबर्दस्ती वसूल किया गया और फ्रांसके निवासियोंके सुख दुखकी जर्मनोंने कोई भी चिन्ता न की। इसने सभी सन्धि शर्तोंको मात कर दिया। फ्रांसके लिये यह उस समयकी सभी शर्तोंसे बदतर और अपमानजनक थी। इस सन्धि शर्तके अनुसार सभी सरकारी जहाजोंका चलना बन्द हो गया था, हर व्यापारी जहाजपर तटस्थ देशोंका झण्डा उड़ा दिया गया था और ऐसे सामान फ्रांस नहीं आने दिये जाते थे जिनसे युद्धकी तैयारी हो सके। इस सन्धि द्वारा फ्रांसके नैतिक बलको ही नष्ट करनेकी ठान ली गयी थी किन्तु फिर भी फ्रांस मरा नहीं, जिन्दा रहा। अमेरिकाके स्वतन्त्रता युद्धकी सन्धि शर्तें भी पेरिसमें ही तय हुई थीं। किन्तु इस बार ब्रिटेनकी समझमें यह बात आयी कि युद्धमें लड़ने वालोंके साथ की जानेवाली हमारी चालाकीने हमारे पड़ोसी और सहयोगी राष्ट्रोंको हमारा विरोधी बना दिया है। अमेरिकनों की विजयने अंग्रेजोंके हौसले पस्त कर दिये। इस बार अमेरिकनोंकी ओरसे जो शर्तें आयीं वे अत्यधिक भयङ्कर थीं। अमेरिकनोंने सन्धिशर्त में तत्क्षण २० लाख पौंडकी मांग की थी और होनेवाली हानिके फलस्वरूप तब तकके लिये १ लाख २० हजार पौंड प्रति वर्षकी मांग पेश की गयी जब तक कि वह पूर्ण न हो जाय। किन्तु इस बार दुश्मनके लिये जो शर्तें सामने आयंगी वह और भी कड़ी होंगी। इस बार शत्रुसे दण्डस्वरूप युद्धमें होनेवाली प्रत्येक वस्तुकी हानिका मूल्य लिया जायगा और क्षतिग्रस्त यूरोपकी मरम्मतके लिये मजदूर लिये जायंगे।

जानवर भी बोलते हैं—

इसमें सन्देह नहीं कि पशु पक्षी भी आपसमें एक दूसरे से बातें किया करते हैं। वनी डालोंके बीचमें बैठकर बोलने वाले पक्षीकी आवाज बेकार नहीं होती। वह तो सम्भाषण होता है जिसे दूसरी डालपर बैठा हुआ पक्षी सुनता है और अपनी भाषामें उसका उत्तर देता है। हम लोगोंमें कुछ

व्यक्ति जो यह सोचते हैं कि पशु और पक्षी निरर्थक बोला करते हैं वास्तवमें यह बात एकदम गलत है।

कुछ दिनों पहलेकी बात है चिड़िया घरमें एक बन्दर आया हुआ था। उसका संरक्षक जो उसी चिड़िया खानेका नौकर था, उसे गाना सिखलाने लगा। बन्दर गानाके तत्वों से एकदम अज्ञात था किन्तु उसने उसकी आवाजको पकड़ लिया। स्वरका चढ़ाव उतार और शब्दोंका उच्चारण भले ही ठीक-ठीक न हुआ किन्तु गानेके तर्ज और तरहका वह ठीक ठीक नकल उतारने लगा। चिड़ियाखानेके व्यवस्थापकोंको इससे लाभ होने लगा। घूमने फिरने और भीड़ लगाने वालोंके लिये वह मनोरञ्जनका साधन बन गया। चिड़िया खानेके बाहर खड़े रहने वाले लोग तक उसकी स्पष्ट आवाज सुनने लग गये थे। बन्दरकी इस क्रियासे इस बातका स्पष्ट पता लग गया कि जानवरोंके शरीरमें भी कंठ स्वरके सभी साधन मौजूद हैं जो मनुष्योंमें एक खास दैवी विशेषता समझी जाती है। यह घटना दक्षिणी अमेरिका की है। बन्दरोंके स्वाभाविक चिल्लानेकी प्रवृत्तिको एक बंधे स्वरमें बदल देनेका यह अद्भुत प्रयोग वहां आश्चर्यजनक रूपमें सफल हुआ है।



लन्दनस्थ सेण्टपालकी छायामें क्रीड़ा और आमोद-प्रमोद। खेल-कूदका यह मैदान सेण्ट-पालके सामने बम द्वारा आक्रान्त अञ्चलमें गत वर्ष अगस्त मासमें बना है।

अफ्रीकामें शिकारी कुत्तोंकी तरह वहांके जङ्गलोंमें एक प्रकारका पशु होता है। इसकी धारणा शक्ति इतनी प्रबल होती है कि यह कोयलकी नकल उतार लेता है और फिर जीवन पर्यन्त उसी तरह बोलता है। सुननेवाले समझते हैं कि कोयल बोल रही है पर सुननेवालेको यह देखकर महान आश्चर्य होता है कि आवाज कोयलकी नहीं वरन एक विशेष प्रकारके जानवरकी है।

हाथी भी प्रसन्न या नाराज होनेपर बोलता है। इसकी सभी प्रकारकी आवाजको हम चिग्घाड़ कहते हैं। सूंड़में पानी भर कर यह जब आनन्दमग्न होता है तो एक विशेष प्रकारकी मधुर आवाज होती है किन्तु जब यह गुस्सेमें आ जाता है तब इसकी आवाज इसके गलेसे आने लगती है और वह सुननेमें बहुत ही भयानक होती है। चूहे भी गाते हैं और आपसमें बात चीत किया करते हैं किन्तु इनकी आवाज इतनी पतली होती है कि प्रथम तो हम उसे सुन नहीं पाते और उस आवाजमें होनेवाले परिवर्तनोंको समझ नहीं पाते। इस विषयकी छान बीन करनेवाले व्यक्तियोंका मत है कि ये आपसमें मजेसे बोलचाल लिया करते हैं। गुस्सेमें आकर जब ये एक दूसरेसे आपसमें झगड़ पड़ते है और खूना-खूनीकी नौबत आ जाती है, उस समय इनकी आवाज इतनी प्रखर हो जाती है कि दूर पर बैठकर भी हम सुन सकते हैं।

मुर्गेकी आवाज भी कम प्रसिद्ध नहीं है। रामायणमें भी मुर्गेकी चर्चा इसलिये की गयी है कि भगवान राम भी प्रातः मुर्गेकी आवाज सुनकर ही जागते थे। जहां घड़ी नहीं है वहां मुर्गेकी आवाज सुनकर ही प्रातःकाल लोग जागा करते हैं।

इसकी बाकतन्त्री इतनी मजबूत और जोरदार होती है कि इसकी आवाजकी चोट इसके पास रहने पर सीधे कानके पर्देसे टकरा जाती है। किन्तु यदि आप इससे दूर भी रहें तो आप इसकी आवाज न सुन सकें यह असम्भव सा ही है। आस्ट्रेलिया और तसमानियाके मुर्गोंकी आवाज विशेष कर्णकटु नहीं होती वरन उनकी आवाजमें एक मीठी झङ्कार होती है जो कानोंको बड़ी प्रिय लगती है।

मनुष्यकी आवाजको उच्चारण सहित ग्रहण कर लेनेमें तोतेको कमाल हासिल है। कोई भी जानवर या पक्षी मनुष्यकी आवाज पकड़नेमें तोतेसे आगे नहीं जा सका है और यही कारण है कि आप हर घरमें तोतेको अवश्य पायेंगे। इङ्गलैंडमें एक ऐसा अद्वितीय तोता था जो मानव सङ्गीतके स्वर और शब्दोंको एकदम सही रूपमें कण्ठ कर लेता था और गाता था वह घर एक तरहसे चिड़ियाखाना बन गया। उसकी आवाज सुनने और उसे देखनेके लिये वहां आदमियोंकी भीड़ लगी रहती थी। तोतेकी इस गलाबाजी पर मुग्ध होकर उसके सैकड़ों खरीददार पैदा हो गये जो उसके स्वामीको तोतेके मूल्यस्वरूपमें मोटीसे मोटी रकम देनेको तैयार थे।

इङ्गलैंडके मैंचेष्टरके चिड़ियाखानेमें एक द्रोणकाक था। बात-चीत करनेमें इसे कमाल हासिल था। इससे लोग बहुत तरहके प्रश्न किया करते थे और वह उनका सही सही उत्तर देता था। यह विनोद प्रिय भी था। एक बार दूर देशसे आनेवाले एक विदेशीने इससे प्रश्न किया—"तुम्हारे मालिक कहां गये हैं। मैं उनसे कुछ बात करना चाहता हूं।" द्रोणकाकने छूटते उत्तर दिया—"तुम्हारे आगमनका समाचार सुनकर मेरे मालिक तुम्हारे बैठनेके लिये बन्दरगृहसे बालू लाने गये हैं। तुम उनसे वहां मिल सकते हो।" प्रश्न कर्त्ता अपना सा मुंह बनाकर रह गया। इसमें सन्देह नहीं कि ये बातें भी उसके मालिकने ही उसे सिखायी थीं पर उसे वह हर समय नहीं बोला करता था। जब वह अधिक प्रसन्न रहता था तभी वह विनोदी उत्तर दिया करता था। दक्षिणी इङ्गलैंडमें ठीक इसी प्रकारका एक पक्षी और पाया जाता है जिसकी आवाज सङ्गीतकी तरह मधुर होती है। किन्तु इसमें एक विशेष दुर्गुण यह पाया जाता है कि यह फसलके दिनोंमें जब कि खेती काटने लायक हो जाती है तब यह फसलके पौदेके ऊपरी भागको काट डालता है और सारी-की सारी फसल नष्ट हो जाती है।

पशु-पक्षियोंकी तरह मछलियोंमें बाकतन्त्री होती है और ये आपसमें बोला करती हैं। बड़ी मछलियां जब पानीके बाहर निकाल लायी जाती हैं तब ये भयङ्कर रूपसे चीखती और चिल्लाती हैं। इन आवाजोंमें कुत्तोंके भूंकनेजितनी शक्ति होती है। अमेरिकामें कुछ ऐसी जातिकी भी मछलियां पायी जाती हैं जिनमेंसे कुछकी आवाज घण्टेकी तरह और कुछकी आवाज मुर्गेकी तरह होती है।

मेंढककी आवाज जोरदार होती है। इसकी आवाज रात की निस्तब्धतामें दूर दूर तक फैल जाती है। अमेरिकामें मेंढकोंकी एक ऐसी जाति है कि जिसकी आवाज बच्चोंकी सी होती है। झिल्लियोंकी भी आवाज मधुर होती है किन्तु यदि ये पांच-सातकी संख्यामें इकट्ठी होकर मधुर ध्वनि करना शुरु कर दें तो वहां बात करना मुश्किल हो जाय। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि झिल्लियोंकी आवाज सीधे गलेसे नहीं आती।

स्त्री और पुरुषोंमें तुलनात्मक प्रभेद

शीर्षकसे ही आपको इस बातका पता चल गया होगा कि विषय मजेदार और पुरलुत्फ होगा। बात भी बहुत कुछ ऐसी ही है। हमारे गुलाम देशमें भले ही आप ऐसे लोगोंको न पायें जो उन विषयोंके पण्डित हों जिन्हें हम आप एकदम साधारण समझते हों किन्तु यूरोपमें ऐसी बात नहीं है। वहां के विद्वान "एक ही साधे सब सधे"को मानते हैं। उन्हें वहां इसके लिये सम्मान प्रदान किया जाता है और उनके खोजपूर्ण निबन्ध और लेखोंको संसारके सामने रख दिया जाता है। दुनिया उन्हें पढ़ती है और तभी यह कहती है कि यूरोपका दिमाग सारे संसारके दिमागसे आगे है। अमेरिकाके अबराम सेनफिल्ड नामक वैज्ञानिकने "स्त्री और पुरुषोंमें तुलनात्मक प्रभेद" नामक एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने इस बातकी तुलनात्मक विवेचना की है कि पुरुषोंके बजाय स्त्रियोंमें अधिक साहस, अधिक बल और अधिक गुण है। अपने विषयको पुष्ट करनेके लिये लेखकने ऐसे ऐसे उदाहरण दिये हैं जिन पर कोई भी अविश्वास नहीं कर सकता। आपकी इस अनुसन्धानपूर्ण खोजने इस विषयकी बहुत सी प्रचलित धारणाओंको गलत बतलाया है। आपके मतसे पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें साहसका अधिक आवेग होता है। लन्दनमें होनेवाली बमवर्षाके समयका उदाहरण देते हुए सेनफिल्डने अपने इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है। लन्दनमें जब जोरोंसे बमवर्षा होने लगी थी उस समय स्त्रियोंकी अपेक्षा ७० प्रतिशत अधिक पुरुष बमके धड़ाकेसे बदहोश या विक्षिप्त

जैसे हो गये थे। अन्य उदाहरणों द्वारा भी आपने अपनी बातको पुष्ट किया है। मादा पशु जितनी शीघ्रतासे बच्चोंको जन्म देती है स्त्रियोंको उससे अधिक बिलम्ब होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसव पीड़ा सहनेमें स्त्रियां मादापशुसे अधिक मजबूत हैं। लड़की, लड़कोंसे दिनके हिसाबसे ९ से लेकर १० दिन पहले जन्म लेती है। लड़कों-की अपेक्षा वह पहले बोलने लगती है, उसकी हड्डियां लड़कों से पहले पुष्ट होती है, लड़कियोंकी नाड़ी लड़कोंसे अधिक वेग वाली होती है और ये लड़कोंकी अपेक्षा पहले ही सयानी हो जाती हैं। लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियां अधिक सोती हैं कम खाना खाती हैं। उनकी स्वास्थ्य-स्थिति ऐसी होती है कि उनके शरीरका तापमान गर्मीमें ठंढा और जाड़ेमें पुरुषों-की अपेक्षा अधिक गरम रहता है। काम-वासनामें भी स्त्रियां पुरुषोंसे अधिक मजबूत हैं जब कि उनकी शारीरिक अवस्था, पुरुषोंसे बहुत कमजोर और आधी है। आतङ्क-का प्रभाव भी स्त्रियोंपर पुरुषोंकी अपेक्षा कम होता है और बीमार पड़नेमें भी वे पुरुषोंसे पीछे रहती हैं। स्त्रियोंके भीतर जो स्वाभाविक प्रौढ़ता है वह पुरुषोंको प्राप्त नहीं है। यही कारण है कि वे इस मामलेमें स्त्रियों से बहुत पीछे हैं। पैत्रिक व्याधिके एकमात्र उत्तराधिकारी लड़के ही होते हैं। आमतौर पर २९ प्रतिशत पैदा हुए लड़के काल कवलित हो जाते हैं और पुरुष भी स्त्रियोंकी अपेक्षा कम दिन ही जीवित रहते हैं।

आमतौर पर यही देखा गया है कि दुनियाके प्रत्येक क्षेत्रमें, प्रत्येक कार्यमें पुरुष ही स्त्रियोंसे आगे रहे हैं। कार्यमें आज तक किसी भी स्त्रीने पुरुषकी बराबरी करनेका दावा नहीं किया है। तैरना, घुड़दौड़, मुक्केबाजी, खेल-कूद आदि किसी भी बलशाली कार्यमें स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा आगे नहीं गयी हैं फिर भी: जब वैज्ञानिक विश्लेषणका अवसर आया है स्त्रियोंके गठनमें पुरुषोंसे अधिक साहस, सहनशी-लता, धैर्य और जीवट अधिक पाया गया है। प्रतिभाकी तुलनामें स्त्रियां पुरुषोंके सामने नहीं ठहरतीं किन्तु, मायाकी मधुरता, हाव-भाव, रङ्गरूप और आन्तरिक सामा-जिक सुव्यवस्थामें स्त्रियां फिर भी पुरुषोंसे बहुत आगे हैं। सेनफिल्डका कथन है कि इस बातके पुरुष जबाबदेह हैं कि स्त्रियोंने कोई बहुत बड़ी खोज नहीं की, किसी नवीन सञ्जीवका निर्माण नहीं किया और न पुरुषोंके मुका-बलेमें महान कलाकार और लेखक ही बन सकीं। सेनफिल्डने अन्तमें इस बातको मान लिया है कि पुरुषोंके समक्ष तुलना करनेमें स्त्रियां बच्चा पैदा करने और अपनेको आकर्षणयुक्त बनानेमें बहुत आगे हैं। स्त्रियोंकी इस विशेषताको उसने प्रकृति प्रदत्त गुण माना है जिसे कोई भी पुरुष लाख प्रयत्न करके पा नहीं सकता। ईश्वरीय शक्ति ही इसका एकमात्र प्रधान कारण है।

———

अर्थ-व्यर्थ

(शेषांश १८ वें पृष्ठका)

का स्पर्श और इस भाषणने कुछ और ही प्रभाव डाला। मैं उस पर जो साहसहीनताका दोष लगाया करता था, उसकी तहमें मुझे आत्मश्लाघा और झूठे गौरवकी झलक नजर आयी और मुझे तुम्हारे पिताके वह शब्द याद आ गये जो उन्होंने उस समय कहे थे जब मैं उन्हें तुम्हारा पत्र दिखाने गया था। गीता प्रचार और उपनिषदोंकी कथाके सम्बन्धमें तुम्हारी सरगर्मियां पढ़कर उनके होठोंपर एक दुखप्रद मुस्क-राहट दौड़ गयी थी और उनके मुखसे निकल पड़ा था:— "कुछ नहीं, जीवन व्यर्थ खो रहा है।"

उन्होंने अपना समस्त जीवन कठिनाइयोंसे लड़ते झगड़ते और सङ्घर्षमें बिताया है। उनकी इच्छा थी, जैसी कि हरेक पिताकी होती है, कि तुम भी उन्हींकी तरह सङ्घर्षमें जीवन व्यतीत करते। उनके अधूरे कामको सम्पूर्ण करते। उन्हें यह विमुखता पसन्द नहीं और न मुझे पसन्द है। मैं समझता हूं कि तुमने अत्यन्त भीरुताका परिचय दिया है। जिसे तुम शांति कहते हो मेरे निकट भावनाकी मृत्यु है। क्या शराबी और अफीमची अपनी ज्ञानेन्द्रियोंको मूर्छित बनाकर कुछेक देरके लिये यह शांति प्राप्त नहीं कर लेते? फर्क यह है कि तुमने एक चिरकाल तक रहनेवाले नशासे अपने एहसासको मुर्दा बना लिया है। मेरी आत्माका एक एक अणु तुम्हारे पिताके शब्दोंका समर्थन करता है। लेकिन जब इन्द्रमोहन-के शब्द सुनकर अपने जीवन पर ध्यान डालता हूं और दुनियाको उसी रफ्तार पर चलते हुए देखता हूं तो सोचने पर मजबूर हो जाता हूं "यह सब बदलनेके लिये एक महान प्रयत्नकी जरूरत है, वर्ना हम भी यह जीवन व्यर्थ ही खो रहे हैं।"

जब यह विचार हो तो शांति कहां?

———

कवि और काव्य

(१० वें पृष्ठका शेषांश)

'कुश' लानेमें जो निपुण होता था, उसे 'कुशल' कहा जाता था। वही 'कुश-लवन' का पाठ आज विस्तृत अर्थमें प्रयुक्त होता है।

जो कलाकार शब्द-मण्डलमें खुल कर रमण करना जानता है, जिस कलाकारके भीतरी तलोंमें इसका स्वरूप अपनी अनेक अर्थभूमियोंके साथ और महीनसे महीन संकेत मार्गोंसे बंधा रहता है, उसीकी वाणीमें समय पड़नेपर ऐसी निर्झरिणी फूट निकलती है, जिसे सब लोग अपनाते हैं, सब लोगोंका उससे मोह होता है और उसका प्रभाव भी सार्वभौमिक और सर्व देशीय पड़ता है। शब्दोंमें जो इतिहास छिपा है उसका केवल ज्ञाता ही नहीं, वरन उसे इतिहासमें रमण करने वाला प्राणी उनको अपने भीतर पचा लेता है। उसे प्रयोग-चातुर्यमें प्रयास नहीं करना पड़ता, वरन् वह उसकी नैसर्गिक निस्सृति होती है। इस दृष्टिसे ऊंचे कलाकारके लिये साहित्यिक ज्ञान,धार्मिक ज्ञान, और हर प्रकारका पोथी ज्ञान तो होना ही चाहिये,साथ ही साथ ज्ञानके समस्त वातावरणके साथ गहरी तन्मयता और असाधारण रमण शीलता भी चाहिये। सच्चा कलाकार शब्दोंकी समूची योग्यताको एक साथ देखता है। उनकी सारी आकांक्षाओंको जानता है। जनसाधारण और विशिष्टोंपर पड़ने वाली चोटके वेगको अच्छी तरहसे तोल लेता है, तभी वह सबको एक तरह रुचता है।

कलाकारकी प्रभाव प्रेषणीयताके लिये और सार्वभौमिकता के लिये शब्दोंके एक दूसरे गुणकी भी बहुत आवश्यकता है। वह है शब्दोंका 'शब्दत्व'। प्रत्येक शब्दमें एक नाद चमत्कार होता है, एक लय होती है, या यों संक्षेपमें कहिये कि एक छोटा सा सङ्गीत संसार होता है। शब्दका यह मीठा भार उसके अर्थ आघातसे कहीं अधिक तिलमिलानेवाली चोट करता है। शब्द, नाद ब्रह्मका रूप माना गया है। वास्तवमें उचित ढङ्गसे प्रयोग किया गया शब्द न जाने कितनी सङ्गीत लहरियोंको उत्पन्न करके भाव रूप पर आघात करता है, और तादृश भाव लहरियोंको मन पर उत्पन्न करता है। इस मीठी चोटको दिखाना सरल नहीं। शब्दके नादके कैसे रूपसे किस प्रकारकी सङ्गीतमय चोट मन पर पड़ती है, व्यक्तित्व कैसे मसल उठता है, अर्थको बिना अवगत किये मन कैसे हिलने डुलने लगता है, यह सब परिभाषामें बांधा नहीं जा सकता। पर हां यह निश्चय है कि कुशल कलाकार हर एक शब्दकी इस क्षमताको भी भलीभांति जानता है और अपने भीतरके सङ्गीत-शस्त्रालयमेंसे एक-एक गिन-गिन कर ऐसे शब्द फेंकता है जो बिना गहरी चोट किये नहीं रह सकते। हम साधारण प्रकारसे देखते हैं कि जहां रामायण होती है वहां ऐसे अनेक व्यक्ति कथा सुनते हैं, जिन्हें तुलसीदासकी संकेत की हुई अर्थभूमियों तक पहुंचनेकी क्षमता नहीं रहती, परन्तु शब्दोंसे सजाये हुए दोहों और चौपाइयोंकी सस्वरतामें ही उनके मन लटक कर रह जाते हैं। वे सिर हिलाते हैं। और उस नाद निर्झरिणी में स्नान करके ऐसा अनुभव करते हैं मानों सब कुछ समझ रहे हों। शब्दोंके लय और सङ्गीतमें अर्थ संकेतित करनेकी अपूर्व क्षमता रहती है। बिना समझे हुए और बिना पढ़े हुए अर्थ कण्ठके नीचे उतर जाते हैं। महान कृतिकार की यह दूसरी विशेषता है।

विश्वके महान कलाकारोंमें विश्वके देखने और दिखाने की अपूर्व योग्यता रहती है। वह सुरसाकी भांति फैले हुए विश्वके वातावरणमें प्रवेश करके भी हनुमानकी भांति अभद्रताओंकी डाढोंमें नहीं फंसता। उनकी कृतियोंमें केवल चलते फिरते प्राणियोंके चित्र नहीं रहते।उनकी अभिव्यञ्जना न तो लड़खड़ाती है और न उनकी बाणीमें हकलाहट होती है। सौंदर्य और परमत्वका वे शृङ्खलाबद्ध इतिहास देते हैं। पतिंगेको अवकाश मिलता है कि वह दीवेकी लौमें कूद कर अपने प्राण होम सके, बीचमें छिपकली उसे ग्रास नहीं कर जाती। धबीले नक्षत्रोंका बिखेरना उनका काम नहीं, प्रत्युत विश्वमें छिटकी रहने वाली ज्योत्स्नाका प्रसार करना ही उनकी कृतियोंका बरदान है। जिस प्राचीन कृतिकारकी कला झुकना नहीं जानती और वह सीधे खड़ी रहती है उस पर चढ़कर आगे जाने वालेको बड़ा कष्ट होता है। ऐसी कला और ऐसा कलाकार समयके हाथका खिलौना है जिसे वह थोड़ी देर बाद नष्ट कर देता है साहित्यकी और कलाकी गति सदैव प्रगतिशील रहती है। साहित्य 'स्टेशन हो सकता है परन्तु 'टरमिनस' (Terminus) नहीं।

जिस वातावरण और जिसअमूर्त संसारकी ऊपर कलाकारके लिये तन्मय होनेकी चर्चा की गयी है उसी वातावरणसे वह बड़े पुष्ट, निर्भीक और मौलिक चित्र चुनता है। उसकी मौलिकता नामोंमें नहीं रहती है, उसकी मौलिकता कथानकोंमें ढूंढ़ना व्यर्थ है, उसकी मौलिकता जीवन-विस्तार के साधारण पथोंमें खोजना भयङ्कर भूल है, उसकी मौलि-

कता उसके सुझाव और उसके दिखावमें है। गोस्वामीजीने कितने ग्रन्थ न पढ़े होंगे, कितनी राम कथायें न सुनी होंगी, फिर भी उनके राम, उनके भरत, उनकी कैकेयी और उनकी कौशिल्या उनकी ही हैं, वे सबसे भिन्न हैं। नाना पुराण निगमागमसे उन्होंने केवल दूध दुहा, परन्तु नवनीत अपने हाथों बनाया। महर्षि बाल्मीकिके राम कौशल्याके पास 'विश्वसन्नपि कुब्जों' के रूपमें पहुंचते हैं और कौशल्याका उत्तर भी है। 'अनुव्रजिष्यामि बनं त्वयैव गौः सुदुर्बला वत्समिवाभिकांक्षया।' कौशल्या विलाप करती है मुक्तकण्ठसे, परन्तु तुलसीके राम कौशल्याको बन जानेका कैसा सरल उत्तर देते हैं "पिता दीन्ह मोहि कानन राजू"— और कौशल्या क्या कहती हैं :---

जौ केवल पितु आयसु ताता,तौ जानिजाहु जनि बड़ माता।
जो पितु मातु कहेउ बन जाना,तौ कानन शत अवध समाना।

इस प्रकारके उदाहरण अधिक देनेसे लेखका कलेवर बढ़ जायगा। अब भाषा पर ध्यान दीजिये। ऊंचे कलाकारों की भाषा सरल होती है यह तो किसी सीमा तक ठीक है। वह किसी प्रयाससे सरल लिखने नहीं बैठता। वह हिन्दुस्तानी गढ़ने नहीं बैठता। शब्दों और वाक्योंका ताना-बाना सजा हुआ उसके मुखसे निकलता है। वैसे तो 'बेला फूले आधी रात, गजरा मैं काके गरे डारू'।' गाने वाला अथवा गाने वाली भी वाच्यार्थकी सीमाओंसे कूद कर व्यंजनाका सहारा लेती है और सुनने वालोंसे भी यही आशा करती है। स्वयं गोस्वामीजीको ही देखिये :—

आगे चले बहुरि रघुराई, रिष्यमूक पर्वत नियराई।
तहं रह सचिव सहित सुग्रीवा,आवत देखि अतुल बल सींवा।

ऐसी नितान्त सरल और गद्यात्मक पंक्तियां लिखी हैं। पर कुशलता यह है कि वे ऊपर और नीचेके ऐसे सरस प्रसंगोंके बीच जड़ी हैं कि पाठक और श्रोता उन्हें लांघ जाता है और उनकी इति वृत्तात्मकता उभरती नहीं। उधर विनय-पत्रिकाके लम्बे-लम्बे स्तोत्र केवल संस्कृतके ही वाक्यमात्र हैं (कहीं-कहीं तो क्रिया भी संस्कृत है।) रामचरित मानस उनका सबसे सरल ग्रन्थ कहा जाता है। इसके भी शब्दोंके चयनमें सरलताकी दुहाई कभी नहीं दी जा सकती। उनके कुछ प्रयोग सुनिये। केवल एक ही शब्दके लिये तीन कैसे कठिन प्रयोग आये हैं।

(१) "कहत सुनत समुझत हरियाना।" हरि विष्णुके यान अर्थात् सवारी—हरियान शब्द गरुड़के लिये लाया गया है।

(२) "दोऊ हरि भगत काग उरगादा।" उरग अर्थात् सर्पको अद—खानेवाला। उरगादा शब्द भी गरुणके लिये प्रयोग किया गया है।

(३) "वैनतेय बलि जिमि यह कागा।" वैनतेय भी असाधारण है। यह भी गरुड़के लिये प्रयोग किया गया है।

और सुनिये :—

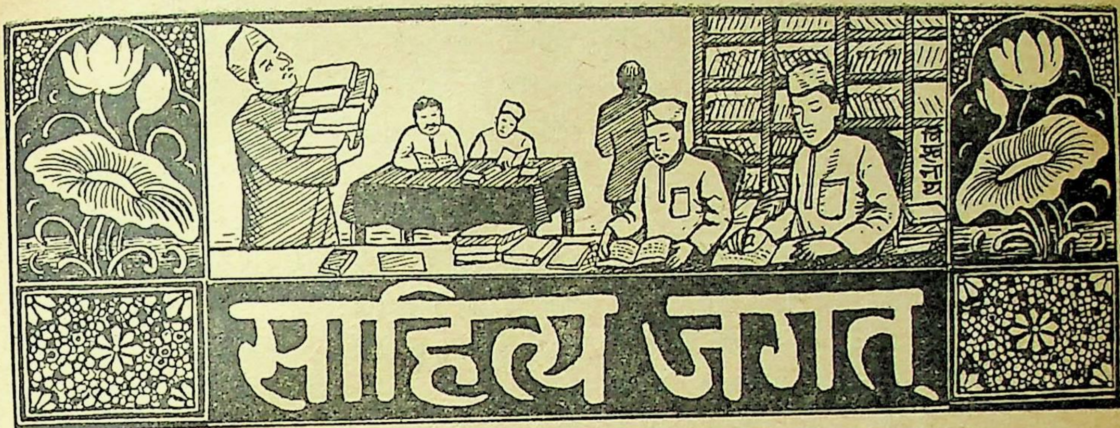
"जातरूप मणि रची अटारी।" सोना न कह कर "जातरूप" शब्द प्रयोग किया गया है।

"परसत तुहिन तामरस जैसे"—साधारण कमल शब्दके कठिन और अनुपयुक्त शब्द 'तामरस' प्रयुक्त किया गया है।

"उमा दारु-योषित की नाई। सबहिं नचावत राम गुसाईं।।' कठपुतलीके लिये दारु (लकड़ी) योषित (स्त्री) शब्द लिखकर हिन्दुस्तानीके हिमायतियोंके लिये भारी फटकार दी है। यही नहीं उन्हें सकील मुअर्दन और मुफ़ईस अलफाजसे भी गुरेज न था। कई स्थानों पर तो उन्होंने अरबी, फारसीका संस्कृतके साथ अनूठा ग्रन्थि-बन्धन किया है और वे कहीं ऐसा भी लिख सकते हैं :—

'उमर दराज महाराज तेरी चाहिये।'

———



कवि अञ्चल

श्री शिवनाथ एम० ए०, साहित्य रत्न

अञ्चल यौवनके कवि हैं। ऐसे यौवनके जो व्यापक है, पूर्ण है। वह इस प्रकार कि उनका यौवन अपने तक ही परिमित नहीं, वह समष्टिमें भी प्रविष्ट हो उसके कल्याणका आकांक्षी है। इसी कारण उनके काव्यमें यौवनगत प्रेम-पिपासा, रूप-लालसा और जलन पूर्ण विरह-वेदनाके साथ ही सामाजिक अव्यवस्थाके प्रति विद्रोह वा क्रान्तिकी भावना भी है। इन्हीं कारणोंसे अञ्चल छायावादी ही नहीं प्रगतिवादी भी हैं। यौवनके कवि होनेके कारण ही काव्य कालसे लेकर आज तक अञ्चलकी रचनाओंमें प्रभूत आवेग भी रहा है वस्तु और कला दोनों पक्षोंकी दृष्टिसे। यहां हमारी दृष्टि उनकी उन थोड़ी-सी रचनाओंपर नहीं है जो प्रमुख छायावादी कवियोंकी नकलमात्र हैं, अतः शिथिल हैं।

अंचल का रचना-काल छायावादकी स्थापनाके पश्चात्से आरम्भ होता है। साहित्य-क्षेत्रमें कविके रूपमें उनके प्रतिष्ठित हो जानेके पश्चात् प्रेम-पिपासा, रूप-लालसा और जलनपूर्ण विरह-वेदनाके वर्णनके कारण कुछ ध्वनियां ऐसी भी सुनायी पड़ीं कि अञ्चल वासनाके कवि हैं। इसी कारण उनकी दृष्टि प्रायः नारी पर रहती है और वे प्रायः उसे बिलासकी सामग्रीके रूपमें ग्रहण करते हैं। इन्हीं ध्वनियोंको सुन कर उन्होंने कहा भी था—"वह खास किस्मकी प्रेरणा जिससे कविके अंतरमें बराबर स्पन्दन और सत्य, सौन्दर्य और तृष्णा, असन्तोष और अभिशापकी आग लगती रहती है केवल उसीकी सम्पत्ति नहीं होती है" (अपराजिता)। जहां तक कवि-कर्मका सम्बन्ध है अंचलका यह कथन सत्य है। कारण कि कवि केवल वैयक्तिक जीवनकी अनुभूतियोंसे ही प्रेरित हो काव्य-रचनाके लिये उन्मुख नहीं होता। इसकी प्रेरणा उसे जगतसे भी मिलती है, और जगत्के सुख-दुःख-आशा-निराशा आदिमें यदि वह तन्मय होकर काव्य-रचनाके लिये उन्मुख हो तो वह उच्च कोटिकी रचना प्रस्तुत कर सकता है। तात्पर्य यह कि उच्च कोटिकी रचनाके लिये कविकी तन्मयता अपेक्षित है। वह किसी अनुभूति, किसी भावना, किसी विषय आदिमें जितना प्रविष्ट हो, जितना तन्मय हो रचना करेगा उतनी ही वह श्रेष्ठ उतरेगी। अनुभूति, भावना विषय आदिका सम्बन्ध चाहे उससे हो चाहे जगत्से, वह तो तन्मयता द्वारा परको भी अपर-अपना कर लेगा। कवि जो कुछ कहता है उन सभीका सम्बन्ध उसीके जीवनसे है, यह कहा भी नहीं जा सकता। निष्कर्ष यह कि यदि अंचलके काव्यमें कहीं नारीका ऐसा रूप मिले—यद्यपि ऐसा है नहीं—तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे नारीको विलासकी सामग्री समझते हैं। हां, उनकी आरम्भिक रचनाओंमें नारीके रूपके प्रति उनका आकर्षण अवश्य विशेष दिखायी पड़ता है। यदि इसी कारण वे वासनाके कवि कहे जायं तो यह सम्भवतः उचित नहीं समझा जायगा। रूप-लालसाके कारण जब नारीकी पूजाकी ओर—उससे नैकट्य स्थापना की ओर—वे जाते दिखायी पड़ते हैं, तब भी कुछ भ्रम होता है कि वे नारीको वासनाकी वस्तु समझते हैं। यहां भी बात ऐसी नहीं है इसका कारण यह है कि उनकी यह रूप-लालसा व्यभिचरि नहीं हैं, अपनी तृप्तिके लिये अनेकोंको ढूंढ़ती नहीं फिरती

उसमें एक निष्ठता है, जो प्रेमका रूप धारण करती है। यहां प्रश्न उठता है कि यह रूप-लालसा जो प्रेमका रूप धारण करती है, एकनिष्ठ है, यह कैसे समझा जाय? यह एकको ही लेकर है, जिससे कलुष भावनाका प्रसार नहीं हो सकता। और यदि कलुष भावनापूर्ण पाठक इसे व्यभिचरित रूपमें ग्रहण भी करें तो कविमें ऐसी भावनाका लेश भी नहीं है, वह तो एकनिष्ठ प्रेमको ही आदर्श मानता है। इसका साक्षी कौन है। इसका निर्णय किसीके काव्यसे तो किया नहीं जा सकता। इसका साक्षी तो कविका वैयक्तिक जीवन ही हो सकता है। सचमुच यह एक उलझन है, जिसके सुलझे बिना निर्दोष सदोष समझा जा सकता है और सदोष दूधका धोया। इसी उलझनको सुलझानेके लिये ईसाकी उन्नीसवीं सदीके प्रसिद्ध फरासीसी समीक्षक सांत बनेने समीक्षाके क्षेत्रमें समीक्ष्य रचनाकारके जीवनकी खोज-बीनके पश्चात् उसकी रचनाकी समीक्षा करनेके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। यह सत्य है कि उनकी इस धारणामें रचनाकी मीमांसाकी ओर दृष्टि कम गयी और रचनाकारके जीवनकी खोजकी ओर अधिक, परन्तु ऐसे अवसरों पर इस मीमांसा-पद्धतिका महत्व अवश्य स्वीकृत होना चाहिये। जहां तक मैं अंचलके जीवनसे परिचित हूं यह कह सकता हूं कि वे जीवन तथा साहित्यमें एकनिष्ठ प्रेमको आदर्श मानते हैं। [illegible] एक बात और भी कहूंगा। वे नारीकी पूजा, उसकी रूप-लालसाके साथ ही उसे सांसारिक सौख्यका कभी-कभी साधन भी कह बैठते हैं। इसका कारण वे यह बताते हैं कि जीवनमें काम-वासनाका महत्व भी है और इसके बिना जीवन विकृत और कठोर हो सकता है। वस्तुतः यही कारण है कि हमें उनके काव्यमें कभी-कभी नारी इस रूपमें भी झलक दे जाती हैं। हम कहना यह चाहते हैं कि अंचल पर वासनाके कवि होनेका आरोप दूषित है, यदि कहीं इसका आभास मिले तो वह अक्षम्य नहीं है, जीवनमें कामकी स्वाभाविकताके कारण नारीके प्रति एकनिष्ठ प्रेमके वे समर्थक हैं। स्वतः नारी और उसके रूपको [illegible] पूजाकी वस्तु समझते हैं। ऐसी परिस्थितिमें यह कहना कि वे अपनी रचनाओं द्वारा वासनाका प्रसार करते हैं, उचित नहीं समझा जा सकता। हमने कहा कि वे प्रेम-पिपासा, रूप-लालसा और जलन पूर्ण विरह-वेदनाके कवि [illegible], इन्हींका उनमें प्राधान्य है। इस विषयमें एक बात कहनी [illegible]। यह तो सत्य है कि वे नारीको लेकर उपर्युक्त विषयोंका चित्रण किसी भी दुर्भावनावश नहीं करते। वे जो कुछ चित्रित करते हैं सद्भावनाको दृष्टिमें रखकर करते हैं और ईमानदारीके साथ करते हैं। परन्तु इनके चित्रणमें निराशावादका स्वर कुछ तीव्र अवश्य है, जिसका कारण आजकी सामाजिक तथा आर्थिक विशृङ्खलता भी हो सकता है और व्यक्तिगत जीवनकी उलझन भी। परन्तु इस निराशावादकी चर्चा इसलिये करनी पड़ी कि जब हमें यह शक्ति मिली है कि हम समाजको प्रभावित कर सकें तब हम क्यों न उसमें आशाका सञ्चार करें। उसके सामने निराशावादका रोना क्यों रोयें। विशेषतः दोष तब उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है जब हम अपनी व्यक्तिगत निराशा अधिकतर रूपमें समाजके सिर लादना चाहते हैं। अपने दुःखसे दूसरोंको दुःखी करनेका अधिकार ही हमें क्या है। हां, समाजको समाज-दुःखसे दुःखी कर सकते हैं।

अंचल नारीके रूपकी पूजा ही नहीं करते, उसे सच्ची मानवीके रूपमें प्रतिष्ठित करके भी वे उसके प्रति श्रद्धा-भक्तिसे नत होते हैं। ऐसी स्थितिमें नारीके प्रति उनकी दृष्टिकी व्यापकताका परिचय मिलता है। यदि उन पर यह दोष लगाया जाता है कि वे नारीको लेकर वासनाका प्रचार करते हैं,—जो ठीक नहीं—तो यह भी समझ रखना चाहिये कि वे नारीको सामाजिक और वैयक्तिक जीवनकी मूल-प्रेरणाके रूपमें भी देखते हैं। वे नारीको जीवन और समाजके किसी भी क्षेत्रमें हीन स्वीकार नहीं करते। उनकी धारणा है कि नारी नरसे ऊंची है, आवश्यकता इसकी है कि नर उसे पहचाने—

कृतिके प्रथम दिवसमें जब नरने नारीको पहचाना।
तब मानवने जगमें अपने से भी कुछ पावन माना।

व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन संग्राममें वे नारीको नरकी अनिवार्य सहचरी मानते हैं। परिवर्तन, सङ्घर्ष और श्रेणी-युद्धमें अंचलका अटल विश्वास है। ऐसी स्थितिमें यह भी स्वीकार करते हैं कि संसारमें कोई भी आन्दोलन, राज्य-क्रान्तिका सामाजिक विप्लव बिना नारीके क्रियात्मक सहयोगके सफल नहीं हो सकता। बोलशेविक क्रांतिमें भी वे उसका प्रेरणात्मक साथ आवश्यक मानते हैं। 'करीला' की 'नारी' शीर्षक कविता द्वारा अंचलके नारी विषयक विचार बहुत कुछ स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंचलके नारी विषयक विचार आदर्शपूर्ण हैं। नारीको लेकरके केवल प्रेम-पिपासा, रूप-लालसा और जलन-पूर्ण विरह-वेदनाका ही वर्णन नहीं करते प्रत्युत उसे जीवनकी, चाहे वह वैयक्तिक हो अथवा सामाजिक, अनि-

वार्य साथिनके रूपमें भी देखते हैं। बिना उसके नर अपूर्ण है। नारी नरकी पूरक है। यदि नर जीवन या समाजकी कुरूपता या अव्यवस्थाके लिये विद्रोह कर सकता है तो नारी उसके साथ रहेगी, पीछे नहीं। कहना न होगा कि नारी-विषयक इस प्रकारके प्रगतिवादी विचारोंमें अंचलने कहीं भी निराशाका रूप नहीं दिखाया है। प्रगति-वादमें निराशा-वादका कोई स्थान भी नहीं है। प्रगतिवाद तो निराशात्मक साहित्यका विरोधी है। आशावाद ही उसकी मूल प्रेरणा है।

अंचलने छायावाद-युगमें लिखना आरम्भ किया था और वे प्रगतिवाद युगमें भी सक्रिय हैं। नारी विषयक रचनाओंमें वे प्रथम युगसे भी प्रभावित थे और द्वितीय-युगसे भी हैं। प्रथम युगमें नारीके शारीरिक और मानसिक सौन्दर्य पर विशेष दृष्टि रही, अंचलकी रचनाओंमें इन सौन्दर्यों के चित्र प्राप्त हैं। द्वितीय युगमें नारीकी स्वतन्त्र सत्ताकी स्थापनाका स्वर ऊंचा है, अंचल भी उसे इसी रूपमें चित्रित कर रहे हैं। इस प्रकार विदित होता है कि ज्यों-ज्यों युगानुसार नारी विषयक धारणाएं परिष्कृत होती गयीं त्यों-त्यों अंचल द्वारा नारीका चित्र भी परिष्कृत होता गया।

नारी-चित्रण तथा उसके प्रति अपनी भावनाकी अभि-व्यक्तिकी पद्धतिके विषयमें कहना है कि अंचलने इस क्षेत्रमें स्पष्टता और ईमानदारीसे काम लिया है। उनके प्रति विरोधकी भावना उठनेके कारणोंमें से नारीकी इस प्रकार-की चित्रण-पद्धति भी थी। अंचलने नारीके प्रति जो कुछ लिखा निःसङ्कोच भावसे। उसके प्रति अपनी भावना की अभिव्यक्तियोंमें उन्होंने किसी प्रकारकी हिचक या दुराव-छिपावका उपयोग नहीं किया। द्विवेदी-युगके बाद छायावाद-युगमें नारी-चित्रणके प्रति इस निःसङ्कोचताका प्रचार भी अच्छा रहा। परन्तु कुछ कवि ऐसे थे जो नारी-चित्रणमें कुछ सङ्कोच या दुराव-छिपावकी शरण भी लेते थे। वे ऐसा करनेके लिये प्रायः स्वतः नारीका रूप धारण कर लेते थे। उस समय स्वतः पन्तजीने अपनी कुछ कविताएं "श्री नन्दिनी" के नामसे प्रकाशित करायी थीं। परन्तु श्री अंचल ने पुरुषकी सत्ता कायम रखते हुए नारी-चित्रण किया है। दो-चार कविताएं ही ऐसी हैं जिनमें वे नारीका बाना धारण किये हुए दिखायी पड़ते हैं। इसी स्पष्टता और निःसङ्कोचताके कारण उनका कुछ विरोध होता हुआ दिखायी पड़ा। कहा गया कि नारीके प्रति उनकी प्रवृत्ति

विलासी है। हम कह भी आये हैं कि अपने कविता-कालके आरम्भिक दिनोंमें —नारीके प्रति उनकी ऐसी प्रवृत्ति अवश्य थी, जिसका परिष्कार उत्तरोत्तर होता गया। इसमें सन्देह नहीं कि नारी-विषयक उनकी आरम्भिक कविताओंमें विलासिताका रङ्ग चटकीला अवश्य है। इनमें उन्होंने समाजगत व्यावहारिकताका संयम कुछ कम अवश्य रखा है। इनमें जीवनकी व्यक्तिगत व्यावहारिकताका प्रभाव अधिक अवश्य आ गया है। नारीकी सामाजिकता पर यदि अंचलकी दृष्टि पहले ही होती जैसी कि बादमें हुई तो इतने विरोधका सामना उन्हें न करना पड़ता। पहले उन्होंने नारीका चित्रण वैसे ही किया जैसे कोई अपनी नारी पर मुग्ध होकर उसका चित्रण करे। परन्तु जिस निःसङ्कोचता-का उपयोग इस चित्रणमें अंचलने किया है, वह सराहनीय तो समझा ही जा सकता है। हम जो कुछ हैं उसकी स्पष्ट अभिव्यक्तिकी प्रशंसा सर्वत्र होती है।

भावों और अनुभूतियोंकी तीव्रता तथा उनकी अभि-व्यक्तिकी शक्तिके साथ ही अंचलमें वर्णनकी भी प्रभूतशक्ति विद्यमान है। तात्पर्य यह कि उनमें कला और काव्यत्व पूर्णतः मिलता है। उनको अभिव्यंजनाके सभी साधन भाषा, अलङ्कार आदि—बड़े सशक्त हैं। इसी कारण वे नारीका रूप, उसकी क्रीड़ा आदिका वर्णन सफलतापूर्वक कर सकते हैं।—एक उदाहरण देखिये—

सावनके नव :प्रथम मेघ-सी मद गंधार समाती
किस हिम-सागरके:निशांतकी यह सौन्दर्य-प्रभाती
अपनी ही वेणी से उलझी कनकलता बलखाती
शरत्-चंद्रिका-सी अंगराती अपने में न समाती
कभी मचलती है किरणों-सी किलक-किलक इठलाती
कभी लाजसे लजवन्ती लतिका-सी गड़-गड़ जाती
झूम झमकती पुलक तरंगित व्याकुल वेतस-बन-सी
कभी हेरती दूर क्षितिज के पार विकल उन्मन-सी
सन्ध्याकी नव-नग्न कांति-सी छिटक रही मतवाली
रस-साने शिवि मदन-जाल-सी दीप रही उजियाली
यह चंपक-सी कुन्द कुमुद-सी कलित केतकी-माला
अरुण-राग-वाष्पाकुल नयना गजगामिनि मधुबाला
अपनी ही स्वरूप लतिकामें मधु मरंद उदगम-सी
वंक दृगोंके भ्रू-बिलोल में जन्म-मरण-संगम-सी
फूल उसास प्रदोलित वक्षःस्थल जब उठ-उठ जाता
पावस-सी इस रूप-घटाको कौन विलोक अघाता

(मधूलिका)

अंचल प्रायः चिंतकके रूपमें भी दृष्टिगत होते हैं। यहां चिंतनसे हमारा तात्पर्य जीवनके अनुभवके आधारपर टिके निष्कर्षोंसे हैं। मानव जब जीवनमें प्रवेश करता है तब अनेक सरल-वक्र परिस्थितियां उसके सन्मुख आती हैं। इन्हीं परिस्थितियोंके आधार पर वह जगत् और जीवनके विषय-में अपनी धारणाएं स्थापित करता है। अंचलने भी ऐसा किया है। वे चिन्तक इसी रूपमें हैं। हमने कहा है कि अंचल यौवनके कवि हैं। अतः उन्होंने यौवन और प्रेमके आधार पर ही जगत् और जीवनके विषयमें किन्हीं धारणाओंकी स्थापना की है। वे प्रेमको सौन्दर्यका दास कहते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि वह सौन्दर्य क्या जो प्रेमसे लथपथ न हो —

दास है सौन्दर्य का यह प्रेम मेरा तो अपावन,
और वह सौन्दर्य क्या जो प्रेमसे लथपथ न प्रतिक्षण।

(मधूलिका)

प्रथम पंक्तिमें अंचलकी सौन्दर्य-लालसाकी अभिव्यक्ति हुई है, यौवनमें जिस पर सबसे पहले दृष्टि जाती है। द्वितीय पंक्तिमें प्रेम और सौन्दर्यकी एकता परिवर्णित है। यौवनमें जिस एकताकी आकांक्षा प्रेमीमें अति तीव्र होती है।

अंचलके निराशावादकी चर्चा हम कर चुके हैं। उन्होंने जीवनके प्रति प्रायः निराशा ही व्यक्त की है। इस विषयमें उनकी धारणा इस प्रकार है—

यह जीवन तो एक मात्र है
अभिशापों की छाया।
जहां वासना ही फैली है
लोलुप उरकी माया।
किसकी पूरी हुई यहां पर
हिमकी तरल पिपासा।
स्वप्नोंकी प्रिय मृग-तृष्णा में
किसे मिली है आशा। (मधूलिका)

इसी कारण वे सब कुछ झूठा बताते हैं—

झूठे ये सुख-दुःखके बन्धन जीवनके उच्छृङ्खल यात्री
झूठी यह ममताकी बंदिश वह अवशेष स्नेहकी पात्री
धूप-छांहका रैन बसेरा झूठी उसकी याद कहानी
झूठे बरबादीके सौदे जिनमें बीती विफल जवानी
(अपराजिता)

अंचलका काव्य-जीवन छायावाद- रहस्यवाद - युगसे आरम्भ होता है। अतः उनके काव्यमें यत्र-तत्र रहस्य-काव्य और रहस्यवादके स्थल भी आये हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अंचल रहस्यवादी कवि हैं। हां, उनपर रहस्यवाद युगका प्रभाव अवश्य पड़ा, जो स्वाभाविक है। उदाहरण देखें—

किस अविदित उच्छ्वास सुरभिसे
पीड़ित होकर सिहर - सिहर,
मधुवन की धानी मंजरियां
खोल रहीं अपना अन्तर।
किस उमंग के पुलक - भार से
झमक उठीं नव कलिकाएं,
कहां सीख लेतीं बन निर्मम
तान चलाना लोचन - शर?
किस तृष्णा से बेसुध हो
करते प्राणोंके अलि गुंजन
क्यों इन यौवन की परियों को
लख हो जाते हैं उन्मन
कौन सिखा देता है इनको
यह अभिलाषाका संगीत
इस ममत्व - उन्माद - शिखा में
भर - भर देता कौन जलन
किस परदेशी को पुकारती
कोकिल मतवाली हो-हो
किस प्रीतम के लिये जल रही
विजनव्रती किन्नरी मगन?
(मधूलिका)

निस्सन्देह ही उपर्युक्त पंक्तियोंमें जिज्ञासामूलक रहस्य भावनाका बड़ा रमणीय चित्र उपस्थित किया गया है। यत्र तत्र रहस्यवादका भी चित्र मिलता है, जिसमें कवि विश्वकी संचालिका शक्तिके दर्शनके लिये लालायित दिखायी पड़ता है:—

जिसकी सुन्दरता से दीपित हो उगते रवि-शशि-तारे
जिसकी मधुतासे नत मधुरिमदिन चलते विकल गंध-धारे
जिस स्वरूप रानी को छूकर हूक सुलगता मलय पवन
जिसकी एक सहज सुधिमें तृष्णा से भर जाता जीवन
अरे खोल दो मेरी आंखें जी भर उन्हें निहार सकूं।
(अपराजिता)

जैसे रहस्य भावना और रहस्यवादके चित्र अञ्चलकी रचनाओंमें यत्रतत्र मिलते हैं वैसे ही प्रकृतिके चित्र भी। अंचलका प्रकृति-चित्रण प्रायः आलङ्कारिक है, यथातथ्य पूर्ण नहीं। उसमें स्वभावनाओंका आरोप (सब्जेक्टिविटी) भी अधिक है। इसके उदाहरण 'लालचूनर' में भली-भांति देखे जा सकते हैं।

अंचलकी प्रगतिशील रचनाओंका आरम्भ उनकी प्रथम कविता पुस्तक 'मधूलिका' में ही मिलता है, जिसका उत्तरोत्तर विकास 'किरण बेला', 'करीला' और 'लाल-चूनर' में होता गया, और आज अञ्चल प्रगतिशील कवि माने जाते हैं। 'मधूलिका' में इस प्रकारकी रचना केवल एक ही है जो अन्तमें है। कुछ पंक्तियां देखें—

आज मरण की ओर दौड़ते ये भूखे - प्यासे निर्बंध
आज इन्हें करना है अपने प्राणोंका किस पार प्रबंध
ले अविराम मरण-वाहन-सा प्रबल प्रचंड अनल उत्ताप
ले हाहारव भरे विभूक्षित अङ्गों में तृष्णाका पाप
खंड खंड कर अपनी हस्ती लोलुप आज ज्वलंत चले
आज महा सागर पीने को झंझावात दुरंत चले।
और चली तूफान फूंकती ये पथ-कन्याएं संतप्त
जिनकी कृश जङ्घाओं पर सङ्घर्ष मचाते थे उन्मत्त
जिनकी छाती के गड्ढों पर दीप वासनाके जलते
जिनके नील कपोलोंपर मतवाले गाहक सुख मलते

जल जाती है भरी जवानी एक भयङ्कर सपने - सी
बुझ चलता यह रूप, न बुझती भूख-भूख सत्यानाशी।

अञ्चलके काव्यकी यह संक्षिप्त मीमांसा है। इससे स्पष्ट है कि अञ्चल यौवनके कवि हैं। उनका प्रधान विषय है नारी। प्रगतिशील रचनाओंकी ओर भी उनकी दृष्टि समयानुसार गयी। वे समयके साथ आरम्भसे ही चलते रहे हैं। अभिप्राय यह कि उनकी दृष्टि समष्टि पर भी रही है, केवल व्यष्टि या अपने पर ही नहीं। परन्तु वे अभी इस समष्टिवादके युगमें भी सरलता पूर्वक व्यष्टिको छोड़ नहीं पा रहे हैं, यद्यपि इसके लिये प्रयत्नशील अवश्य हैं। विश्वास है कि वे अपने काव्यकी व्यापकता शीघ्र ही बढ़ायेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि अञ्चलकी दृष्टि प्रधानतः नारी पर है और वे उनके प्रति अपनी भावनाओंको उत्तरोत्तर निर्मल करते जा रहे हैं। परन्तु केवल नारी ही तो सब कुछ नहीं है। अतः उन्हें अन्य विषयोंकी ओर भी दृष्टि डालनी चाहिये जिससे उनके काव्य-विषयमें अनेक रूपता आये। आज कलाकारोंके लिये विषयकी कमी नहीं। सारा राष्ट्र उनके काव्यका विषय हो सकता है।

अञ्चलमें जो कवित्व है वह हिन्दीके लिये गौरवकी बात है। और यह उत्तरोत्तर निखरता आ रहा है। अञ्चलसे हिन्दीको बड़ी-बड़ी आशाएं हैं—उनमें कवित्वकी निहितिके कारण। उनका कवित्व अब मंज चुका है। अतः अब हम उनसे सफल प्रबन्ध काव्योंकी भी आशा रखते हैं। विश्वास है अञ्चलजी की दृष्टि शीघ्र ही इस ओर जायगी।

समालोचना

यूथस बर्डेन—(अङ्ग्रेजी) लेखक पण्डित जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक-हमारा हिन्दुस्तान पबलिकेशन्स, बम्बई। मूल्य ≈)।

नवीन युग निर्माता मालाकी यह प्रथम गुरिया है। पुस्तककी भूमिकामें ठीक ही कहा गया है कि छात्र भविष्यके आशा स्तम्भ हैं। राष्ट्रके भावी कर्णधार छात्रोंसेही निकलेंगे। पुस्तकमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूने, युवकोंके हृदय सम्राटने बताया है कि छात्र राष्ट्रके भविष्यके आशा-स्तम्भ तथा कर्णधार कैसे बन सकते हैं। पुस्तकके प्राक्कथनमें प्रो० पी० ए०-वाडियाने कहा है कि "वर्तमान सङ्कटकाल भारतके नवयुवकोंके लिये अग्नि परीक्षाका समय है। भारतके युवकों पर कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वका जो भार है, क्या वे इसे महसूस करते और अपने मन एवं हृदयको इस प्रकारकी ट्रेनिङ्ग और अनुशासनमें ला रहे हैं कि जो कुछ भी सत्य, शिव और सुन्दर है उसकी खोजमें निस्वार्थ भावसे लगकर अपनेको इस योग्य बना सकें कि आगे चलकर सुन्दरतर विश्व व्यवस्थाके निर्माणमें, जो हम सबको अत्यन्त प्रिय और काम्य है, सहायक हो सकें ?" इस पुस्तिकाको पढ़नेसे देशकी वस्तु स्थितिको निष्पक्ष और निस्वार्थभावसे समझने में युवकोंको वांछनीय सहायता, पथप्रदर्शन मिलेगा। नेहरूजीने हमारे सामने उपस्थित समस्याका चित्रण करके बताया है कि उसके सुलझावके लिये हमें किस प्रणालीसे काम करना चाहिये। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि युवकों और राष्ट्रीय सेवाके क्षेत्रमें पदार्पण करनेवाले व्यक्तियों के लिये यह पुस्तिका अत्यन्त काम की है। डी० डी०

युद्धकालीन प्रथम कहानी-संग्रह 'सङ्गीनोंका साया'-

गये दो तीन वर्षोंमें मालवासे प्रकाशित कविता संग्रह, कहानी संग्रह और नाटक आदि हमारी दृष्टिमें आये। उनकी सफलतासे अनुमान लगाया जा सकता है कि मालवा अब कुछ संग्रहणीय साहित्य दे रहा है और उसकी प्रतिभा चमक रही है।

हाल ही में हिन्दी और मराठीके प्रसिद्ध लेखक और कथाकार प्रो० प्रभाकर माचवेका प्रथम कहानी संग्रह 'सङ्गीनोंका साया' प्रकाशमें आया है। अर्पणके शब्द "फासिज्मका नाश चाहनेवाली जनताको" पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है कि कहानियोंका स्वरूप क्या होगा। एक लेखक और कलाकारके नाते (क्योंकि वह जनताका प्रतिनिधि होता है) व्यक्तिका जो कर्त्तव्य हो जाता है वह समझनेकी बात है। हमें यह न भूल जाना चाहिये कि युद्ध केवल साम्राज्योंका ही युद्ध नहीं है बल्कि उससे हमारा भी अप्रत्यक्ष बड़ा सम्बन्ध है। सोवियट रूसके सैकड़ों लेखक आज युद्धके बीच कार्यव्यस्त हैं। ऐलियाएहरनवर्ग, माईकेल शेलोखोव्ह, वान्दा वासिलवस्का, सिमोनोव्ह आदि कई लेखकोंके नाम गिनाये जा सकते हैं। फिर एक भारतीय लेखक इस विराट युद्धके मुख्य कारण, भयङ्कर जहरीले सर्प रूपी फासिज्मके नाशके लिये सिवाय इसके क्या कह सकता है—

"मैं जानता हूँ कि परिस्थितियोंसे आबद्ध और अवरुद्ध एक दुर्बल-सङ्कल्प भारतीय लेखक इस भूगोल व्यापी विराट महाभारतमें और क्या योग दे सकता है ? सिवा यह नारा बुलन्द करनेके कि–फासिज्म मुर्दाबाद !"

इस छोटेसे ८७ पृष्ठोंके संग्रहमें करीबन ११ कहानियाँ

संग्रहीत हैं। संग्रहमें प्रकाशित सभी कहानियां यत्र-तत्र पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तकमें एक ओर यदि युद्धके अन्तका विचार है तो दूसरी ओर फासिज्मके नाशके लिये उपयुक्त साधन और सामान जुटानेकी आवश्यकता है। 'संगीनोंका साया'को हम उस सामानमेंसे एक समझ सकते हैं। 'उगता सूरज फिर डूबेगा' और 'छशिफू' कहानीको पढ़कर किस व्यक्तिके हृदयमें दुनियाके ऊपर मड़रानेवाली इस फासिस्टी छायाके प्रति घृणा न पैदा होगी! "इस्का"को पढ़ते पढ़ते रूसकी चार रातोंका दृश्य सामने घूमने लगता है। 'गुलामोंकी डायरी'से, 'सिंगापुरकी आत्म कथा' और 'घासीने कहा' कहानियां हमारी दृष्टिमें ऐतिहासिक लघ निबन्धोंके समान लगीं। सम्पूर्ण संग्रहको पढ़ जाने पर पाठक को बहुत जानकारी प्राप्त हो जाती है। फासिस्टोंके प्रति एक घृणाका भाव उसके साथ ही हृदयमें पैदा हो जाता है। माचवेजी आलोचक पहले हैं, कहानीकार और कवि बादमें। उनकी आलोचना-प्रवृत्तिकी छाप उनकी प्रत्येक कहानीमें झलकती है। तभी तो फासिस्टोंके क्रूर कारनामोंका वर्णन करते हुए उन्होंने वड़ी पैनी चुटकियां ली हैं।

हिन्दीमें युद्धकालीन कहानियां बहुत ही अल्प मात्रामें प्रकाशित हुई हैं और फिर 'संगीनोंका साया'का पुस्तकाकार रूपमें प्रकाशन युद्धकालीन कहानियोंके प्रथम सग्रहके नाते एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। इसके लिये अकेले माचवेजी ही श्रेयके अधिकारी नहीं हैं बल्कि मालवा भी श्रेयका हकदार है।

पुस्तककी छपाई साधारण। टाइटिल चित्रसे गेटअप निखर उठता है। प्रकाशक, सस्ता-साहित्य मन्दिर, इन्दौर; मूल्य साढ़े बारह आना। —'श्याम' परमार।

द्वितीय महा युद्धके पूर्वका संसार— (द्वितीय भाग) लेखक श्री राम रत्न गुप्त एम० एल० ए० (केन्द्रीय) प्रकाशक सिटी बुक हाउस, कानपुर। मूल्य १)।

विद्वान लेखकने पुस्तकमें इतिहासके गहरे अध्ययनका अच्छा परिचय दिया है। यह अध्ययन यूरोप यात्राके अनुभवसे और अधिक पुष्ट हो गया है। पहले तथा द्वितीय भागके प्रकाशनमें वर्षोंका अन्तर पड़ गया है। दूसरा भाग पहले से बिलकुल स्वतन्त्र है, इसलिये इसके पाठकके सामने प्रथम भाग न रहने पर भी किसी तरहकी असुविधा उसे न होगी। द्वितीय भागमें अमेरिका, जापान तथा चीनका वर्णन है। लेखकने तीनों देशोंका वर्णन अत्यन्त रोचक तथा जानदार भाषामें किया है। विश्व युद्धमें ये तीनों राष्ट्र संलग्न हैं। दो एक पक्षके हैं और एक विपक्षका। इस पुस्तकके पढ़नेसे वर्तमान युद्धको समझनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। स्वभावतः लेखकको, चीनके प्रति हमदर्दी है, भारतसे जापानको वह कोसों दूर रखना चाहता है "अमेरिका प्रजातन्त्र सत्ताके लिये लड़ रहा है, इसलिये उसकी विजय चाहता है। किन्तु सत्य, सत्य है। उस पर वह पर्दा नहीं डालना चाहता। जापानमें जो गुण हैं, जापानका जो महत्व है, उसे छिपाना लेखक भूल समझता है। शत्रुका भी गुण जानना चाहिये फिर जापानसे हमारी शत्रुता तो केवल उसकी साम्राज्यलिप्साके कारण है और राजनैतिक शत्रुता-मित्रताका माप-तौल ही दूसरा होता है।"

इसी दृष्टिकोणसे प्रभावित होकर लेखकने अपने अनुभवोंको इस सचित्र पुस्तकमें रखा है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय हलचलोंमें दिलचस्पी रखनेवाले व्यक्तिके लिये यह पुस्तक मनोरञ्जक तथा सुपाठ्य है। डी० डी०

गीत

मैं तुझे यदि भूल पाता।
विरहके तमसे ग्रसित क्या मुक्ति पाता?
मिलन की आशा लिये
हृद प्रेम से प्लावित किये
नैराश्यमय जीवन दुःखद है, जान पाता।
'प्रेम क्या है' सीख पाया?
विरहसे जीवन जलाया।
जल रहा उस वन्हि में, हूं छटपटाता।

विरह तेरा, याद तेरी,
दूर हो यदि जलन मेरी,
कहां जीवन! मैं इसी में मृत्यु पाता।
सजनि! तुझ को भूल जाऊं।
मृत्यु को उर से लगाऊं?
विरह का संगीत जीवन है जगाता।
मैं तुझे यदि भूल पाता।

—श्री मनोहर मालवीय



इसमें क्या दोष है —?

देशमें आशा, उत्साह और विश्वासका नवीन जीवन लानेके उद्देश्यसे महात्मा गांधीने कार्यकर्त्ताओंके सामने अपना रचनात्मक कार्यक्रम रखा है। इसे सफल बनानेके लिये जेलोंसे बाहर आये हुए कांग्रेस नेताओंने अपने-अपने प्रान्तको एक सङ्गठनके अन्तर्गत लानेका प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है। किन्तु बतौर 'ट्रस्टी' देशपर शासन करनेवाले गोरे शासक नहीं चाहते कि जन साधारणमें आशा और साहसका जीवन संचार करनेवाला कोई काम हो। विहार और युक्त प्रान्तमें निरंकुश शासकोंने अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। स्वयं गांधीजी की देख-रेखमें सेवा-ग्राम आश्रममें कार्यकर्ताओंको दी जानेवाली ट्रेनिङ्ग पर भी वहांके जिला मजिस्ट्रेटने वैसा ही रुख पकड़ा है जैसा अन्य प्रान्तोंके अधिकारियोंका है। गांधीजीके शब्दोंमें देशकी वर्तमान स्थितिका यह एक रूप है। दूसरा रूप यह है कि वायसराय श्री भूलाभाई देशाईके साथ वार्तालाप कर रहे हैं। बड़े बड़े परिवर्तनोंकी अफवाह फैली हुई है। उल्लिखित घटनाओंके साथ इस अफवाहका मेल नहीं मिलता।

सहयोग और दमन साथ साथ नहीं चल सकते। जिसका आप सहयोग चाहते हैं, उसकी सचाई, स्वाभिमान और कार्योंपर यदि आपको विश्वास नहीं है तो, अविश्वास और सन्देहके बीचमें, सहयोग नहीं हो सकता। कार्यतः ब्रिटिश सरकार और उसके भारतस्थित प्रतिनिधि यह सिद्ध कर रहे हैं कि अविश्वास और सन्देहका कारण यह भय है कि भारतमें अङ्गरेजोंके 'नाजायज' निहित स्वार्थ, देशके प्रतिनिधियोंके हाथोंमें सच्चे राजनीतिक अधिकार पहुंच जानेसे, सुरक्षित नहीं रह सकते। यह भय अर्थात् ब्रिटिश स्वार्थ-लोलुपता देशमें अनीति और अनाचारके लिये जिम्मेवार है। यदि ब्रिटिश नेता अपनी बातके सच्चे होते, अर्थात् यदि सचमुच वे कालान्तरमें भारतको सही मानीमें स्वतन्त्र करनेको इच्छुक होते तो गांधीजीके रचनात्मक कार्यक्रममें ब्रिटिश अधिकारी किसी तरहका अड़ङ्गा तो लगाते ही नहीं, अपितु सब प्रकारसे सहयोग देते। गांधीजीका कार्यक्रम राजनीतिसे, जिस अर्थमें राजनीति शब्दका व्यवहार किया जाता है उससे दूर, है। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस कार्यक्रमके पीछे देशकी वर्तमान स्थितिपर किसी तरहका राजनीतिक दबाव डालनेका कोई गुप्त उद्देश्य नहीं है। यह कार्यक्रम तो देशको कालान्तरमें सम्पूर्ण स्वाधीनता दिलाने और उसका उपभोग कर सकनेके उपयुक्त बनानेके उद्देश्यसे तैयार किया गया है। ब्रिटिश राजनेता यदि सचमुच देशको, युद्धके बाद, स्वतन्त्र करना चाहते हैं तो उनको इस तरहके कार्योंमें किसी तरहकी आपत्ति न होनी चाहिये।

गांधीजीने इस सिलसिलेमें वक्तव्य देते हुए कहा है कि "मैंने यह कहनेमें जरा भी द्विधा नहीं की कि देश भरमें सर्वत्र व्यापक रूपसे कार्यक्रमको व्यावहारिक रूप देनेसे यह देशको सम्पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्तिकी ओर आगे ले जायेगा, न अहिंसात्मक भद्र अवज्ञाकी आवश्यकता होगी और न पार्लमेंटरी कार्यक्रम की। उस स्थितिमें शासन करनेके लिये अङ्गरेज हिन्दुस्तानमें रहना पसन्द न करेंगे। अवश्य पूर्ण नागरिककी भांति वे रह सकते हैं। १९४२ की भाषामें बहैसियत शासक वे भारतको छोड़ देंगे। क्योंकि उस हालतमें उनके सैनिकोंकी जीविकाका कोई साधन न रहेगा, और उनका विशाल उद्योग धन्धा बेकार हो जायेगा।"

यह बात नहीं है कि गांधी जी देश और संसारकी वस्तुस्थितिकी उपेक्षा करके ऐसी बात कह रहे हैं। संसारकी गतिको वे अच्छी तरह देख रहे हैं। इसीसे उन्होंने कहा है कि "सम्भव है वह दिन न आये, किन्तु अहिंसा व्रती सैनिकका यही स्वप्न होना चाहिये और अपने इस स्वप्नको

कार्यमें परिणत करनेके लिये उसे प्रतिदिन प्रयत्न करना चाहिये और यदि उसकी इस साधनाके मार्गमें रुकावट खड़ी की जाये तो उस हालतमें उसे अपने अहिंसात्मक प्रतिरोधका, दूसरे शब्दोंमें हम जिसे भद्र अवज्ञा और असहयोग कहते हैं, सहारा लेना चाहिये।" किन्तु यह स्थिति पैदा करनेकी जिम्मेदारी अंगरेजों पर होगी। अहिंसात्मक रूपसे पालन किये जाने वाले रचनात्मक कार्यमें बाधा देनेका कोई अर्थ नहीं होता, यदि भारतको स्वतन्त्र समुन्नत राष्ट्र बनानेकी ब्रिटिश घोषणा सार्थक है। इस समय इस कार्यक्रमसे किसी तरहका राजनीतिक लाभ उठाना गांधीजीको अभिप्रेत नहीं है। यह बात उन्होंने बार बार स्पष्ट कर दी है कि सामूहिक भद्र अवज्ञाका इस समय कोई प्रश्न ही नहीं है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रतिरोधकी सम्भावनाकी चर्चा सिद्धान्त रूपसे भी न की जाये। रचनात्मक कार्यक्रमका आरम्भ करनेके लिये इस तरहकी कोई शर्त नहीं की जा सकती। क्योंकि, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि "स्वतन्त्रता-राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों,—इसका लक्ष्य है। एक विशाल राष्ट्रके जीवनके सब विभागोंमें यह एक नैतिक, अहिंसात्मक क्रान्ति है, जिसके अन्तमें वर्ण और अस्पृश्यता एवं इसी तरहके अन्ध विश्वास मिट जायेंगे, हिन्दुओं और मुसलमानोंके मतान्तर और मनान्तर अतीतकी कहानी मात्र रह जायेंगे।" गांधीजी पूछते हैं। "इस तरहका प्रयास करनेमें क्या कोई दोष है?" अंगरेज सरकारके पास इसका कोई उत्तर नहीं है, बेशर्मी, बेहयायी और खुदगर्जी के सिवा।

जनता सरकारके लिये है—

स्वर्गीय डा० जे० टी० सण्डरलैण्डने अपनी पुस्तक 'इण्डिया, अमेरिका और विश्व बन्धुत्व' में भारतकी दासताको एक विश्व दुर्घटना बताते हुए दावेके साथ कहा है कि 'कौन कहता है कि भारत स्वराज्यके योग्य नहीं है?' आज चर्चिल,एमरी और बावेल कह रहे हैं और कलतक उन स्थानों पर विराजमान दूसरे लोग कह रहे थे। इतना ही नहीं, डा० सण्डरलैंण्डके दावेको संसारके सामने मिथ्या प्रमाणित करने और अपनी जड़, इसी बहाने, मजबूत बनाये रखनेके लिये हिन्दुस्तानमें साम्राज्यवादी प्रचारकों और सत्ताधारियोंने जिन जिन हथकण्डोंसे काम लिया है उनको देख कर मक्कारी भी शर्मा जाती है। भारतकी आत्माको बन्दी बना कर, शरीरको कुचलकर लोकतन्त्र और विश्व शान्तिके नामपर जिस तरहकी निरंकुश शाही हुकूमत कर रही है, उसका संसारमें दूसरा उदाहरण नहीं है। यदि भारतकी अपनी संस्कृति न होती, नैतिकताके बलका सहारा न होता, दुर्दिन और सङ्कटके समय भी विकराल मौतके सामने हंसते हंसते प्राण हथेली पर लेकर खड़ा रहनेका सबक सिखाने वाला गौरव पूर्ण अतीत न होता तो आज भारतका अपना अस्तित्व मिट गया होता। भारतका अस्तित्व मिटानेकी कोशिशमें कोई कमी नहीं रखी गयी,अबतक उस क्रममें जरा भी शिथिलता नहीं आने दी गयी। भारतके लोगोंको पथभ्रान्त करनेमें, अनैतिकता और अनीतिका वातावरण बनानेमें कोटि कोटि रुपया व्यय किया जा रहा है। चतुर और चालबाज आजकी इस स्थितिसे लाभ उठा रहे हैं। सरकार नहीं चाहती कि देशको सही रास्ते पर चलानेवाले व्यक्ति, महात्मा गांधी और उनके अनुयायी, तथा भारतीय राष्ट्रीय महासभा स्वतन्त्रता पूर्वक जनसाधारणसे अपना सम्पर्क स्थापित करें। वह जानती है कि इनका जनसम्पर्क बढ़नेका अर्थ है सत्य और वास्तविकताका चौड़े आना। इनके जन सम्पर्कसे जनतामें चेतना और कर्मवीरताका भाव बढ़ेगा, और ब्रिटिश साम्राज्यवादी जानते हैं कि ये दोनों बातें उनके स्वार्थके लिये घातक हैं। यही कारण है कि जनता अर्थात् कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंके प्रत्येक छोटेसे छोटे कार्यको भी अधिकारी अपने विनाशका प्रयास मानते हैं। उनकी इस मान्यता पर हमें आपत्ति नहीं है। किन्तु तब वे लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता, समानता तथा शान्तिके पुजारी बननेका दावा छोड़ दें। तब भारत पर शासन करने के लिये, नीति अनीति, जिस तरहसे चाहें काम लें। लेकिन यह लोकतन्त्रीय नकाब फाड़ डालें।

सङ्कट कालमें यह शासन जनताको सुख और शान्ति पहुंचा सकनेमें सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ है। वस्त्र, अन्न एवं जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्रियोंके लिये जनसाधारणको बेजा मुनाफा उठाने वालों, चोर बाजारके व्यापारियों और घूस लेनेवालोंकी मर्जी पर छोड़ रखा गया है। देशमें अकाल और महामारियोंका ताण्डव हो रहा है। इन दोनों के पीछे भी प्रकृतिसे अधिक मनुष्यका हाथ है। हमारे ट्रस्टी शासक देशको इस दुर्गतिसे बचाना चाहते हैं या नहीं यह तो वे ही जान सकते हैं, लेकिन बचा नहीं पा रहे यह वास्तविकता है। ऐसी स्थितिमें भी जब जनताके सच्चे सेवकोंको जनताकी सेवा करनेसे रोका जाता है, उनके मार्ग

में अड़ंगा लगाया जाता है तब हम इसके सिवा क्या समझे कि वर्तमान सत्ताको अपना अस्तित्व जनताके अस्तित्वसे अधिक प्रिय है। सरकार जनताके लिये नहीं जनता सरकार के लिये है, ब्रिटिश साम्राज्यवादी यही रूप आज भारतमें चरितार्थ कर रहे है।

असन्तोष नहीं है !!!—

पण्डित जवाहर लाल नेहरूने, अपनी गिरफ्तारीके कुछ दिन पहले, कहा था "ब्रिटिश साम्राज्यवाद आज भी संसारमें एक बहुत बड़ा तथा ताकतवर साम्राज्यवाद है। तथापि, इतिहासके दीर्घ दृष्टिकोणसे यह मर चुका है। ऐतिहासिक दृष्टिसे अब उसका कङ्काल मात्र रह गया है। यह भी हो सकता है कि यह अभी १०, १२, १९ वर्ष और जीवित रहे। किन्तु कहनेका मतलब यह है कि इतिहासकी दृष्टिसे यह मरण-प्राय वस्तु है।" नेहरूजीके दृष्टिकोणसे सहमत अथवा उनके समान विश्व स्थितिको देखने और समझनेवाले व्यक्ति भी ऐसा ही सोचते हैं। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादी ऐसा नहीं सोचते। वाशिङ्गटन-स्थित ब्रिटिश मिनिस्टर मि० हेरोल्ड बटलरने उस दिन न्यूयार्कमें नेशनल-इंस्टीच्यूट आफ सोशल सायंसेसमें भाषण करते हुए कहा था कि जो लोग ब्रिटिश साम्राज्यके ढांचेको दृढ़ता हुआ देख या समझ रहे हैं उनका अनुमान इस तथ्यके सामने मिथ्या ठहरता है कि इस युद्धमें ब्रिटिश साम्राज्य एक सुसङ्गठित और सुसम्मिलित शक्तिकी भांति लड़ रहा है। "यदि हिन्दुस्तान और अन्य उपनिवेश ब्रिटिश अत्याचारसे कराहते होते तो ब्रिटिश दासता-बन्धनको छिन्न भिन्न कर डालनेके लिये इससे बढ़कर दूसरा कौन सहज अवसर हो सकता था, जब हम लोग अपने अस्तित्वके लिये जीवनका माया-मोह छोड़कर लड़ रहे थे। दरअसल हमें वहांसे उतने आदमी मिले हैं जितनोंको हम ट्रेन और अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित कर सके। संसारकी शान्ति रक्षामें ब्रिटिश साम्राज्यको समान महत्वपूर्ण पार्ट अदा करनेको मिलेगा।"

इस वक्तव्य द्वारा मि० हेरोल्ड बटलर अमेरिकनोंको और दुनियाको यह बताना चाहते हैं कि भारतमें अशान्ति और असन्तोष नहीं है, ब्रिटिश अत्याचार नहीं है अन्यथा आज भी वे कैसे शासन करते होते ? इसका एक ही उत्तर है कि जीवन-मरणके युद्धमें व्यस्त रहते हुए भी भारतमें अङ्गरेजोंका पशुबल इतना प्रचण्ड था कि एक सप्ताहके भीतर देशकी जेलें देशके नेताओं, कार्यकर्त्ताओं और साधारण नगरवासियोंसे इस तरह ठसाठस भर गयीं कि प्रायः प्रत्येक नगरमें अतिरिक्त जेल बनानेकी व्यवस्था की गयी। साम्राज्यवादी शासनकी जड़को जो व्यक्ति हिला सकते थे उनको बिना विचारके ही जेलोंमें भर दिया गया था। नेता विहीन देशवासियोंको मनुष्यकृत जिन जिन आपदाओं और सङ्कटोंका शिकार बनना पड़ा, उसे देखते हुए सचमुच वह व्यक्ति यह आश्चर्य कर सकता है कि भारतमें साम्राज्यवादका शासन कैसे अडिग रह गया जो यहांकी स्थितिसे अपरिचित हैं। लेकिन देशवासियों और जानकार विदेशियोंके लिये यह उसी तरह आश्चर्यकी बात नहीं है जिस तरह हिटलरका जर्मनीका सर्वेसर्वा बन जाना। क्या अङ्गरेज राजनीतिज्ञ उसके इस दावेको स्वीकार करते हैं कि उसने जर्मनीमें जो कुछ किया वह जनताकी इच्छा और स्वीकृति से किया है ? किन्तु दमनकाचक्र और रुपयेकी थैली, बड़ेसे बड़े साहसी और चरित्रवानको डिगा देती है और तब यदि वह भी दमनकारी और पुरस्कार वितरकके स्वरमें स्वर मिलाकर राग अलापने लगता है तो क्या उसे ही सत्य मान लिया जाना चाहिये ? भारतका असन्तोष ब्रिटिश दमन-चक्रके नीचे दबा पड़ा है। उसकी तोड़ेकी थैली भारतीयोंसे संसारमें यह कहा रही है कि भारतमें ब्रिटिश शासनके प्रति कोई असन्तोष नहीं है, नोटोंका बण्डल ऐसे लोगोंको पैदा कर रहा है जो देशमें साम्प्रदायिक कलहकी सृष्टि करके ब्रिटिश शासकोंको भारत पर अपनी हुकूमत बनाये रखनेका मौका देते हैं। देशमें ब्रिटिश-शासनके प्रति कितना असन्तोष है इसका उत्तर पशुबल और धनबल द्वारा तैयार की गयी ऊपरी वस्तु स्थितिसे नहीं मिल सकता। यदि अङ्गरेजोंको इसपर विश्वास है कि देशमें किसी तरहका वास्तविक असन्तोष नहीं है तो अच्छा हो कि एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्डके तत्वावधानमें इसी बात पर जनमत संग्रह किया जाये कि 'भारत छोड़ो अङ्गरेजों' कहनेवाले कितने हैं और 'भारतमें रहो अङ्गरेजों' कहनेवाले कितने हैं ? क्यों नहीं मि० हेरोल्ड बटलर और उनके अन्नदाता मि० चर्चिल इस प्रस्तावको कार्यमें परिणत करके ब्रिटिश शासन विरोधी भारतीयोंका मुंह बन्द कर देते ? बातकी बातमें दूधका दूध और पानीका पानी हो जायेगा।

भारतकी समस्या—

श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डितने वाशिंगटनसे एक ब्राडकास्टके दौरानमें कहा था कि संसारकी तमाम प्रगतिशील शक्तियोंके सामने हिन्दुस्तान एक नैतिक चैलेंज

के रूपमें उपस्थित है। अब तक संयुक्त राष्ट्रोंकी नीतिके सम्बन्धमें जितनी घोषणाएं की गयी हैं उनकी कसौटी हिन्दुस्तान है। शान्ति और उत्कर्षके लिये सामूहिक सुरक्षा प्रणालीकी बात उस समय तक सोचना व्यर्थ है जबतक ४० कोटि व्यक्तियोंको अपना राष्ट्रीय जीवन गठन करनेकी स्वीकृति और स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी।

श्रीमती पण्डितके इस तरहके विचारोंने अमेरिकाके चिन्तनशील व्यक्तियों, दलों और राजनेताओंके सामने एक गम्भीर समस्या उपस्थित कर दी है। कर्त्तव्य और उत्तर-दायित्वको समझने वाले, स्वतन्त्रता और शान्तिसे सच्चा प्रेम रखनेवाले मननशील व्यक्तियोंकी सत्यनिष्ठा और न्याय-प्रियता भारतके मामलेमें हस्तक्षेप करनेको उन्हें बाध्य कर रही है। अमेरिकन जनसाधारण, जिनके भीतर लुईफिशर, विलियम फिलिप्स, कर्नल जानसन और पर्ल बक तथा जान गुन्थर जैसे पत्रकारों, राजनीतिज्ञों और लेखकोंने भारतके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दिलचस्पी पैदाकर दी है, आज भारतका प्रश्न न्याय और नीतिके आधार पर हल हुआ देखनेको अपनी उत्सुकता और व्यग्रता प्रकट करते दिखायी दे रहे हैं। भारतके अमेरिकन शुभचिन्तकोंने भारतकी समस्याके समाधानके लिये संसार, और खास कर अमेरिकामें, जो पृष्ठभूमि तैयार की है उसपर खड़ी होकर श्रीमती पण्डित ब्रिटिश सरकारके दलालों और वेतन भोगियों द्वारा जो देश विदेश, खास कर अमेरिकामें मिथ्या प्रचार किया जा रहा है उसकी पोल खोल वास्तविकता पर प्रकाश डाल-कर इस समय अपने देश और प्रकारान्तरसे विश्व शान्तिकी जो सेवा कर रही हैं, प्रत्येक शान्ति और स्वतन्त्रताभिमानी व्यक्ति उनके इस कार्यको कृतज्ञतासे देखेगा।

यह उनके प्रयासका ही फल है कि संयुक्तराज्य अमेरिकाके उपराष्ट्र सचिव मि० जोसेफ ग्रूको पत्र-प्रतिनिधियोंकी कानफरेंसमें दबी जबान यह कहना पड़ा कि "भारत की समस्याका सफल सन्तोषप्रद समाधान करानेमें सहायता पहुंचा कर संयुक्त राज्यको प्रसन्नता होगी। भारतीय प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं और विभिन्न स्थितियोंको संयुक्त राज्यकी सरकार सहानुभूति पूर्ण दिलचस्पी से बराबर देखती आ रही है। स्वभावतः मैं आशा करता हूं कि यह कठिन मामला सामने आयेगा और सन्तोषप्रद समझौता करा सकनेमें संयुक्त राज्यको प्रसन्नता होगी।"

इस सम्बन्धमें ग्रूसे इससे अधिक स्पष्टताकी आशा नहीं की जा सकती। किन्तु एक बात तो प्रकट ही है कि इस अवांछनीय कांडका अन्त तभी हो सकता है जब अमेरिकाके राजनेता मुलाहिजे और मुंह देखी नीतिसे ऊपर उठकर वे स्वयं जो उचित और उपयुक्त समझते हैं उसके अनुकूल दबाव ब्रिटिश सरकार पर डालनेको तैयार होंगे। यदि वे ऐसा न करेंगे तो यही कहना पड़ेगा कि उनके 'भय और स्वार्थ-नीतिने संसारकी शान्ति और उन्नतिके मार्गमें रोड़ा अटका रखा है।'

याल्टा सम्मेलन—

मि० चर्चिलकी वाकपटुता बेजोड़ है। उनकी वाकपटुताने ही अबतक उनको ब्रिटेनका नेता बना रखा है। ब्रिटिश पार्लमेंटमें याल्टा सम्मेलनके निर्णयोंका औचित्य प्रमाणित करते हुए मि० चर्चिलने कैसी वाकपटुताका परिचय दिया है, वह आलोचनाओंके उत्तर में दिये गये उनके वक्तव्योंसे स्पष्ट है। याल्टा सम्मेलनमें फ्रांसको क्यों नहीं आमन्त्रित किया गया ? मि० चर्चिल जबाब देते हैं:-'पश्चिमी यूरोप सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिका प्रथम सिद्धान्त है मजबूत फ्रांस और सुदृढ़ फ्रेञ्च सेनाका निर्माण। किन्तु जो महाशक्तियां युद्धका जबर्दस्त भार और बोझ झेल रही हैं क्या उनको आपसमें मिल बैठकर बातें करनेका भी अधिकार नहीं है ? वे अपने इस अधिकार पर कैसे प्रतिबन्ध लगा सकती हैं ?' सरल भावसे कही गयी इस बातका हम भी सरल अर्थ ही लेते हैं। जिन तीनों राष्ट्रोंने संसारकी रक्षामें अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, यदि संसारकी रूपरेखा निर्धारित करनेका उनको अधिकार नहीं है तो फिर और किसको है ? भला अपने इस स्वोपार्जित अधिकार पर, दूसरोंकी इच्छा समझकर, वे प्रतिबन्ध कैसे लगा ले सकते हैं ? यह तो आत्महत्या होगी और आत्महत्या पाप है न !!

आगे बढ़िये। युद्धके बाद प्राप्त शान्तिकी रक्षाके लिये एक विश्वशान्ति-रक्षा सङ्गठन चाहिये। चर्चिल कहते हैं कि 'विश्व सङ्गठन तीन शक्तियोंकी डिक्टेटरशाहीके आधार पर नहीं खड़ा किया जा सकता। सैनफ्रैंसिस्को सम्मेलनमें ब्रिटेनके मुख्य प्रतिनिधि होंगे मि० एण्टोनी ईडेन और मि० एटली। पूर्व राष्ट्र-सङ्घका स्थान यह नवीन शक्तिशाली सङ्गठन ग्रहण करेगा और संयुक्तराज्य अमेरिकाका बहुत महत्व पूर्ण हिस्सा इसमें रहेगा।' साधु ! साधु !! डिक्टेटर-शाहीको अन्त करनेवाले भला डिक्टेटरशाही दिखा सकते हैं ! लोकतन्त्रीय ढंग कितना सुन्दर है। उसे छोड़ डिक्टेटरशाही-का रास्ता पकड़नेकी क्या जरूरत ? कितने सुन्दर, लोकतन्त्र-

पूर्ण ढङ्गसे मित्रराष्ट्रोंने कुछ राष्ट्रोंका नाम लेकर एलान किया कि यदि ये राष्ट्र चाहते हैं कि सैनफ्रें सिस्कोमें उनका स्थान भी सुरक्षित रहे तो उनको फौरन धुरी शक्तियोंके खिलाफ युद्ध घोषणा करनी चाहिये। इच्छासे या अनिच्छासे उनको ऐसा करना ही पड़ा। न करते तो लोकतन्त्रकी मर्यादा अक्षुण्ण कैसे रहती? इसके विपरीत जिन राष्ट्रोंका सम्मेलनमें उपस्थित होना किसी तरह वांछनीय नहीं समझा गया, लोकतन्त्रकी दुहाई देकर, उनको शान्ति स्थापनकी चेष्टामें भाग लेनेसे भी वञ्चित रखा गया। ये राष्ट्र,—आयर्लैण्ड, स्वीडेन, स्विजरलैंड, स्पेन और अर्जेण्टिना,—शांतिके लिये खतरनाक समझे गये होंगे। क्योंकि मित्रराष्ट्र जैसा चाहते थे वैसा न करके इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता और तटस्थताकी मर्यादा रखनेकी धृष्टतापूर्ण भूल की है। उस भूलका दण्ड तो मिलना ही चाहिये। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि दण्डका रूप क्या होगा? लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि दण्ड देनेकी चेष्टा की जायगी। कितना सुन्दर प्रेम और उपेक्षाका यह लोकतन्त्रीय आदर्श है। इससे सब मुरादें बर आती हैं। तब बर्बर मार्गका अनुसरण क्यों? उसकी आवश्यकता होगी तब देखा जायगा।

अन्तमें आपने पोलैण्डकी चर्चा की। अपने मित्रके कार्यका औचित्य प्रमाणित करनेके लिये। यह बात नहीं है कि मि० चर्चिल उस निर्णयके कायल हैं। किन्तु स्वार्थोंकी रक्षाके लिये समझौता तो करना ही पड़ता है। हम मानते हैं कि यह समझौता लोकतन्त्रके आदर्शके अनुकूल है। लेकिन मि० चर्चिल यह नहीं समझते। वे तो इसे रूसकी जबर्दस्ती ही मन ही मन समझते हैं। लेकिन उनके सामने यूनान था, मध्यपूर्व और भूमध्य सागर, भारत और अन्य उपनिवेश थे। क्या करते? भूलसे, नहीं नहीं, अपनी दुर्बलता वश, राम राम यह क्या कहते हैं, बुद्धिमत्ता वश! अरे नहीं स्वार्थ वश, उनको सहीको सही कहना पड़ा और पोलैंडपर स्टालिनका निर्णय मानना पड़ा क्योंकि "पोलैण्डकी सरहद से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है पोलैण्डकी स्वतन्त्रता।" शाबाश, मि० चर्चिल, लफ्फाजीके बादशाह!

किसान सभा किधर—?

स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे स्थापित की गयी जितनी पार्टियां और संस्थाएं हैं उनके हाई कमाण्ड अपने मुख्य उद्देश्यको भूल कर अपनी पार्टीको ही देश मानने लगे हैं। स्वतन्त्रताका प्रश्न गौण हो गया है, पार्टीका प्रश्न प्रधान। इस दलबन्दी और अधिकार-लोलुपताकी प्रचण्ड वासनाके कारण ही, देशमें जब अकाल और महामारी, अनीति और अनाचारका ताण्डव हो रहा था और निस्सहाय देशवासी क्रूर कालके शिकार हो रहे थे तब ये पार्टियां उनकी लाशोंपर खड़े होकर देशको भिक्षावृत्तिका स्तोत्र रटा रही थीं।

अब भी मेलके नाम पर वही चेष्टा चल रही है। युनाइटेड प्रेसके पटनास्थित संवाददातासे मालूम हुआ है कि इसी दुर्नीतिके कारण आल इण्डिया किसान सभाके प्रेसिडेण्ट स्वामी सहजानन्द सरस्वतीको अपने जेनरल सेक्रेटरी, किसान सभाके बम्बई स्थित समूचे सेण्ट्रल आफिसको, सम्पूर्ण बङ्गप्रान्तीय किसान सभा एवं बङ्गालकी कुछ जिला किसान सभाओंको दो महीनेके लिये मुअत्तिल कर देना पड़ा है। अनुशासनकी यह कार्यवाही करनेकी आवश्यकता इसलिये पड़ी कि "सभाका आदेश और निर्णय जानबूझ कर अमान्य किया गया है।" किसान सभाने खास तौरसे एक प्रस्ताव द्वारा पाकिस्तानके सवालको उठाने और पक्ष या विपक्षमें, किसी तरहका प्रचार कार्य करनेकी मनाही कर दी थी। किन्तु बराबर चेतावनी देनेपर भी ये लोग वही करते रहे और इस तरह किसान सभाके प्लेटफार्म औरअन्य साधनोंको कम्यूनिस्ट पार्टीकी नीतिका प्रचार करनेका जरिया इन लोगोंने बनाया। इसीसे इस कठोर कार्यवाही की आवश्यकता हुई।" किसान सभाओंका काम देहातोंमें होता है। देहातोंमें अभीतक साम्प्रदायिकताके सवालने वह रूप धारण नहीं किया जो शहरों और कसबोंमें है। ऐसी स्थितिमें किसानोंके बीच एक नयी समस्या खड़ी करके उनका ध्यान व्यापक प्रश्नसे हटा कर गौण प्रश्नकी ओर ले जाना, राजनीतिके दलदलमें फंसाना, गरीब हिन्दू और मुसलमान किसानोंको समान रूपसे तबाह करनेवाले महासभावादी और लीगवादी हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समस्यामें लिप्त करना निश्चय ही किसानोंके हितोंके साथ खेलवाड़ करना है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तानकी समस्या गरीबोंकी समस्या नहीं है। यह तो राजनीतिको चोंचलेबाजी समझने वाले कुछ खुशहाल लोगोंकी दिलबस्तगीका सामान है। "चिड़ियोंका मरना लड़कोंका खेलना है।" स्वतन्त्रताके सवालको पीछे ढकेलने वाले पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके मसलेमें गरीब किसानों और मजदूरोंको घसीटनेसे किसी पार्टीको लाभ हो सकता है देशको नहीं। अतः कम्यूनिस्टोंने अपनी इस हरकत द्वारा देशको मिलानेका नहीं फूट डालनेका काम किया है।

